श्रीशखेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।

वादमाला

मूलग्रन्थकार

न्यायविशारद-न्यायाचार्य महामहोपाध्याय

श्री यशोविजयजी गणिवर

दिव्याशिष

वर्धमानतपोनिधि सघहितचितक न्यायविशारद गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय

भुवन भानु सूरीश्वरजी महाराज

प्रेरक - प्रोत्साहक

सिद्धान्तदिवाकर गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय

जयघोष सूरीश्वरजी महाराज

हेमलता (सस्कृत) टीकाकार - वल्लभा (हिन्दी) व्याख्याकार - सशोधक - सपादक

पद्ममणितीर्थोद्धारक मुनिराजश्री विश्वकल्याणविजयजी महाराज के शिष्य

मुनि यशोविजय

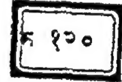
महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज के उद्गार : →

स्वागमेऽन्यागमार्थाना शतस्येव परार्ध्यके ।
नावतारबुधत्व चेत् ? न तदा ज्ञानगर्भता ॥ अध्यात्मसार (६/३६)

परार्ध (उत्कृष्ट सख्या) मे १०० सख्या के समावेश की भाँति जैनागम में अन्य दर्शन के शास्त्रार्थो के उचित समावेश की कुशलता नही है, तव ज्ञानगर्भित वैराग्य नामुमकिन है ॥

प्रथम आवृति
वि स. २०४९

मूल्य



[नोध : अभ्यासु जैनसाधु-साध्वीजी महाराज को भेट मिल सकेगी ।]

प्रकाशक

दिव्यदर्शन ट्रस्ट
३६, कलिकुड सोसायटी
धोलका
Pin - 387 810

प्राप्तिस्थान

१ प्रकाशक
२ भरतभाई चतुरदास शाह,
कालुशी पोल,
कालुपुर,
अमदावाद - ३८० ००१

-: लेसर टाईपसेटीग :-

पार्श्व कोम्प्युटर्स,
३३, जनपथ सोसायटी, केनाल के पास, इसनपुर रोड, घोडासर, अमदावाद - ५०
दूरभाष : ३९६२४६

दिव्याशिष


सिद्धान्तमहोदधि वात्सल्यवारिधि सुविशालगच्छाधिपति
स्व. आचार्यदेव श्रीमद् विजय
प्रेमसूरीश्वरजी महाराजा



वर्धमानतपोनिधि-गच्छाधिपति

प पू आ श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी महाराजा



सिद्धातदिवाकर गच्छाधिपति

प पू आ श्री जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा

प्रकाशकीय हर्षोद्गार

प्रिय विज्ञ वाचकवर्ग के समक्ष 'हेमलता' (सस्कृत टीका) एव वल्लभा (हिन्दी व्याख्या) से सुशोभित वादमाला ग्रन्थ को प्रस्तुत करते हुए हम आज अपूर्व आनद की अनुभूति करते है ।

मूलग्रन्थ 'वादमाला' के रचयिता महामहिम तर्कसम्राट् न्यायविशारद न्यायाचार्य महोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज है । चिरकाल से अध्ययन - अध्यापन क्षेत्र से यह ग्रन्थरत्न प्राय बाहर रहा हुआ है, जिसका कारण है इस ग्रन्थ की नव्यन्याय से गर्भित पारिभाषिक गूढ पदावली । इस प्रकरणरत्न की प्रत्येक पक्ति नव्यन्याय की कर्कश परिभापा के गहन प्रयोग से इतनी जटिल है कि प्राथमिक अध्येतावर्ग विमनस्क हो कर इस प्रकरणरत्न को अपने अभ्यासक्षेत्र मे लाते हुए घबराते है । अध्येतागण को इस बहुमूल्य ग्रन्थरत्न के अभ्यास के लिए सक्रिय प्रेरणा एव प्रोत्साहन देने के लिए गुरुजनों से आशिप ले कर विद्वान् मुनिश्री यशोविजयजी ने इस ग्रन्थ पर सस्कृतभापामे हेमलता टीका एव हिन्दीभापा मे वल्लभा व्याख्या की रोचक रचना की है, जिससे प्राथमिक नव्यन्यायअभ्यासु वर्ग इस ग्रन्थ के अध्ययन से लाभान्वित हो सकेगे । स्याद्वादरहस्यग्रन्थ की जयलता टीका की भाँति प्रस्तुत वादमालाप्रकरण की हेमलता टीका मे तत् तत् वादस्थलो के प्रारभ आदि मे टीकाकारने जो मङ्गल किया है उससे टीकारचनाकाल के दौरान टीकाकार के विहारक्षेत्र का ज्ञान भविष्यकालीन इतिहासविदो को भी सुलभ बनेगा ।

स्याद्वादरहस्य, स्याद्वादकल्पलता, आत्मख्याति, न्यायखण्डखाद्य, अष्टसहस्रीतात्पर्यविवरण आदि अनेक आकर ग्रन्थों के अध्ययन को सुकर एव सुलभ बनाने के लिए इस ग्रन्थ का एव उसकी दोनो व्याख्याओ का सूक्ष्म अवलोकन करना अब दार्शनिक अभ्यासुगण मे आवश्यक समझा जायेगा ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के टीकाकार मुनिश्री यशोविजयजी ने ही पूरे ग्रन्थ के सशोधन, सपादन -प्रुफ रीडीग, परिशिष्ट आदि कार्य किया है, एतदर्थ हम उनके आभारी है । अमदावाद के पार्श्व कोम्प्युटरवाले अजयभाई एव विमलभाई आदि ने ग्रन्थ के कम्पोझ, मुद्रण आदि मे बहुत दिलचश्पी से काम किया है, एतदर्थ वे भी धन्यवाद के पात्र है । मुनिश्री से रचित सस्कृतभापानिबद्ध **भानुमती** टीका एव गुर्जर भावानुवाद से अलकृत ऐसे महोपाध्यायकृत **'न्यायालोक'** ग्रन्थ का प्रकाशन भी अल्प समयावधि मे हमारी सस्था की ओर से करने के लिए हमारी उम्मीद है । अस्तु !

सुगृहीतनामधेय चारित्रचूडामणि सिद्धान्तमहोदधि आचार्यदेवेश श्रीमद् विजय **प्रेमसूरीश्वरजी** महाराज के पट्टालकार परमश्रद्धेय वर्धमानतपोनिधि न्यायविशारद गच्छाधिपति आचार्यदेवेश श्रीमद् विजय **भुवनभानुसूरीश्वरजी** महाराजा के दिव्य शुभाशिष से हमारी सस्था को ऐसे बहुमूल्य शास्त्रीय प्रकाशनो का लाभ मिलता रहे, जिससे अध्येता मुमुक्षवर्ग कुतर्क एव कदाग्रह स्वरूप विपम विप से मुक्त हो कर विशुद्ध आत्मपरिणति द्वारा परमानन्द को प्राप्त करे - यही हमारी तमन्ना है ।

परमपूज्य सिद्धान्तदिवाकर गच्छाधिपति आचार्य भगवत श्रीमद् विजय **जयघोपसूरीश्वरजी** महाराजा एव पन्यासप्रवर पूज्य **पद्मसेनविजयजी** गणिवर तथा पूज्य मुनिराजश्री **नेत्रानदविजयजी** महाराज की पावन प्रेरणा से - श्री श्वेताबर मूर्तिपूजक जैन सघ चोपाटी - बोम्बे की ओर से ज्ञाननिधि से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है - एतदर्थ श्री चोपाटी (बोम्बे) जैन सघ एव उसके ट्रस्टी महोदयों को भी धन्यवाद है ।

लि

दिव्यदर्शन ट्रस्ट के ट्रस्टी
कुमारपाल वि शाह
भरतभाई चतुरदास शाह
मयकभाई शाह आदि

ग्रन्थप्रवेश के पूर्व किञ्चित्

'भाई जान ! तेंदुलकर बहुत अच्छा खेले, ११९ रन बनाये' ।

'उस्ताद ! अझहर ने तो उससे भी ज्यादा शान रखी, नोट आउट रह कर १७९ रन चुरा लिये' ।

'अजी जनाब ! सब से अच्छा तो भारत का जुमला खेला, ४८६ रन तक स्कोरबोर्ड पहुँचा दिया !!!'

जहाँ तक क्रिकेटविषयक ज्ञान का सवाल है, हम कह सकते है→ प्रथम व्यक्ति की अपेक्षा द्वितीय व्यक्ति मे अधिक प्रज्ञा है जब कि तृतीय व्यक्ति तो बुद्धिविहीन केवल आडंबरी मुखर है । अतएव प्रथम व्यक्ति की अपेक्षा द्वितीय व्यक्ति Commentry का आनंद अधिक पा सकती है जब कि तृतीय व्यक्ति Cricket का केवल काल्पनिक आभिमानिक आनंद पा सकती है । कक्षाभेद से Cricket के प्रेक्षक एव श्रोताओ की आनंद उर्मियाँ तेज-मंद होती है । मगर जहाँ मे अतिलोकप्रिय एव रसप्रद Cricket-game के प्रेक्षकवर्ग मे जो बात लागु होती है वही बात जिज्ञासुप्रिय एव सात्त्विकसुखदायी दार्शनिक अध्ययन के अध्येतावर्ग मे भी ठीक तरह संगत होती है । बहुत दार्शनिकअभ्यार्गी तत्त्वज्ञान के आनंद को लूटने की प्राथमिक कक्षा मे होते है, जिनकी अपेक्षा द्वितीय कक्षा मे प्रविष्ट कुछ सर्वदर्शनतत्त्वज्ञानपिपासु लोक अधिक तात्त्विक आनंद से लाभान्वित होते है । जब कि उपर्युक्त दृष्टान्त के अनुसार निम्न तृतीय कक्षा मे रहनेवाले पाठक बडी सख्या मे उपलब्ध होते है, जो वाचालता से गभीरतत्त्वज्ञानमकरन्द भोगी भ्रमर के लेबास मे अपना प्रदर्शन कर के आभिमानिक दांभिक आनंद का अनुभव करते है । सच्चे आध्यात्मिक सुख के भोगी तत्त्वज्ञानी तत्त्व का केवल दर्शन करते है, प्रदर्शन नही । अपने तत्त्वज्ञान का लाभ योग्य व्यक्ति ले सके- इस उद्देश से परोपकारार्थ निःस्वार्थभाव से अधिकृत व्यक्तियो की सम्यक् अध्यापन आदि प्रवृत्ति भी अध्ययन की भाँति तत्त्वज्ञान का सहज दर्शन ही है, प्रदर्शन नही । यश-कीर्ति या कांचन आदि की प्राप्ति के उद्देश से इधर-उधर से कुछ पदार्थ को दिमाग मे स्टीकर की भाँति चिपकाकर तोते की भाँति ललकारना- यह है तत्त्वज्ञान का प्रदर्शन । एक है शिवसुखप्रापक तो दूसरा है भीमभवदुःखकारक ।

क्रिकेटजगत मे कुछ लोग केवल प्रेक्षक ही नही बल्कि स्वय अच्छे बेट्समेन, बोलर, फिल्डर, विकेटकीपर भी होते है । अच्छे बेट्समेन Spin या Pace Bowler की कातिल गेंदबाजी से अपनी विकेट को केवल सुरक्षित नही रखते किन्तु बोल को अपनी काबत से Boundryline से बाहर पहुँचाते है । ठीक वैसे ही दार्शनिक जगत मे कुछ लोग केवल प्रेक्षक की भाँति अध्येता या Commentater की तरह अध्यापक न होकर Century-Batsman के तुल्य भी होते है जो परदर्शनी की ओर से होनेवाली कर्कशकुतर्कउपन्यास समान गेंदबाजी से घबडाते नही है, किन्तु अपने सिद्धान्तस्वरूप विकेट का सुरक्षित रख कर कुतर्कस्वरूप बोल को फटकार के अपने दर्शन की Boundryline से बाहर निकालते है । कुछ लोग बेट्समेन न होकर केवल Bowler होते है जो Pace या Spin Out Swing या In Swing bowling करके Player को L.B.W. करते है या Clean Bowled करते है । ठीक वैसे ही कुछ दार्शनिक लोग स्वसिद्धान्त की सुरक्षा करने मे असमर्थ होते है मगर कभी वितण्डा-वाद-कुतर्कप्रदर्शनस्वरूप Pace-Bowling से तो कभी छल-निग्रहस्थान[1] प्रदर्शन स्वरूप Spin-bowling से तो कभी अन्यदर्शन की ओर प्रतिवादी के सिद्धांतो को झुकाने के प्रयास सदृश Out-swing bowling से तो कभी बाहरी लौकिक दृष्टान्त के बल से प्रतिवादिसिद्धान्त मे दोषोद्भावनतुल्य In-swing bolwing से प्रतिवादीस्वरूप Cricket Player को अप्राप्यकाल-अविज्ञातार्थ-निरर्थक-न्यून-अधिक -पुनरुक्त - अज्ञान-अप्रतिभा - विक्षेप आदि निग्रहस्थान प्राप्तिस्वरूप Fielder से Catch करवाते है या तो प्रतिज्ञाहानि-प्रतिज्ञासन्यास-प्रतिज्ञाविरोध - हेत्वाभास आदि निग्रहस्थानप्रसङ्गस्वरूप Clean-bold से Out करते है, जिसके फलस्वरूप दार्शनिक जगतरूपी Stadium मे वादस्वरूप Pitch पर तत्त्वमीमासात्मक Cricket को खेलने को आये हुए प्रतिवादीस्वरूप Batsman को वापस पेवेलियन मे परास्त होकर प्रवेश करने के लिये मजबूर होना पडता है । कभी वादी बेट्समेन या बोलर न होकर अच्छा फिल्डर भी हो सकता है, जिसको जब प्रतिवादीस्वरूप Cricket-Player युक्तिस्वरूप Bawl फटकारता है तब मतानुज्ञा आदि निग्रहस्थान संशोधनस्वरूप Fielding भी ठीक तरह अदा करनी पडती है । जब वादी Fielder पर्यनुयोज्यउपेक्षणस्वरूप निग्रहस्थान को पकडता नही है तब प्रतिवादी-बेट्समेन को Catch छूट जाने से जीवनदान मिलता है । कुशल दार्शनिक-फिल्डर

१ विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम् । न्या सू १/२/१९ । प्रतिदृष्टान्तधर्माभ्यनुज्ञा स्वदृष्टान्ते प्रतिज्ञाहानि , । प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधधर्मविकल्पात् तदर्थनिर्देश प्रतिज्ञान्तरम् । प्रतिज्ञाहेत्वोर्विरोध । पक्षप्रतिषेधे प्रतिज्ञातार्थापनयन प्रतिज्ञासन्यास । अविशेषोक्ते हेतौ प्रतिषिद्धे विशेषमिच्छतो हेत्वन्तरम् । प्रकृतादर्थादप्रतिसम्बद्धार्थमर्थान्तरम् । वर्णक्रमनिर्देशवन्निरर्थकम् । परिषत्प्रतिवादिभ्या त्रिरभिहितमप्यविज्ञातमविज्ञातार्थम् । पौर्वापर्यायोगादप्रतिसम्बद्धार्थमपार्थकम् । अवयवविपर्यासवचनमप्राप्तकालम् । हीनमन्यतमेनाप्यवयवेन न्यूनम् । हेतूदाहरणाधिकमधिकम् । शब्दार्थयो पुनर्वचन पुनरुक्तमन्यत्रानुवादात् । अनुवादे त्वपुनरुक्त शब्दाभ्यासादर्थविशेषोपपत्ते । अर्थादापन्नस्य स्वशब्देन पुनर्वचनम् । विज्ञातस्य परिषदा त्रिरभिहितस्याप्यप्रत्युच्चारणमननुभाषणम् । अविज्ञात चाज्ञानम् । उत्तरस्याप्रतिपत्तिरप्रतिभा । कार्यव्यासङ्गात् कथाविच्छेदो विक्षेप । स्वपक्षे दोषाभ्युपगमात् परपक्षे दोषप्रसङ्गो मतानुज्ञा । निग्रहस्थानप्राप्तस्यानिग्रह पर्यनुयोज्योपेक्षणम् ।

कभी कभी[1] अपसिद्धान्तनिग्रहस्थान से प्रतिवादी-बेट्समेन को Run-out भी करता हे। प्रतिवादी-बेट्समेन छल-जाति-तर्क आदि का उपयोग कर के ज्यादा रन बनाना चाहता है जब कि Bowler-Fielder दार्शनिक हेत्वाभासनिग्रहस्थान आदि से उसे out करने के लिये उत्साहित रहते हैं। कभी कभी वादी-बोलर की तर्काक्षेपस्वरूप गेदबाजी कातिल बनती हे तब अच्छे अच्छे प्रतिवादी-बेट्समेन भी अननुभाषण आदिनिग्रहस्थानस्वरूप Steady का आश्रय करने के लिये मजबूर होते हे। सभ्य स्वरूप Wicket-keeper भी वादमैदान मे तत्त्वमीमासास्वरूप क्रिकेट मे प्रतिवादी-बेट्समेन को दूषणोद्भावनआदिस्वरूप Catch-out द्वारा परास्त करने को तत्पर रहते हैं। बोलर या फिल्डर की जोरशोर से दोषघोषणस्वरूप अपील होने पर भी सभापतिस्वरूप अम्पायर अपनी मक्कमता को छोडता नही हे। जब वादीबोलर अधिकनिग्रहस्थानवाली युक्तिप्रक्षेप बोलिग करता है तब सभापति-अम्पायर उसे No Ball भी डिक्लेर कर सकता है। कभी सभापति-अम्पायर गलत निर्णय देता हे तब भी तत्त्वगोष्ठीस्वरूप Cricket को खेलदिली से खेलने वाला प्रतिवादी बेट्समेन अपने आपको LBW के स्वरूप मे घोषित करता हे। एसा भी कभी कभी होता है मगर सर्वदा नही। वादी बोलर के सिद्धान्तरूप बोल को फटकार के प्रतिवादी-बेट्समेन सेकडो विकल्पजालस्वरूप अच्छे रन बनाकर वादी को भी Bowling करने का अधिक Chance देते है। मगर जहाँ तक जय-पराजय का सवाल है हम कह सकते ह कि वह वादी बोलर-फिल्डर, सभ्यस्वरूप विकेटकीपर, प्रतिवादी-बेट्समेन की कुशलता की भाँति सभापति-अम्पायर की प्रामाणिकता पर भी अवलबित है। क्रिकेटजगत मे जो अच्छा बोलर-बेट्समेन-फिल्डर हो उसे All-rounder कहते है जिनकी सख्या बहुत कम होती है। किन्तु Not-out रहनेवाला Century-batsman होते हुए बोलिग क्षेत्र मे भी सफल Faster, Spiner हो वैसे अच्छा फिल्डर तो अभी तक पेदा हुआ नही है। मगर क्रिकेटजगत से दार्शनिकजगत की विशेषता यह हे कि नव्य दार्शनिकजगत मे सदा के लिए Unbeaten Century Batsman, तथा bowling मे सफल Fast, out-swinger, in-swinger, spiner एव the best fielder ऐसे Captain हो गये जिनका नाम हे श्रीमद् न्यायविशारद न्यायाचार्य **महोपाध्याय यशोविजयजी** महाराज। उन्हो ने सेकडो की सख्या मे[2] लाखो श्लोकप्रमाण ग्रन्थरत्नो को बनाये, अकाट्य १०० ग्रन्थो की रचना के सबब न्यायाचार्यपद का एव काशी मे कुवादी को Clean Bowled करने की वजह काशीपडितो से न्यायविशारद का इल्काब प्राप्त किया। शारजाह मे चेतनशर्मा की Last Over के Last Ball मे Sixer लगाकर पाकिस्तान को विजयी घोषित करनेवाले जावेद मियाँदाद को जेसे 'Man of the Match' की उपाधि दी गई ठीक वेसे ही दार्शनिक मीमासा टुर्नामेन्ट मे १२ वीं से १७ वीं विक्रमशताब्दी पर्यन्त नवीन नेयायिकादि की टीम से स्याद्वादी की टीम पर जो कातिल कुतर्क आक्षेपस्वरूप नव्य गोलदाजी हुई उनको अच्छी तरह झूड कर स्याद्वादी को विजयी बनानेवाले विक्रम की १७ वीं शताब्दी के महान ज्योतिर्धर श्रीमद् महोपाध्याय यशोविजयजी महाराज को नव्य दार्शनिक टुर्नामेन्ट मे 'Super man of the Series' का एवोर्ड दिया जा सकता हे। Victorious Captain महोपाध्यायजी को कोटि कोटि वदना!

'वादमाला'

कुर्चालसरस्वती वाचककुलालकार श्रीमद् महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म सा ने अपने ग्रन्थो मे (१) एकान्तवादी मतो के खण्डन आर (२) स्याद्वादसिद्धान्त के सम्यक् मडन को प्राय सर्वत्र स्थान दिया हे जिसका उदाहरण वादमाला प्रकरण भी है। यद्यपि वादमालानामक तीन ग्रन्थ महोपाध्यायजी ने बनाये हैं। प्रथमवादमाला ग्रन्थ मे स्वत्ववाद, सन्निकर्षवाद, विषयतावाद आदि का समावेश किया गया हे। द्वितीय वादमाला प्रकरण मे (१) वस्तुलक्षणविवेचन, (२) सामान्यवाद, (३) विशेषवाद, (४) इन्द्रियवाद, (५) अतिरिक्तशक्तिपदार्थवाद, (६) अदृष्टसिद्धिवाद - इन छ वादस्थालो का समावेश किया गया हे। इन दोनो वादमाला का सपादन पूज्य विद्वद्वर्य विद्यागुरुदेव श्रीजयसुदरविजयजी म ने किया है जो भारतीय प्राच्यतत्त्वप्रकाशन समिति पिण्डवाडा से प्रकाशित हुई हे। अन्य सस्था से भी इनका प्रकाशन हुआ हे। तृतीय वादमाला मे (१) चित्ररूपवाद, (२) लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवाद, (३) द्रव्यनाशहेतुताविचारवाद, (४) सुवर्णतैजसत्वातैजसत्ववाद, (५) अन्धकारभाववाद (६) वायुस्पार्शनप्रत्यक्षवाद, (७) शब्दनित्यत्वानित्यत्ववाद - इन ७ वादस्थलो का सङ्ग्रह किया गया हैं। यही तृतीय वादमाला वाचकवृन्द के करकमल मे आज सटीक-सविवेचन उपस्थित हो रही है। जैनग्रन्थप्रकाशकसभा (अमदावाद) के द्वारा पूर्व मे यह सप्तवादगर्भित मूल ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका हे, जिसका आधार ले कर एव कुछ स्थलो की अशुद्धि का परिमर्जन कर के प्रस्तुत पुस्तक मे वह मूल ग्रन्थ मुद्रित किया गया है।

---

१ अनिग्रहस्थाने निग्रहस्थानाभियोगो निरनुयोज्यानुयोग । सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान्त ॥ [न्या सू ५/२/२-२४] सव्यभिचारविरुद्धप्रकरणसमसाध्यसमकालातीता हेत्वाभासा । अनैकान्तिक सव्यभिचार । सिद्धान्तमभ्युपेत्य तद्विरोधी विरुद्ध । तस्मात्प्रकरणचिन्ता स निर्णयार्थकमपदिष्ट प्रकरणसम । साध्याविशिष्ट साध्यत्वात् साध्यसम । कालात्ययापदिष्ट कालातीत ॥ [न्या सू १/२/४-९]

२ 'न्यायग्रन्थ लक्ष कीधो छई। तो बौद्धादिकरी एकान्त युक्ति खडी स्याद्वादपद्धति माडी नइ।' - श्रीमद् महोपाध्याय यशोविजयजी के स्तम्भनतीर्थ मे जेसलमेरवास्तव्य साहहरराज पर लिखित पत्र मे से।

वादमालाविषय

प्रथम चित्ररूपवाद के प्रारम्भ मे मङ्गलाचरण कर के स्वतंत्र चित्ररूप का स्वीकार नहीं करने वाले नव्यनैयायिकों के पूर्वपक्ष का सविस्तर प्रतिपादन किया गया है जिसमें अतिरिक्त चित्ररूप का स्वीकार करनेवाले प्राचीन विद्वानो के मत का सविस्तर निरूपण एवं निराकरण किया गया है। इसमे आगे चल कर पाकज चित्ररूप एवं रूपज चित्ररूप की कारणता की चर्चा कर के पाकज चित्ररूप का स्वीकार नहीं करनेवाले एकदेशीय विद्वानो के मत का उन्मूलन किया गया है। —> विजातीयरूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी मे अव्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि अनेक रूप को मानने पर प्रसक्त महागौरव दोष के निराकरणार्थ नील, पीत, रक्त आदि रूप से पृथक् चित्ररूप का स्वीकार ही लाघव सहकार से सङ्गत है <— इस तरह स्वतंत्र शबलरूप की स्थापना करते हुए प्राचीन नैयायिक ने अवच्छेदकगौरव दोषात्मक नहीं है, अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलादि के प्रति नीलेतररूपविशिष्टनीलत्वेन कारणता है- इत्यादि का अच्छे ढंग से स्थापन किया है [पृ. २१ तक]।

बाद मे रूपत्वेन चित्ररूपकारणता का स्वीकार करनेवाले स्वतन्त्र विद्वानों के विचार आवेदित किये गये है [पृ. २८]। पश्चात् विजातीय चित्र रूप के प्रति रूपविशिष्टरूपत्वेन कारणता का निरूपण किया गया है [पृ. २९]। आगे चल कर चित्ररूप के प्रति यावत्त्वावच्छिन्न अखण्डाभाव में कारणता का निराकरण किया गया है [पृ. ३१]। तदनन्तर चित्रत्वावच्छिन्न के प्रति रूपत्वेन एवं चित्रत्वव्याप्यवलक्षण्यावच्छिन्न के प्रति नीलत्व-पीतत्वादि धर्म से कारणता का प्रदर्शन एवं इसमें प्रतिबन्धकताकल्पनागौरव के परिहारार्थ परिष्कार किया गया है [पृ. ३२]।

चित्ररूप को अनेकविध माननेवाले एवं जाति को अव्याप्यवृत्ति मान कर एक ही चित्ररूप मे नीलत्व-पीतत्व-विलक्षणचित्रत्वादि का भिन्न अवच्छेदेन समावेश करनेवाले उच्छृंखल विद्वानो के मत का प्रतिपादन यहाँ जो उपलब्ध है [पृ. ३३] वह स्याद्वाद के अङ्गीकार के बिना नामुमकिन है- ऐसा श्रीमद्जी ने मध्यम स्याद्वादरहस्य प्रकरण मे बताया है।

आगे चल कर चित्ररूपपक्ष मे गौरव का उद्भावन एवं फलमुखत्वकथन से उसमे दोषत्व का परिहार किया गया है [पत्राङ्क ३९]। बाद मे व्याप्यवृत्ति अनेकरूप को मान्य करनेवाले अपर विद्वानों के मत का निरूपण एवं निराकरण [पत्राङ्क ४०] किया गया है। पश्चात् रूप की भाँति रस-गन्ध मे चित्रत्व का निराकरण उपलब्ध है। आगे चल कर चित्रस्थल मे चित्ररूप का स्वीकार न करनेवाले एवं अवयवगत रूप-स्पर्श से ही अवयवी के प्रत्यक्ष का उपपादन कर के अवयवी को रूपशून्य एवं स्पर्शरहित माननेवाले विद्वानों के मत की विस्तार से मीमांसा की गई है। बाद में रूप को छोड कर शक्तिविशेष मे चाक्षुष के प्रति कारणता का प्रतिपादन करने वाले विद्वानो के मत का प्रतिक्षेप किया गया है और साथ ही चित्ररूपवाद की समाप्ति की गई है।

श्रीमद्जी ने प्रस्तुत वादमाला की भाँति आत्मख्याति ग्रन्थ मे एवं नयोपदेश ग्रंथ मे प्रौढयुक्ति से चित्ररूपवाद का प्रतिपादन किया है। इस तरह कल्पलता के षष्ठ स्तबक की ३७ वीं कारिका में भी विस्तार से चित्ररूपवाद का श्रीन्यायविशारदजी ने विस्तार से निरूपण किया है। स्याद्वादकल्पलता मे तो न्यायाचार्य ने चित्ररूप मीमांसा के उपसंहार मे 'विस्तरतस्तु स्याद्वादरहस्ये' ऐसा उल्लेख किया है। एवं वीतरागस्तोत्र की अष्टमप्रकाश की स्याद्वादरहस्य नामक व्याख्या मे ९ वीं कारिका के विवरण मे सविस्तर चित्ररूप की चर्चा करते हुए बीच में ही 'अधिकं मत्कृतचित्ररूपप्रकाशे' ऐसा उल्लेख महोपाध्याय यशोविजयजी महाराज ने किया है। चित्ररूपप्रकाशपद से दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं किन्तु इसी वादमाला के प्रथम मौक्तिकस्वरूप चित्ररूपवाद ही श्रीमद्जी को अभिमत हो - ऐसा लगता है। साथ साथ यह भी ध्यान में रहे कि जब जैनग्रन्थप्रकाशक सभा की ओर से वि. सं. २००० की साल में प्रस्तुत वादमाला मूलग्रन्थ का प्रकाशन हुआ तब तक स्याद्वादरहस्य ग्रन्थ लुप्तप्राय था या अज्ञात एवं अनुपलब्ध था, जिसका उल्लेख पूर्वमुद्रित वादमाला मूलग्रन्थ की प्रस्तावना मे भी किया गया है।

यहाँ इस बात का भी निर्देश करना जरूरी है कि (मध्यम) स्याद्वादरहस्य की जयलता नामक टीका आदि के सर्जनकाल के दौरान मैंने हुबलि शहर मे प्रस्तुत वादमाला प्रकरण की हेमलता टीका आदि का प्रारंभ किया और बिजापुर मे वादमाला के प्रथम मौक्तिकस्वरूप चित्ररूपवाद की संस्कृत एवं हिन्दी टीका का कार्य पूर्ण हुआ। इसके पश्चात् मुझे पता चला कि प्रस्तुत सप्तवादगर्भित वादमाला ग्रन्थ की विवृति नामक संस्कृत टीका शासनसम्राट आचार्यदेवेश श्रीमद्विजय नेमिसूरीश्वरजी महाराज ने बनाई है, जो प्रताकार में मुद्रित हुई है। ज्ञात होते ही मैंने विवृति टीका मंगवाई। चित्ररूपवाद का विस्तार से निरूपण करनेवाले स्याद्वादरहस्य एवं आत्मख्याति आदि ग्रन्थ तो विवृति टीका की रचना के पश्चात् उपलब्ध हुए- यह तो सुविदित है। इसी सबब विवृतिटीका का क्षीरनीरदृष्टि से सूक्ष्म अवलोकन करने पर विवृतिटीका के कुछ स्थलो मे परिमार्जन की आवश्यकता मुझे महसूस हुई और पश्चात् विवृतिटीका के तत् तत् स्थलो का उल्लेख कर के मैंने हेमलता मे उनका क्षयोपशमानुसार परिमार्जन किया एवं आगे भी जहाँ जहाँ विवृति

मे परिमार्जन की आवश्यकता प्रतीत हुई, वहाँ वहाँ क्षयोपशमानुसार हेमलता मे विवृति के परिमार्जन का सिलसिला जारी रखा। विवृति और हेमलता दोनो टीका ग्रन्थ का सूक्ष्म अवलोकन करने से वाचकवर्ग को इस बात का पता लग जायेगा।

प्रस्तुत वादमाला का द्वितीय मौक्तिक है **लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवाद,** जो अद्वितीय है। 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इस परामर्श के उत्तर क्षण मे नैयायिक 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का स्वीकार करते है जब कि वैशेषिक विद्वान् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का स्वीकार करते है। मतलब कि नैयायिक के मतानुसार अनुमिति मे लिङ्गी=साध्य का भान लिङ्गसहित यानी लिङ्गोपहित होता नही है जब कि वैशेषिक के मतानुसार अनुमिति मे लिङ्गी=साध्य का भान लिङ्गसहित=लिङ्गोपहित होता है। अत नैयायिक मनीषी लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी कहे जाते है और वैशेषिक विद्वान् लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी कहे जाते है। अपने आपमे नैयायिक होते हुए भी **उदयनाचार्य** ने वैशेषिकसमत लिङ्गोपहितलङ्गिकभान को नवपल्लवित किया। पश्चात् नवीन नैयायिक ने लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान को पुनर्जीवन देने का प्रयास किया। उपाध्यायजी महाराज ने नव्य और प्राचीन नैयायिक एव वैशेषिक की युक्ति-प्रतियुक्तिओ के वैचारिक सघर्ष को पृथक् ग्रन्थदेह प्रदान करने का सङ्कल्प किया जिसके फलस्वरूप प्रस्तुत वादमाला के द्वितीय मौक्तिकस्वरूप लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवाद का जन्म हुआ। वैशेषिक मनीषी कार्यकारणभाव के बल से लिङ्गोपहित अनुमिति का स्थापन करता है जब कि गौरवदोष एव हेत्वभावनिश्चयकाल मे अनुमिति मे लिङ्गोपहितत्वासम्भव दोष तथा व्यभिचार दोष के सबब लिङ्गानुपहित लैङ्गिकानुमिति की सिद्धि नैयायिक करता है [पत्राङ्क ५७] इसके अतिरिक्त वैशेषिक के प्रति नैयायिक का कथन यह है कि → [पत्राङ्क ६४] लिङ्गोपहित अनुमिति के स्वीकार मे प्रतिबन्धकतागौरव दोष भी अपरिहार्य बनता है←। मगर नैयायिक वक्तव्य के खिलाफ प्रकरणकार श्रीमद्जी का कथन यह है कि लिङ्गोपहित अनुमितिपक्ष मे प्रसक्त प्रतिबन्धकताकल्पना प्रमाणसहकृत होने से दोषात्मक नही है। वैशेषिकसम्मत प्रतिबन्धकता के अस्वीकार मे विशेषदर्शनोत्तर प्रत्यक्षउत्पत्तिक्षण मे अनुमिति की उत्पत्ति होने की आपत्ति नैयायिक मत मे दुर्वार रहेगी- ऐसा निरूपण अच्छे ढग से श्रीमद्जी ने किया है। [पत्राङ्क ६५]

पश्चात् बाधज्ञान को अनुमितिविशेष का प्रतिबन्धक मानने वाले गुरुचरणमत का प्रतिपादन कर के गौरवादि दोष का उद्भावन कर के श्रीमद्जी ने गुरुचरणमत का सविस्तर खण्डन किया है। यहाँ महोपाध्यायजी की अप्रतिम प्रतिभा का दर्शन होता है [पत्राङ्क ७२/७५]। आगे चल कर लिङ्गोपहित अनुमितिपक्ष मे कार्यताअवच्छेदक सम्बन्ध आदि मे विनिगमनाविरह दोष का आपादन किया गया है। विजातीय अनुमिति के स्वीकार के बल पर लिङ्गानुपहित अनुमिति की सिद्धि करनेवाले नैयायिक विद्वानो के मत मे साङ्कर्य, गौरव आदि दोष का उद्भावन श्रीमद्जी ने किया है [पृ ७८]

तदनन्तर लिङ्गोपहित अनुमिति को मान्य करनेवाले विद्वानो ने अपने मत का परिष्कृत प्रदर्शन कर के नैयायिक से आक्षिप्त दोषजाल का उन्मूलन किया है [पृ ८४]। श्रीमद्जी ने अभिनव उन्मेषशाली प्रज्ञा से उपदर्शित लिङ्गोपहितवादी के मत की कडी समालोचना की है [पत्राङ्क ८६]। लिङ्गानुपहितपक्ष मे गौरव का आपादन करनेवाले लिङ्गोपहितवादी के वक्तव्य को दूषित कर के अन्त मे वस्तुस्थिति को प्रदर्शित कर के लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान किस तरह स्वीकार्य हो सकता है ? इस विषय का हृदयङ्गम वर्णन कर के इस द्वितीय वाद को प्रकरणकारश्री ने समाप्त किया है [पत्राङ्क ९१]। यह वाद उपाध्यायजी महाराज के साहित्य मे केवल यहाँ ही प्राप्य है। अन्य वादस्थलो की भाँति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान का सविस्तर निरूपण श्रीमद्जी ने अपने अन्य ग्रथो मे किया हो - ऐसा दृष्टिगोचर हुआ नही है।

प्रकृत वादमाला के तृतीय मौक्तिकस्वरूप **द्रव्यनाशहेतुतावाद** मे निमित्तेतरकारणनाशत्वेन द्रव्यनाशकता का स्वीकार करनेवाले प्राचीन नैयायिक के मन्तव्य के खिलाफ असमवायिकारणनाश से द्रव्यनाश का स्वीकार करनेवाले नवीन नैयायिको के मत का सयुक्तिक प्रतिपादन किया गया है। नव्य मत मे जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति मे साङ्कर्य का परिहार एव विनिगमनाविरहविलोप की पद्धति मननीय है। बाद मे कर्मजन्य सयोग को ही द्रव्यजनक माननेवाले विद्वानो के मत का निरास किया गया है तथा 'असमवायिकारणता अखण्डउपाधि नही है' यह बताया गया है। पश्चात् एकशक्तिमत्त्वेन द्रव्यनाशकता को मान्य करनेवाले स्वतन्त्र विद्वानो के मत का निरूपण एव निराकरण किया है। 'सकल जन्य द्रव्य असमवायिकारणनाश से नाश्य नही है' इस गुरुचरणमत का सविस्तर मडन कर के खण्डन किया गया है। [पत्राङ्क १००] अत मे द्व्यणुकादि मे क्षणिकत्वापत्ति का परिहार कर के तृतीय वाद को समाप्त किया है। श्रीमद्जी ने इस विषय का सक्षेप से निरूपण (मध्यम) स्याद्वादरहस्य, अष्टसहस्रीविवरण आदि ग्रन्थ मे किया है।

जसे माला के मध्य मे लॉकेट आकर्षण का स्थान होता है ठीक वैसे ही इस वादमाला मे लॉकेटस्थानीय मध्यगत **सुवर्णतैजसत्वाऽतैजसत्ववाद** भी विद्वानो के लिये अनुपम आकर्षण का स्थान बनता है। यह वाद नैयायिक और स्याद्वादी मे बीच मे है, न कि परदर्शनी-परदर्शनी के बीच मे। अतएव यह वादस्थल अद्भुत आकर्षण का स्थान बना है। नैयायिक सुवर्ण आदि धातु को तैजस मानते है जब कि स्याद्वादी सुवर्ण आदि धातु को पार्थिव मानते है। गङ्गेश उपाध्याय ने **तत्त्वचिन्तामणि** ग्रन्थ के प्रत्यक्ष खण्ड मे प्रत्यक्षकारणवाद मे 'सुवर्ण तैजस है' इस विषय का विस्तार से निरूपण किया है [देखिये त चिता प्र ख पृ ७०६] जिसका प्रतिपादन एव परिहार

श्रीमद्जी ने यहाँ अभिनव अकाट्य युक्ति के बल से किया है। प्रस्तुत वादस्थल में यहाँ सर्व प्रथम विप्रतिपत्ति का उद्भावन कर के नैयायिक की ओर से अत्यन्तानलसंयोगकालीनाऽनुच्छिद्यमानद्रवत्व हेतु से सुवर्ण में तैजसत्व सिद्ध किया गया है। पीतरूप का आश्रय सुवर्ण नहीं है किन्तु उपष्टम्भक पृथ्वी अंश है और वह पीतभाग विरोधिद्रवद्रव्यसंयुक्त है। पीतभाग में द्रवत्वोच्छेद का विरोधी जो द्रव्य है वह अन्य कोई नहीं है किन्तु तैजस है - यह नैयायिकमन्तव्य है।

आगे चल कर सुवर्णद्रवत्व अविनाशी है, अपकृष्टत्व जाति नहीं है - इस विषय का निरूपण उपलब्ध है [पत्राङ्क ११३] जो पार्थिवसुवर्णवादी का मन्तव्य है। कुछ विद्वानों का मत यह है कि नैमित्तिक द्रवत्व निमित्तनाश से नाश्य है। इसका खण्डन पार्थिवसुवर्णवादी विद्वानों ने किया है [११६]। सुवर्णपार्थिवत्ववादी ने सुवर्णतैजसत्वसाधक अन्य अनुमान का भी निराकरण किया है [पत्राङ्क ११७] और अग्निसंयोगनाशाऽनाश्यद्रवत्वाधिकरणत्व हेतु को तैजसत्व का व्यभिचारी सिद्ध किया गया है [पत्राङ्क ११७]। मगर इन सभी आक्षेपों का निराकरण सुवर्णतैजसत्ववादी ने किया है [पत्राङ्क ११८]। महोपाध्यायजी की X-Rayजैसी भेदक दृष्टि का पता तो उपर्युक्त नैयायिकमत के प्रतिकार का ढंग कर चलता है। उपसंहार में सुवर्ण पार्थिव है-यह श्रीमद्जी ने सिद्ध किया है। इस विषय का अधिक विस्तृत निरूपण श्रीमद्जी ने प्रमेयमाला ग्रन्थ के तैजसप्रकरण में किया है। सुवर्ण पार्थिव है-इसकी सिद्धि के लिये अन्य युक्तिओं का प्रतिपादन मैंने हमलता टीका में भी किया है [पत्राङ्क १२२]

पञ्चमवादस्थल है तमोवाद। मीमांसकादि विद्वान् अन्धकार को द्रव्य मानते हैं और नैयायिक मनीषी अन्धकार को अभावात्मक कहते हैं। रूपवत्त्व हेतु से अन्धकार में द्रव्यत्व की सिद्धि करनेवाले मीमांसकों के खिलाफ नैयायिक का यह कथन है कि अन्धकार को उद्भूतरूपाश्रय मानने पर अन्धकार में उद्भूतरूपव्यापक उद्भूत स्पर्श की भी आपत्ति आयेगी। पश्चात् 'उद्भूतनीलरूप भी उद्भूतस्पर्श का व्यभिचारी है' इस मीमांसकवक्तव्य को नैयायिक ने दूषित किया है [पत्राङ्क १२७] जिसका परिहार मीमांसक विद्वानों ने किया है [पत्राङ्क १२८]। 'त्रसरेणु उत्कटस्पर्शशून्य है, महत्त्वविशेषाभाव से त्रुटिस्पर्शस्पार्शनअभाव की उपपत्ति नामुमकिन है,' - इत्यादि मीमांसकमन्तव्य के खिलाफ नैयायिक ने साङ्कर्य का उद्भावन किया [पत्राङ्क १३०] नियम विनिगमनाविरहदोषग्रस्तता का आपादन कर के मीमांसकों ने नैयायिकमत का प्रत्याख्यान किया है। मीमांसक पृथ्वीत्वेन नीलकारणता को मान्य करता नहीं है, जिसके फलस्वरूप अन्धकार में पृथ्वीत्वापत्ति को अवकाश रहता नहीं है। वस्तुस्थिति तो यह है कि नील रूप के प्रति तम-पृथ्वीसाधारण कारणता है [पत्राङ्क १३७]। अन्धकारअवयव में स्पर्श का आपादन नवीन नैयायिक ने किया जिसका परिहार मीमांसक ने यह कह कर किया कि - स्पर्शवदनन्त्यावयवित्व द्रव्यारम्भकतावच्छेदक नहीं है। नवीन नैयायिक तो त्रसरेणु को भी स्पर्शशून्य मानते हैं [पृ. १३८]।

कुछ विद्वानों का मत यह है कि मनोभिन्नमूर्तत्व द्रव्यारम्भकतावच्छेदक है। अपर विद्वान मूर्तत्व को द्रव्यारम्भकतावच्छेदक कहते हैं। कुछ मनीषी भूतत्व को ही द्रव्यारम्भकतावच्छेदक मानते हैं जिसका निराकरण किया गया है। गुरुधर्म भी अवच्छेदक हो सकता है - इसका निरूपण करने के बाद एकत्ववृत्ति जातिविशेष को द्रव्यारम्भकतावच्छेदक माननेवाले स्वतन्त्र विद्वानों के मत का प्रतिपादन कर के - तम द्रव्य है - यह मीमांसकों ने सिद्ध किया है [पत्राङ्क १४४]

अन्धकार को द्रव्य मानने पर आलोकनिरपेक्ष चक्षु से वह ग्राह्य बन नहीं सकता - इस युक्ति से नैयायिक ने अन्धकार को अभावात्मक सिद्ध किया है। उलूक-चाक्षुष में विजातीयआलोककारणता का निराकरण, आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से आलोकसंयोगकारणता का समर्थन, वर्धमानउपाध्याय-उदयनाचार्य आदि के मत का निरूपण भी मननीय है। उदयनाचार्य का मत यह है कि अभावज्ञान में प्रतियोगी का ज्ञान कारण होता है। मगर नव्य नैयायिक इसका स्वीकार करते नहीं है [पत्राङ्क १५४]। शुद्धाभावप्रत्यक्ष का जहाँ निराकरण किया गया है वहाँ नव्य न्याय की पारिभाषिक पदावली के गूढ प्रयोग की चरम सीमा का दर्शन होता है। बाद में नैयायिक ने अन्धकार को अभाव मानने में बाधक दोषों का निराकरण किया है। पश्चात् अन्यतमसत्त्व, अवतमसत्व, अखण्डउपाधिस्वरूप तमस्त्व, भाववृत्तित्वविशिष्टालोकाभावत्वात्मक तमस्त्व आदि का निरूपण कर के अन्धकार को आलोकज्ञानाभावात्मक माननेवाले प्रभाकरमिश्र के मत का इस तरह निराकरण किया गया है कि ज्ञान का चाक्षुष न होने से ज्ञानाभावात्मक तम का भी चाक्षुष हो न सकेगा, क्योंकि प्रतियोगिग्राहक इन्द्रिय से ही तदभाव का चाक्षुष होता है। अन्धकार में गति, नीलरूप आदि प्रतीति को भ्रमात्मक कह कर किरणावलीकार उदयनाचार्य के वचन का उल्लेख कर के तमोवाद को समाप्त किया है। यहाँ अन्धकारभाववादी मीमांसक के सामने अन्धकाराऽभाववादी नैयायिक को विजयी घोषित किया गया है। मगर स्याद्वादकल्पलता, (मध्यम) स्याद्वादरहस्य, अष्टसहस्रीतात्पर्यविवरण आदि में यहाँ प्रदर्शित सभी नैयायिक युक्तिओं का निराकरण श्रीमद्जी ने स्वयं किया है, जिसका उल्लेख मैंने हमलता में तत् तत् स्थलों में किया है और अन्य युक्तिओं से भी नैयायिकोक्त युक्तियों का निराकरण किया है जिसके फलस्वरूप स्याद्वादिमतानुसार अन्धकार में द्रव्यात्मकता अबाधित रहती है और अपसिद्धान्त आदि दोषों को अवकाश भी रहता नहीं है।

प्रकृत वादमाला में षष्ठ वादस्थल है **'वायुस्पार्शनप्रत्यक्षवाद'**। मीमांसक विद्वान वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष मानते हैं जब कि प्राचीन नैयायिक मनीषी वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष मानते नहीं हैं किन्तु वायुस्पर्श का स्पार्शन प्रत्यक्ष मानते हैं। प्राचीन नैयायिक मन्तव्य यह है कि द्रव्यविषयक प्रत्यक्षमात्र में स्पर्श और उद्भूत रूप कारण है। अतः नीरूप वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष हो नहीं

सकता । इसके खिलाफ मीमासको का कथन यह है कि उद्भूत रूप द्रव्यचाक्षुष के प्रति कारण है और उद्भूत स्पर्श द्रव्यस्पार्शन के प्रति कारण है । अत नीरूप वायु का स्पार्शन निराबाध है । पत्राङ्क १७१ से पत्राङ्क १७७ तक मीमासक वक्तव्य का मण्डन किया गया है जिसमे प्रकृष्ट महत्त्व मे द्रव्यस्पार्शनजनकत्वाभाव, नैयायिकमत मे विनिगमनाविरह, मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व मे कार्यतावच्छेदकता, लौकिकता मे जन्यप्रत्यक्षमात्रवृत्तिता, द्रव्यचाक्षुषत्व मे उत्कटरूपकार्यतावच्छेदकता आदि का निरूपण किया गया है । बाद मे नैयायिक विद्वान लाघवसहकार से उत्कट रूप के कार्यतावच्छेदकधर्मविधया मूर्तप्रत्यक्षत्व की स्थापना कर के वायुस्पार्शन को भ्रमात्मक सिद्ध करते हे [पृष्ठ १७५] । प्रासङ्गिक रूप से कूटत्व एव व्यासज्यवृत्तिधर्म मे अवच्छेदकता का असम्भव प्रदर्शित किया गया है । पश्चात् त्वाचाभाव को द्रव्यान्यसत्त्वाच का प्रतिबन्धक माननेवाले विद्वानो के मत का प्रतिपादन [पत्राङ्क १८१] एव प्रतिक्षेप [पत्राङ्क १८३] किया गया है । तदनन्तर चाक्षुषस्पार्शनोभयजनकतावच्छेदक एक ही जाति का स्वीकार करनेवाले स्वतन्त्र विद्वानो के मत का निरूपण [पत्राङ्क १८५] एव निराकरण [पत्राङ्क १८७] कर के अन्त मे केचित्तुमत से वायु के स्पार्शन प्रत्यक्ष का समर्थन कर के प्रस्तुत वाद समाप्त किया गया है । *स्याद्वादकल्पलता, वायूष्मादे प्रत्यक्षाप्रत्यक्षत्वविवादरहस्य, प्रमेयमालागत वायुप्रकरण आदि मे श्रीमद्जी ने* विस्तार से वायुस्पार्शन का समर्थन किया है । इस विषय मे अधिक जिज्ञासु उन ग्रन्थो का अवलोकन कर सकते हैं ।

प्रस्तुत प्रकरण का सातवाँ एव अन्तिम वादस्थल है **शब्दनित्यत्वानित्यत्ववाद** । मीमासक मनीषी शब्द को नित्य मानते है और नैयायिक आदि शब्द को अनित्य मानते है । मीमासक 'सोऽय गकार' इत्यादि प्रत्यभिज्ञा से पूर्वोत्तरकालीन शब्द मे नित्यत्व सिद्ध करते हैं । अत शब्द मे उत्पत्ति-विनाश अवगाही प्रतीति केवल प्रतीति ही है, प्रमिति नही - यह मीमासको का मन्तव्य है । इस तरह शब्द के अनन्त प्रागभाव, प्रध्वस, कारण आदि की कल्पना का गौरव भी मीमासकमत मे अप्रसक्त है । पश्चात् मीमासकमत मे नैयायिक की ओर से गौरव की शङ्का एव मीमासक की ओर से उसका प्रतिविधान किया गया है । मगर इसके खिलाफ नैयायिको का कथन यह है कि जिस युक्ति से शब्द को जन्य न मान कर व्यङ्ग्य माना गया है उससे तो घटादि को भी व्यङ्ग्य = नित्य मानने की आपत्ति आयेगी । मीमासक और नैयायिक के बीच जो चर्चा है वही यहाँ प्राप्य है । यद्यपि स्याद्वादी के मतानुसार शब्द किस तरह नित्यानित्य है ? इस विषय का निरूपण यहाँ अलभ्य हे तथापि श्रीमद्जी के स्याद्वादरहस्य (मध्यम), स्याद्वादकल्पलता आदि ग्रन्थो मे वह विस्तार से प्राप्य है । अधिक जिज्ञासु वहाँ दृष्टिपात कर सकते है ।

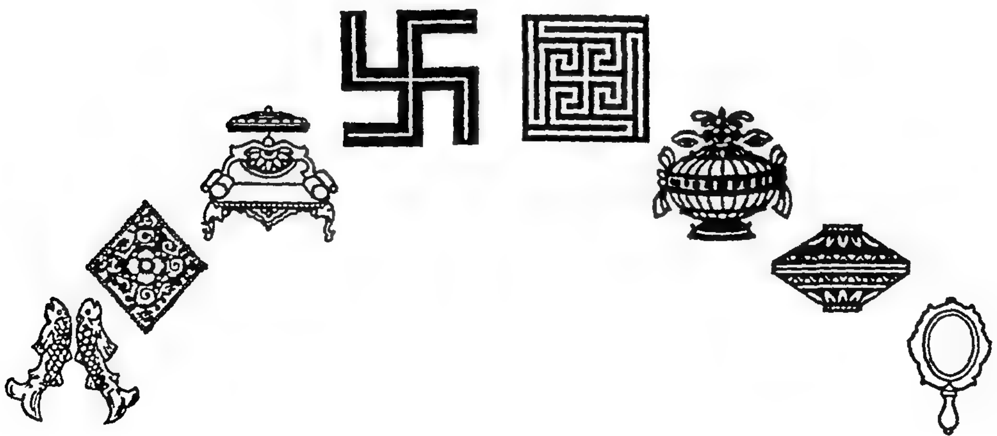
◆ उपकारस्मरण ◆

इस सुनहरे अवसर पर उपकारियो के उपकार स्मृतिपट पर उभरने लगते हैं । परमाराध्यपाद सिद्धान्तमहोदधि वात्सल्यवारिधि सुविशालगच्छाधिपति दिवगत भगवान् **प्रेमसूरीश्वरजी** महाराजा के पट्टालङ्कार परमोपकारी वर्धमानतपोनिधि न्यायविशारद गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय **भुवनभानुसूरीश्वरजी** महाराजा के अनगिनत आशिष के बिना हेमलता और वल्लभा टीकाद्वय का सर्जन एव उनके साथ प्रस्तुत वादमालाग्रन्थ का सपादन-सशोधन-प्रकाशन मेरे बस की बात ही कहाँ ? गुरुजनो की असीम कृपा से अशक्य भी शक्य एव सुकर बन जाता है - इस पारमार्थिक सत्य की इससे घोषणा हो ही जाती है । उनके पट्टालङ्कार पूज्यपाद सिद्धातदिवाकर कर्मसाहित्यनिपुणमति परमगीतार्थ आचार्य श्रीमद् विजय **जयघोषसूरिजी** महाराजा एव उनके शिष्यरत्न पन्यासप्रवर न्यायादिनिष्णात विद्यागुरुदेव **जयसुन्दरविजयजी** गणिवर के वात्सल्य तथा मार्गदर्शन के बिना यह कार्य दुरुह ही बन जाता । भवअटवी मे गुमराह हमारी आत्मा को अमूल्य सयमरत्न का दान करनेवाले श्रीमद् विजय **हेमचद्रसूरिजी** म तो मेरे मनमदीर मे सदा प्रतिष्ठित रहेंगे, जिनके उपकारो की स्मृति को चिरजीव बनाने के लिए सस्कृतटीका का **'हेमलता'** ऐसा नामकरण मैने पसद किया । पद्ममणितीर्थोद्धारक उदारचित्त परमोपकारी मेरे गुरुदेव श्री **विश्वकल्याणविजयजी** महाराजा को भी मै कैसे विसर सकता ? प्रारभिकन्यायादिविद्याप्रदाता सयमेकलक्षी मुनिराजश्री **अभयशेखरविजयजी** म सा तथा प्राकृतादिविद्यादाता सदाप्रसन्न मुनिराजश्री **अजितशेखरविजयजी** म सा के अमूल्य उपकारो को मे कैसे भूल सकता ? जिनकी मङ्गल प्रेरणा हमे सयम के सद्योगो मे उद्यत बना रही है ऐसे उपकारी कल्याणमित्र पूज्य मुनिराजश्री **पुण्यरत्नविजयजी** म सा , मुनिराजश्री **विमलबोधिविजयजी** म सा , मुनिराजश्री **कल्याणबोधिविजयजी** म सा , मुनिराजश्री **युगसुन्दरविजयजी** म आदि का स्नेह सभर सादर स्मरण भी अवश्य कर्तव्य हे । मुनिराजश्री **मुक्तिवल्लभविजयजी** म , मुनिराजश्री **प्रशान्तवल्लभविजयजी** म , मुनिराजश्री **उदयवल्लभविजयजी** म , मुनिराजश्री **हृदयवल्लभविजयजी** म आदि विशुद्धसयमी कल्याणमित्रो को भी मे कैसे भूल सकता ? जिनके उपकारो के स्मरण को स्थायी बनाने के लिये हिन्दी टीका का **'वल्लभा'** ऐसा नाम मैने पसद किया । सहवर्ती मुनि भगवतो के सहकार को भी कैसे भूल सकता ? अच्छे मुद्रण के लिये अजयभाई, विमलभाई भी धन्यवादार्ह है ।

इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से पाठकवर्ग अपनी बुद्धि को अनेकान्तवादपरिकर्मित बना कर शीघ्र आत्मप्रेय-श्रेय को प्राप्त करे यही मङ्गलकामना ।

मुनि यशोविजय

ॐकारसूरि आराधना भवन, सुरत वि स २०४९

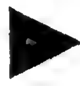


ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रीमद्विजय-प्रेम-भुवनभानु-जयघोषसूरीश्वरेभ्यो नमो नमः ।

महोपाध्यायश्रीयशोविजयगणिवरविरचिता

मुनियशोविजयकृत-हेमलता-वल्लभाभिधानव्याख्याभ्यामलङ्कृता



वादमाला



ऐकारस्मरण कुर्वन्नेष न्यायविशारदः। वादमाला वितनुते शिष्याणा हितकाङ्क्षया ॥१॥

◆ हेमलता ◆

प्रारब्धे नवमे वर्षे नत्वा शङ्खेश्वराधिपम्। स्फारा हेमलता तन्यते यशोविजयेन हि॥१॥

इह हि विदितस्वपरसमयरहस्यो न्यायाचार्यप्रभृतिविरुदविभूषितो विक्रमार्काष्टादशशतकालङ्कारो महामहोपाध्याय. चित्ररूपप्रकाशप्रभृतिवादसप्तक-गुम्फितावादमालाचिकीर्षुः श्रीयशोविजयगणिशिरोमणि.प्रथम स्वेष्टसिद्धिप्रियसारस्वतमन्त्रप्रधानबीजस्मरणद्वारकस्वाभिमतवाग्देवतास्तवस्वरूपमङ्गलादिकमा-वेदयन्नाह-ऐकारस्मरणमिति। अनेन मङ्गलमभिहितम्। कुर्वन्नित्यनेनैकारस्मरणकरण-वादामालावितननयोः समकालत्वमुपदर्शितम्। युक्तमेवैतन्निश्चयनया-भिप्रायेण, अन्यथा सति दुरितोदयकारणकलापे वादमालावितननप्रथमक्षण एव विघ्नोदयप्रसङ्गात्। दुरितोदयलक्षणविघ्न-मङ्गलयो. नैश्चयिकनाश्यनाशक-भावस्य समकालिकत्व तु तत्र तत्र सुप्रसिद्धमेव। 'एष' इत्यनेन प्रत्यक्षतया स्वनिर्देश. कृत । आत्मन एव विशेषणद्वारेण निर्देशमाह- न्यायविशारद इति। विशिष्टा शारदा यस्य स विशारद॰, न्याये विशारद. = न्यायविशारद॰ इति व्युत्पत्त्या स्वस्य न्यायगोचरसूक्ष्मकर्कशतर्कमीमासकत्वमावेदितम्। यद्यपि प्रकरणकृतो न केवल न्यायविशारदत्व किन्तु व्याकरणकाव्यालङ्कारादिविशारदत्वमपि विदिततर तथापि प्रकृतप्रकरणसर्जनाधिकारित्वविद्योतनार्थ प्रधानतया प्रकृतविशेषणस्यैवोपयोगित्वात्, न्यायविशारदत्वविरुदस्य विबुधप्रदत्तत्वाच्चात्मनो न्यायविशारदत्वप्रकटनमर्हत्येव। तदुक्त प्रकरणकृतैव प्रतिमाशतक-न्यायखण्डखाद्यादो 'यस्य न्यायविशारदत्वविरुद काश्या प्रदत्त बुधै ।' यद्यपि 'आत्मनि गुरौ चैकवचन न प्रयुञ्जित' इति वचनादात्मनो बहुवचनगर्भितोल्लेखः समीचीनस्तथापि प्राप्तप्रकाण्डपाण्डित्येन प्रकरणकृता स्वस्य बहुमानपरिहाराय 'वय तन्महे' इत्यादिबहुवचनान्तास्मत्पदप्रयोगो मङ्गलकारिकायामुपेक्षित । अनेनात्मन. सम्यग्ज्ञानपारम्यमुद्योतितम्। अनेन 'एष वितनुत' इत्यस्य च सम्यक्त्वमावेदितम्।

अभिधेयमाह -वादमालामिति। स्वाभिमतार्थकथन वाद इति केचित्। तत्त्वबुभुत्सुना सह कथा=वाद इत्यन्ये। यथार्थबोधेच्छुवाक्य वाद इत्यपरे। तत्त्वनिर्णयफल कथाविशेषो वाद इतीतरे। शास्त्रार्थो वाद इत्येके। वस्तुतस्तु तत्त्वनिर्णयार्थं विचारा॰ वचनानि वा = वादा., ते एव मौक्तिकाः = वादमौक्तिकाः, तेपा माला = वादमालेति मध्यमपदलोपिसमास॰ कार्यः। अनेनार्थत॰ प्रकृतप्रकरण-तत्प्रतिपाद्यार्थ-तज्ज्ञानादीना प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावोपायोपेयभावादय सम्बन्धा प्रदर्शिता । 'वितनुत'इत्यनेनात्मनो वादमालावितननकर्तृत्व तृतीयपुरुषतया वदन् स्वप्रह्वीभावमाविष्कृ-तवान् प्रकरणकार.। स्वस्य परसम्बन्धिप्रयोजनमाह शिष्याणा हितकाङ्क्षयेति। विनेयगोचरकल्याणलक्षणप्रयोजनकामनाप्रदर्शनेनात्मन. शिष्टत्व आविर्भवति।

► वल्लभा (हिन्दी व्याख्या) ◄

महामहोपाध्याय न्यायविशारद न्यायाचार्य श्रीयशोविजयजी गणिवर्य चित्ररूपप्रकाश, लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानविचार आदि सात वादो से गर्भित वादमाला प्रकरण का श्रीगणेश करते हुए मङ्गल आदि की प्रतिपादक प्रथम कारिका का 'ऐकार ' इत्यादिरूप से आविष्करण करते है जिसका अर्थ है - ऐकार, जो सारस्वत मन्त्र का प्रधान बीज है, का स्मरण करता हुआ यह न्यायविशारद (महामहोपाध्याय यशोविजयजी महाराजा) शिष्यो के हित की कामना से वादमाला प्रकरण की रचना करता है॥१॥

◇ मङ्गलकारिकाविशेषार्थ ◇

उपाध्यायजी महाराज अपनी अनोखी शैली से स्वरचित प्रत्येक ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ऐकार का सूचन किसी भी तरह कर देते हे, जो शारदा माता की ओर अपने भक्तिभाव, समर्पणभाव एव कृतज्ञत्व का द्योतक है ओर मङ्गल का सम्पादक भी।

तत्र चित्ररूपं विचार्यते। तत्र 'नीलासमवायिकारणको नीलो न वा ?' इति विप्रतिपत्तिः। विधेः पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन

◆ हेमलता ◆

शिष्यगोचरभावोपकारचिकीर्षाप्रदर्शनेन परम्परया मोक्षस्य स्वप्रयोजनत्वमुपदर्शितं, तात्त्विकोपकारभिलापस्यापि मोक्षजनकत्वनियमात्। प्रकृतप्रकरणप्रतिपाद्यपदार्थबुभुत्सुः समर्थो विद्वानधिकारीति सामर्थ्यगम्यम्। अत एव प्रकृतप्रकरणप्रतिपाद्यपदार्थाधिगमः श्रोतॄणामनन्तरं प्रयोजनं मोक्षश्च परम्परमित्यपि लभ्यते। एवञ्चानुबन्धचतुष्टयकलितत्वात्प्रकृतप्रकरणे अधिकृतमुमुक्षुप्रवृत्तिर्न दुर्घटेति फलितम्॥१॥

उपोद्घातसङ्गतिमाह- तत्रेति प्रकृतवादमालायाम्। चित्ररूपं = चित्ररूपपदप्रतिपाद्यं विचार्यते = मीमांस्यते। अनेन चित्ररूपप्रकाशवादस्य प्रथममोक्तिकत्वं प्रकृतमालायामभिहितम्। तत्र = चित्ररूपप्रकाशवादस्थले, 'नीलासमवायिकारणक अवयवनीलरूपासमवायिकारणकः नीलः = अवयविनीलगुणो न वा ?' इति विप्रतिपत्तिः। अत्र विधिकोटिर्नव्यनैयायिकादीनां निषेधकोटिश्च प्राचीननैयायिकादीनामिति ध्येयम्। विरुद्धा प्रतिपत्तिः विप्रतिपत्तिः। सा च ज्ञानात्मिका शब्दप्रयोगात्मिका वेत्यन्यदेतत्। 'चित्ररूपं नीलासमवायिकारणकं न वा ?' इति विप्रतिपत्तिस्तु न सम्भवति नव्यनैयायिकादिमते उद्देश्याऽप्रसिद्धेः। विप्रतिपत्तौ तु वादिप्रतिवादिनोरुभयोरुद्देश्यप्रसिद्धेरावश्यकत्वात्।

नन्वत्र विधिकोटौ सिद्धसाधनम्, पटादिनीलरूपस्य तन्तुनीलरूपासमवायिकारणत्वस्य प्राचीननैयायिकादिभिः स्वीकृतत्वात्। अत एव निषेधकोटौ बाधश्च पटनीलरूपे तन्तुनीलरूपासमवायिकारणकत्वनिषेधस्य व्याहतत्वेरित्याशङ्कायामाह- विधेः पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन उद्देश्यत्वादित्यत्रापि सम्बध्यते। प्रकृते नीलरूपासमवायिकारणकत्वस्य हि पक्षतावच्छेदकत्वम्। ततः उद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन विधिकोटेरुद्देश्यत्वमित्यर्थः। नीलरूपासमवायिकारणकत्वावच्छेदेन नीलरूपत्वस्य विधेयत्वमुपलभ्यते। नीलासमवायिकारणको नीलगुण एवेति नव्यनैयायिकादीनां विधिपक्षस्थितानां मतम्। ततश्च न सिद्धसाधनम्,

▶ वल्लभा ◀

एक पन्थ दो काज। प्रथम कारिका के प्रथम पाद में मङ्गल का निर्देश कर के द्वितीय पाद में न्यायविशारदविशेषण के विशेष्यविधया अपना उल्लेख किया है। विद्याधाम काशी में पण्डितों से अर्पित यथार्थ न्यायविशारद उपाधि से प्रकृत प्रकरण की रचना में श्रीमद्जी का सम्यक् सामर्थ्य ध्वनित होता है। 'वादमालां वितनुते' इस तृतीय पाद में अभिधेय का निर्देश किया गया है। अतः वादमाला प्रकरण और उसके पदार्थों के बीच प्रतिपाद्य-प्रतिपादकभाव सम्बन्ध की यहाँ सूचना मिलती है। उपाय-उपेयभाव भी यहाँ सम्बन्ध हो सकता है, क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रतिपाद्य पदार्थों का ज्ञान उपेय = साध्य है एवं यह ग्रन्थ उसका उपाय = साधन है। मङ्गल कारिका के उत्तरार्ध के अन्तिम पाद में परोपकाररसिक प्रकरणकार श्रीमद् ने शिष्यों के कल्याणस्वरूप परसम्बन्धी स्वप्रयोजन की कामना को प्रकट की है। शिष्यविषयक तात्त्विक परोपकार से मोक्षप्राप्तिस्वरूप स्वसम्बन्धी प्रधान स्वप्रयोजन का प्रकाशन भी हो ही जाता है। शिष्यों का साक्षात्प्रयोजन है इस प्रकरण में प्रतिपाद्य पदार्थों का बोध और परम्परा से प्रयोजन है मुक्ति, जो सभी आस्तिकों को वल्लभ होती है। अतएव मोक्षप्राप्ति के उद्देश से इस प्रकरण से समूचित पदार्थों का जिज्ञासु योग्य पाठकवर्ग इस प्रकरण के पठन-पाठन का अधिकारी है- यह भी अर्थतः मालूम हो जाता है। इस तरह अभिधेय, सम्बन्ध, प्रयोजन और अधिकारी-इस अनुबन्धचतुष्टय का श्रीमद्जी ने मङ्गलकारिका में निरूपण किया है, जिसके फलस्वरूप अधिकारी श्रोता-पाठक की इस प्रकरण में असन्दिग्ध प्रवृत्ति हो सकती है।

☐ चित्ररूपप्रकाशवाद में विप्रतिपत्ति का उद्भावन ☐

तत्र०। यहाँ प्रथम वाद का नाम है चित्ररूपप्रकाशवाद। इस वादस्थल में चित्ररूप की मीमांसा की जाती है। चित्ररूपस्थल में विप्रतिपत्ति यानी विरुद्ध मान्यता इस तरह है कि- नीलरूपासमवायिकारणक नील गुण है या नहीं ? यहाँ पक्ष है नीलरूपासमवायिकारणक अर्थात् नीलरूप है असमवायिकारण जिसका वह गुण। कुछ विद्वानों की यह राय है कि नीलरूपासमवायिकारणक नील गुण होता है और अन्य मनीषियों की यह मान्यता है कि वह नील गुण होता नहीं है। विधिकोटि है स्वतन्त्र चित्ररूप के प्रतिक्षेपकों की और निषेधकोटि है अतिरिक्तचित्ररूपवादी की।

विधेः। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि→ "प्रस्तुत विप्रतिपत्ति में विधिकोटि में सिद्धसाधन दोष है, क्योंकि नीलासमवायिकारणक नील गुण को तो निषेधकोटिवाले मनीषी भी मानते हैं। तन्तुनीलरूपासमवायिकारणक पटनीलरूप का प्रतिक्षेप कौन करता है ? कोई नहीं। मतलब कि सिद्ध = प्रतिवादी को अभिमत का ही यह साधन बन जाने से सिद्धसाधन दोष प्रसक्त होता है। प्रतिवादी सम्मत पदार्थ की सिद्धि के लिए कोई भी वादी प्रयत्न करता नहीं है। एवं निषेधकोटि में बाध दोष भी प्रसक्त होगा, क्योंकि पटनीलरूप तन्तुनीलरूपासमवायिकारणक होने से 'नीलरूपासमवायिकारणक नीलरूप नहीं है' यह निषेध बाधित हो जाता है "← मगर इसके समाधानार्थ यह कहा जा सकता है कि विधिकोटि पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन नहीं किन्तु पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन है।

निषेधस्य च सामानाधिकरण्येनोद्देश्यत्वान्न सिद्धसाधनबाधौ।

'नीलरूपासमवायिकारणकरूपत्वं पीतासमवायिकारणकवृत्ति न वा ? नीलो नीलान्यरूपासमवायिकारणं न वा?' इत्याद्या वा विप्रतिपत्तयः।

◆ हेमलता ◆

पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन सिद्धिं प्रति पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन सिद्धेरप्रतिबन्धकत्वात्। निषेधकोटिमङ्गीकुर्वता प्राचीननैयायिकादीनां मते तथात्वाऽसिद्धेः, नीलासमवायिकारणके कस्मिंश्चिन्नीलेतरत्वस्यापि तैः स्वीकारात्। निषेधस्य च सामानाधिकरण्येन = पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन उद्देश्यत्वात्। नीलासमवायिकारणकत्वसामानाधिकरण्येन नीलत्वनिषेध इत्यर्थः। नीलरूपासमवायिकारणकत्वावच्छिन्नं मीलरूपमेवेति न किन्तु नीलासमवायिकारणकं नीलेतरदपीति प्राचामभिप्रायः। ततश्च न बाधोद्भावनसम्भावना, केवलनीलरूपासमवायिकारणके नीलरूपत्वनिषेधस्य प्राचामसिषाधयिषितत्वात्। ततो नैतादृशविप्रतिपत्त्यसम्भवः।

ननु 'नीलासमवायिकारणको नीलो न वा ?' इत्येव विप्रतिपत्तिप्रदर्शने नेदं विज्ञायते यदुत पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन विधेरुद्देश्यत्वं तत्सामानाधिकरण्येन च निषेधस्येति, अन्यत्र सर्वत्र विप्रतिपत्तौ विधेः सामानाधिकरण्येन निषेधस्य चोद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेनोद्देश्यत्वदर्शनादित्याशङ्कायां प्रकारान्तरेण विप्रतिपत्तिं प्रदर्शयति- नीलरूपासमवायिकारणकरूपत्वं पीतरूपासमवायिकारणकवृत्ति न वा? इति। अत्र विधिकोटिरतिरिक्तचित्ररूपवादिनां प्राचीननैयायिकादीनां, तन्मते चित्ररूपस्य नीलपीतादिनानारूपासमवायिकारणकत्वेन नीलासमवायिकारणकरूपत्वस्य पीतरूपासमवायिकारणकवृत्तित्वात्। तस्यैव चित्रत्वाभिधानात्। निषेधकोटिश्चातिरिक्तचित्ररूपमनङ्गीकुर्वतां नवीननैयायिकादीनां, तन्मते नीलरूपासमवायिकारणकरूपत्वस्य नीलरूप एव सत्त्वेन पीतरूपासमवायिकारणकवृत्तित्वविरहात्। अत्र विधेरुद्देश्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनोद्देश्यत्वं निषेधस्य चोद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेनेति ध्येयम्।

विशिष्टस्य विशिष्टाधेयताया वाऽनतिरिक्तत्वान्नेदमपि विप्रतिपत्तिदर्शनं समीचीनमित्यभिसन्धाय विप्रतिपत्त्यन्तरमाविष्करोति नीलो नीलान्यरूपासमवायिकारणं न वा? इत्याद्या वा विप्रतिपत्तय इति। नीलत्वस्योद्देश्यतावच्छेदकत्वम्। तदवच्छेदेन निषेधस्योद्देश्यत्वं नवीननैयायिकानामतिरिक्तचित्ररूपमनङ्गीकुर्वतां नये तत्सामानाधिकरण्येन च विधेरुद्देश्यत्वमतिरिक्तचित्ररूपमङ्गीकुर्वतां प्राचां मते। तेन न सिद्धसाधनमंशतो बाधो वा। पीतकपालसमवायिकारणकघटसमवायिकारणान्तरकपालसमवेतनीलरूपस्य प्राचीनमते नीलान्यचित्ररूपासमवायिकारणत्वं नव्यनैयायिकादिमते च नेत्यत्र विप्रतिपत्तौ तात्पर्यम्। नीलरूपत्वस्यात्र पक्षतावच्छेदकत्वम्। आद्यपदेनात्र 'पीतः पीतेतररूपासमवायिकारणं न वा ? शुक्लः शुक्लेतररूपासमवायिकारणं न वा ?' इत्यादिविप्रतिपत्तिग्रहणमित्यवधातव्यम्।

▶ वल्लभा ◀

मतलब कि यत् किञ्चित् नीलअसमवायिकारणक में नीलत्व का विधान अभिमत नहीं है किन्तु नीलासमवायिकारणकत्वावच्छिन्न यानी सब नीलअसमवायिकारणक में नीलत्वजाति का विधान अभीष्ट है। यह तो निषेधकोटिवादी अतिरिक्तचित्ररूपवादी को मान्य नहीं है। अतः नीलासमवायिकारणकत्वस्वरूपपक्षतावच्छेदका- वच्छेदेन नीलत्व का विधान करने में सिद्धसाधन दोष को अवकाश नहीं रहेगा, क्योंकि पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन सिद्धि पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन सिद्धि की प्रतिबन्धक होती नहीं है। इस तरह निषेधकोटि में भी बाध दोष निरवकाश है, क्योंकि नीलत्वजाति का निषेध नीलासमवायिकारणक- त्वावच्छेदेन नहीं किया जाता है किन्तु नीलासमवायिकारणकत्वसामानाधिकरण्येन अर्थात् नीलरूप जिनका असमवायिकारण है उन सब में नीलत्वजाति का प्रतिषेध नहीं किया जाता है किन्तु उनमें से कतिपय में ही, जो नीलपीतादिजन्य है, नीलत्वजाति का निषेध किया जाता है। इस स्थिति में बाध को अवकाश नहीं रहेगा, क्योंकि उसमें चित्रत्व जाति रहती है। इस तरह विधिकोटि में सिद्धसाधन एवं निषेधकोटि में बाध को अवकाश नहीं है।

△ अन्य विप्रतिपत्ति का प्रदर्शन △

नीलरू० : अथवा विप्रतिपत्ति का प्रदर्शन दूसरी तरह भी किया जा सकता है कि 'नीलरूपासमवायिकारणकरूपत्व पीतरूपासमवायिकारणकवृत्ति है या नहीं?' विधिकोटि है अतिरिक्तचित्ररूपवादी की और निषेधकोटि है स्वतन्त्र चित्र रूप को मान्य नहीं करनेवाले विद्वानों की। चित्ररूप तो नीलपीतादि अनेकविध रूपों से जन्य होने की वजह नीलरूपासमवायिकारणकरूपत्व (=चित्ररूपत्व) पीतासमवायिकारणक = चित्ररूप में वृत्ति हो सकता है - ऐसा विधिकोटिवादी चित्ररूपवादी का आशय है। मगर अवयवी में नील, पीत आदि अनेकविध रूपों की उत्पत्ति को मान्य कर के स्वतन्त्र चित्र रूप का अनङ्गीकार करनेवाले विद्वान् नीलरूपासमवायिकारणरूपत्व (नीलत्व) को पीतरूपासमवायिकारणक (पीतरूप) में वृत्ति मानते नहीं है। इस तरह वे निषेधकोटि का स्वीकार करते हैं। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि यहाँ विप्रतिपत्ति का आकार यह है कि 'नीलरूप नीलान्यरूप का असमवायिकारण है या नहीं ?' विधिकोटि

3

अत्रैकदेशिनः नीलासमवायिकारणको नील एव, नीलातिरिक्तस्य तत्त्वे गौरवात्। तथाहि चित्रत्वावच्छिन्नं प्रति न नीलत्वादिना हेतुत्वं, व्यभिचारात्। नापि रूपत्वेन, नीलमात्रारब्धेऽपि तदापत्तेः।

अथ नीलेतर-पीततररूपादेरपि तत्र हेतुत्वान्न तदापत्तिः, यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च पीतजनकाग्निसंयोगस्तत्रावयवे

◆ हेमलता ◆

केचित्तु नीलरूपासमवायिकारणकं पीतरूपासमवायिकारणकं न वा? इति विप्रतिपत्तिरिति वदन्ति, तत्र चारुतया चकास्ति, नीलरूपासमवायिकारणस्य नीलस्य पक्षत्वे बाधात्, चित्ररूपस्य पक्षत्वे त्वाश्रयाऽसिद्धेः।

नानारूपवदवयवारब्धावयविषु 'एकश्चित्रोऽयं घटः' इत्यादिप्रतीत्यनुरोधादतिरिक्तमेव तत्र चित्ररूपं, नीलत्वादिना तत्प्रतीतेर्विषयस्तु अवयवनीलादिकमेव परम्परयेति न्यायसम्प्रदायानुरोधिनः।

अत्र = प्रस्तुतविप्रतिपत्तौ सत्यां एकदेशिनः = नैयायिकैकदेशीयाः। अन्वयश्चास्याग्रे द्वितीयेन आहुरित्यनेन सह। एकदेशित्वञ्च सिद्धान्तैकदेशाभ्युपगन्तृत्वे सति किञ्चिदन्यथाऽङ्गीकर्तृत्वम्। तथाहि नीलासमवायिकारणको नीलः = अवयविसमवेतो नीलगुण एव, न तु नीलेतरोऽपि। कुतः? उच्यते, नीलातिरिक्तस्य तत्त्वे = नीलाऽसमवायिकारणकत्वे गौरवात्। तथाहि प्रथममतिरिक्तचित्ररूपलक्षणो धर्मी कल्पनीयः, तत्र चातिरिक्तचित्रत्वजाति-तत्समवाय-क्लृप्तपदार्थभेद- नानारूपवदवयवारब्धावयविसमवेतत्वादयः धर्मा अपि कल्पनीयाः स्युरिति महागौरवम्। न च प्रामाणिकत्वेनास्य फलमुखत्वमिति शङ्कनीयम् प्रामाणिकत्वस्यैवासिद्धेः। न च कार्यकारणभावनिश्चय एवात्र प्रमाणमिति वाच्यम् सम्यक्कार्यकारणभावनिर्वचनस्याऽसम्भवेन तन्निश्चयायोगात्। तथाहि समवायेन चित्रत्वावच्छिन्नं = चित्रसामान्यलक्षणकार्यं प्रति न स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलत्वादिना हेतुत्वम्। कुतः? उच्यते केवलनीलकपालारब्धे घटे चित्ररूपानुत्पादेन व्यभिचारात् = अन्वयव्यभिचारात्। न च नीलपीतादेः सम्भूय नीलत्व-पीतत्वादिना चित्रकारणतोपगमान्नायं दोष इति वाच्यम् तथापि शुक्ल-रक्तकपालद्वयारब्धघटे चित्ररूपोत्पाददर्शनेन व्यभिचारात् = व्यतिरेकव्यभिचारात्। न ह्ययं नियमोऽस्ति यदुत नील-पीत-रक्त-श्वेतादिभिस्सकलैरेव सम्भूय चित्ररूपं त्वदभिमतं जनयितव्यमिति।

नापि समवायेन चित्रत्वावच्छिन्नं प्रति स्वसमवायिसमवायेन रूपत्वेन हेतुत्वं सम्भवति, नीलमात्रारब्धे = केवलनीलावयवारब्धेऽवयविनि पटादौ अपि तदापत्तेः = समवायेन चित्ररूपोत्पादप्रसक्तेः। न चैवं भवति। अतोऽन्वयव्यभिचारान्न रूपत्वेन चित्रकारणत्वाभिधानं समीचीनम्। चित्रत्वावच्छिन्ननिरूपितकारणत्वानिर्वचनेन नास्त्यतिरिक्तं चित्ररूपमिति नील एव नीलासमवायिकारणक इति नैयायिकैकदेशीयाशयः।

अतिरिक्तचित्ररूपवादी शङ्कते-अथेति। अग्रे द्वितीयचेत्पदेनास्यान्वयः न केवलं रूपत्वेन रूपस्यैव किन्तु नीलेतर-पीततररूपादेरपि तत्र = चित्रत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुत्वात् न नीलेतररूपशून्येन नीलरूपवता कपालादिनाऽऽरब्धे घटादौ समवायेन तदापत्तिः = चित्ररूपोत्पत्तिप्रसक्तिः, घटे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपस्य सत्त्वेऽपि नीलेतररूपस्य विरहात्।

► वल्लभा ◄

है पृथक्चित्ररूपवादी की, क्योंकि वे नीलरूप को, जो नीलपीतकपालद्वयारब्ध घट के कारण एक कपाल में रहता है, नीलेतर (=चित्र) रूप का असमवायिकारण मानते हैं। निषेधकोटि है पृथक् चित्ररूप को मान्य नहीं करनेवाले की, जो नील को नीलान्यरूप का कभी भी असमवायिकारण मानते नहीं है। इस तरह विप्रतिपत्ति का यहाँ प्रदर्शन किया जा सकता है।

चित्ररूपपक्ष में गौरव - नैयायिक एकदेशी

अत्रैक०। यहाँ नैयायिक एकदेशी का यह कथन है कि-नीलरूपाऽसमवायिकारणक नील रूप ही होता है अर्थात् जिसका असमवायिकारण नील गुण हो वह नील रूप ही होता है न कि नीलेतर (चित्ररूप) भी, क्योंकि वैसा मानने पर कार्यकारणभाव में गौरव प्रसक्त होता है। वह इस तरह-चित्रत्वावच्छिन्न = सकल चित्ररूप के प्रति नीलत्वेन नील रूप को तो कारण माना जा नहीं सकता, क्योंकि तब व्यभिचार दोष प्रसक्त होता है। केवल नीलरूपवाले तन्तुओं से चित्ररूपवाले पट की उत्पत्ति नहीं होने से अन्वय व्यभिचार दोष स्पष्ट है। एवं पीत, शुक्ल आदि से उत्पन्न होनेवाले चित्ररूप में व्यतिरेक व्यभिचार दोष भी प्रसक्त होता है।

यदि चित्ररूपवादी की ओर से यह कहा जाय कि → 'चित्ररूप मात्र के प्रति रूपत्वेन कारणता है' ← तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि तब तो केवल नीलरूपवाले तन्तुओं से आरब्ध पट में भी चित्ररूप के उत्पाद की आपत्ति आयेगी। पट के अवयव तन्तुओं में रूप सामान्य तो रहता ही है।

► चित्र के प्रति नीलेतरादि कारण - पूर्वपक्ष ◄

पूर्वपक्ष : अथ०। चित्ररूप के प्रति रूपत्वेन कारणता का स्वीकार करने पर भी नीलेतर, पीततर आदि रूप को भी हम

पीतरूपोत्पत्त्यनन्तरमेवावयविनि चित्रोत्पत्तिस्वीकारान्न व्यभिचारः । न च नीलाभावादिपट्कस्यैव समवायेन विजातीयचित्र

◆ हेमलता ◆

ननु यत्र घटादौ एकावयवे = एकस्मिन् कपालादौ नीलो गुणः अपरत्र अवयवे कपालादो च पीतजनकाग्निसयोग तत्र घटादौ चित्रोत्पत्तिर्न स्यात्, घटादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्धेन नीलेतररूपस्य विरहात्। न चैव भवति। तत्र चित्रोत्पादस्य सार्वजनीनत्वात्। अतो नीलेतर-पीतेतररूपादेः चित्रजनकत्वेऽन्वयव्यभिचारस्य दुर्निवारत्वमित्याशङ्कायामथवादी व्याचष्टे यत्रेति। तत्र = निरुक्तघटादिस्थले अवयवे = पीतरूपजनकाग्निसयोगवति कपालादौ पीतरूपोत्पत्त्यनन्तरमेव अवयविनि घटादौ चित्रोत्पत्तिस्वीकारात् न व्यभिचार = व्यतिरेकव्यभिचारः। घटादौ चित्रोत्पत्त्यव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्धेन नीलेतरस्य पीतरूपस्य सत्त्वात्। एतेन पाकजचित्रे मानाभावः प्रदर्शितः, नानाकार्यकारणभावाऽकल्पनेन लाघवात्। पाकादापरमाण्वन्तमवयविनाशो भवतु मा वेत्यत्र नास्माकमाग्रहः किन्तु पाकादेव येप्वेव नानारूपाण्युत्पद्यन्ते ततश्च तेभ्य एवावयविनि चित्ररूपमुत्पद्यते, अवयविरूपस्यावयवरूपासमवायिकारणकत्वनियमात्। अतः चित्ररूप न पाकज किन्तु रूपजमेवेत्यथवादिनोऽभिप्रायः।

ननु समवायेन चित्रत्वावच्छिन्न प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्वन्धेन नीलेतरपीतेतरादिपट्कस्य हेतुत्वकल्पनापेक्षया विजातीयचित्र प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्धेन नीलाभावादिपट्कस्यैव हेतुत्व कल्पयितुमर्हति । युक्तश्चैतदेव, अन्यथा यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च पीतजनकाग्निसयोगस्तत्र चित्रोत्पादानापत्तेः तत्र नीलेतरादिपट्कस्य विरहात्, पाकादवयवे पीतरूपोत्पादानन्तरमेवावयविनि चित्रोत्पादस्वीकारस्य कोशपानप्रत्यायनीयत्वादित्याशयवता मतमपाकर्तुमुपदर्शयति-न चेति। वाच्यमित्यनेनास्यान्वयः। नीलाभावादिपट्कस्यैवेति। एवकारेण नीलेतर-पीतेतरादेर्व्यवच्छेदः कृतः। विजातीयचित्र = रूपमात्रजचित्रेतरचित्रमात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नम्। गौरव तु प्रामाणिकत्वान्न दोपायेति शङ्काशयः।

ननु समवायेन निरुक्तवैजात्यावच्छिन्न चित्ररूप प्रति नीलाभावादिपट्कस्यैव स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्धेन हेतुत्वेऽभ्युपगम्यमाने तु यो घटो नीलपीतकपालाभ्यामारव्धस्तत्र पाकेन यदा कपालपीतरूप घटसमवेतचित्ररूपञ्च नाश्येते तदनन्तर पाकनाशितपीतरूपे कपाले व्याप्यवृत्ति नीलरूप सञ्जायते तत्समकालमेव घटे चित्ररूपोत्पादप्रसङ्गो दुर्निवारः तदव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन घटे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्धेन नीलाभावादिपट्कस्य सत्त्वात्। चित्र प्रति नीलेतर-पीतेतररूपादेर्हेतुत्वे तु नाय प्रसङ्गः, पाकनाशितपीतरूपकपालवृत्तिव्याप्यवृत्तिनीलरूपोत्पादाऽव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन नीलेतरादिरूपस्य स्वसमवायिसमवेतत्वसम्वन्धेन घटेऽविद्यमानत्वात् । ततश्च नीलेतर-पीतेतररूपादेरेव चित्रत्वावच्छिन्न प्रति हेतुत्व युक्त न तु नीलाभावादिपट्कस्य रूपमात्रजचित्रेतरचित्ररूप प्रति कारणत्वम् । एतेन गौरवस्य प्रामाणिकत्वमपि निराकृतम् अन्वयव्यभिचारादित्याशयेनाथवादी निरुक्तशङ्कामपाकरोति

▶ वल्लभा ◀

चित्ररूप के प्रति पृथक् कारण मानते हैं । इसलिए केवल नील तन्तुओ से आरव्ध पट मे चित्ररूपोत्पाद की आपत्ति नही दी जा सकती, क्योकि वहाँ चित्ररूपजनक नीलेतर रूप अविद्यमान है । यहाँ इस समस्या को कि → चित्ररूप के प्रति नीलेतर-पीतेतररूपादि को कारण मानने पर जिस घटादि अवयवी का एक अवयव=कपालादि नीलरूपवाला होता है और दूसरे कपालादि अवयव मे पीतरूपजनक अग्निसयोग होता है तव भी अनन्तर क्षण मे घट मे चित्र रूप की उत्पत्ति होने से व्यतिरेक व्यभिचार आयेगा, क्योकि चित्रोत्पादाव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन वहाँ नीलेतर रूप रहता नही है'← भी अवकाश रहता नही हे, क्योकि वहाँ कपाल मे पाक से पीतरूप की उत्पत्ति के अनन्तर ही घट मे हम चित्ररूप का स्वीकार करते है। मतलव कि पीतजनक अग्निसयोग से कपाल मे पहले पीतरूप उत्पन्न होता हे । तव घट मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से नीलेतर पीतेतर आदि रूप रहने से तदनन्तर क्षण मे समवाय सम्वन्ध से घट मे चित्र रूप की उत्पत्ति होने मे कोई दोष नही है। स्वसामग्री से कार्योत्पत्ति होने पर व्यतिरेक व्यभिचार दोष को अवकाश नही रहता है ।

● नीलाभावादिपट्क मे चित्ररूपकारणता नामुमकिन ●

न च नीलाभा। चित्ररूप के विषय मे अन्य विद्वानो का यह मन्तव्य है कि → "विजातीय चित्ररूप समवाय सम्वन्ध से जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से नीलरूपाभाव, पीतरूपाभाव, शुक्लरूपाभाव, रक्तरूपाभाव, कृष्णरूपाभाव और हरितवर्णाभाव ये छ रहते ही है । अत समवाय से विजातीय चित्ररूप के प्रति नीलाभावादि पट्क स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से कारण है । जैसे एक कपाल मे नील रूप और दूसरे कपाल मे पीत रूप रहने पर घट मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से नीलाभावादि पट्क रहता हे । पीतकपाल मे नीलाभाव, शुक्लाभाव आदि रहते है एव नीलकपाल मे पीताभाव, शुक्लाभाव आदि रहते हैं । नीलाभावादि पट्क के आश्रय कपालद्वय मे घट समवेत होने से नीलाभावादि पट्क स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से घट मे रहते है और वहाँ विजातीय चित्ररूप समवाय सम्वन्ध से उत्पन्न होता हे । अत चित्र सामान्य के प्रति नीलेतर, पीतेतर आदि रूपपट्क को कारण मानने की जरूरत नही है"←

प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वमस्त्विति वाच्यम्, नील-पीतोभयकपालारब्धे घटे पाकनाशितावयवपीतस्वचित्रेऽवयवे व्याप्यवृत्तिनीलोत्पत्तिकाले चित्रोत्पत्त्यापत्तेः। न च कार्यसहभावेन नीलाभावादीना तद्धेतुत्वान्नाय दोष इति वाच्यम्, नील-पीत-श्वेतत्रितयकपालारब्धे पाकेन पीतश्वेतयोः क्रमेण नाशे श्वेतनाशकालेऽपि तदापत्तेः।

◆ हेमलता ◆

- नीलपीतोभयकपालारब्धे = नीलपीतकपालाभ्या समारब्धे घटे अवयविनि, अत्र 'चित्रोत्पत्त्यापत्तेरि'त्यन्वीयते। पाकनाशितावयवपीतस्वचित्रे इति अवयवपीतञ्च स्वचित्र चेति अवयवपीतस्वचित्रे, पाकनाशितेऽवयवपीतस्वचित्रे यस्य स तथा तस्मिन् घटे, अवयवे = घटसमवायिकारणे कपाले पाकेन व्याप्यवृत्तिनीलोत्पत्तिकाले = स्वाभावाऽसमानाधिकरणनीलरूपोत्पादक्षणावच्छेदेन, चित्रोत्पत्त्यापत्ते = विजातीयचित्ररूपोत्पादप्रसक्तेः। अय भावः, असमवायिकारणनाशस्य द्रव्यनाशकत्वेऽपि गुणनाशकत्वे मानाभावेन नावयवपीतनाशादवयविचित्ररूपनाशः किन्तु येन पाकेनावयवपीतरूपनाशः तेनैवावयविचित्रनाशः। पाकेनावयवे नीलोत्पत्तौ सत्यामवयवनीलाभ्यामेवापाकजस्थले कलृप्ताभ्यामवयविनीलोत्पाद इति वस्तुस्थितिः। पर नीलाभावादिषट्कस्य चित्रजनकत्वे तु निरुक्तावयवे व्याप्यवृत्तिनीलोत्पादकाले चित्रोत्पादापत्तिः दुर्वारा, तत्पूर्वक्षणे तत्रावयविनि नीलाभावादिषट्कस्य सत्त्वात्। न चैव भवति। अतोऽन्वयव्यभिचारान्न नीलाभावादिषट्कस्य विजातीयचित्र प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन कारणत्वमर्हतीत्याशयः।

यत्तु पाकेनावयवे नीलोत्पत्तिकालेऽवयविन्यपि तेनैव नीलोत्पत्तिसम्भवे नीलोत्पादकसामग्रीतः प्रतिबन्धादेव न तदानीं चित्ररूपोत्पत्त्यापत्तिरिति, तन्न चारु, नीलादिसामग्रीत्वेन चित्रप्रतिबन्धकत्वकल्पने महागौरवात्।

परशङ्कामपाकर्तुमुपदर्शयति न चेति। वाच्यमित्यनेनास्यान्वय। कार्यसहभावेन = कार्योत्पादसमकालीनत्वेन न तु कार्योत्पादाव्यवहितपूर्वकालिकत्वेन, नीलाभावादीना षण्णा तद्धेतुत्वात् = समवायेन विजातीयचित्र प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन कारणत्वाभ्युपगमात्, न अय = निरुक्तान्वयव्यभिचारलक्षणो दोष पाकनाशितपीतरूपे कपाले व्याप्यवृत्तिनीलरूपोत्पत्तिकालावच्छेदेन घटे स्वाश्रयसमवेतत्वसंसर्गेण नीलाभावादिषट्कस्य विरहान्न तदा घटे विजातीयचित्रोत्पादप्रसङ्गः। न हि कारणतावच्छेदकसम्बन्धेन कारणतावच्छेदकरूपेण कारणविरहे कार्योत्पादापादन सम्भवतीति शङ्काशयः।

अयवादी तन्निराकरोति - नीलपीतश्वेतत्रितयकपालारब्धे घटेऽवयविनि पाकेन = रूपपरावर्त्तकविजातीयाग्निसयोगेन पीतश्वेतयो कपालसमवेतरूपयोः क्रमेण नाशे श्वेतनाशकालेऽपि = कपालसमवेतश्वेतरूपनाशोत्पत्तिक्षणावच्छेदेनाऽपि तदापत्ते = विजातीयचित्रोत्पादापत्तेः। अयमत्रायवादिनोऽ-

► वल्लभा ◄

नीलपीतो०। मगर यह सगत नहीं है। इसका कारण यह है कि जहाँ नील-पीत दो कपालो से चित्र घट उत्पन्न होता है और पाक से पीत अवयव के पीत रूप का और स्व = घट के चित्र रूप का नाश होता है वहाँ नष्ट-पीतरूपवाले अवयव कपाल मे पाक द्वारा व्याप्यवृत्ति नील रूप की उत्पत्तिकाल मे घट मे विजातीय चित्र रूप की उत्पत्ति का प्रसग होगा, क्योकि उसकी अव्यवहित पूर्व क्षण मे घट मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलाभावादिषट्क विद्यमान है। मगर वस्तुस्थिति यह है कि उस घट मे विजातीय चित्र रूप तब उत्पन्न होता नही है। यदि इस आपत्ति के निवारणार्थ नीलाभावादिषट्ककारणतावादी की ओर से यह कहा जाय कि → 'नीलाभावादिषट्क को हम समवाय सम्बन्ध से विजातीय चित्ररूप के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से कार्यसहभावेन कारण मानते है। मतलब कि विजातीय चित्ररूपोत्पाद की अव्यवहित पूर्व क्षण मे नीलाभावादि षट्क की विद्यमानता अपेक्षित नही है किन्तु कार्योत्पादकाल मे ही नीलाभावादि षट्क की विद्यमानता अपेक्षित है। समवाय सम्बन्ध से अवयवी मे चित्रोत्पत्तिक्षणावच्छेदेन नीलाभावादिषट्क रहने पर ही चित्ररूपात्मक कार्य की उत्पत्ति हो सकती है। उपर्युक्त स्थल मे नष्टपीतरूपवाले कपाल मे व्याप्यवृत्तिनीलोत्पत्तिक्षणावच्छेदेन नीलरूपाभाव नही होने की वजह चित्ररूपोत्पत्ति के प्रसग स्वरूप दोष को अवकाश नही है'←

नीलपी०। तो यह भी असगत है, क्योकि जहाँ नील, पीत और श्वेत इन तीन रूपवाले कपालो से कोई घट उत्पन्न होता है और उसमे पाक से क्रमशः कपाल के पीत रूप और श्वेत रूप का नाश होता है वहाँ उस घट मे श्वेत रूप के नाशकाल मे चित्र रूप की उत्पत्ति की आपत्ति आयेगी, क्योकि उस काल मे पीत, श्वेत आदि रूपो का अभाव स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से घट मे विद्यमान रहता है। कपालीयशुक्लरूपनाशोत्पाद काल मे नष्टपीतरूपवाले कपाल मे नीलाभाव, रक्ताभाव आदि रहते है और नील कपाल मे पीताभाव, रक्ताभाव आदि रहते है। अत श्वेतरूपनाशोत्पादक्षणावच्छेदेन घट मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलाभावादिषट्क विद्यमान होने से शुक्लरूपनाशोत्पादकालावच्छेदेन उस घट मे विजातीय चित्र रूप की उत्पत्ति होने की आपत्ति कार्यसहभावेन नीलाभावादिषट्क को विजातीयचित्रकारण माननेवाले विद्वानो के मतानुसार मुँह फाड कर खडी रहेगी। इसलिए चित्ररूप के प्रति नीलेतरपीतेतररूपादिषट्क को ही स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से कारण मानना सगत है अब शुक्लरूपनाशक्षणावच्छेदेन घट मे चित्ररूप की उत्पत्ति का आपादन

अथाऽस्तु नील-नीलजनकतेजःसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नाभावत्वादिना हेतुत्वमिति चेत्? न, सयोगस्याऽव्याप्यवृत्तित्वेन प्रतियोगिव्यधिकरण-तदभावत्वादिना हेतुताया गौरवात्।

◆ हेमलता ◆

भिप्रायः समवायेन विजातीयचित्रे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन कार्यसहभावेन नीलाभावादिपट्कस्य कारणत्वमिति प्रकृतपरिष्कारकरणेऽपि यो घटो नील-पीत-श्वेतकपालैः समारब्धः तत्र प्रथम पाकेन कपालीय पीतरूप नाश्यते तदनन्तरक्षणे च श्वेतरूप नाश्यते तदनन्तरक्षणे च तत्र पाकेन व्याप्यवृत्ति नीलरूपमुत्पाद्यते तत्र श्वेतनाशोत्पादकालावच्छेदेन घटे विजातीयचित्ररूपोत्पादप्रसङ्गो दुर्वारः, तदा घटे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलाभावादिपट्कस्य सत्त्वात्। ततश्च कार्यसहभावेन नीलाभावादिपट्कस्य विजातीयचित्रोत्पादकत्वकल्पनाऽपि नार्हतीति नीलेतर-पीतेतरादिपट्कस्यैव समवायेन चित्रत्वावच्छिन्न प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वकल्पन न्याय्यमित्यथाशयः।

नीलाभावादिपट्कहेतुतावादी पुनः शङ्कते - अथेति। चेदित्यनेनास्यान्वयः। अस्तु नील-नीलजनकतेज सयोगान्यतरत्वावच्छिन्नाभावत्वादिना समवायेन चित्रत्वावच्छिन्न प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वम्। नील-तज्जनकपाकान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव-पीत-तज्जनकपाकान्यत-रत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावादिपट्कस्य समवायेन चित्र प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वस्वीकारेण न नीलपीतश्वेतत्रितयकपालारब्धे पीतशुक्लयोः क्रमेण नाशे श्वेतनाशोत्पादकाले चित्रोत्पादप्रसङ्गः, तदा तत्र घटे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलजनकतेजःसयोगस्य सत्त्वेन चित्ररूपहेतोः नील-नीलजनकतेजःसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावादेरभावात् । न ह्यन्यतरसत्त्वेऽन्यतरत्वावच्छिन्न-प्रतियोगिताकोऽभावस्तत्राभ्युपगन्तुमर्ह-तीति शङ्काकृदाशयः।

नीलेतर-पीतेतररूपादिकारणतावादी तन्निराकरोति-नेति। नीलेतर-पीतेतरादिपट्कापेक्षया नील-नीलजनकतेजःसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगि-ताकाभावादिपट्कस्य समवायेन चित्रत्वावच्छिन्न प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वे गौरवात् नीलपीतश्वेतत्रितयकपालारब्धे पीत- शुक्लयोः क्रमेण नाशे श्वेतनाशोत्पादकाले चित्रोत्पादापत्तेर्दुर्वारत्वाच । न हि सयोगस्याऽव्याप्यवृत्तित्वेन नीलजनकतेजःसयोगवत्यपि नीलजनकाग्निसयोगाभावस्य नीलरूपाभावस्य च तत्र सत्त्वेन नील-तज्जनकाग्निसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नाभावादिपट्कस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन सत्त्व केनाऽप्यपलपितु शक्यम्, उभयाभावव्यापकत्वादन्यतराभावस्य । न च समवायेन चित्रत्वावच्छिन्न प्रति कार्यसहभावेन नील-तज्जनकतेजःसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगि-ताकाभावादिपट्कस्य प्रतियोगिव्यधिकरणस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वान्नाय दोप इति वक्तव्यम् तथापि प्रतियोगिव्यधिकरण-तदभावत्वादिना स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपिताधिकरणतानिरूपिताधेयताश्रयप्रतियोगिकभेदविशिष्ट-नील-नीलजनकतेजःसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-काभावादिपट्कस्य समवायेन चित्रत्वावच्छिन्न प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुताया गौरवात् = कारणतावच्छेदकधर्मगौरवापातात्। स्वाश्रयत्वमपि कालिकविपयतादीतरसम्बन्धेन वाच्यमिति सम्बन्धकृत गौरवमपि दुर्निवारमत्र कल्पे। नन्वस्त्वस्य गौरवस्य फलमुखत्वेनाऽदोपत्वमिति शङ्कायामाह-

▶ वल्लभा ◀

नही किया जा सकता, क्योकि तत्पूर्वक्षणावच्छेदेन नीलेतररूप उस घट मे स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से रहता नही हे।

▽ नील-नीलजनकाग्निसयोगान्यतराभाव भी चित्ररूपजनक नही है ▽

अथास्तु०। यदि उपर्युक्त आपत्ति के निराकरणार्थ प्रतिवादी की ओर से यह कहा जाय कि ⟶ "समवाय सम्वन्ध से चित्र रूप के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से नील-नीलजनकतेज सयोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावादिपट्क ही कारण है। अव नीलपीतशुक्लत्रितयक-पालारब्ध घट मे क्रमश पीत और शुक्ल रूप का नाश होने पर शुक्लरूपनाशोत्पादक्षणावच्छेदेन चित्र रूप की उत्पत्ति की अनिष्टापत्ति को अवकाश रहता नही हे, क्योकि तव उस घट मे नीलरूपजनकतेज सयोग होने से नील-नीलजनकतेज सयोगान्यतराभाव रहता नही है। अन्यतर के आश्रय मे अन्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव केसे रहेगा? कारण के विरह मे कार्य का आपादन हो सकता नही हे"⟵

न स०। तो यह भी ठीक नही है, क्योकि सयोग अव्याप्यवृत्ति होने से सयोगाभाव केवलान्वयी ह। मतलव कि जहाँ नीलजनकतेज सयोग रहता हे वहाँ भी अवच्छेदकभेद से नीलजनकतेज सयोगाभाव रहता है। उस घट मे नष्टपीतरूपवाले कपाल का नीलाभाव एव नीलजनकतेज सयोगाभाव स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से रह जाने मे पुन श्वेतनाशोत्पादकालावच्छेदेन घट मे चित्र रूप की उत्पत्ति की अनिष्ट आपत्ति दुर्वार वन जायेगी। इसके निवारणार्थ यदि ऐसा कहा जाय कि⟶ 'नील-नीलजनकतेज सयोगान्यतराभावादि प्रतियोगिव्यधिकरणाभावत्वेन चित्र रूप का कारण है। शुक्लरूपनाशक्षणावच्छेदेन घट मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से रहनेवाला नील-नीलजनकतेज सयोगान्यतराभाव प्रतियोगिव्यधिकरण नही है, क्योकि घट मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से नील-नीलजनकतेज सयोगान्यतर (= नीलजनकतेज सयोग) रहता हे। अतएव तव उस घट मे समवाय सम्वन्ध से चित्ररूपोत्पत्ति का आपादन नही किया जा सकता'⟵ तो यह भी ठीक नही हे, क्योकि प्रतियोगिव्यधिकरण अभाव अपने प्रतियोगी के अधिकरण से अन्यत्र रहता है। अत प्रतियोगिव्यधिकरण-तदभावत्वेन कारणता के स्वीकार का मतलव यह

अपि चोक्तसम्बन्धेन नीलाभावादीना चित्रहेतुत्वे वाय्वादावपि तदापत्तेः, उक्तरूपत्वेनापि तद्धेतुताकल्पने गौरवम्। न च जन्यरूपत्वावच्छिन्न प्रत्येव हेतुत्वान्न तदापत्तिः, नीलादौ नीलादेर्हेतुतावश्यकत्वे तादृशहेतुताया मानाभावात् ।

◆ हेमलता ◆

अपि चेति । उक्तसम्बन्धेन = स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलाभावादीना षण्णा चित्रहेतुत्वे = समवायसम्बन्धावच्छिन्नचित्रत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावत्त्वस्वीकारे वाय्ववयवादीना नीरूपत्वेन स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलाभाव-पीताभावादीना षण्णा तत्र सत्त्वेन वाय्वादौ अपि समवायेन तदापत्ते = चित्रोत्पादापत्ते, सामग्रीसत्त्वे कार्यावश्यम्भावनियमात् । यद्यपि प्रकृते आदिपदमनतिप्रयोजनमिति प्रतिभाति, मनोदिकालात्माकाशाना निरवयवत्वेन नीलाभावादिषट्कस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन विरहात्, जलतेजसो शुक्लरूपसत्त्वेन नीलाभावादिषट्कस्य निरुक्तसम्बन्धेनाऽसत्त्वात्, नीलाभावादिषट्कस्य स्वाश्रयसमवेतत्वेनाश्रये पृथिवीद्रव्ये तु चित्ररूपस्य जायमानत्वेनैवानापाद्यत्वात् तथापि वायूपनीतसुरभिभागादेर्नीरूपत्वमते मरुदागतसुरभिद्रव्याशादेरादिपदेन ग्रहणात्राऽनतिप्रयोजन तदित्यवधेयम् ।

अपठितस्याद्वादरहस्यग्रन्था केचित्तु आदिपदात् रूपरसादीनामुपग्रह इति वदन्ति ।

ननु समवायेन चित्रत्वावच्छिन्न प्रति न केवल नीलाभावादिषट्कस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्व किन्तु स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपस्यापि, वाय्वादौ तु नीलाभावादिषट्कस्य सत्त्वेऽपि रूपस्यैव विरहान्न चित्रोत्पादापत्ति । न हि सामग्रीविरहे कार्यमुत्पत्तुमर्हतीत्याशङ्काया नीलेतरादिषट्ककारणतावायाह - उक्तरूपत्वेन = स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपत्वेन अपि तद्धेतुताकल्पने = समवायेन चित्रत्वावच्छिन्न प्रति कारणत्वोपगमे गौरव = नानाकारणताकल्पनागौरवम् । न च समवायेन जन्यरूपत्वावच्छिन्न प्रत्येव स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपत्वेन हेतुत्वात् वाय्वादौ न तदापत्ति = चित्ररूपापत्ति', सामान्यसामग्रीसमवहिताया एव विशेषसामग्र्या कार्यजनकत्वनियमादिति वाच्यम्, समवायेन नीलादौ = नीलत्व-पीतत्वाद्यवच्छिन्न प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलादे नीलत्व-पीतत्वादिना हेतुतावश्यकत्वे = कारणताया प्रामाणिकत्वेनोभयसम्मतत्वे सति तादृशहेतुताया = समवायसम्बन्धावच्छिन्नजन्यरूपत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितस्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नरूपत्वावच्छिन्नकारणताया गौरवेण मानाभावात् । अथ समाधानाशयोऽवयविरूप प्रति अवयवरूपस्य कारणत्वमङ्गीकृत्यापि 'अवयविनीलादिरूप प्रति कि कारण ?' इति जिज्ञासाया अवयवनीलादिरूपस्य तत्र कारणताऽवश्य कल्पनीयव, अन्यथाऽवयविनीलत्वादेराकस्मिकत्वापत्ते । अवयविनीलादावव्यवनीलादेरवश्यक्लृप्तकारणताकत्वेऽवयविरूप प्रत्यवयवरूपस्य कारणताकल्पनेनाऽल, अप्रामाणिकगौरवात् । न च यो यद्विशेषयो कार्यकारणभाव स तत्सामान्ययोरपीति न्यायेनावयविरूप प्रत्यवयवरूपस्य कारणता प्रामाणिकीति वक्तव्यम् तत्राऽपि मानाभावादन्यथैककारणसिद्ध्यापत्ते ।

▶ वल्लभा ◀

है कि चित्ररूप की स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्न कारणता का अवच्छेदक धर्म स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपिताधिकरणतानिरूपिताधेयताश्रयप्रतियोगिताकभेदविशिष्ट-नील-नीलजनकतेज मनोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वादि षट्क है। मगर ऐसा मानने मे तो कारणतावच्छेदक धर्म का शरीर अत्यन्त गुरु बन जायेगा। अत इस कार्यकारणभाव को मान्य नही किया जा सकता।

अपि चो०। इसके अतिरिक्त यहाँ दोष यह है कि स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से प्रतियोगिव्यधिकरण नीलाभावादिषट्क को चित्ररूप का कारण मानने पर वायु आदि मे भी चित्ररूप की उत्पत्ति की आपत्ति आयेगी, क्योकि वायु आदि मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से प्रतियोगिव्यधिकरण नीलाभावादिषट्क रहता ही है । वायु के अवयवो मे सर्वदा नीलाभावादि रहता ही है । अत वायु आदि मे समवायसम्बन्ध से चित्ररूप की आपत्ति वज्रलेप बनेगी । मगर वस्तुस्थिति इसके विपरीत है । वायु मे चित्ररूप की उत्पत्ति तो क्या ? रूप की ही उत्पत्ति होती नहीं है। अत अन्वय व्यभिचार दोष भी प्रसक्त होगा। यदि इस आपत्ति के निवारणार्थ प्रतिवादी की ओर से यह कहा जाय कि → 'चित्र रूप के प्रति रूपत्वेन भी हेतुता का हम स्वीकार करते है । मतलब कि समवाय सम्बन्ध से चित्ररूप के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रूप सामान्य भी कारण होता है। वायु के अवयवो मे रूप ही रहता नहीं है। तब वायु मे चित्र रूप की उत्पत्ति का आपादन कैसे किया जा सकता है?' ← तो यह भी ठीक नहीं है, क्योकि समवायसम्बन्ध से चित्र रूप के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलाभावादिषट्क को कारण मानने पर भी स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से रूप मे चित्रकारणता की कल्पना करने मे गौरव प्रसक्त होता है। अतएव वह मान्य नहीं की जा सकती।

◆ जन्यरूपत्वावच्छिन्न के प्रति रूपकारणता नामुमकिन ◆

न च ज०। यहाँ प्रतिवादी ओर से यह कहा जाय कि→ 'चित्ररूप के प्रति चाहे रूपत्वेन कारणता का स्वीकार न किया जाय फिर भी वायु मे चित्ररूप के उत्पाद की आपत्ति को अवकाश नहीं है, क्योकि जन्यरूपत्वावच्छिन्न के प्रति रूपत्वेन रूप सामान्य कारण होता है। अवयवी के रूप के प्रति अवयवरूप स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से कारण होने की वजह वायु मे चित्र

एतेन 'अनवच्छिन्नविशेषणतया प्रतियोगिवैयधिकरण्याविशेषितोक्ताभावहेतुत्वसम्भवेऽपि न क्षतिरिति चेत् ?

न, पाकमात्रादपि चित्रोत्पत्तेः ।

◆ हेमलता ◆

एतेन = नीलाभावादीनां चित्रजनकत्वे वाय्वादौ चित्रप्रसङ्गप्रदर्शनेन, अन्वयश्चास्याग्रे न क्षतिरित्यत्र । चित्ररूपनिष्ठकार्यतानिरूपित-नीलनीलजनकतेजःसयोगान्यतराभावादिनिष्ठकारणतावच्छेदकीभूतस्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धघटकीभूतस्वाश्रयत्वस्य अनवच्छिन्नविशेषणतया = निरवच्छिन्नवृत्तिताकत्वेन विवक्षणे प्रतियोगिवैयधिकरण्याऽविशेषितोक्ताभावहेतुत्वसम्भवे = स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणतानिरूपिताधेयताश्रयप्रतियोगिकभेदाऽविशेषितस्यैव नील-नीलजनकतेजःसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नाभावादेः स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन चित्रकारणत्वोपगमे नीलजनकतेजःसयोगवति उक्तान्यतराभावः किञ्चिदवच्छेदेनैव वर्तत इति सावच्छिन्नस्वरूपसम्बन्धेनैव तदाश्रयत्वं तस्य न तु निरवच्छिन्नस्वरूपसम्बन्धेनेति नीलजनकपाकदशायां तदभावस्योक्तसम्बन्धेनाभावादेव न चित्ररूपोत्पत्त्यापत्तिः, न चात्र प्रतियोगिवयधिकरण्यानिवेशेन गौरवं न वा नीलपीतश्वेतत्रितयकपालारब्धे पाकेन पीतश्वेतयोः क्रमेण नाशे श्वेतनाशकाले चित्रोत्पादप्रसङ्ग इत्युक्तावपि न क्षतिः प्रतियोगिवैयधिकरण्याविशेषितस्य नील-नीलजनकतेजःसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावादिषट्कस्य स्वनिरूपितनिरवच्छिन्नाश्रयत्ववत्समवेतत्वसम्बन्धेनाधिकरणीभूते वाय्वादौ चित्रोत्पादप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वात्, रूपत्वेनाऽपि चित्ररूपहेतुत्वकल्पने गौरवात्, जन्यरूपत्वाच्छिन्ने रूपत्वेन तद्धेतुत्वे मानाभावात् प्रतियोगिकोटावुदासीनप्रवेशाप्रवेशाभ्यामविनिगमेन नील-वायुसयोगान्यतराभावस्यापि तादृशस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुतापत्तेश्च। ततश्च समवायेन चित्रत्वावच्छिन्नं प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतर-पीतेतररूपादिषट्कस्यैव हेतुत्वकल्पनं युक्तमित्यथवादिनोऽभिप्रायः ।

एकदेशिनस्तन्निराकुर्वन्ति-नेति। पाकमात्रादपि = नीलेतर-पीतेतररूपादिषट्कं विनैव केवलाद् विजातीयतेजःसयोगादपि समवायेनाऽवयविनि चित्रोत्पत्तेः दर्शनात् चित्रत्वावच्छिन्ने नीलेतर-पीतेतररूपादिषट्कस्य कारणत्वकल्पना न युक्ता। यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च पीतजनकतेजःसयोगस्तत्रावयवे

► वल्लभा ◄

रूप का आपादन कैसे किया जा सकता है? रूपसामान्य की सामग्री न होने पर चित्र रूप की उत्पत्ति कैसे हो सकेगी? चाहे स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से वायु आदि मे नीलाभावादिषट्क क्यो न रहता हो? सामान्यसामग्री के विरह में कभी विशेषसामग्री से कार्य का जन्म होता नही है' ← तो यह भी ठीक नही है, क्योकि जन्यरूपत्वावच्छिन्न के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से रूप मे कारणता की कल्पना करने मे कोई प्रमाण नही है। इसका कारण यह है कि अवयवी के नील, पीत, श्वेत आदि रूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से अवयव का नील, पीत, श्वेत आदि रूप कारण होता है। यह विशेष कार्यकारणभाव तो वादी-प्रतिवादी उभयमत मे अवश्यक्लृप्त है। कभी भी अवयवी मे रूपसामान्य की उत्पत्ति होती नही है किन्तु रूपविशेष की ही उत्पत्ति होती है। अत रूपसामान्य के प्रति कारणता का स्वीकार करना अप्रामाणिक है। अप्रामाणिक कार्यकारणभाव के बल पर कैसे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलाभावादिषट्क के अधिकरणभूत वायु आदि मे चित्ररूप की उत्पत्ति के प्रसग का निराकरण किया जा सकता? कथमपि नहीं।

निरवच्छिन्नविशेषणतया चित्रकारणता भी असम्भव

एतेन०। अतएव यहाँ यह कथन कि → 'समवाय सम्बन्ध से चित्र रूप के प्रति प्रतियोगिवैयधिकरण्य से अविशेषित ऐसे नील-नीलजनकतेज सयोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावादि को निरवच्छिन्नविशेषणतया = निरवच्छिन्नवृत्तित्वेन ही स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से कारण मानने मे किसी दोष की सभावना नही है, क्योकि जहाँ नीलजनक अग्निसयोग रहता ह वहाँ रहनेवाला नीलजनकाग्निसयोगाभाव निरवच्छिन्नवृत्तितावाला नही होता है किन्तु सावच्छिन्नवृत्तिताक होता है। अत नील-पीत-श्वेत कपालवाले घट मे पीत और श्वेत रूप का क्रमश नाश होता है वहाँ श्वेतनाशोत्पत्तिकालावच्छेदेन चित्ररूप की उत्पत्ति की आपत्ति को अवकाश नही है, क्योकि वहाँ नील-नीलजनकाग्निसयोगान्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव निरवच्छिन्नवृत्तित्वेन रहता नही है'← करने पर भी हमारे मत मे कोई क्षति नही होगी, क्योकि तब भी वायु आदि मे निरवच्छिन्नविशेषणत्वेन नील-नीलजनकाग्निसयोगाभावान्यतरत्वावच्छिन्नअभावादि स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रहने से चित्ररूप की उत्पत्ति की आपत्ति का निराकरण किया जा नही सकता। अतएव इस कारणता को भी मान्यता नही दी जा सकती। इसलिए यही मानना मुनासिब है कि समवायसम्बन्ध से चित्रत्वावच्छिन्न के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलेतर-पीतेतररूपादिषट्क ही कारण है। तब वायु आदि मे चित्र रूप की उत्पत्ति की आपत्ति को अवकाश रहता नही है, क्योकि वायु के अवयव नीरूप होने से वायु मे स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलेतरादि रूप ही रहता नही है। इसलिए चित्र सामान्य के प्रति नीलेतरादि को कारण मानने मे कोइ दोष नही है।

अथ रूपजन्यतावच्छेदक विजातीयचित्रत्वम्, अग्निसयोगजन्यतावच्छेदकश्चापरम् । अग्निसयोगजन्यचित्र प्रत्यवच्छेदकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताका नीलजनकाग्निसयोगादेरभावा उक्तप्रत्यासत्त्या हेतवः रूपजनकविजातीयाग्निसयोगश्चेति न वाच्यादौ

◆ हेमलता ◆

पीतरूपोत्पत्त्यनन्तरमेवाऽवयविनि चित्रोत्पत्तिस्वीकारस्य शपथमात्रनिर्णेयत्वेन व्यतिरेकव्यभिचारपिशाचदु:सञ्चारव्याप्तत्व न सुरेश्वरगुरुणाऽपि पगणेतु शक्यत इत्येकदेशिनामाशय: ।

अवान्तरपूर्वोत्तरपक्षगर्भित दीर्घपूर्वपक्षमाह अथेति चेदित्यनेनास्यान्वयः। प्रदर्शितव्यतिरेकव्यभिचारवारणाय रूपजन्यतावच्छेदक विजातीयचित्रत्व न तु चित्रत्व, तथा अग्निसयोगजन्यतावच्छेदक च अपर = नीलेतरादिरूपकार्यतावच्छेदकविजातीयचित्रत्वभिन्न विजातीयचित्रत्वमिति चित्ररूपवादिना वाच्यम् । तेन नीलेतरादिरूपविरहेऽपि पाकाच्चित्रोत्पादेऽपि न व्यतिरेकव्यभिचारः, पाकजचित्रस्य रूपकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वात्, न वाऽग्निसयोगविरहेऽपि नीलेतरादिरूपाच्चित्रोत्पादेऽपि व्यतिरेकव्यभिचार, रूपजचित्रस्य पाककार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वात् । न च यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च नीलजनकाग्निसयोगस्तत्राऽवयविनि व्याप्यवृत्ति नीलरूप न स्यात् किन्तु पाकज विजातीयचित्र स्यादिति वाच्यम् अग्निसयोगजन्यचित्र = पाकजन्यतावच्छेदकविजातीयचित्र- त्वावच्छिन्न प्रति अवच्छेदकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताका स्वनिष्ठावच्छेद्यतानिरूपित-तत्तदवयवनिष्ठावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपका नीलजनकाग्निसयोगादेरभावा = नीलजनकपाक-पीतजनकपाकाद्यत्यन्ताभावा उक्तप्रत्यासत्त्या = स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतव इत्यस्याऽभ्युपगन्तव्यत्वात्। यस्मिन्नवयवे स्वावच्छेदकतया नीलजनकतेज:सयोग: तत्रावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनीलजनकतेज:सयोगात्यन्ताभावस्य विशेषणताविशेषसम्बन्धेन विरहेणाऽवयविनि स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन तस्याभावान्न पाकजचित्रोत्पादापत्ति: । न च नीलकपालेऽवच्छेदकतासम्बन्धेन नीलजनकतेज:सयोगादे: विरहेण स्वनिरूपितावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाना नीलजनकाग्निसयोगाद्यभावाना स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन घटे सत्त्वेन पाकजचित्रापत्तिर्दुर्वारेति वाच्यम्, रूपाभावस्यापि तद्धेतुत्वस्यानुपदमेव वक्ष्यमाणत्वेन तद्दोषासम्भवात्। तथापि कपालादौ नीलादिजनकतेज:सयोगविरहे नीलमात्राढ्ये घटे स्वोत्पत्तिद्वितीयक्षणावच्छेदेन अग्निपरमाण्वादिसयोगाच्चित्रोत्पत्तिप्रसङ्ग इत्यतोऽग्निसयोगजन्यचित्र प्रति रूपजनकविजातीयाग्निसयोगश्चापि हेतुरिति वक्तव्यम्। इति = अग्निसयोगजचित्रे रूपजनकविजातीयाग्निसयोगस्य हेतुत्वात् न

▶ वल्लभा ◀

➔ नीलेतरादिषट्क चित्रसामान्यकारण नही है - एकदेशी उत्तरपक्ष ➔

उत्तरपक्ष : न पा०। मगर विचार करने पर यह वक्तव्य असगत प्रतीत होता है, क्योकि विना नीलेतरादि रूप के केवल पाक से भी चित्ररूप उत्पन्न होता है। अत चित्र सामान्य के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलेतर-पीतेतर रूपादि को ही कारण मानने मे व्यतिरेक व्यभिचार का निवारण हो नही सकता। इसके निवारण के लिए तो चित्ररूपवादी को यही कहना होगा कि-

■ रूपजचित्र और पाकजचित्र की कल्पना का गौरव - पूर्वपक्ष ■

पूर्वपक्ष चित्ररूपवादी :- अथ रूप०। ''चित्ररूप के दो प्रकार है। एक है रूपजन्य और दूसरा है अग्निसयोगजन्य। रूपजन्यतावच्छेदक विजातीयचित्रत्व है जो अग्निसयोगजन्य चित्ररूप मे रहता नही है और अग्निसयोगजन्यतावच्छेदक विजातीयचित्रत्व इससे भिन्न ही है जो रूपजन्य चित्ररूप मे नही रहता है। इस परिस्थिति मे व्यतिरेक व्यभिचार की समस्या हल हो जायेगी, क्योकि केवल अग्निसयोग से उत्पन्न होनेवाले चित्ररूप मे रूपजन्यतावच्छेदक विजातीयचित्रत्व रहता नही है। स्वकार्यतावच्छेदकानवच्छिन्न की उत्पत्ति स्व=नीलेतरादिरूप के विना होने मे कोई दोष नही है। यहाँ इस शका के कि ⟶ 'अग्निसयोगजन्य चित्र का स्वीकार करने पर तो जिस घट के एक कपाल मे नील रूप है और दूसरे कपाल मे नीलरूपजनक अग्निसयोग है उस घट मे भी समवाय सम्बन्ध से चित्र रूप उत्पन्न होने लगेगा, क्योकि उस घट मे स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से अग्निसयोग रहता ही है' ⟵ समाधानार्थ यह कहा जा सकता है कि अग्निसयोगजन्य चित्र रूप के प्रति अवच्छेदकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक नीलजनकअग्निसयोगाभाव-पीतजनकअग्निसयोगाभाव आदि षट्क स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से कारण होता है। अवच्छेदकतासम्बन्ध से एक कपाल मे नीलजनक अग्निसयोग होने पर उस कपाल में अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक नीलजनकअग्निसयोगाभाव स्वरूपसम्बन्ध से रह नही सकता और उस घट मे वह स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रह नही सकता, क्योकि घट उस कपाल मे समवेत होने पर भी वह कपाल स्वाश्रय = अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक नीलजनकाग्निसयोगादिअभाव का विशेषणताविशेषसम्बन्ध से आश्रय होता नही है। एक कारण के विरह मे भी कार्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? कथमपि नही।

▲ पाकजरूप के प्रति रूपजनकाग्निसयोग मे कारणता का गौरव ▲

रूपजन०। यहाँ इस शका का कि ⟶ 'वायु आदि के अवयव मे नीलजनक अग्निसयोग, पीतजनक अग्निसयोग आदि अवच्छेदकता

तदापत्तिः। स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकरूपाभावस्यापि तद्धेतुत्वेन नोभयस्मात्तदुत्पत्तिः। न च रूपजचित्रं प्रत्यग्निसयोगाभावस्यैव हेतुत्वं किं न स्यादिति वाच्यम्, नानाग्निसयोगाभावाना हेतुत्वकल्पनापेक्षया रूपसामान्याभावस्यैव

◆ हेमलता ◆

वाय्वादौ तदापत्ति = समवायेन चित्रोत्पत्तिप्रसङ्गः, स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादेः रूपजनकविजातीयाग्निसयोगस्य च विरहेणान्यतरचित्रसामग्र्या असत्त्वात्। न च यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च नीलजनकतेजःसयोगः तत्रावयविनि स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलावयवनिष्ठावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनीलजनकाग्निसयोगाद्यभावस्य रूपजनकविजातीयतेजःसयोगस्य रूपस्य च सत्त्वेन रूपजनकविजातीयाग्निसयोग-रूपाभ्या विजातीयचित्रारम्भ- प्रसङ्गः इति वाच्यम् स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकरूपाभावस्यापि प्रतिबन्धकाभावविधया स्वरूपसम्बन्धेन तद्धेतुत्वेन = अग्निसयोगजन्य- विजातीयचित्रं प्रति हेतुत्वेन नोभयस्मात् = रूपजनकविजातीयतेजःसयोग-रूपाभ्या तदुत्पत्ति = अग्निसयोगजचित्रोत्पत्तिः, तत्रावयविनि स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपस्यैव सत्त्वात्, सति प्रतिबन्धके कार्योत्पादाऽयोगात्। न चैव यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च पीतजनकाग्निसयोगस्तत्रावयविनि पाकजचित्रं न स्यात्, स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन तत्प्रतिबन्धकस्य रूपस्य सत्त्वादिति वाच्यम्, इष्टत्वात्, तत्र रूपजचित्रोत्पादस्यैवाभ्युपगन्तव्यत्वात्। न च रूपजचित्रं प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य अग्निसयोगाभावस्यैव प्रतिबन्धकाभावविधया हेतुत्वं किं न स्यात्? विनिगमकाभावात्, ततो नोपर्युक्तस्थले रूपजचित्रोत्पादोऽपि सम्भवतीति वाच्यम् नानाग्निसयोगाभावाना प्रतिबन्धकाभावविधया हेतुत्वकल्पनापेक्षया = रूपजचित्रजनकत्वस्वीकारापेक्षया रूपसामान्याभावस्य = रूपत्वावच्छिन्न-स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्न-

▶ वल्लभा ◀

सम्बन्ध से रहता नही है। अतएव अवच्छेदकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक नीलजनकाग्निसयोगादिअभाव, जो दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्ध से वायुअवयव आदि मे रहता है, स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से वायु आदि मे रहता ही है। तब अग्निसयोगजन्य चित्र रूप की उत्पत्ति की आपत्ति वायु आदि मे भी दुर्निवार होगी' ←समाधान यह देना होगा कि समवाय सम्बन्ध से अग्निसयोगजन्य चित्र रूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से रूपजनक विजातीय अग्निसयोग भी कारण होता है, जो वायु आदि मे रहता नही है। वायु आदि के अवयवो मे जो अग्निसयोग है वह विजातीय नही है। अत वायु आदि मे स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से रूपजनक विजातीय अग्निसयोग रहता नही है। इस परिस्थिति मे वायु आदि मे पाकज विजातीय चित्ररूप की उत्पत्ति की आपत्ति कैसे दी जा सकती है? सामग्री के अनधिकरण मे कार्य कभी भी उत्पन्न होता नही है।

▶ पाकज चित्र के प्रति रूपाभाव मे कारणता का गौरव ◀

स्वा०। यहाँ इस शका के कि → 'जिस घट के एक कपाल मे अवच्छेदकता सम्बन्ध से नील रूप और दूसरे कपाल मे नीलजनक अग्निसयोग रहता है वहाँ नील कपाल मे अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक नीलजनकअग्निसयोगाभाव आदि दैशिकविशेषणताविशेष सम्बन्ध से रहने से घट मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से वे रह जायेंगे जिसकी वजह रूपजनकअग्निसयोगवाले उसी घट मे समवाय सम्बन्ध से उस चित्र रूप की उत्पत्ति की आपत्ति आयेगी जो रूप एव अग्निसयोग उभय से जन्य होगा, क्योकि उस घट मे स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से रूप एव रूपजनक विजातीयअग्निसयोग दोनो रहते है'← निराकरणार्थ चित्ररूपवादी की ओर से यही समाधान देना होगा कि अग्निसयोगजन्य चित्ररूप के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक रूपाभाव दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्ध से कारण होता है। निर्दिष्ट घट मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रूप रहता है, क्योकि स्व = नीलरूप के आश्रय नीलकपाल मे घट समवेत है। अत स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक रूपाभाव स्वरूपसम्बन्ध से उस घट मे रहता नही है। अत उस घट मे रूप एव अग्निसयोग दोनो से जन्य विजातीय चित्ररूप की उत्पत्ति को अवकाश नही रहता है, क्योकि अग्निसयोगजन्य चित्ररूप की सामग्री उपर्युक्त घट मे अविद्यमान होने से उभयसामग्री ही अविद्यमान है। इस स्थिति मे उभयसामग्रीजन्य चित्र रूप की उत्पत्ति की अनिष्टापत्ति का निराकरण मुमकिन है।

▷ रूपजन्यचित्र मे अग्निसयोगाभाव अकारण ◁

न च रूप०। यहाँ इस शका के कि→ 'उभयसामग्रीजन्यचित्रोत्पादनिराकरणार्थ अग्निसयोगजन्य [illegible] स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक रूपाभाव को स्वरूपसम्बन्ध से कारण कहा गया [illegible] स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अग्निसयोगाभाव को ही क्यो न कारण माना गया? [illegible] चित्ररूप की उत्पत्ति की आपत्ति का वारण तो मुमकिन ही है। तो फिर पक्षपात क्यो? [illegible] अतिरिक्त चित्ररूपवादी की ओर से यह कहना होगा कि रूपजनक अग्निसयोग एक नही है [illegible] है।

तत्कल्पनौचित्यादित्याहु ।

वस्तुतो विजातीयाग्निसंयोगाभावस्यैव रूपजचित्रे हेतुत्वसम्भवान्न किञ्चिदेतत्, किन्तु विजातीयचित्रे विजातीयतेजःसंयोगस्य

◆ हेमलता ◆

प्रतियोगिताकस्य एकस्य एव तत्कल्पनौचित्यात् = अग्निसंयोगजचित्रं प्रति प्रतिबन्धकाभावविधया हेतुत्वकल्पनस्य न्याय्यत्वात्। इत्थञ्चातिरिक्त चित्ररूप कल्पनीयं, अवान्तरचित्रत्वजाती द्वे कल्पनीये, चित्ररूपे क्लृप्तपदार्थभेदादिकं कल्पनीयं, पाकजचित्रे नीलजनकाग्निसंयोगादेः प्रतिबन्धकत्व रूपजनकविजातीयाग्निसंयोगस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नरूपसामान्याभावस्य च हेतुत्वं कल्पनीयं, रूपजचित्रं प्रति च नीलेतररूपत्वादिना कारणत्वं कल्पनीयं, अन्यथा विजातीयाग्निसंयोगशून्ये नीलमात्रावयवेऽपि रूपजचित्रोत्पादापत्ते । नीलातिरिक्तस्य नीलासमवायिकारणत्वकल्पनायामेता-दृशगौरवपरम्परापातेन नीलासमवायिकारणको नील एवेति कल्पनैव ज्यायसीति नैयायिकैकदेशिनामाशयः।

आहुरित्यनेन स्वकीयाऽस्वरसोद्भावनं कृतम्। तद्बीजमेव कण्ठतो व्याचष्टे वस्तुत इति। स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य विजातीयाग्निसंयोगाभावस्यैव रूपजचित्रे प्रतिबन्धकाभावविधया हेतुत्वसम्भवात् न किञ्चित् = अकिञ्चित्करं एतत् = 'स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रति-योगिताकस्य रूपसामान्याभावस्याग्निसंयोगजचित्रं प्रति कारणत्वमि'ति नैयायिकैकदेशिवक्तव्यम्। विशेषं व्याकरोति-किन्तु समवायेन विजातीयचित्रे विजातीयतेजःसंयोगस्य स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन, विजातीयचित्रे=समवायेन विजातीयचित्रत्वावच्छिन्नं प्रति न उभयो विजातीयतेजःसंयोग-रूपयोः एव स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वम्। तेन न वाय्वादौ चित्ररूपप्रसङ्गः विजातीयचित्रत्वत्रितयान्यतरावच्छिन्नसामग्रीविरहात्। यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च पीतरूपजनकाग्निसंयोगस्तत्रावयविनि रूप-विजातीयतेजःसंयोगोभयजन्यं विजातीयचित्रमुत्पद्यते। यत्रैकावयवे नीलजनकाग्निसंयोगोऽपरत्र च पीतजनकाग्निसंयोगस्तत्रावयविनि विजातीयाग्निसंयोगजन्यं विजातीयचित्ररूपमुत्पद्यते। यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च पीतस्तत्रावयविनि रूपजन्यं विजातीयचित्ररूपमुत्पद्यते। इत्थञ्च चित्रत्वव्याप्यचित्रत्वविशेषत्रितयमङ्गीकृत्य कार्यकारणभावत्रिकस्वीकारान्न व्यभिचारावकाशः। न च यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च नीलजनकाग्निसंयोगस्तत्रावयविनि व्याप्यवृत्ति नीलं न स्यात् किन्तूभयजं विजातीयचित्ररूपमेव स्यादिति वक्तव्यम् तत्राग्निसंयोगे उभयजचित्रजनकतावच्छेदकवैजात्यस्यानङ्गीकारात्। न चैवं यत्रैकावयवे पीतोऽपरत्र च नीलजनकाग्निसंयोगस्तत्राप्यवयविनि उभयजन्यं विजातीयचित्रं न स्यादिति वक्तव्यम् अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां नीलेतररूपादिसमवहित एव नीलादिजनकाग्निसंयोगे उभयजचित्रजनकतावच्छेदकवैजात्याङ्गीकारात्। एतेन यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च पीतजनकतेजःसंयोगस्तत्रावयवे पीतोत्पादानन्तरमेवावयविनि चित्रोत्पादस्वीकारः प्रत्युक्तः मानाभावात्।

► वल्लभा ◄

♦ अतिरिक्तचित्ररूपस्वीकार में गौरव - एकदेशी ♦

उत्तरपक्ष : इत्याहु • इस तरह रूपजन्य विजातीय चित्र रूप के प्रति अनेक अग्निसंयोगाभावों में कारणता की कल्पना का गौरव होगा। इसकी अपेक्षा उचित यही है कि अग्निसंयोगज चित्ररूप के प्रति ही रूपसामान्याभाव को प्रतिबन्धकाभावविधया कारण माना जाय, क्योंकि वह एक ही है। इस तरह नीलासमवायिकारणक को नीलातिरिक्त मानने में चित्ररूप की, दो चित्रत्व जाति की, अग्निसंयोगजन्य चित्ररूप एवं रूपजन्य चित्ररूप के प्रति अनेकविध कारणों की कल्पना करने का गौरव उपस्थित होता है। इसकी अपेक्षा उचित तो यही है कि नील रूप को ही नीलरूपाऽसमवायिकारण माना जाय न कि नीलातिरिक्त को- यह अतिरिक्तचित्ररूप का अस्वीकार करनेवाले नैयायिक एकदेशी विद्वानों का कथन है।

► नैयायिक एकदेशी का मत असमत ◄

वस्तु०। प्रकरणकार श्रीमद्जी का एकदेशीमत के खिलाफ यह कथन है कि वस्तुस्थिति नैयायिक एकदेशीमत से अलग है। इसका कारण यह है कि नैयायिक एकदेशी ने जो कहा था कि → 'अग्निसंयोगाभाव अनेकविध होने से रूपज चित्र के प्रति नानाअग्निसंयोग अभावों को प्रतिबन्धकाभावविधया कारण नहीं माना जा सकता'← वह ठीक नहीं है, क्योंकि रूपजन्य चित्र रूप के प्रति एक ही विजातीयअग्निसंयोगाभाव को कारण माना जा सकता है। मतलब कि रूपजन्य चित्र रूप के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से प्रतिबन्धकीभूत अनेकविध अग्निसंयोगो में एक जातिविशेष की कल्पना कर के उस जातिविशेष से अवच्छिन्न एक ही विजातीयअग्निसंयोगाभाव को प्रतिबन्धकाभावविधया रूपजन्यचित्र रूप के प्रति कारण माना जा सकता है। इसलिए नैयायिक एकदेशी का उपर्युक्त कथन अकिञ्चित्कर है। किन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि विजातीय चित्र रूप के प्रति अग्निसंयोगसामान्य हेतु नहीं है किन्तु विजातीय अग्निसंयोग हेतु है। अत जहाँ घट के एक कपाल में विजातीय अग्निसंयोग और दूसरे कपाल में अन्य रूप रहता है तब उस घट में विजातीय चित्र रूप उत्पन्न होगा जो न केवल रूपजन्य होगा और न तो केवल विजातीयअग्निसंयोगजन्य किन्तु उभयजन्य होगा। मतलब

विजातीयचित्रे चोभयोरेव हेतुत्वम्। नीलेतररूपत्वादिनैव चित्रहेतुत्वे तु रूपमात्रजातिरिक्ते विजातीयतेजःसयोग एव हेतुः, फलबलेन वैजात्यकल्पनात्, अग्निसयोगमात्रजातिरिक्ते रूपहेतुताया वक्तुमशक्यत्वाच्चेति ध्येयम् । पाकजचित्रे वा

◆ हेमलता ◆

नन्वत्र कल्पे चित्रत्वव्याप्यवैजात्यत्रितय-तदवच्छिन्ननिरूपितकारणतात्रितयकल्पनागौरव नीलमात्रारब्धे रूपजचित्रोत्पत्तिप्रसङ्गश्चेत्याशङ्काया कल्पान्तरमाह नीलेतररूपत्वादिनैव चित्रहेतुत्वे = रूपजचित्रकारणत्वाभ्युपगमे तु रूपमात्रजातिरिक्ते = समवायेन रूपमात्रजन्यचित्रविजातीयचित्रत्वा-वच्छिन्न प्रति एव स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन विजातीयतेज सयोग हेतु । एवकारो व्यवहितान्वयः। स च यथास्थाने योजित एव। तेन विजातीयतेजःसयोग- समवहितरूपजचित्रव्यवच्छेदः कृतः। फलवलेन = अन्वयव्यतिरेकमहिम्ना, वैजात्यकल्पनात् = चित्ररूप-तेजःसयोग-समवेतजातिविशेपानुमानात्। तेन नोभयज उभयोः पृथक्कारणत्वकल्पनागौरव न वा नीलमात्रारब्धे रूपजचित्रोत्पादापत्तिः, तत्र नीलेतररूपविरहात् । एतेन अग्निसयोगजन्यरूपनिरूपि- तकारणतावच्छेदकीभूतवैजात्यासिद्धेर्न विजातीयतेजःसयोगस्य तद्धेतुत्वसम्भव इति प्रत्युक्तम्, अग्निसयोगत्वावच्छिन्न-तद्धेतुत्वकल्पने सर्वस्मिन् घटादौ तदापत्तेः, अग्निपरमाणुसयोगस्य तत्र सर्वदा सत्त्वात्। न चैतद्दृष्टमिष्ट वेति तदन्यथानुपपत्त्या 'सिद्धो धर्म एको नित्यश्चेत् तदा लाघवमि'ति न्यायात् तज्जनकाग्निसयोगे जातिविशेपसिद्धिरिति भावः। न च रूपमात्रजातिरिक्तचित्रे एव विजातीयतेजःसयोगस्य हेतुत्व अग्निसयोगमात्रजाऽति- रिक्तचित्र एव वा रूपस्य ? इत्यत्र विनिगमनाविरह इति वाच्यम् अग्निसयोगमात्रजातिरिक्ते = विजातीयतेजःसयोगमात्रज-चित्रविजातीयचित्रत्वावच्छिन्न प्रति रूपहेतुताया स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्न-रूपनिष्ठकारणताया वक्तुमशक्यत्वात् नीलमात्रारब्धेऽपि घटादौ रूपजचित्रोत्पादापत्तेः। यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च नीलजनकाग्निसयोगस्तत्राऽप्यवयविनि रूपजचित्रोत्पादापत्तेश्च। न चाग्निसयोगमात्रजविजातीयचित्रे नीलेतरत्वादिना हेतुत्वान्नैमौ दोपाविति वाच्यम् तथा सति यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च पीतजनकसयोगस्तत्राग्निसयोगमात्रजातिरिक्तचित्रोत्पादानापत्तेः। न च तत्रावयवे पीतोत्पादानन्तरमेवावयविनि चित्रोत्पादाभ्युपगमान्नाय दोप इति वाच्यम्, तत्र मानाभावस्यानुपदमेवोक्तत्वात्। प्रकृतकल्पे च समवायेन रूपजचित्र प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतरत्वादिना, रूपमात्रजातिरिक्तचित्र प्रति च विजातीयसयोगत्वेन कारणत्वमिति कार्यकारणभावद्वयकल्पन, अन्यत्र तु पाक-रूपो भय जचित्र प्रति उभयत्वेन कारणत्वकल्पनमधिकमिति ज्यायानयमेव पक्ष इति सूचनार्थं ध्येयमित्युक्तम्।

केचित्तु 'तत्र कार्यतावच्छेदककोटौ चित्रेऽग्निसयोगमात्रजाऽतिरिक्तत्वस्याऽग्निसयोगेतराऽसमवायिकारणजन्याऽग्निसयोगजन्यभिन्नत्वरूपस्य निवेशापेक्षाऽग्निसयोगजन्यभिन्नत्वनिवेश एव लाघवादित्यग्निसयोगमात्रजाऽतिरिक्ते रूपस्य हेतुता वक्तुमशक्येति वदन्ति।

अत्रैकेषा मतमाह - पाकजचित्रे वा मानाभाव । न चान्वयव्यतिरेकाभ्या पाकचित्ररूपयोः कार्यकारणभावावगतौ कि तत्र मानान्तरगवेषणया ?इति

▶ वल्लभा ◀

कि केवल रूपजन्य चित्ररूप, केवल विजातीयसयोगजन्य चित्ररूप ओर विजातीयाग्निसयोग-रूपउभयजन्य चित्ररूप परस्पर विजातीय हैं। तीन जातिविशेष चित्रत्वव्याप्य होगी। इस तरह तीन कार्यकारणभाव का स्वीकार करने पर व्यभिचार आदि दोष को अवकाश नही हे।

○ अतिरिक्तचित्ररूपपक्ष मे केवल दो कार्य-कारणभाव मुमकिन ○

नीले०। यदि रूपज चित्र रूप के प्रति भी रूपत्वेन कारणता न मान कर नीलेतररूपत्वदिना ही कारणता का स्वीकार किया जाय तव तो विजातीय अग्निसयोग को रूपमात्रजचित्रातिरिक्त चित्ररूप के प्रति ही कारण माना जा सकता है। मतलव कि इस परिस्थिति मे अतिरिक्तचित्ररूपवादी के मत मे दो कार्यकारणभाव आवश्यक होगे - रूपजचित्र के प्रति नीलेतररूपत्वादिअवच्छिन्न कारणता और रूपमात्रजन्यभिन्नचित्ररूप के प्रति विजातीयअग्निसयोगत्वावच्छिन्न कारणता। रूपमात्रजन्यअतिरिक्त चित्ररूप और रूपजन्य चित्ररूप मे वेजात्य = जातिविशेष कल्पना तो अन्वय-व्यतिरेक के वल से ही की जाती है। अतएव वह कल्पना अप्रामाणिक नही हैं। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि अग्निसयोगमात्रजन्यचित्ररूपातिरिक्त चित्र रूप के प्रति रूप को हेतु नही कहा जा सकता, क्योकि वह नामुमकिन है। नीलमानारब्ध घट आदि मे भी अग्निसयोगजन्यातिरिक्त चित्र रूप की उत्पत्ति की आपत्ति आदि अनेक दोष तव उपस्थित होते है। इस वात पर शाति से ध्यान देना चाहिए।

☆ पाकज चित्ररूप अप्रामाणिक - अन्यमत ☆

पाकज०। यहाँ अमुक विद्वानो का यह कथन है कि→ 'चित्ररूप केवल अवयवसमवेत नीलादि रूप से ही उत्पन्न होता हे, न कि पाक से, क्योकि पाकजन्य चित्ररूप के स्वीकार मे कोई प्रमाण नही है। यहाँ इस शका का कि - 'नीलकपालद्वय से आरव्ध घट मे भी विजातीय अग्निसयोग से चित्ररूप की उत्पत्ति तो प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध ही है। हाथकगन को आरसी

मानाभावः, पाकादवयवे नानारूपोत्पत्त्यनन्तरमेवावयविनि चित्रस्वीकारे लाघवादित्येके। तच्चिन्त्यम्, चित्रजनकत्वाभिमतस्य पाकस्यावयवनीलपीतादिजनकत्वे नील-पीतादिजनकतावच्छेदकजातिसाङ्कर्यादुभयादिजनकतावच्छेदकजातेस्तत्र नानापाकादीनां वा कल्पने गौरवादित्यपरे।

◆ हेमलता ◆

वान्यम् पाकात् = विजातीयाग्निसंयोगात्, अवयवे = अवयवेषु नानारूपोत्पत्त्यनन्तरमेव = नीलपीतादिनानाविधवर्णोत्पादानन्तरक्षण एव न तु तत्पूर्वं, चित्रस्वीकारे = चित्ररूपोत्पत्तिकल्पने अतिरिक्तकार्यकारणभावाऽकल्पनेन लाघवादिति। ततश्च समवायेन चित्रत्वावच्छिन्नं प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतरपीतेतररूपादेरेव कारणत्वम्। पाकजन्यतावच्छेदकं तु नीलत्वादिकमेव न तु चित्रत्वं विजातीयचित्रत्वं वेति तात्पर्यम्।

एके इत्यनेनास्वरसः प्रदर्शितः। तदेव स्पष्टयति तच्चिन्त्यमिति। चिन्तावीजमावेदयति चित्रजनकत्वाभिमतस्येति। स्वयं परेण चित्रजनकपाकस्यानङ्गीकारात् 'चित्रजनकस्ये'त्यनुक्त्वा चित्रजनकत्वाभिमतस्येत्युक्तम्। चित्रजनकत्वेन सम्मतस्य एकस्य पाकस्य = विजातीयाग्निसंयोगस्य अवयवनीलपीतादिजनकत्वे = अवच्छेदकतासम्बन्धेन नील-पीतादिकारणत्वे स्वीक्रियमाणे नील-पीतादिजनकतावच्छेदकजातिसाङ्कर्यात् नीलादिजनकतावच्छेदक-पीतादिजनकतावच्छेदकजात्योः परस्परव्यधिकरणयोरेकत्र समावेशप्रसङ्गात्। तथाहि चित्राऽजनकत्वेनाभिमते नीलजनके पाके नीलजनकतावच्छेदकजातेः सत्त्वेऽपि पीतजनकतावच्छेदकजातेरसत्त्व, चित्राऽजनकत्वेनाऽभिमते पीतजनके पाके पीतजनकतावच्छेदकजातेः सत्त्वेऽपि नीलजनकतावच्छेदकजातेरसत्त्व, चित्रजनकत्वेनाऽभिमते पाके तु नील-पीतजनकतावच्छेदकजात्योः सत्त्वमिति तत्साङ्कर्यं स्फुटमेव। एवमेव रक्त-शुक्लादिजनकतावच्छेदकजात्योः साङ्कर्यमपि भावनीयम्। अत एतन्निराकरणाय पाकजचित्ररूपमभ्युपगन्तव्यमित्यभिप्रायः।

ननु साङ्कर्यपरिहाराय न पाकजं चित्ररूपं स्वीकर्तव्यं किन्तु चित्रजनकत्वेनाभिमते पाके नील-पीतोभयजनकतावच्छेदिकाया एकस्या एव जातेः स्वीकारः समुचितः, न तु नीलजनकतावच्छेदक-पीतजनकतावच्छेदकजात्योः स्वीकारो यद्वा चित्ररूपस्थले नीलजनकपाकादन्य एव पीतजनकपाकः स्वीकर्तुमुचितः। ततश्च न साङ्कर्यावकाश इत्याशङ्कामपाकर्तुमाह - उभयादिजनकतावच्छेदकजाते नील-पीतोभयादिनिरूपितजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदिकाया एकस्या जातेः, तत्र = चित्रजनकत्वेनाभिमते पाके, कल्पने इत्यत्रानुषज्यते, आवृत्त्या तत्र=अवयवेषु नानापाकानां नील-पीतादिजनकानेकविधविजातीयानलसंयोगानां वा कल्पने गौरवादित्यपरे। अवयवेषु नीलपीतादिनानारूपाणां नीलपीतादिप्रागभावानां नील-पीतादि-

► वल्लभा ◄

क्या? अतः प्रत्यक्ष प्रमाण ही विजातीय अग्निसंयोग मे चित्ररूप की हेतुता को सिद्ध करता है। यहाँ अवयवगत अनेक नीलेतरादि रूप से अवयवी मे चित्र रूप की उत्पत्ति का समर्थन तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि अवयव = कपाल मे नीलेतरादि रूप तो अविद्यमान हैं'← समाधान यह है कि पाक से साक्षात् (सर्वप्रथम) अवयवी घट मे चित्ररूप उत्पन्न होता नहीं है किन्तु अवयव कपाल मे ही पाक से सर्वप्रथम अनेक नीलेतर, पीतेतर आदि रूप उत्पन्न होते है। बाद मे अवयवगत नीलेतरादिषट्क ही स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध मे घट मे रह कर वहाँ समवायसम्बन्ध से चित्ररूप को उत्पन्न करते है। पाक तो अवयव कपाल म नीलेतरादिषट्क को उत्पन्न कर के चरितार्थ हो जाता है। अतएव घटसमवेत चित्ररूप के प्रति वह अन्यथासिद्ध सिद्ध होता है। इसलिए चित्ररूप के प्रति विजातीय अग्निसंयोग की कारणता अप्रामाणिक है। मतलब कि चित्ररूप के विजातीय अग्निसंयोग आदि कारण नहीं है किन्तु नीलेतरादि षट्क ही कारण है। अनेकविध कारणता के स्वीकार का गौरव नहीं होने से इस पक्ष मे लाघव भी सिद्ध होता है'।

➤ पाकजचित्र के अस्वीकार मे साङ्कर्य ➤

तच्चिन्त्य०। 'मगर यह वक्तव्य भी आँखे मूँद कर स्वीकार्य नहीं है। इसके उपर भी थोडा सा चिन्तन-मनन करना चाहिए। चिन्तन का एक पहलु यह है कि अवयवी मे चित्र रूप के जनकविधया जो पाक अभिमत है उसीको अवयव मे नील, पीत, आदि रूपों का जनक मानने पर नील-पीतादि की जनकतावच्छेदक जाति मे साङ्कर्य होगा, क्योंकि चित्र रूप के जनकत्वेन अनभिमत नीलजनक पाक = विजातीय अग्निसंयोग मे नीलजनकतावच्छेदक जाति है किन्तु पीतजनकतावच्छेदकजाति नहीं है। चित्ररूप के अजनकत्वेन अभिमत पीतजनक पाक मे पीतजनकतावच्छेदक जाति है किन्तु नीलरूपजनकतावच्छेदक जाति नहीं है। जब कि चित्रजनकत्वेन अभिमत पाक मे नीलजनकतावच्छेदक जाति और पीतजनकतावच्छेदक जाति दोनों है। परस्परव्यधिकरण धर्म का एकत्र समावेश होने की वजह साङ्कर्य दोष प्रसक्त होता है। इस साङ्कर्य दोष के सबब पाक से अवयव मे नील, पीत आदि अनेक रूपों की उत्पत्ति और अवयवगत पाकजन्य नीलेतर-पीतेतरादि अनेक रूपो से अवयवी मे चित्र रूप की उत्पत्ति की कल्पना असंगत है। यदि साङ्कर्य दोष के निराकरणार्थ चित्ररूप के जनकविधया अभिमत पाक मे नीलजनकतावच्छेदक और पीतजनकतावच्छेदक दो जाति न मान कर नीलपीतोभयजनकतावच्छेदक

यत्तु 'नीलासमवायिकारणत्वादिनैव चित्रसामान्य प्रति हेतुता' इति तन्न, असमवायिकारणत्वस्यातिगुरुत्वेन कारणतानवच्छेद-

◆ हेमलता ◆

प्रागभावध्वसाना नीलपीतादिध्वसाना नील-पीतादिजनकतावच्छेदकनानाजातिव्यतिरिक्ताया नीलपीतोभयादिजनकतावच्छेदिकाया जातेः पाकनानात्वस्य तथा नीलेतररूपादौ नीलादिप्रतिवन्धकत्वस्य चित्रजनकत्वस्य च कल्पने गौरवादित्यर्थः।

पाकजचित्रमनङ्गीकुर्वता केषाश्चिन्मतमपक्षेपार्थमाह-यत्तु इति। तन्नेत्यनेनास्यान्वयः। स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नील-नीलजनक-पाकसाधारणेन नीलासमवायिकारणत्वादिनैव = नीलनिरूपितासमवायिकारणत्व-पीतनिरूपितासमवायिकारणत्व- रक्तनिरूपितासमवायिकारणत्वादिनैव समवायेन चित्रसामान्य = चित्रत्वावच्छिन्न प्रति हेतुता न तु विजातीयाग्निसयोगत्व-नीलाभावत्वादिना वा तेन पाकरूपयोर्न पार्थक्येन कारणतेति न गौरवमिति।

केचित्तु ' समवायेन नील प्रति नीलस्य स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुता पाकस्य तु समवायेनेत्यवच्छेदकीभूतसंसर्गयोर्भेदे तदवच्छिन्नयोः कारणतयोर्भेदे नीलरूपपाकयोर्नैक नीलासमवायिकारणत्वमिति न तद्रूपेण तयोश्चित्र प्रति कारणत्वमेक सम्भवत्येव तथापि शब्दानुगमेन नीलासमवायिकारणतात्वेन तादृशकारणत्वयोरैक्याभिधानमिति वदन्ति, तदसत्, क्लिष्टकल्पनायासमात्रत्वात्, अवयवे नीलादिजनकपाकादेवावयविनि चित्ररूपमङ्गीकर्तृणा यत्तुवादिना प्रकृते विवक्षितत्वात्।

अथवादी यत्तुमतमपाकरोति- तन्नेति । असमवायिकारणत्वस्य असमवायिकारणस्वरूपस्य सकलचित्रासमवायिकारणसङ्ग्राहकानतिप्रसक्तधर्मविरहितत्वेनाननुगतत्वात्, नीलेतर-पीतेतरादीना विजातीयत्वात्। न ह्यननुगतधर्मस्य कारणतावच्छेदकत्व सम्भवति, व्यभिचारप्रसङ्गात्। असमवायिकारणतात्वेन तदनुगतीकृत्य चित्रहेतुतासमर्थनेऽपि असमवायिकारणत्वस्य अतिगुरुत्वेन कारणतानवच्छेदकत्वात्। स्वसमवायिकारणसमवेतत्वे सति समवेतकार्यजनिनियामकत्वे सति समवेतकार्यस्थितिनियामकत्वस्वरूपाया असमवायिकारणताया नीलेतरत्वाद्यपेक्षयाऽतिगुरुत्व स्फुटमेव। अत एव न तस्याः चित्रनिरूपिताया अपि कारणताया अवच्छेदकत्व सम्भवति, लघुसमनियतधर्मे गुरौ कारणतावच्छेदकत्वादिकल्पनाया अयोगात्। किञ्च नीलासमवायिकारणत्वेन चित्रजनकत्वोपगमे नीलमात्रारब्धेऽप्यवयविनि चित्रोत्पादप्रसङ्गः। न च नीलासमवायिकारणत्व-पीतासमवायिकारणत्वादीना षण्णा चित्रजनकतावच्छेदकत्वान्नाय दोष इति वाच्यम्, तथापि केवलरक्त-शुक्लजनकपाकजन्यचित्रस्थले व्यतिरेकव्यभिचारात्। न च नीलेतरासमवायिकारणत्वपीतेतरासमवायिकारणत्वादीना षण्णा चित्रकारणतावच्छेदकत्वान्नाय दोष इति वाच्यम् महागौरवात्। ततो नीलेतरत्वादिनैव चित्रकारणता स्वीकर्तव्येति चेत्?

► वल्लभा ◄

एक जातिविशेष की कल्पना की जाय या तो वहाँ नीलजनकपाक ओर पीतजनकपाक को अलग-अलग माना जाय तव यद्यपि साङ्कर्य दोष का निराकरण तो हो सकता है तथापि अतिरिक्त जाति की या विभिन्न पाक की, अवयवो मे अनेकविध रूपो की, उनके प्रागभाव एव प्रध्वस आदि की कल्पना का गोरव अपरिहार्य होने से यह पक्ष मान्य नही किया जा सकता' - ऐसा अपर विद्वानो का कथन हे।

☆ नीलासमवायिकारणत्वादिना चित्रकारणताकल्पना गौरवग्रस्त ☆

यत्तु०। अमुक विद्वानो का, जो अतिरिक्त चित्ररूप का स्वीकार करते ह, यह कथन है कि → 'समवाय सम्बन्ध से चित्रत्वावच्छिन्न = चित्ररूप सामान्य के प्रति नीलासमवायिकारणत्व-पीतासमवायिकारणत्वादिरूपेण ही कारणता हे। कपाल मे नीलासमवायिकारण, पीतासमवायिकारण आदि होने पर घट मे समवायसम्बन्ध से चित्ररूप उत्पन्न होता है। इस कार्यकारणभाव का स्वीकार करने का लाभ यह हे कि चित्ररूप के प्रति विजातीयाग्निसयोग और अवयवरूप मे स्वतन्त्र कारणता की कल्पना अनावश्यक हे'←

तन्न०। मगर विचार करने पर यह वक्तव्य असगत प्रतीत होता हे, क्योकि चित्ररूपकारणतावच्छेदकघटकीभूत असमवायिकारणता का मतलव हे स्वसमवायिकारणसमवेतत्वे सति समवेतकार्यजनिनियामकत्वे सति समवेतकार्यस्थितिनियामकत्व। स्पष्ट ही है कि असमवायिकारणता का स्वरूप अतिगुरूभूत है। इसकी अपेक्षा नीलेतररूपत्वादि लघुभूत धर्म हे। लघु समनियत धर्म उपलब्ध होने पर गुरु धर्म मे कारणतावच्छेदकता आदि की कल्पना नही की जा सकती। इसलिए नीलासमवायिकारणत्वादिरूपेण चित्रसामान्यकारणता का स्वीकार नही किया जा सकता किन्तु नीलेतररूपत्वादिना हि चित्रकारणता का स्वीकार करना उचित हे।

▼ नीलादि मे नीलेतररूपादि की प्रतिवन्धकता गौरवग्रस्त-चित्ररूपाऽस्वीकारवादी ▼

न, चि०। मगर चित्र रूप को मान्य नही करनेवाले विद्वानो का उपर्युक्त वक्तव्य के खिलाफ यह कथन है कि स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलेतर-पीतेतररूप आदि को समवाय सम्बन्ध से चित्र रूप का कारण मानने पर समस्या यह आयेगी कि→ 'घट मे चित्ररूप

कत्वादिति चेत्? न, चित्रस्थले नीलादिसामग्रीसत्त्वान्नीलाद्यापत्तिवारणाय नीलादौ नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्वकल्पने गौरवादित्याहुः।

तदसत् अव्याप्यवृत्तिनीलादिकल्प एव गौरवात्। तथाहि - अवच्छेदकतासम्बन्धेन नीलादिकं प्रति समवायेन नीलेतररूपादीना

◆ हेमलता ◆

एकदेशिनोऽत्रोत्तरपक्षयन्ति नेति। चित्रस्थले = चित्रत्वेनाभिमतस्योत्पत्तिस्थले नीलादिसामग्रीसत्त्वात् समवायसम्बन्धावच्छिन्न-नीलत्वावच्छिन्न-कार्यतानिरूपित-कारणताश्रयस्य नीलादेः स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन सत्त्वात् तत्रावयविनि समवायेन नीलाद्यापत्तिवारणाय समवायेन नीलादौ = नीलत्वाद्यवच्छिन्नं प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्वकल्पने स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक-नीलेतराद्यभावस्य दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन च कारणत्वकल्पने गौरवात् = नानाकार्यकारणभावकल्पनागौरवात्। नीलाभावादेः स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलादिप्रतिबन्धकत्वे तु यत्रैकावयवे नीलोऽपरत्र च नीलजनकाग्निसंयोगस्तत्रावयविनि व्याप्यवृत्ति नीलं न स्यादिति नील-नीलजनकाग्निसंयोगान्यतरत्वावच्छिन्नाभावस्य तथात्वमिति वाच्यम्। एवमपि संयोगस्याऽव्याप्यवृत्तित्वेन तद्देशपतादृशस्यात्प्रतियोगिव्यधिकरणस्य तस्य तथात्वं वाच्यमित्यतिगौरवमित्यस्योक्तत्वात्। एतादृशगौरवापेक्षया नीलासमवायिकारणको नील एव न तु नीलातिरिक्त इत्यस्यैव सम्यक्त्वम्, समवायेन नीलादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतरादेस्तत्र प्रतिबन्धकत्वाऽकल्पनलाघवात्। ततोऽवयवेषु नील-पीतादिनानारूपसत्त्वेऽवयविनि अव्याप्यवृत्तिनील-पीतादिनानारूपकल्पनैव ज्यायसी। अत एव तत्र नीलत्वादिना प्रतीतिरपि सुघटा, परम्परयाऽवयवनीलादेरेव तत्प्रतीतिविषयत्वकल्पने गौरवात् मानाभावाच्चेति नास्त्येवाऽतिरिक्तचित्ररूपमिति आहुरित्यत्र एकदेशिन इति पूर्वेणान्वयः।

अत्र नीलादिव्यतिरिक्तचित्ररूपवादिनो वदन्ति - तदसदिति। अवयवेषु नानाविजातीयरूपसत्त्वदशायामवयविनि अव्याप्यवृत्तिनीलादिकल्प एव गौरवात् = कार्यकारणभावकल्पनागौरवात्। तथाहि अवच्छेदकतासम्बन्धेन नीलादिकं प्रति समवायेन नीलेतररूपादीनां प्रतिबन्धकत्वं वाच्यं = स्वीकार्यम्। प्रतिबध्यतावच्छेदकसम्बन्धः स्वनिष्ठावच्छेद्यतानिरूपितावच्छेदकता, प्रतिबध्यतावच्छेदकधर्मो नीलत्वादिकं प्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्धः स्वसमवायः प्रतिबन्धकतावच्छेदकधर्मश्च नीलेतररूपत्वादिः। इत्थं षड्विधः प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावः स्वीकर्तव्यः। विपक्षबाधमाह-अन्यथा = निरुक्तषड्विधप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावानङ्गीकारे अवयवेषु नील-पीतादिनानाजातीयरूपसत्त्वदशायां अवयविनि नीलावयवावच्छेदेनेव पीतावयवावच्छेदेन

► वल्लभा ◄

की उत्पत्ति के लिए घटावयव कपाल में रहनेवाले अनेक नील, पीत, श्वेत रूप आदि जो सामग्री है वह तो घट में नील, पीत, शुक्ल आदि रूप की उत्पत्ति के लिए भी समान है। अतः घट में चित्र वर्ण की भाँति नील, पीत, श्वेत आदि रूप की भी उत्पत्ति होनी चाहिए, न कि केवल चित्र रूप की'← जिसके समाधानार्थ अतिरिक्तचित्ररूपवादी को यही कहना पडेगा कि - समवायसम्बन्ध से नीलादि रूप की उत्पत्ति के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलेतरादि रूप प्रतिबन्धक है। प्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्धघटकीभूत स्वपदार्थ है अवयवगत नीलेतरादि रूप, उसके समवायी अवयव कपालादि में समवेत है घटादि अवयवी। अतः नीलेतर (पीतादि) रूप स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से अवयवी घट में रहता है। प्रतिबन्धकतावच्छेदक सम्बन्ध से प्रतिबन्धकविशिष्ट होने की वजह घट आदि अवयवी में प्रतिबध्य नीलादि रूप की समवाय सम्बन्ध से उत्पत्ति हो सकती नहीं है। घट में नील रूप तभी उत्पन्न हो सकता है जब घट के अवयव में नीलेतर रूप न हो, क्योंकि घटावयव में नीलेतर रूप होने पर वह स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से घट में रह जाने से घट में नीलरूप की उत्पत्ति का प्रतिबन्धक बनता है। इस तरह चित्र घट में पीत आदि रूप की भी उत्पत्ति हो सकती नहीं है, क्योंकि चित्र घट के अवयव कपाल में पीतेतर (नील, शुक्ल, आदि) रूप आदि समवेत होने की वजह वे स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से अवयवी घट में रहते हैं। अतः वहाँ केवल चित्ररूप की ही समवाय सम्बन्ध से उत्पत्ति होगी, न कि नील, पीत आदि की भी। प्रतिबन्धकाभाव भी सामग्री में प्रविष्ट होता है। इस तरह नीलादि के प्रति नीलेतररूपादि में प्रतिबन्धकता की कल्पना का गौरव उपस्थित होता है। इसकी अपेक्षा तो चित्ररूप का ही अस्वीकार करना संगत है। तब उपर्युक्त अनेक प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव की कल्पना आवश्यक नहीं होगी। मूलं नास्ति कुतः शाखा?

अव्याप्यवृत्तिनीलादिपक्ष गौरवग्रस्त-चित्ररूपवादी

तदसत्०। उपर्युक्त वक्तव्य के खिलाफ अतिरिक्तचित्ररूपवादी का यह कथन है कि→ अनेक अवयव में नील, पीत, श्वेत आदि अनेकजातीय रूप होने पर अवयवी में एक चित्र रूप की कल्पना करने की अपेक्षा अनेक अव्याप्यवृत्ति नील, पीत श्वेत आदि रूप की उत्पत्ति की कल्पना करने में ही गौरव है। इसका कारण यह है कि अवयवों में नील, पीत, श्वेत आदि अनेक रूप होने पर अवयवी में अव्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि रूपों की उत्पत्ति को मान्य करने पर जैसे घट में नीलावयवावच्छेदेन नील

प्रतिबन्धकत्व वाच्यम्, अन्यथा पीतावयवावच्छेदेन नीलोत्पत्तिप्रसङ्गात्। न च नीलस्य स्वाश्रयावच्छेदेन नीलजनकत्वस्वभावादेव न तदापत्तिरिति वाच्यम्, विनैतादृशप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव तथास्वाभाव्याऽनिर्वाहात्।

ननु समवायेन रूप जायत एव, पीतावयवावच्छेदेनेत्यत्रापादकाभाव इति चेत् ? न समवायस्येवावच्छेदकताया अपि कारणनियम्यत्वौचित्यात्।

◆ हेमलता ◆

अपि नीलोत्पत्तिप्रसङ्गात्। न चेव भवति। ततोऽवच्छेदकतया नीलादौ समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य नीलेतररूपाद्यभावस्य स्वरूपसम्बन्धेन प्रतिबन्धकाभावविधया कारणत्वमङ्गीकर्तव्यम्। पीतकपालावच्छेदेन समवायावच्छिन्नप्रतियोगिताकनीलेतररूपाद्यभावस्य विरहान्न तत्रावच्छेदकतया नीलोत्पत्तिप्रसङ्गः। न च तथापि समवायेन नीलादौ नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकता स्वीकर्तव्येवेति तुल्यगौरवमिति वाच्यम् त्वया स्वनिष्ठावच्छेद्यतानिरूपितावच्छेदकतायाः प्रतिबध्यतावच्छेदकसम्बन्धविधया स्वीकारात् मम तु समवायेनेति चित्ररूपपक्ष एव लाघवम्। न च तव स्वसमवायिसमवेतत्वस्य प्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्धत्व वाच्य मम तु समवायस्येति अव्याप्यवृत्तिनानानीलादिरूपपक्ष एव लाघवमिति वक्तव्यम् प्रतिबन्धकताच्छेदकसम्बन्धगौरवस्यादोषत्वात्। न च सम्बन्धगौरवस्यादोषत्वान्नाय दोष इति वाच्यम् प्रतिबध्यतावच्छेदकसम्बन्धगौरवे दोषत्वस्य तत्र तत्रोक्तत्वात् वक्ष्यमाणदोषाच्च। ततश्चातिरिक्तचित्ररूपपक्ष एव ज्यायानिति स्थितम्।

न चाव्याप्यवृत्तिनानानीलादिरूपपक्षे नीलस्य = अवयवनीलरूपस्य स्वाश्रयावच्छेदेन = स्वनिष्ठावच्छेद्यतानिरूपितावच्छेदकावच्छेदेन अवयविनि नीलजनकत्वस्वभावादेव न तदापत्ति = पीतावयवावच्छेदेन नीलोत्पत्त्यापत्तिः, पीतकपाले नीलनिष्ठावच्छेदतानिरूपितावच्छेदकताया एव विरहात् इति वाच्यम्, विना एतादृशप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव स्वनिष्ठावच्छेद्यतानिरूपितावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्न-नीलत्वाद्यवच्छिन्नप्रतिबध्यत्वनिरूपित-समवायावच्छिन्न-नीलेतररूपत्वाद्यवच्छिन्नप्रतिबन्धकत्व तथास्वाभाव्यानिर्वाहात् = अवयवनीलस्य स्वाश्रयावच्छेदकावच्छेदेन नीलजनकत्वस्वभावानुपपत्ते। ततो निरुक्तप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावगौरव दुर्निवारमेवाव्याप्यवृत्तिनीलादिनानारूपकल्पे।

ननु अवयवेषु नानारूपसत्त्वेऽवयविनि समवायेन नीलादिरूप आपाद्यतेऽवच्छेदकतया वा ? इति विकल्पयामलमुपतिष्ठते। तत्र नाद्योऽनवद्य, यतोऽवयविनि समवायेन रूप = नीलादिरूप जायत एव। अत एव न द्वितीयोऽपि समीचीन, नीलाद्यवयवावच्छेदेनाऽपि नीलोदेर्जायमानत्वादेव। न च तत्रावयविनि पीतावच्छेदेन नीलाद्यापादनमभिमतमिति वाच्यम् यतस्तत्र पीतावयवावच्छेदेन नीलोत्पत्ति. इत्यत्र आपादकाभाव = क्लृप्ततत्सामग्रीविरह इति नाव्याप्यवृत्तिनानाजातीयरूपपक्षे गौरवमिति चेत् ? न, समवायस्य = नीलरूपादिप्रतियोगिकसमवायस्य इव अवच्छेदकताया नीलरूपादिनिरूपितावच्छेदकताया अपि कारणनियम्यत्वौचित्यात् = अवयवनीलादिकारणनियन्त्रितत्वस्य न्याय्यत्वात्, अन्यथा नीलपीताद्यवयवारब्धेऽवयविनि नीलरूप कदाचिन्नीलावयवावच्छेदेन कदाचिच्च पीतावयवावच्छेदेनोत्पद्येत। ततो महदसमञ्जसमापद्येत। किञ्चावच्छेदकतया नीलोत्पादानङ्गीकारेऽवयविसमवेतनीलरूस्यावच्छेदकता नीलकपाले न स्यात्। अतोऽवच्छेदकतया नीलादौ समवायावच्छिन्नप्रतियोगिताकनीलेतररूपाद्यभावस्य दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन कारणत्वमवश्यमङ्गीकार्यमेवाव्याप्यवृत्तिनानानीलादिरूपवादिनेति गौरव पुनरावर्त्तत एव।

► वल्लभा ◄

रूप की उत्पत्ति होती हे ठीक वेसे ही पीतावयवावच्छेदेन भी नीलरूप की, जो अव्याप्यवृत्ति होता है, उत्पत्ति होने की आपत्ति आयेगी। इस आपत्ति के परिहारार्थ ऐसा प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव मानना होगा कि अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील आदि रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलेतररूप आदि प्रतिबन्धक होता हे। पीतकपालावच्छेदेन घट मे समवाय सम्बन्ध से नीलेतर पीत रूप रहता है। अत वहाँ अवच्छेदकता सम्बन्ध से पीत रूप की आपत्ति को भी अवकाश नही रहेगा। मगर इस तरह अव्याप्यवृत्तिनीलरूपादिपक्ष मे छ प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव की कल्पना का गौरव होगा। इसकी अपेक्षा अतिरिक्त चित्र रूप का ही स्वीकार करना सगत हे।

न च नी०। यहाँ अव्याप्यवृत्तिनीलादिरूपवादी ओर से यह कहा जाय कि → 'नील रूप मे स्वाश्रयावच्छेदेन ही नीलजनकत्वस्वभाव होने से पीतकपालावच्छेदेन नीलरूप की आपत्ति को अवकाश नही हे, क्योकि नीलकपाल ही नील रूप का आश्रय हे न कि पीतकपाल' ← तो यह भी ठीक नही है, क्योकि उपर्युक्त प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव के स्वीकार के विना 'नील रूप मे स्वाश्रयावच्छेदेन ही नीलरूपजनकत्व स्वभाव हे' इसका निर्वाह भी हो सकता नही हे।

◇ अवच्छेदकता भी कारणनियम्य है ◇

ननु स। यहाँ यह कथन कि → 'घट के अवयव मे नील रूप होने पर समवाय सम्बन्ध से घट मे नील रूप उत्पन्न होता ही हे। मगर पीतावयवावच्छेदेन घट मे नील रूप की उत्पत्ति का आपादन हो नही सकता, क्योकि तदवच्छेदेन घट मे कोई आपादक ही नही हे' ← भी इसलिए निराधार हे कि नील रूप का समवाय जेसे कारण मे नियम्य हे ठीक वेसे नील रूप की अवच्छेदकता भी कारण से नियन्त्रित होती हे। अत कार्यकारणभाव के स्वीकार के विना तो- 'नील रूप घट मे अवच्छेदकतासम्बन्ध स नीलकपाल मे ही

यत्तु'अवच्छेदकतया नीलहेतु अवच्छेदकतया नीलाभाव एव तदापादक इति' तच्चिन्त्यम्, अवच्छेदकतया जन्यरूपत्वावच्छिन्न प्रति तया(अवच्छेदकतया) रूपस्यापि प्रतिबन्धकत्वे मानाभावात्, समवायेन रूपहेतोः समवायेन रूपाभावस्याभावादेवावच्छेदकतया रूपे उत्पन्ने पुनस्तया तदुत्पत्त्यसम्भवात्, कार्यतावच्छेदकीभूतताद्धर्माश्रययत्किञ्चिद्व्यक्तिवृत्तिकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकावच्छिन्न

◆ हेमलता ◆

यत्तु पूर्वमव्याप्यवृत्तिनानानीलादिरूपवादिना 'पीतावयवावच्छेदेन नीलोत्पादे आपादकाभाव' इत्युक्तं तत्प्रतिविधाने केनचित् ''अवच्छेदकतया = अवच्छेदकतासम्बन्धेन नीलहेतु य अवच्छेदकतया नीलाभाव = अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनीलात्यन्ताभाव स एव तदापादक = पीतावयवावच्छेदेनावयविनि नीलोत्पत्तेरापादक इत्युक्त, तच्चिन्त्यम् यतोऽवच्छेदकतया नीलादौ अवच्छेदकतया नीलादे प्रतिबन्धकत्वे सिद्धे अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्ननीलाभावस्य तदापादकत्व स्यात्। न च तत्रैव किञ्चित् प्रमाणमस्ति। अत एव अवच्छेदकतया जन्यरूप प्रति अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकरूपाभावस्य स्वरूपसम्बन्धेन हेतुत्वकल्पनाऽपि प्रत्युक्ता, अवच्छेदकतया जन्यरूपत्वावच्छिन्न प्रति तया = अवच्छेदकतया रूपस्यापि प्रतिबन्धकत्वे मानाभावात्।

नन्ववच्छेदकतया नीलादावच्छेदकतया नीलादेरप्रतिबन्धकत्वेऽवच्छेदकतया घटे नीलादिरूपे उत्पन्ने पुनरवच्छेदकतया तत्रैव नीलादिकमुत्पद्येत । अतोऽवच्छेदकतया नीलादौ अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्ननीलाद्यभावस्य कारणत्वं वाच्यम्। अत एवावच्छेदकतया जन्यरूपत्वावच्छिन्न प्रत्यवच्छेदकता-सम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावस्य कारणत्वमव्याहतम्, यो यद्विशेषयो कार्यकारणभावस्स तत्सामान्ययोरपीति न्यायात्, अन्यथाऽवच्छेदकतया रूपे उत्पन्ने पुनस्तया तदुत्पत्त्यापत्ते.। एतेनावच्छेदकतया नीलादौ अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्ननीलाद्यभावस्य कारणत्वे नीलपीतकपालारब्धे घटे पीतकपालावच्छेदेन नीलोत्पत्तिप्रसङ्गोऽपि प्रत्युक्त अवच्छेदकतया जन्यरूपत्वावच्छिन्न प्रति अवच्छेदकतया रूपस्य प्रतिबन्धकत्वेनैव तन्निराससिद्धिरित्याश-ङ्कायामाह - समवायेन रूपहेतो समवायेन रूपाभावस्य = समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकरूपाभावस्य अभावादेव अवयविनि अवच्छेदकतया रूपे उत्पन्ने पुन तया = अवच्छेदकतया तदुत्पत्त्यसम्भवात् = रूपप्रतियोगिकोत्पादायोगात् सामान्यसामग्रीसमवहिताया एव विशेषसामग्र्या कार्यजनकत्वनियमात्। न च मास्तु तत्र समवायेन रूपोत्पाद, अवच्छेदकतया तु स्यादेव, त प्रति त्वया प्रतिबन्धकत्वाऽकल्पनादिति वाच्यम् समवायेनोत्पत्ति विनाऽवच्छेदकतया तत्र रूपोत्पादायोगात्। समवायेन रूप प्रति कारणस्यैवावच्छेदकतया रूप प्रति कारणत्वम् समवायेन रूप प्रति समवायेन रूपस्य प्रतिबन्धकत्वादवच्छेदकतया रूपे उत्पन्ने न पुनस्तयैव तत्र रूपोत्पादप्रसङ्ग । ततो नावच्छेदकतया जन्यरूपेऽवच्छेदकतया रूपस्य प्रतिबन्धकत्वकल्पना युक्ता।

नन्ववच्छेदकतया जन्यरूपत्वावच्छिन्न प्रति अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावस्य हेतुत्वानुपगमे वाय्वादावपि समवायेन रूपोत्पादापत्तेर्दुर्वा-रत्वम्, समवायेन रूपहेतो समवायावच्छिन्नप्रतियोगिताकरूपाभावस्य तत्र सत्त्वादित्याशङ्कायामाह - कार्येति। कार्यतावच्छेदकीभूतो यो धर्म·

► वल्लभा ◄

उत्पन्न हो, न कि पीतकपालादि म इस नियम की उपपत्ति न हो सकेगी। अत उपर्युक्त कथन त्याज्य है।

† अवच्छेदकतया नीलादि के प्रति अवच्छेदकतया नीलादि अप्रतिबन्धक ‡

यत्तु। पूर्व मे जो कहा गया था कि 'नील-पीत-श्वेत आदि अवयवो से आरब्ध अवयवी मे पीतकपालावच्छेदेन नील रूप की उत्पत्ति का कोई आपादक ही नही है' इसके खिलाफ कतिपय विद्वानो का यह कथन है कि नील-पीत-शुक्ल आदि अवयवो से आरब्ध अवयवी मे पीतावयवावच्छेदेन नील रूप की उत्पत्ति का आपादक अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्न नीलाभाव ही हो सकता है, क्योंकि अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील रूप के प्रति अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील रूप प्रतिबन्धक होता है।

तच्चिन्त्यम्। मगर यह कथन भी विचारणीय है न कि विना विचार के मान्य करने योग्य। इसका कारण यह है कि न तो अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील रूप के प्रति अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील रूप प्रतिबन्धक होता है और न तो अवच्छेदकतासम्बन्ध से जन्यरूपत्वावच्छिन्न के प्रति अवच्छेदकतासम्बन्ध से रूप प्रतिबन्धक होता है। यदि इन प्रतिबन्धकभावो मे कोई प्रमाण हो तब तो वे मान्य किये जाते और पीतावयवावच्छेदेन नील रूप का आपादन नीलपीतावयवारब्ध अवयवी मे हो सकता मगर उपर्युक्त प्रतिबन्धकताके स्वीकार मे ही कोई प्रमाण नही है। अत पीतावयवावच्छेदेन नीलोत्पत्ति का कोई आपादक हो सकता नही है।

सम०। यदि प्रतिवादी की ओर से यह कहा जाय कि→ 'अवच्छेदकतासम्बन्ध से रूप के प्रति अवच्छेदकता सम्बन्ध से रूप को प्रतिबन्धक न माना जाय तब तो जिस अवयवावच्छेदेन अवयवी मे रूप उत्पन्न हुआ है उसी अवयवावच्छेदेन अवयवी मे पुन रूप की उत्पत्ति की आपत्ति आयेगी। अत इस आपत्ति के निराकरणार्थ अवच्छेदकता सम्बन्ध से रूप के प्रति अवच्छेदकता सम्बन्ध से पूर्वोत्पन्न रूप को प्रतिबन्धक मानना आवश्यक है' ← तो यह भी निराधार है, क्योंकि समवाय सम्बन्ध से रूप के

यावत्प्रत्येक तावत्सत्त्व एव कार्योत्पत्तिनियमात्। अत एव नील-पीतोभयकपालनीलावच्छेदिकायामेव नीलकपालिकायामवच्छेदकतया घटनीलोत्पत्तिः सङ्गच्छते, सामग्रीसत्त्वात्।

एवञ्च नीलादौ नीलेतररूपादीना नीलेतररूपादौ वा नीलादीना प्रतिबन्धकत्वे विनिगमकाभावः ।

◆ हेमलता ◆

तद्धर्माश्रयीभूता या यत्किञ्चिद्व्यक्तिः तन्निष्ठया कार्यतया निरूपितायाः कारणताया अवच्छेदकेनावच्छिन्न यावत्प्रत्येक तावत्सत्त्वे एव अव्यवहितोत्तरक्षणावच्छेदेन कार्योपत्तिनियमात्। कार्यतावच्छेदकावच्छिन्नयावद्व्यक्तिनिष्ठकार्यतानिरूपिताया एकस्याः कारणताया विरहात् तद्धर्माश्रय-यत्किञ्चिद्व्यक्तिवृत्तीत्युक्तम्। तादृशकारणतावच्छेदकावच्छिन्नसत्त्व इत्युक्तौ तु केवलाद् दण्डादपि घट उत्पद्येतेत्यतो यावदित्युक्तम्। तादात्म्येन कारणत्वान्न वाय्वादौ समवायेन रूपोत्पादापत्तिः। ततः समवायेन रूप प्रति समवायेन रूपस्य प्रतिबन्धकत्वमित्येवास्थेयमिति नावच्छेदकतया नीलादाववच्छेदकतया नीलादेः प्रतिबन्धकत्व किन्तु समवायेन नीलेतरादेरेवेति फलितम्।

अत एव = अवच्छेदकतया नीलादौ समवायेन नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्वादेव, नीलपीतोभयकपालनीलावच्छेदिकाया = नीलपीतोभयवर्णाश्रयी-भूतकपालसमवेतनीलरूपावच्छेदिकाया एव नीलकपालिकाया अवच्छेदकतया = अवच्छेदकतासम्बन्धेन घटनीलोत्पत्ति =घटसमवेतनीलरूपस्योत्पादः सङ्गच्छते, सामग्रीसत्त्वात्=नीलकपालिकाया समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक-नीलेतररूपाभावस्य विद्यमानत्वात्। अयमाशयोऽवच्छेदकतासम्बन्धेन नीलरूप प्रति अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनीलरूपाभावस्य हेतुत्वस्वीकारे नीलपीतोभयरूपाश्रयीभूत एकस्मिन् कपाले घटीय नीलरूपमुत्पद्येत, तत्रावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्ननीलाभावस्य सत्त्वात्। न चैव भवति, नीलपीतोभयाश्रयीभूतैककपालसमवेतनीलरूपावच्छेदिकाया नीलकपालिकायामेव तदुत्पादात्। अवच्छेददकतासम्बन्धेन नीलपीतोभयकपाले एव नीलोत्पत्तिस्तु न सम्भवति, प्रतिवादिसम्मतस्याऽवच्छेदकतासम्बन्धा-वच्छिन्ननीलाभावस्यावच्छेदकतया नील प्रति प्रतिबन्धकस्य तत्र सत्त्वात्। यद्यवच्छेदकतया नील प्रति समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य नीलेतररूपाभावस्य कारणत्वमङ्गीक्रियेत तदा नीलकपालिकायामेव निरुक्तघटीयनीलरूपमुत्पद्येत, समवायेन नीलेतररूपस्य तत्रासत्त्वात्। नीलपीतोभयैकैककपाले तु नैव तदुत्पत्तिसम्भव, तत्र समवायेन नीलेतरस्य पीतरूपस्य सत्त्वात्। अतोऽव्याप्यवृत्तिनानारूपवादिनाऽवच्छेदकतया नीलादौ नावच्छेदकतया नीलादे' प्रतिबन्धकत्व कल्पनीय किन्तु समवायेन नीलेतररूपादेरेव। ततः पड्विधप्रतिवध्य-प्रतिबन्धकभावकल्पनागौरव तन्मते दुर्वारमेव।

नन्वतिरिक्तचित्ररूपवादिनाऽपि नीलादौ नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्व स्वीकर्तव्यमेवेति तुल्यगौरवमित्यव्याप्यवृत्तिनानारूपवाद्याशङ्कायामाह-एवञ्च = अव्याप्यवृत्तिनानारूपवादिनाऽवश्य प्रतिबन्धकत्व कल्पनीयमिति स्थिते च, अवच्छेदकतया नीलादौ अवच्छेदकतया नीलेतररूपादीना प्रतिबन्धकत्वे, अवच्छेदकतया नीलेतररूपादो वा अवच्छेदकतया नीलादीना प्रतिबन्धकत्वे विनिगमकाभावो दुर्वारः। न चातिरिक्तचित्ररूपवादिनोऽपि समवायेन

▶ वल्लभा ◀

प्रति समवाय सम्बन्ध से ही रूप को प्रतिबन्धक मानने से उपर्युक्त आपत्ति को अवकाश रहता नही हे। जिस अवयवअवच्छेदेन अवयवी मे समवाय सम्बन्ध से रूप उत्पन्न हो चूका है वहाँ समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक रूपाभाव नही रहने से वहाँ केसे पुन रूप की उत्पत्ति हो सकती है? प्रतिबन्धकाभाव के विना कार्य की उत्पत्ति का होना नामुमकिन हे। प्रतिबन्धकाभाव भी सामग्री मे अत प्रविष्ट होता है। इसलिए अवच्छेदकता सम्बन्ध से रूप के प्रति रूप को अवच्छेदकता सम्बन्ध से प्रतिबन्धक मानना नामुमकिन है। कार्य की उत्पत्ति तो तव हो सकती हे यदि कार्यतावच्छेदक से अवच्छिन्न यत्किञ्चित् कार्य व्यक्ति मे रहनेवाली कार्यता से निरूपित कारणता के अवच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न जितने भी हो उन प्रत्येक की उपस्थिति हो। अतएव जिस घट के कपाल की उत्पत्ति नील ओर पीत दो कपालिका मे हुई है उस घट मे नील रूप की उत्पत्ति कपाल के नील रूप की अवच्छेदिकीभूत नीलकपालिका मे ही होगी, क्योकि वहाँ सामग्री विद्यमान है। अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलेतररूप प्रतिबन्धक होने से नीलपीतकपालिकाद्वयारब्धकपालावच्छेदेन तो घट के नीलरूप की उत्पत्ति हो सकती नही है, क्योकि कपाल मे समवाय सम्बन्ध से नीलेतर रूप रहता है। जव कि नील-पीतउभयरूप के आश्रय एक कपाल की नीलकपालिका मे समवाय सम्बन्ध से नीलेतर रूप नही होने से वहाँ समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक नीलेतररूपाभावात्मक सामग्री रहती है जिसकी वजह वहाँ घट के नीलरूप की उत्पत्ति होती है।

▲ अव्याप्यवृत्तिविजातीयनानारूपमत मे विनिगमनाविरह ▲

एवञ्च०। इस तरह चित्र रूप का स्वीकार न करने पर प्रतिवध्य-प्रतिबन्धकभाव की कल्पना आवश्यक हे। मगर यहाँ समस्या यह उपस्थित होती हे कि अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलादिरूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलेतर रूप को प्रतिबन्धक माना जाय या अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलेतररूप के प्रति समवायसम्बन्ध से नीलादि रूप को? इस विषय मे कोई विनिगमक नही हे। इसलिए

5

मम तु नीलेतररूपादौ नीलादीनां न प्रतिबन्धकत्वं नीलपीतारब्धे नीरूपत्वप्रसङ्गस्यैव बाधकत्वात्।

अथ ममापि नीलत्वादिकमेव प्रतिबध्यतावच्छेदकं न तु पीते(?नीले)तररूपत्वादिकं, गौरवात्। न च नीलत्वेन प्रतिबंधकत्वं न तु नीलेतरत्वेन गौरवादित्येव किं न स्यात्, अवच्छेदकगौरवस्याऽदोषत्वात्।

◆ हेमलता ◆

नीलादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादीनां प्रतिबन्धकत्वं यदुत समवायेन नीलेतररूपादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलादीनां वा? इत्यत्राऽविनिगमोऽपि तुल्य इति वाच्यम्, मम = अतिरिक्तरूपवादिनः तु समवायेन नीलेतररूपादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलादीनां रूपाणां न प्रतिबन्धकत्वं सम्भवति, नीलपीतारब्धे नीलपीतावयवद्वयारब्धेऽवयविनि नील-पीतरूपयोः सत्त्वेन समवायेन नीलेतर-पीतेतररूपोत्पादासम्भवात्, चित्ररूपस्यापि प्रतिबध्यताक्रान्तत्वात्, नीलेतर-पीतेतररूपान्यतरातिरिक्तस्य रूपस्यासम्भवात्। ततो नातिरिक्तचित्ररूपवादिमते विनिगमनाविरहः सम्भवति। ततो नानाविजातीयरूपविशिष्टावयवारब्धेऽवयविनि नाऽव्याप्यवृत्तिनानारूपस्वीकारो न्याय्य इत्यतिरिक्तचित्ररूपवादिनोऽभिप्रायः।

अव्याप्यवृत्तिनानारूपवादी शङ्कते-अथेति। अग्रे चेदित्यनेनास्यान्वयः। मम = अव्याप्यवृत्तिनानाविजातीयरूपवादिनः अपि नीलत्वादिकमेव प्रतिबध्यतावच्छेदकं = अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्न-नीलेतररूपादिनिष्ठप्रतिबन्धकतानिरूपितायाः प्रतिबध्यताया अवच्छेदकं, न तु नीलेतररूपत्वादिकं अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्ननीलादिनिष्ठप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यतायाः अवच्छेदकं, गौरवात् = प्रतिबध्यतावच्छेदकगौरवात्। मुद्रितप्रतौ तु 'न तु पीतेतररूपत्वादिकमि'ति पाठः। स च सन्दर्भविरोधादस्माभिरुपेक्षितः। न च नीलत्वेन प्रतिबन्धकत्वं = अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्न-नीलेतररूपादिनिष्ठप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकत्वं, न तु नीलेतरत्वेन, गौरवात् = प्रतिबन्धकतावच्छेदकगौरवात् इत्येव किं न स्यादिति शङ्कनीयम्, अवच्छेदकगौरवस्य = प्रतिबन्धकतावच्छेदकधर्मगौरवस्य अदोषत्वात्। न चात्राप्यविनिगम इति वक्तव्यम्, कार्योत्पादाव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन

► वल्लभा ◄

अनेकविजातीयरूपवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी में अवच्छेदकतासम्बन्ध से अनेक अव्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि रूपों की कल्पना अप्रामाणिक है।

चित्ररूपपक्ष में विनिगमनाविरह नामुमकिन

मम०। यहाँ यह शंका कि → "जैसे अव्याप्यवृत्तिरूपवादी के मत में विनिगमनाविरह दोष है ठीक वैसे ही अतिरिक्तचित्ररूपवादी के मत में भी विनिगमनाविरह दोष उपस्थित होगा कि 'समवाय सम्बन्ध से नीलादि रूप के प्रति नीलेतरादि रूप को स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से प्रतिबन्धक माना जाय या समवाय सम्बन्ध से नीलेतरादि के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलादि रूप को प्रतिबन्धक माना जाय?' अतः दोनों ही पक्ष में विनिगमनाविरहदोष तुल्य है" ← इसलिए निराधार हो जाती है कि अतिरिक्त चित्ररूपवादी (मम) के पक्ष में नीलपीतावयवारब्ध अवयवी में निरूपत्व की आपत्ति ही नीलादिरूप को नीलेतर रूप आदि का प्रतिबन्धक मानने में बाधक है। यदि समवाय सम्बन्ध से नीलेतर रूपादि के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलादि रूप को प्रतिबन्धक माना जाय तब नीलपीतकपालद्वयजन्य घट में स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नील एवं पीत रूप रह जाने से घट में समवाय सम्बन्ध से न तो नीलेतररूप उत्पन्न हो सकेगा और न तो पीतेतररूप। कृष्ण, नील, रक्त, पीत, हरित, शुक्ल, और चित्ररूप को छोड कर अन्य कोई रूप इस जगत में है और वे नीलेतर या पीतेतर होने से प्रतिबध्यताकोटि में आक्रान्त हैं। इसलिए घट में कोई भी रूप उत्पन्न हो नहीं सकेगा। फलतः वह घट रूपशून्य होगा। मगर ऐसा होता नहीं है। इसलिए तादृशप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव नहीं माना जा सकता किन्तु समवाय सम्बन्ध से नीलादि के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलेतररूपादि को ही प्रतिबन्धक मानना मुनासिब है। स्व = नीलेतर पीतरूप के समवायी पीतकपाल में समवेत होने से नीलेतररूप स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलपीतकपालद्वयारब्ध घट में रहने की वजह उस घट में नीलरूप उत्पन्न हो सकता नहीं है एवं पीतेतर रूप के समवायी नील कपाल में समवेत होने से पीतेतर रूप स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से उस घट में रहने की वजह वहाँ समवाय सम्बन्ध से पीत रूप भी उत्पन्न नहीं हो सकता है तथा रक्तादि रूप की तो वहाँ सामग्री ही नहीं है। अतः परिशेषन्याय से वहाँ चित्ररूप उत्पन्न हो सकेगा।

★ अव्याप्यवृत्तिरूपवादी का विनिगमनाविरहनिराकरणप्रयास ★

पूर्वपक्ष :- अथ म०। जनाब! हमने भी धूप में बाल पकाये नहीं है। अव्याप्यवृत्ति अनेक विजातीय रूप का स्वीकार करने पर हम भी यह कह सकते है कि अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील आदि रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलेतर रूप आदि ही

अस्तु वाऽवच्छेदकतया नीलादौ समवायेन नीलादीनामेव हेतुत्वम्। न च नानारूपवत्कपालारब्धघटनीलस्य तत्कपालावच्छेदेनोत्पत्तिप्रसङ्गः केवलनीलत्वादिनैव तद्धेतुत्वात्, समवायेन नीलादौ च स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलादीना

◆ हेमलता ◆

कार्यतावच्छेदकसम्बन्धेन कार्याधिकरणविधयाऽभिमतवृत्त्यत्यन्ताभावाऽप्रतियोगित्वादिरूपाया कारणताया प्रतिबन्धकतावच्छेदकधर्मस्याऽप्रविष्टत्वेन तद्गौरवस्य निर्दोषत्वात्। न च प्रतिबध्यतावच्छेदकगौरवस्यापि निर्दोषत्व स्यादिति वक्तव्यम्, तस्य प्रतिबन्धकाभावनिष्ठकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकतया तद्गौरवे कार्यतावच्छेदकधर्मगौरवापातात्। ततोऽव्याप्यवृत्तिविजातीयनानारूपमतेऽपि न विनिगमनाविरहावकाशः।

ननु तथापि वाय्वादौ नीलाद्यापत्तिः, समवायसम्बन्धावच्छिन्ननीलेतररूपाभावादेः तत्र सत्त्वादित्याशङ्कया कल्पान्तरमाह-अस्तु वा अवच्छेदकतया नीलादौ समवायेन नीलादीनामेव हेतुत्व न तु समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनीलेतररूपाद्यभावानाम्। चित्रस्थले प्रथम घटादौ समवायेन नीलादिरुत्पद्यते तदनन्तरञ्चावच्छेदकतयेत्यवच्छेदकतया नीलादौ समवायेन नीलादेर्हेतुत्वम्। अतो न पीतकपालेऽवच्छेदकतया नीलपीतकपालद्वयारब्धघट-नीलोत्पादप्रसङ्गः, तत्र समवायेन नीलरूपस्यासत्त्वात्। न च नानारूपवत्कपालारब्धघटनीलस्य = नील-पीतादिरूपाश्रयकपालारब्धघटसमवेतनीलरूपस्य तत्कपालावच्छेदेन = नीलपीताद्याश्रयकपालावच्छेदेन उत्पत्तिप्रसङ्ग, समवायेन तत्र नीलरूपस्य सत्त्वादिति वक्तव्यम्, केवलनीलत्वादिनैव तद्धेतुत्वात् = अवच्छेदकतया नीलादौ कारणत्वात्, तत्र नीलेतररूपस्य सत्त्वान्न तदवच्छेदेन तादृशघटनीलरूपस्योत्पत्तिः किन्तु केवलनीलकपालिकायामेव तादृशघटीयनीलरूपावच्छेदिकाया, तत्रैव केवलनीलस्य सत्त्वात्। एतेनावच्छेदकतया वाय्वादौ नीलादेरापत्तिरपि प्रत्युक्ता तत्र समवायेन नीलादेरेव विरहात्। न च वाय्वादौ कुतो न समवायेन नीलादिरिति वक्तव्यम् तदवयवाना नीरूपत्वात्, समवायेन नीलादौ = नीलत्वाद्यवच्छिन्न प्रति च स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलादीना रूपाणा हेतुत्वम्।

► वल्लभा ◄

प्रतिबन्धक है, क्योकि तब प्रतिबध्यताअवच्छेदक केवल नीलत्व आदि होगा। अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलेतर रूप आदि के प्रति समवाय सम्बन्ध से नील आदि रूप को प्रतिबन्धक माना जा नही सकता, क्योकि तब नीलेतररूपत्व आदि प्रतिबध्यतावच्छेदक बनने से कार्यतावच्छेदकधर्म मे गौरव होता है। अत अनेकविजातीयरूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयव मे अव्याप्यवृत्ति अनेक रूपो का स्वीकार करने मे प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव मे विनिगमनाविरह दोष को अवकाश नही है।

► प्रतिबन्धकतावच्छेदकगौरव निर्दोष ◄

न च नी०। यहाँ इस प्रश्न का कि → 'अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलादि रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलेतर रूपादि को प्रतिबन्धक मानने पर तो प्रतिबन्धकतावच्छेदक धर्म नीलेतररूपत्व आदि होगा। वह नीलत्व आदि की, जो कि नीलेतररूपादि के प्रति नीलादि को प्रतिबन्धक मानने पर प्रतिबन्धकतावच्छेदक होता है, अपेक्षा गुरुभूत है। अत नीलत्वेन ही प्रतिबन्धकता होगी न कि नीलेतररूपत्वेन, क्योकि तब प्रतिबन्धकतावच्छेदक धर्म मे गौरव प्रसक्त होता है। इसी तरह गौरव की कल्पना क्यो न की जाय? ← समाधान यह है कि प्रतिबन्धकतावच्छेदक धर्म के शरीर का गौरव दोषात्मक नही है, क्योकि प्रतिबन्धक्तावच्छेदकधर्म का कार्यकारणभाव शरीर मे प्रवेश होता नही है।

○ अवच्छेदकतया नील के प्रति समवाय से नील कारण ○

अस्तु वा०। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलादि रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलादि रूप कारण होता है। अत नील-पीतकपालद्वयारब्ध घट मे पीत कपाल मे अवच्छेदकतासम्बन्ध से घटीय नील रूप की उत्पत्ति को अवकाश रहता नही है, क्योकि पीतकपाल मे समवाय सम्बन्ध से नील रूप रहता नही है। यहाँ इस शका का कि → ''अवच्छेदकता सम्बन्ध से नील रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से नील रूप को कारण मानने पर तो नीलपीतोभयरूपाश्रयकपालारब्ध घट के नील रूप की नीलपीतरूपद्वयाश्रय कपाल मे भी अवच्छेदकतासम्बन्ध से उत्पत्ति होने लगेगी, क्योकि वहाँ समवाय सम्बन्ध से नील रूप रहता है। मगर वहाँ नीलकपालिकावच्छेदेन ही नीलरूप की उत्पत्ति होती है- यह वस्तुस्थिति है, जिसका हम पहले वयान कर चूके है'' ← समाधान यह है कि - अवच्छेदकता सम्बन्ध से नील आदि रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से केवल नीलादि रूप ही हेतु है। नीलपीतोभयरूपवाले कपाल मे केवल नील रूप समवाय से नही है। अत वहाँ अवच्छेदकतासम्बन्ध से अनेकनीलपीतरूपाश्रयकपालारब्ध घट के नील रूप की आपत्ति को अवकाश रहता नही है। यहाँ यह भी ख्याल मे रखना जरूरी हे कि समवाय सम्बन्ध से नीलादि रूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलादि रूप कारण होता है। अत वायु आदि मे समवाय सम्बन्ध से नीलादि रूप की उत्पत्ति को अवकाश रहता नही है, क्योकि वायु के अवयव मे नीलादि रूप नही होने

हेतुत्वम्। न च नीलमात्रारब्धनीलस्यावयवेऽवच्छेदकतयोत्पत्तिप्रसङ्गः, स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवयित्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादीनामप्यवच्छेदकतया नीलादौ हेतुत्वात्।

केचित्तु 'व्याप्यवृत्तिनीलस्थलेऽव्याप्यवृत्तित्ववारणाय समवायेन नीलेतररूपविशिष्टनीलत्वेनावच्छेदकतया रूपं प्रति हेतुता' इत्याहु।

◆ हेमलता ◆

न च नीलमात्रारब्धनीलस्य = नीलेतररूपशून्यनीलावयवारब्धावयवसमवेतनीलरूपस्य केवलनीले अवयवे अवच्छेदकतया = अवच्छेदकतासम्बन्धेन उत्पत्तिप्रसङ्गः, समवायेन तत्र केवलनीलरूपस्य सत्त्वादिति वाच्यम्, स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादीनामपि अवच्छेदकतया नीलादौ हेतुत्वात्, न केवलं समवायेन नीलादेः। नीलपीतकपालद्वयारब्धघटस्थले नीलकपालस्य नीलेतरसमवायिपीतकपालसमवेतघटसमवायित्वेन नीलेतररूपस्य नीलपीतकपालद्वयारब्धघटसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलस्य च समवायेन नीलकपाले सत्त्वात्तत्रावच्छेदकतासम्बन्धेन नीलपीतकपालद्वयारब्धघटसमवेतनीलरूपस्योत्पत्तिर्युज्यते। नीलमात्रारब्धघटनीलरूपस्य तु नावच्छेदकतया नीलकपाले उत्पत्तिः सम्भवति तत्र समवायेन नीलस्य सत्त्वेऽपि स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसम्बन्धेन नीलेतररूपस्य विरहात्, कपालान्तरस्यापि नीलत्वात्। नीलपीतोभयकपालनीलावच्छेदिकाया नीलकपालिकाया नीलेतरसमवायिपीतकपालिकासमवेतकपालसमवायित्वेन घटनीलरूपस्यावच्छेदकया नीलकपालिकायामुत्पत्तिः सङ्गच्छते। न च नीलमात्रारब्धे घटे कपालान्तरावच्छेदेन पाकाद्रक्तरूपोत्पत्तिकाले कपालान्तरविद्यमानान्नीलादव्याप्यवृत्तिनीलानापत्तिः, तदव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन निरुक्तसम्बन्धेन नीलेतररूपविरहादिति वाच्यम् रक्तोत्पत्त्यनन्तरमेव तत्राप्यव्याप्यवृत्तिनीलोत्पादस्वीकारात् कार्यसहभावेन वा नीलेतररूपादेरुक्तसम्बन्धेन हेतुत्वात्।

केचित्तु व्याप्यवृत्तिनीलस्थले=केवलनीलावयवारब्धावयविस्थले अवयविसमवेतनीलरूपे अव्याप्यवृत्तित्ववारणाय, अवच्छेदकतयाऽवयवे नीलोत्पत्तिवारणायेति यावत्, समवायेन नीलेतररूपविशिष्टनीलत्वेन अवच्छेदकतया नीलं रूपं प्रति हेतुता। वैशिष्ट्यञ्च स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसम्बन्धेन बोध्यम्। नीलपीतकपालद्वयारब्धघटनीलरूपस्याऽवच्छेदकतया नीलकपाले उत्पत्तिर्युज्यते तत्र समवेतस्य नीलरूपस्य नीलेतरसमवायिपीतकपालसमवायिनीलकपालसमवेतत्वेन स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपविशिष्टत्वात्। नीलमात्रारब्धावयव्यवयवे तु नावच्छेदकतया नीलोत्पत्तिः तत्र समवेते नीलरूपे स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसम्बन्धेन नीलेतरविशिष्टत्वस्य विरहेण नीलेतररूपविशिष्टनीलरूपस्य समवायेनाऽसत्त्वात्, इत्याहु।

► वल्लभा ◄

से स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलादि रूप वायु में रहता नहीं है।

► व्याप्यवृत्ति नीलादिरूप की अवच्छेदकतासम्बन्ध से उत्पत्ति का परिहार ◄

न च नीलमा०। यहाँ इस शंका के कि → 'अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलादि रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से केवल नीलादि रूप को कारण मानने पर तो केवलनीलरूपवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी के अवयव में भी अवयवी के नील रूप की अवच्छेदकता सम्बन्ध से उत्पत्ति होने की आपत्ति आयेगी, क्योंकि उसके अवयव में समवाय सम्बन्ध से केवल नीलरूप रहता है' ← समाधानार्थ यह कहा जा सकता है कि अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील रूप के प्रति जैसे समवाय सम्बन्ध से केवल नील रूप हेतु होता है ठीक वैसे ही स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलेतररूप भी हेतु होता है। जैसे कि नीलपीतकपालद्वयारब्ध घट के नील कपाल में समवाय सम्बन्ध से नील रूप रहता है एवं स्व = नीलेतररूप के समवायी पीत कपाल में समवेत घट द्रव्य में नील कपाल समवायी होने से नीलेतर रूप स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्व सम्बन्ध से नील कपाल में रहता है। अतः नील कपाल में अवच्छेदकता सम्बन्ध से घटीय नील रूप की उत्पत्ति हो सकती है। मगर केवलनीलकपालद्वयारब्ध घट के नील रूप की केवल नील कपाल में अवच्छेदकता सम्बन्ध से उत्पत्ति हो सकती नहीं है, क्योंकि उसमें समवाय सम्बन्ध से केवल नील रूप के रहने पर भी स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्व सम्बन्ध से नीलेतर रूप रहता नहीं है। इसका कारण यह है कि अन्य कपाल में भी नीलेतर रूप समवेत नहीं है। इसलिए व्याप्यवृत्ति नीलरूपवाले घट के अवयव में अवच्छेदकता सम्बन्ध से नील रूप की उत्पत्ति को अवकाश रहता नहीं है।

► नीलेतररूपविशिष्टनील अवच्छेदकतया नील का कारण- केचित् ◄

केचि०। यहाँ कुछ विद्वानों का यह मत है कि - 'केवलनीलरूपवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी में जो व्याप्यवृत्ति नील रूप उत्पन्न होता है उसमें अव्याप्यवृत्तित्व के वारणार्थ यानी अवच्छेदकता सम्बन्ध से अवयव में अवयवी के व्याप्यवृत्ति नील रूप की उत्पत्ति की आपत्ति के निवारणार्थ इस प्रकार के कार्यकारणभाव का स्वीकार करना जरूरी है कि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नील रूप के प्रति नीलेतररूपविशिष्ट नील रूप समवाय सम्बन्ध से कारण है। यहाँ वैशिष्ट्य स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध

तन्नेत्यन्ये नीलविशिष्टनीलेतरस्याप्येव हेतुतापत्तौ पृथक्कार्यकारणभावात्।

वस्तुतोऽवच्छेदकतया नीलादावुक्तसम्बन्धेन नीलेतररूपविशिष्टनीलत्वादिनैव हेतुत्वम्। न च नीलेतरत्वाद्यवच्छिन्न प्रति नीलविशिष्टनीलेतरत्वादिना हेतुत्वे विनिगमकाभावः, नीलत्वाद्यपेक्षया नीलेतरत्वस्य गुरुत्वात्।

एतेन 'उक्तसम्बन्धेन नीलेतरादेर्नीलादिकं प्रति हेतुत्व नीलादीना नीलेतरादिक प्रति वेति विनिगमनाविरहाद् द्वादशकार्य-

◆ **हेमलता** ◆

तन्न समीचीन इत्यन्ये वदन्ति, यतोऽविनिगमेनावच्छेकतया नीलेतररूपादौ स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलविशिष्टनीलेतरस्य अपि एव समवायसम्बन्धेन हेतुतापत्तौ पृथक्कार्यकारणभावात् = विनिगमनाविरहेण गुरुतरफल-फलवद्भावद्वैविध्यप्रसङ्गात्।

अत्राथवादी स्वाभिप्रायमाह- वस्तुत = वस्तुगतिमनुरुध्य अवच्छेदकतया नीलादौ उक्तसम्बन्धेन = स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपविशिष्टनीलत्वादिनेव समवायसम्बन्धेन हेतुत्व न तु नीलविशिष्टनीलेतररूपत्वादिना समवायेन। न च अवच्छेदकतया नीलेतरत्वाद्यवच्छिन्न प्रति स्वसमवायिसमवेतसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलविशिष्टनीलेतरत्वादिना समवायेन हेतुत्वे विनिगमकाभाव इति वाच्यम् नीलत्वापेक्षया नीलेतरत्वस्य गुरुत्वात् = कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरगौरवात्। अवच्छेदकतया नीलादौ नीलेतररूपविशिष्टनीलस्य कारणत्वे कार्यतावच्छेदक नीलत्वादिक स्यात्। अवच्छेदकतया नीलेतररूपादौ नीलविशिष्टनीलेतररूपादेः कारणत्वे तु नीलेतररूपत्वादिक कार्यतावच्छेदक स्यात्। एतादृशगौरवादेव नावच्छेदकतया नीलेतररूपादौ नीलविशिष्टनीलेतररूपादेः कारणत्व सम्भवतीति अव्याप्यवृत्तिनानाविजातीयरूपवादिनोऽभिप्रायः।

एतेन = कार्यतावच्छेदकधर्मगौरवप्रदर्शनेन, अस्याग्रेऽपास्तमित्यनेनान्वयः। उक्तसम्बन्धेन = स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसम्बन्धेन नीलेतरादे =नीलेतररूपादे' अवच्छेदकतासम्बन्धेन नीलादिक रूप प्रति हेतुत्व स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसमवन्धेन नीलादीना अवच्छेदकतया नीलेतरादिक रूप प्रति वा हेतुत्व? इति विनिगमनाविरहाद् अव्याप्यवृत्तिनानारूपवादिमते द्वादशकार्यकारणभावापत्ति इत्यपास्तम्, अवच्छेदकतया नीलेतररूपादौ

► **वल्लभा** ◄

से ग्राह्य है। स्वपदार्थ है नीलेतररूपादि। जैसे कि नीलपीतकपालद्वयारब्ध घट का नीलकपाल स्व=नीलेतररूप के समवायी पीतकपाल मे समवेत घट का समवायी होने से स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिसमवेतत्व सम्वन्ध से नीलेतररूपविशिष्ट नीलरूप वनता है। अत नीलेतररूपविशिष्ट नीलरूप समवाय सम्वन्ध नील कपाल मे रहने से वहाँ अवच्छेदकता सम्वन्ध से नीलकपालद्वयारब्धघटनीलरूप उत्पन्न हो सकता है। मगर नीलकपालद्वयारब्ध घट मे नीलेतरविशिष्ट नीलरूप समवाय सम्वन्ध से रहता नही है, क्योकि उस घट का अवयव कपाल नीलेतररूपवाला नही होने से उस घट मे रहनेवाला नीलरूप स्वसमवायिसमवेतसमवायिसमवेतत्वसम्वन्ध से नीलेतररूपविशिष्ट वनता नही है। अत उस घट के कपाल मे अवच्छेदकतासम्वन्ध से नील रूप की उत्पत्ति को अवकाश रहता नही हे'।

तन्नेत्यन्ये०। मगर इस वक्तव्य के खिलाफ अन्य विद्वानो का यह कथन है कि- अवच्छेदकता सम्वन्ध से नील रूप के प्रति नीलेतररूपविशिष्ट नील रूप को समवाय सम्वन्ध से कारण मानने पर तो विनिगमनाविरह से अवच्छेदकता सम्वन्ध से नीलेतर रूप के प्रति नीलविशिष्ट नीलेतररूप को भी समवाय सम्वन्ध से कारण मानने की आपत्ति आयेगी। तव तो स्वतत्र अलग अलग कार्यकारणभाव के स्वीकार की आपत्ति आयेगी। अत उपर्युक्त मत का स्वीकार नही किया जा सकता।

वस्तुतः०। मगर वस्तुस्थिति को लक्ष्य मे ली जाय तव तो अवच्छेदकता सम्वन्ध से नील आदिरूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिसमवेतत्व सम्वन्ध से नीलेतररूपविशिष्ट नीलरूप ही समवाय सम्वन्ध से कारण हो सकता हे। यहाँ यह नही कहा जा सकता कि → 'अवच्छेदकता सम्वन्ध से नीलादि के प्रति नीलेतरविशिष्ट नील रूप को समवाय सम्वन्ध से कारण माना जाय या अवच्छेदकतासम्वन्ध से नीलेतररूपादि के प्रति नीलविशिष्ट नीलेतररूपादि को समवाय सम्वन्ध से कारण माना जाय? इसमे कोई विनिगमक नही है' ← इसका कारण यह हे कि अवच्छेदकता सम्वन्ध से नीलादि के प्रति नीलेतरविशिष्ट नील रूप को कारण मानने पर कार्यतावच्छेदक धर्म होगा नीलत्वादि ओर अवच्छेदकता सम्वन्ध से नीलेतर रूप आदि के प्रति नीलविशिष्ट नीलेतर रूपादि को समवाय सम्वन्ध से कारण मानने पर कार्यतावच्छेदक धर्म होगा नीलेतररूपत्वादि। नीलत्वादि की अपेक्षा नीलेतररूपत्वादि को कार्यताअवच्छेदक मानने मे स्पष्ट ही गौरव है। कार्यताअवच्छेदक धर्म मे गौरव उपस्थित होने से ही अवच्छेदकता सम्वन्ध से नीलेतर रूपादि के प्रति नीलविशिष्ट नीलेतर रूपादि को कारण माना जा नही सकता। अव विनिगमनाविरह दोष को अवकाश कहाँ? सॉच को आँचें कहाँ? झूठ को पावें कहाँ?

► **चित्ररूप के अस्वीकार मे केवल १२ कार्यकारणभाव** ◄

एतेन०। अतएव यहाँ यह कथन भी कि → 'अवच्छेदकता सम्वन्ध से नीलादि रूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्व सम्वन्ध से नीलेतर रूपादि को कारण माना जाय या अवच्छेदकता सम्वन्ध से नीलेतर रूपादि के प्रति स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्व सम्वन्ध से नीलादि रूप को कारण माना जाय? इस विषय मे कोई विनिगमक = अन्यतरनिर्णायक तर्क नही होने से चित्र रूप

कारणभावापत्तिरित्यपास्तम्। इत्थं चातिनिष्कर्षादस्माकं द्वादशैव कार्यकारणभावा इति चेत्?

चित्ररूपकल्पेऽपि नीलेतररूपादिषट्कस्य चित्रं प्रति हेतुत्वं नीलादौ च नीलेतरादीनां प्रतिबन्धकत्वम्। तत एव(त?)नानारूपवत्कपालारब्धे शुक्लावयवमात्रारब्धे च नीलाद्यनुत्पत्तिनिर्वाहादिति तुल्यम्, अव्याप्यवृत्तिनानारूप-तत्प्रागभाव-प्रध्वंसादिकल्पनागौरवं पुनरधिकमायुष्मतः।

◆ हेमलता ◆

स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसम्बन्धेन नीलादेर्हेतुत्वे नीलत्वाद्यपेक्षया गुरोः नीलेतररूपत्वादेः कार्यतावच्छेदकत्वापत्तेः। इत्थञ्चातिनिष्कर्षात् अस्माकं = चित्रस्थलेऽव्याप्यवृत्तिनानाविजातीयरूपवादिनां द्वादशैव कार्यकारणभावाः, अवच्छेदकतया नीलादौ स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसम्बन्धेन नीलेतररूपविशिष्टनीलादेः समवायेन हेतुत्वमिति हेतुहेतुमद्भावषट्कं प्रथमं, समवायेन नीलादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलादीनां हेतुत्वमिति हेतु-हेतुमद्भावषट्कं द्वितीयमिति द्वादशैव कार्यकारणभावा न त्वष्टादश इति।

एकदेशिनस्तु नीलमात्रारब्धे कपालान्तरावच्छेदेन पाके रक्तोत्पत्तिक्षण एव प्राक्तननीलनाशादव्याप्यवृत्तिनीलोत्पत्तेः अवच्छेदकतया नीलादौ अवच्छेदकतया नीलाभावादेरेव हेतुत्वमिति वदन्ति।

अतिरिक्तचित्ररूपवादिनोऽत्र वदन्ति - चित्ररूपकल्पेऽपि स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादिषट्कस्य समवायेन चित्रं प्रति हेतुत्वं समवायेन नीलादौ च स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतरादीनां रूपाणां प्रतिबन्धकत्वमिति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्ननीलेतररूपाद्यभावानां स्वरूपसम्बन्धेन कारणत्वमिति द्वादशैव कार्यकारणभावाः। तत एव = निरुक्तकार्यकारणभावस्वीकारादेव, नानारूपवत्कपालारब्धे शुक्लावयवारब्धे च अवयविनि समवायेन नीलाद्यनुत्पत्तिनिर्वाहात्, अनेकविजातीयरूपाश्रयकपालारब्धे घटे स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतरादीनां सत्त्वान्न तत्र समवायेन नीलाद्युत्पत्तिः। न हि प्रतिबन्धकसमवधाने कार्यमुत्पद्यते। शुक्लमात्रावयवारब्धे च पटादौ स्वसमवायिसमवेतसम्बन्धेन नीलेतररूपादीनामसत्त्वान्न समवायेन चित्ररूपस्योत्पत्तिः, कारणविरहात्। न वा समवायेन नीलाद्युत्पत्तिप्रसङ्गः, नीलेतररूपस्य तत्र सत्त्वात् इति हेतोः तुल्यं उभयत्र द्वादशकार्यकारणभावकल्पनम् नीलादौ नीलादिहेतुत्वाकल्पनात्।

केचित्तु नीलादिकं प्रति नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्धः स्वाऽसमवायिकारणसमवायिसमवेतत्वमेव। न चेतरत्वस्यापि सम्बन्धमध्ये निवेशानिवेशाभ्यां विनिगमनाविरह इति वाच्यम् नीलेतररूपत्वादिना स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन प्रतिबन्धकतावादिनोऽपि तुल्यत्वादिति। न चैवमपि वाय्वादौ नीलाद्यापत्तिरिति वाच्यम्, जन्यरूपत्वावच्छिन्नं प्रति रूपत्वेनैवाऽसमवायिकारणत्वात्, न तु नीलादौ नीलादेः, प्रयोजनविरहादिति वदन्ति।

किञ्च भोः! अव्याप्यवृत्तिनानाजातीयरूपवादिन्! चित्ररूपस्थले अव्याप्यवृत्तिनानारूप-तत्प्रागभाव-प्रध्वंसादिकल्पनागौरवं अवयविन्यव्याप्यवृत्तिनीलपीतादिनानारूपाणां, नील-पीतादिप्रागभावानां, नीलपीतादिप्रागभावध्वंसानां नीलपीतादिध्वंसानां नीलेतररूपविशिष्टनीलत्वादौ अवच्छेदकताम-

► वल्लभा ◄

के अस्वीकार मे बारह प्रकार के कार्यकारणभाव के स्वीकार की आपत्ति आयेगी और समवाय सम्बन्ध से नीलादि रूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलादि षट्क को कारण मानना तो आवश्यक ही है। अत कुल १८ प्रकार के कार्यकारणभाव को स्वीकार का गौरव अव्याप्यवृत्तिनील-पीतादिरूपवादी के मत मे अनिवार्य होगा' ←— निरस्त हो जाता है, क्योंकि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलेतरादिरूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्व सम्बन्ध से नीलादि को कारण मानने से कार्यतावच्छेदक धर्म नीलेतररूपत्व आदि होगा, जो नीलत्वादि की अपेक्षा गुरुभूत है। जब कि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलादि के प्रति स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायित्वसम्बन्ध से नीलेतरादि को कारण मानने पर कार्यतावच्छेदक नीलत्व आदि होता है, जो कि लघुभूत है। अत विनिगमनाविरह दोष को अवकाश रहता नहीं है। मगर हम अभी यह प्रतिपादन कर चुके है कि - 'अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलादिरूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलेतररूपादिविशिष्ट नीलादि रूप समवाय सम्बन्ध से कारण है'। अत ये छ कार्यकारणभाव एव 'समवाय सम्बन्ध से नीलादिरूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलादिरूप कारण है' इसका स्वीकार करने से अन्य छ कार्यकारणभाव स्वीकार्य है। इस तरह सूक्ष्म निष्कर्ष पर आने से अव्याप्यवृत्तिनानाजातीयरूप के स्वीकार मे केवल १२ प्रकार के कार्यकारणभाव को ही मान्य करना जरूरी बनता है न कि १८ प्रकार के कार्यकारणभाव को। अत अनेकरूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी मे एक अतिरिक्त चित्ररूप की कल्पना गौरवदोषग्रस्त होने से त्याज्य है।

► अतिरिक्तचित्ररूप के स्वीकार मे लाघव ◄

उत्तरपक्ष 'चित्ररू०। उस्ताद! हम भी सात घाट के पानी पी चुके है। अतिरिक्त चित्र रूप को मानने पर भी हमारे मत मे

यदि च नीलपीतवत्यग्निसयोगान्नीलावयवावच्छेदेन पाके रक्तोत्पत्तिर्न स्यात्, रूप प्रति रूपस्य प्रतिवन्धकत्वादिति विमृश्य नीलादौ नीलादेर्विशिष्य प्रतिवन्धकत्व कल्प्यते, तदापि चित्ररूपकल्प एव लाघवम्।

◆ हेमलता ◆

म्बन्धावच्छिन्ननीलादिकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकत्वस्य नानारूपादौ चित्रादिप्रतीतिविषयत्वादेश्च कल्पनाया गौरव पुनरधिकमायुष्मत । तदपेक्षया वरैकातिरिक्तचित्ररूपकल्पनैव।

यदि च अव्याप्यवृत्तिनानारूपवादिना भिन्नावयवावच्छेदेन नीलपीतवति घटे नीलकपालावच्छेदेन रक्तरूपजनकात् अग्निसयोगात् नीलरूपनाशानन्तर नीलावयवावच्छेदेन = पाकनाशितनीलकपालायवच्छेदेन घटे पाके = रक्तजनकविजातीयतेजःसयोगे सति समवायेन घटे रक्तोत्पत्ति न स्यात्, समवायेन रूप प्रति = रूपत्वावच्छिन्ने समवायेन रूपस्य प्रतिवन्धकत्वात्, घटे पीतकपालावच्छेदेन समवायेन पीतरूपस्य सत्त्वात् समवायेन रक्त रूप नोत्पद्येत इति विमृश्य समवायेन नीलादौ = नीलत्वाद्यवच्छिन्न प्रति समवायेन नीलादे विशिष्य = विशेषरूपेण प्रतिवन्धकत्व कल्प्यते = अनुमीयते। ततश्च न तदा रक्तोत्पादासम्भवप्रसङ्गः, तत्र समवायेन रक्तरूपस्य विरहात्। समवायेन घटे रक्तोत्पादानन्तर अवच्छेदकतया पाकनाशितनीलकपाले रक्तरूपमुत्पत्तुमर्हतीति। एतेन रक्तस्य रूपप्रतिबध्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वान्न तदनापत्तिः सम्भवतीति प्रत्युक्तम्। इत्थञ्च समवायेन नीलादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलादेः हेतुत्व समवायेन नीलादेश्च प्रतिवन्धकत्व कल्पनीयमिति चेत्? तदापि चित्ररूपकल्पे नीलाद्यतिरिक्तचित्ररूपस्वीकारे एव लाघवम्, अव्याप्यवृत्तिनानारूप-तत्प्रागभाव-प्रध्वसाद्यकल्पनात्। यदि च स्वाश्रयसम्बन्धेन नील प्रति स्वव्यापकसमवायेन नीलरूप हेतुरुपेयते, नीलपीताद्यारब्धस्थले च स्वाश्रयसम्बन्धेन नीलरूपस्य पीतकपालेऽपि सम्भवेन व्यभिचारादुक्तसम्बन्धेन हेत्वभावादेव न तत्र नीलोत्पत्तिरिति विभाव्यते तदा नील प्रति नीलेतररूपादेः प्रतिवन्धकत्व चित्ररूपवादिना न कल्पनीयमित्यतिलाघवम्।

► वल्लभा ◄

केवल द्वादश कार्यकारणभाव ही कल्पनीय हे, न कि अष्टादश। अत हमारे मत मे और आपके मत मे कार्यकारणभाव की सख्या तुल्य है। हम यह मानते है कि समवाय सम्वन्ध से चित्र रूप के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्वन्ध से नीलेतरादि षट्क कारण है। घटादि के कपालादि अवयव मे नील एव पीत आदि रूप रहते है तव घट मे स्वसमवायिसमवेतत्व सम्वन्ध से नीलेतर, पीतेतर, शुक्लेतर आदि षट्क रहने की वजह समवाय सम्बन्ध से घट मे चित्र रूप उत्पन्न होता है। एव समवाय सम्वन्ध से नील रूप आदि के प्रति नीलेतर आदि रूप प्रतिवन्धक होते है। अत नीलपीतादि अनेकरूपवाले कपालो से आरब्ध घट मे समवाय सम्वन्ध से नीलादि रूप की उत्पत्ति को अवकाश रहता नही है, क्योकि उसमे नीलेतर, पीतेतर आदि रूप रहते है। इस तरह केवल शुक्ल अवयवो से आरब्ध अवयवी मे भी नील, पीत आदि रूप की उत्पत्ति को भी अवकाश नही हे, क्योकि वहाँ नीलेतर, पीतेतर आदि रूप रहता है। इस तरह समवाय सम्वन्ध से नीलादि के प्रति नीलेतररूपाभाव आदि को कारण मान कर अन्य कार्य-कारणभाव षट्क का स्वीकार किया जाता है। अत अनेक रूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी मे समवाय सम्वन्ध से एक अतिरिक्त चित्ररूप का स्वीकार करना ही युक्त है, न कि अवच्छेदकता सम्वन्ध से नील, पीत आदि अनेक अव्याप्यवृत्ति रूपो का स्वीकार, क्योकि तव अवयवी मे तदवयवावच्छेदेन अनेक अव्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि रूप, उनके प्रागभाव एव ध्वस आदि की कल्पना का गोरव उपस्थित होता है। अत अव्याप्यवृत्तिरूपवादी का मत अप्रामाणिक है।

यदि च०। यदि यहाँ अव्याप्यवृत्तिनानाजातीयरूपवादी की ओर से यह कहा जाय कि ⟶ 'नीलपीतरूपवाले घटादि अवयवी मे नीलकपालावच्छेदेन रक्तरूपजनकाग्निसयोग से नील रूप का नाश होता है वाद मे वहाँ रक्त रूप की उत्पत्ति न हो सकेगी, क्योकि समवाय सम्वन्ध से रूप के प्रति समवाय सम्वन्ध से रूप प्रतिवन्धक होता हे। उस घट मे पीतकपालावच्छेदेन पीत रूप रहता है। इसलिए यहाँ विशेषरूप से प्रतिवध्य-प्रतिवन्धकभाव का स्वीकार करना होगा कि समवाय सम्वन्ध से नीलादि के प्रति समवाय सम्वन्ध से नील रूप आदि प्रतिवन्धक होता है। तव उस घट मे रक्त रूप की उत्पत्ति पाकनाशितनीलरूपवाले कपालावच्छेदेन हो सकेगी, क्योकि उस घट मे रक्त रूप समवाय से रहता नही है। इस तरह छ प्रतिवध्यप्रतिवन्धकभाव की कल्पना आवश्यक हे' ⟵ तो भी चित्ररूप के स्वीकार मे ही लाघव है, क्योकि अनेक अव्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि रूप, उनके प्रागभाव, उनके प्रध्वस आदि की कल्पना का गौरव एक अतिरिक्त चित्ररूप के स्वीकार करने पर अप्रसक्त होता है। इसलिए अनेक रूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी मे समवाय सम्वन्ध से एक चित्र रूप की कल्पना ही सगत है, न कि अव्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि रूपो की कल्पना-यह फलित होता हे।

स्वतन्त्रास्तु चित्ररूपं प्रति रूपत्वेनैव हेतुत्वं नीलमात्रारब्धे तु चित्रप्रागभावाभावादेव न तदुत्पत्तिः। अस्तु वा चित्रं प्रति चित्रेतररूपस्य चित्रेतरं प्रति चित्रस्य कार्यसहभावेन प्रतिबन्धकत्वमित्यतिलाघवमित्याहुः।

◆ हेमलता ◆

स्वतन्त्रास्तु = रामभद्रसार्वभौमानुयायिनस्तु समवायेन चित्ररूपं = चित्रत्वावच्छिन्नं प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपत्वेनैव हेतुत्वम्। एवकारेण नीलेतररूपत्व-नीलाभावत्व-नीलतज्जनकपाकान्यतराभावत्वादिना चित्रकारणता व्यवच्छिद्यते। नील-पीताद्यवयवारब्धेऽवयविनि चित्रोत्पत्तिनिरासाय तत्र स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपसामान्यस्य सत्त्वात्। न च नीलकपालद्वयारब्धेऽपि समवायेन चित्रापत्तिः, तत्रावयविनि स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपस्य सत्त्वादिति वाच्यम् नीलमात्रारब्धे = नीलेतररूपशून्य-नीलरूपाश्रयावयवादिसमवेतेऽवयविनि तु चित्रप्रागभावाभावादेव = चित्ररूपप्रतियोगिकप्रागभावविरहादेव न तदुत्पत्तिः = समवायेन चित्रोत्पत्तिः। एवकारेण नीलेतररूपविरहादीनां चित्रानुत्पादप्रयोजकस्य व्यवच्छिद्यते।

ननु रूपस्य चित्ररूपासमवायिकारणत्वस्वीकारे रूपसमवायिसमवेते द्रव्यत्वावच्छिन्ने चित्रप्रागभावेनाऽवश्यं भवितव्यम्, स्वासमवायिकारणस्य स्वप्रागभावव्याप्यत्वनियमात्। व्याप्यतावच्छेदकसम्बन्धस्तु स्वकार्यप्राक्कालीनत्व-स्वसमवायिसमवेतत्वोभयम्, व्यापकतावच्छेदकसम्बन्धश्च दैशिकविशेषणताविशेषः। एतदनभ्युपगमे तु स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन कपालगन्धवति घटेऽपि गन्धप्रागभावविरहः स्यादित्याशङ्कायां कल्पान्तरमावेदयन्ति-अस्तु वेति। समवायेन चित्रं = चित्रसामान्यं प्रति समवायेन चित्रेतररूपस्य समवायेन चित्रेतरं प्रति समवायेन चित्रस्य कार्यसहभावेन प्रतिबन्धकत्वम्। ततः समवायेन चित्रं प्रति स्वरूपेण चित्रेतररूपाभावस्य समवायेन चित्रेतरोत्पत्तिं च स्वरूपसम्बन्धेन चित्ररूपाभावस्य कार्यसहभावेन कारणत्वम्। एतेन नीलकपालद्वयारब्धे घटे नीलोत्पादक्षणे चित्रोत्पादप्रसङ्गः प्रत्युक्तः तदानीं तत्र चित्रेतररूपाभावस्य चित्रकारणस्य विरहात्। अत एव नीलपीतकपालद्वयारब्धे घटे चित्रोत्पादक्षणे नीलाद्युत्पत्तिप्रसङ्गोऽपि परास्तः तदानीं तत्र दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन चित्राभावस्य नीलादिकारणस्यासत्त्वात्। कार्यसहभावेन दर्शितकार्यकारणभावानुपगमे तु नीलोत्पादक्षणे चित्रोत्पादापत्तिर्दुर्वारा, तदव्यवहितपूर्वक्षणे चित्रेतररूपाभावस्य सत्त्वात्। ततः सहभावेन तथात्वोक्तिः सङ्गतैव। एतत्कल्पे नीलाभावादिषट्क-नीलतज्जनकाग्निसंयोगान्यतराभावादिषट्क-नीलेतररूपादिषट्कादौ चित्रकारणत्वाकल्पनेन चित्रत्वव्याप्यवजात्यद्वयाकल्पनेन च अतिलाघवमित्याहुः।

आहुरित्यनेनाऽस्वरसोद्भावनमकारि। तद्बीजश्च अत्र रूपवन्नीरूपोभयावयवारब्धेऽवयविनि चित्रानुत्पत्तिस्तु स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावाभावरूपजन्यरूपत्वावच्छिन्नसामग्रीविरहादित्यधिकं मत्कृतजयलतायां बोध्यम्।

► वल्लभा ◄

★ चित्ररूप के प्रति रूपत्वेन कारणता - स्वतन्त्रमत ★

स्वतन्त्रा०। यहाँ स्वतन्त्रविचारसरणिवाले कतिपय विद्वानों का यह वक्तव्य है कि - 'समवायसम्बन्ध से चित्ररूप सामान्य के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से रूप ही कारण होता है। ऐसा कार्यकारणभाव मानने पर नीलकपालद्वय से आरब्ध घट में नील रूप के साथ चित्र रूप की उत्पत्ति की शंका नहीं की जा सकती, क्योंकि उस घट में चित्र रूप के कारण रूपसामान्य की उपस्थिति होने पर भी चित्र रूप के दूसरे कारण चित्रप्रागभाव का अभाव होने से वह उत्पन्न नहीं हो सकता। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि समवाय सम्बन्ध से चित्र रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से चित्रेतर रूप कार्यसहभावेन प्रतिबन्धक होता है अर्थात् समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक चित्रेतररूपाभाव कार्यसहभावेन दैशिकविशेषणताविशेष सम्बन्ध से कारण होता है। अतएव नीलकपालद्वयारब्ध घट में चित्रोत्पत्ति की आपत्तिक्षण में चित्रेतर नील रूप विद्यमान होने से चित्रेतररूपाभावस्वरूप चित्रकारण के अभाव से चित्रोत्पत्ति का अतिप्रसङ्ग नहीं हो सकता है। जिस क्षण में चित्रोत्पत्ति होती है उसी क्षण में चित्रेतररूपाभाव होना जरूरी है जिसकी सूचना 'कार्यसहभावेन' इस पद से प्राप्त होती है। इस तरह समवाय सम्बन्ध से चित्रेतर रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से चित्र रूप कार्यसहभावेन प्रतिबन्धक होता है। अतः नील-पीतकपालद्वयारब्ध घट में नीलोत्पत्ति की आपत्ति नहीं आयेगी, क्योंकि उस क्षण में उस घट में चित्ररूप समवाय सम्बन्ध से विद्यमान होने से समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक चित्ररूपाभावस्वरूप चित्रेतररूपकारण की अविद्यमानता है। जहाँ जिस क्षण में चित्रेतररूप की उत्पत्ति हो उसी समय वहाँ रहनेवाला चित्ररूपाभाव चित्ररूप का कारण हो सकता है। इस तरह किसी अतिप्रसङ्ग को यहाँ अवकाश नहीं है। एवं चित्र रूप के प्रति नीलाभावादि षट्क या नीलेतररूपादि षट्क आदि में कारणता की कल्पना का गौरव भी अप्रसक्त है। अतः इस पक्ष में कार्य-कारणभाव में अतिलाघव है'।

अथ व्याप्यवृत्तिरूपस्याप्यवच्छेदकस्वीकारादवच्छेदकतया नीलादिकं प्रति समवायेन नीलादेर्हेतुत्वादव्याप्यवृत्तिरूपसिद्धिः। न चैवं घटेऽपि तया नीलाद्यापत्तिः, अवयवनीलत्वेन द्रव्यविशिष्टनीलत्वेनैव वा तद्धेतुत्वात्। न च नीलमात्र-पीतमात्रकपालिकाद्वयारब्धनील-पीतकपाले तदापत्तिः, नीलकपालिकावच्छिन्नतदवच्छेदेन तदुत्पत्तेरिष्टत्वात्।

◆ हेमलता ◆

अव्याप्यवृत्तिनानाजातीयरूपवादी शङ्कते - अथेति। चेदित्यनेनास्यान्वयः। व्याप्यवृत्तिरूपस्य अपि अवच्छेदकस्वीकारात् अवच्छेदकतयाऽवयविनि तस्य सम्भव'। एतेन नीलमात्रारब्धनीलस्यावयवेऽवच्छेदकतयोत्पत्तिप्रसङ्ग इत्युक्तावपि न क्षति, इष्टत्वात्, अवच्छेदकतया नीलादिकं प्रति = नीलत्वाद्यवच्छिन्ने समवायेन नीलादेर्हेतुत्वात् अव्याप्यवृत्तिरूपसिद्धि । नीलमात्रारब्धघटे प्रथमं समवायेन नीलरूपमुत्पद्यते तदनन्तरमवच्छेदकतया च कपाले उत्पद्यते। न च एवं = व्याप्यवृत्तिरूपस्याप्यवच्छेदकस्वीकारे कपाले इव नीलकपालद्वयारब्धे घटेऽपि तया = अवच्छेदकतया नीलाद्यापत्ति, तत्र समवायेन नीलरूपस्य सत्त्वादिति वक्तव्यम् अवयवनीलत्वेन = अवयवनिरूपितवृत्तित्वविशिष्टनीलत्वेन द्रव्यविशिष्टनीलत्वेन = सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन वा द्रव्यविशिष्टनीलत्वेन एव वा तद्धेतुत्वात् = अवच्छेदकतया नीलत्वावच्छिन्ने कारणत्वात्, न तु नीलत्वेन। घटादाववयविनि समवायेनावयविनीलादे' सत्त्वेऽपि अवयवनिरूपितवृत्तित्वविशिष्टनीलस्य समवायेनाऽसत्त्वान्न तत्रावच्छेदकतासम्बन्धेन नीलापत्तिः। यद्वा घटादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन द्रव्यविशिष्टनीलस्य समवायेन विरहान्नावच्छेदकतया नीलोत्पादप्रसङ्गः, आपादकविरहे आपादनायोगात्। न च नानारूपवत्कपालाद्यारब्धघटस्थले नीलमात्र-पीतमात्रकपालिकाद्वयारब्धनीलपीतकपाले अवच्छेदकतया तदापत्ति = घटनीलाद्यापत्ति', समवायेन तत्र अवयवनीलादेः द्रव्यविशिष्टनीलादेर्वा समवायेन सत्त्वादिति वक्तव्यम् नीलकपालिकावच्छिन्नतदवच्छेदेन = स्वसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलकपालिकाविशिष्ट-नीलपीतोभयकपालावच्छेदेन, स्वसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलकपालिकाविशिष्टनील[illegible]कपालेऽवच्छेदकतासम्बन्धेनेति यावत्, तदुत्पत्ते = नानारूपवत्कपालारब्धघटनीलरूपप्रतियोगिताकोत्पादस्य इष्टत्वात्।



▶ वल्लभा ◀

▶ व्याप्यवृत्ति का भी अवच्छेदक स्वीकार्य ◀

पूर्वपक्ष : अथ०। अजी हजरत! इस तरह हमारी आँखो मे धूल झोकने का प्रयास मत कीजियेगा। अतिरिक्त चित्र रूप की सिद्धि कथमपि हो नही सकती। इसका कारण यह हे कि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलादि रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से ही नीलादि रूप को कारण माना जा सकता हे। यहाँ यह नही कहना चाहिए कि → 'तब तो केवल नीलकपालारब्ध घट मे भी कपालावच्छेदेन नीलरूप की यानी कपाल मे अवच्छेदकतासम्बन्ध से घटनीलरूप की आपत्ति आयेगी, क्योकि वहाँ समवाय सम्बन्ध से नीलरूप रहता हे' ← इसका कारण यह ह कि हम व्याप्यवृत्ति रूप के भी अवच्छेदक का स्वीकार करते ह। इसलिए यह तो हमे इष्ट ही है। घट मे समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाला व्याप्यवृत्ति रूप भी तत् तत् अवयव मे पश्चात् अवच्छेदकता सम्बन्ध से उत्पन्न होता है - इसको हम मान्य करते है। अत अव्याप्यवृत्तिता की रूप मे सिद्धि हो सकती हे। यहाँ इस शका का कि → 'तब तो कपाल की भाँति घट मे भी अवच्छेदकता सम्बन्ध से घटनीलरूप की उत्पत्ति होने लगेगी, क्योकि व्याप्यवृत्ति रूप की भी अवच्छेदकता सम्बन्ध से वृत्तिता का आप स्वीकार करते ह एव घट मे समवाय सम्बन्ध से नील रूप रहता भी ह' ← समाधान यह हे कि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नील रूप के प्रति समवाय सम्बन्ध से नील रूप कारण होता नही हे किन्तु अवयवनीलरूप यानी अवयवनिरूपितवृत्तिताविशिष्ट नील रूप कारण होता हे - ऐसा हम मानते ह। घट मे समवाय सम्बन्ध से नील रूप रहता है, मगर अवयवनिरूपितवृत्तित्वविशिष्ट नील रूप रहता नही हे, क्योकि घट किसीका अवयव नही है किन्तु अवयवी है। अथवा यह भी कहा जा सकता हे कि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलरूप के प्रति द्रव्यविशिष्ट नीलरूप कारण हे। वैशिष्ट्य स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से ग्राह्य है। जैसे कि नीलकपालद्वयारब्ध घट का नील रूप नील कपाल मे अवच्छेदकता सम्बन्ध से उत्पन्न हो सकता हे, क्योकि घटसमवायी नीलकपाल मे समवेत नीलरूप स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से द्रव्यविशिष्ट है एव समवाय सम्बन्ध से नीलकपाल मे रहता हे। मगर नीलकपालद्वयारब्ध घट का नील रूप अवच्छेदकता सम्बन्ध से घट मे उत्पन्न हो सकता नही हे, क्योकि घट मे समवाय सम्बन्ध से रहनेवाला नील रूप स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से द्रव्यविशिष्ट नही हे। घट अन्त्य अवयवी होने से उसमे द्रव्यविशिष्ट नीलरूप समवाय सम्बन्ध से नही रह सकता हे। इस परिस्थिति मे घट मे अवच्छेदकता सम्बन्ध से नील रूप की उत्पत्ति को अवकाश कैसे ? सामग्री के विरह मे कार्य की उत्पत्ति हो सकती नही है।

न च नीलमात्र०। यहाँ इस शका का कि →'अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलादि के प्रति समवाय सम्बन्ध से द्रव्यविशिष्ट

6

अस्तु वा तया नीलादौ नीलेतररूपादेरेव विरोधित्वमिति चेत्? न, नीलादौ नीलेतररूपादिप्रतिबन्धकतयैवोपपत्तौ तत्र नीलादिहेतुताया मानाभावेन नानारूपवदवयवारब्धेऽवयविनि चित्ररूपसिद्धेरेव प्रामाणिकत्वात्, व्याप्यवृत्तेरवच्छेदकायोगात् उक्तविनिगमनाविरहाच्च। अवच्छेदकतया नीलादिकं प्रति समवायेन नीलेतरादेः प्रतिबन्धकत्वापेक्षया समवायेन नीलादिकं प्रति

◆ हेमलता ◆

ननु नीलमात्र-पीतमात्रकपालिकाद्वयारब्धनीलपीतोभयकपालायारब्धघटसमवेतनीलरूपस्य नीलकपालिकायामेवावच्छेदकतयोत्पत्तिरनुभूयते न तु नीलकपालिकावच्छिन्न-नीलपीतोभयकपाल इत्याशङ्कायां कल्पान्तरमथयन्नाह- अस्तु वेति। तया = अवच्छेदकतया नीलादौ समवायेन नीलेतररूपादेरेव विरोधित्वं = प्रतिबन्धकत्वम्। अतो न नीलमात्र-पीतमात्रकपालिकाद्वयारब्धनील-पीतकपाले तादृशघटनीलरूपस्यावच्छेदकतयोत्पत्तिप्रसङ्गः, तत्र समवायेन नीलेतररूपस्य सत्त्वादिति चेत् ?

अतिरिक्तचित्ररूपवादी तन्निराकुरुते - नेति। नीलादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादिप्रतिबन्धकतयैव अवश्यक्लृप्तया नीलमात्रपीतमात्रकपालिकाद्वयारब्धनीलपीतकपालायारब्धघटनीलस्यावच्छेदकतया नीलपीतोभयकपालेऽनुत्पादस्य उपपत्तौ तत्र = नीलादौ नीलादिहेतुताया अक्लृप्ततया तत्र मानाभावेन नानारूपवदवयवारब्धेऽवयविनि नीलेतर-पीतेतरादिरूपस्य स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन सत्त्वेन समवायेन नील-पीताद्युत्पादासम्भवेन चित्ररूपसिद्धेरेव प्रामाणिकत्वात्, अन्यथा तस्य नीरूपत्वापातात्। न चैवं वाय्वादौ चित्रापत्तिरिति वाच्यम्, जन्यरूपत्वावच्छिन्नं प्रति रूपत्वेनैव हेतुत्वात्, नीलादौ नीलादेः हेतुताया मानाभावाद् गौरवाच्च। एतेन व्याप्यवृत्तिरूपस्याप्यवच्छेदकस्वीकारादवच्छेदकतया नीलादौ समवायेन नीलादेर्हेतुत्वमित्यपि प्रत्युक्तम्, व्याप्यवृत्तेः नीलरूपादेः अवच्छेदकाऽयोगात्, निरवच्छिन्नवृत्तिताकस्यैव व्याप्यवृत्तिपदार्थत्वात्, उक्तविनिगमनावि-रहाच्च = 'अवच्छेदकतया नीलादिकं प्रति समवायेन द्रव्यविशिष्टनीलत्वादिना हेतुत्वं नीलविशिष्टद्रव्यत्वादिना वा ?' इत्यत्राविनिगमाच्च। यद्वा नीलेतरादौ नीलादेः प्रतिबन्धकत्वेऽविनिगमाच्च। न च नीलविशिष्टद्रव्यस्य पीतकपालेऽपि सत्त्वात्तत्राऽप्यवच्छेदकतया नीलपीतकपालद्वयारब्धघटनीलापत्तिरे-वावच्छेदकतया नीलादौ समवायेन द्रव्यविशिष्टनीलत्वादिना कारणत्वसाधिकेति वाच्यम् तथापि अवच्छेदकतया नीलादिकं प्रति समवायेन नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्वापेक्षया समवायेन नीलादिकं प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्वकल्पनाया एव न्याय्यत्वात्, अवच्छेदकतया

► वल्लभा ◄

नील रूप को कारण मानने पर भी नीलमात्ररूपवाली कपालिका एवं केवल पीतरूपवाली कपालिका से आरब्ध नीलपीतोभय रूपवाले कपाल एवं कपालान्तर से घट का आरम्भ होने पर घट के नीलरूप की अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलपीतोभयरूपवाले कपाल में उत्पत्ति की आपत्ति आयेगी, क्योंकि अवयवनीलरूप या स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से द्रव्यविशिष्ट नील रूप वहाँ समवाय सम्बन्ध से रहता है' ← समाधान यह है कि नीलकपालिकावच्छिन्न-नीलपीतोभयरूपाश्रय कपाल में अवच्छेदकता सम्बन्ध तादृशघटनीलरूप की उत्पत्ति तो हमें इष्ट ही है। हाँ, पीतकपालावच्छिन्न-नीलपीतोभयकपाल में अवच्छेदकता सम्बन्ध से तादृशघटसमवेत नील रूप की उत्पत्ति अभिमत नहीं है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अवच्छेदकतासम्बन्ध से नील आदि के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलेतररूप आदि प्रतिबन्धक होता है। अब नीलपीतोभयरूपवाले कपाल में अवच्छेदकता सम्बन्ध से घटनीलरूप की उत्पत्ति की आपत्ति को अवकाश न रहेगा, क्योंकि वहाँ समवाय सम्बन्ध से नीलेतर पीतरूप रहता है। इस तरह नीलादि से अतिरिक्त चित्र रूप की मान्यता अप्रामाणिक सिद्ध होती है।

◇ नीलादि में नीलादिहेतुता अप्रामाणिक ◇

उत्तरपक्ष :- न , नीला०। जनाब! इस दुनिया में सेर को सवासेर मिलना मुश्किल नहीं है। आप चित्र रूप का भले ही इन्कार करो मगर इसका इकरार करना ही उचित है, क्योंकि प्रमाण ही उसकी सिद्धि कर रहा है। सब से पहले यह ज्ञातव्य है कि नीलादि रूप के प्रति नीलादि रूप को कारण मानने में ही कोई प्रमाण नहीं है, क्योंकि नीलादि के प्रति नीलेतररूप आदि को प्रतिबन्धक मानने से ही नीलपीतोभयकपाल में अवच्छेदकता सम्बन्ध से घटनीलरूप की उत्पत्ति की आपत्ति का निराकरण उपलब्ध हो जाता है। अन्य किसी अतिप्रसंग को अवकाश नहीं है तब नीलादि के प्रति नीलादि को कारण मानने की आवश्यकता क्या रहती है? उपदर्शित प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव तो अवश्य स्वीकर्तव्य ही है, जिसका प्रतिपादन पहले हो चूका है। अतः नील-पीत-रक्त आदि रूपवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी में नील, पीत आदि रूप की उत्पत्ति को अवकाश रहता नहीं है, क्योंकि अवयवी में स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलेतर, पीतेतर आदि रूप रहते हैं। वह नीरूप तो हो नहीं सकता। इसलिए वहाँ नील, पीत आदि से अतिरिक्त चित्र रूप की सिद्धि प्रमाण से होती है, क्योंकि वह नीलेतर, पीतेतररूप आदि की प्रतिबध्यता से विनिर्मुक्त है। दूसरी बात यह है कि व्याप्यवृत्तिपदार्थ की वृत्तिता का कोई अवच्छेदक होता नहीं है, क्योंकि व्याप्यवृत्ति का अर्थ है निरवच्छिन्नवृत्तिताक।

स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्वकल्पनाया एव न्याय्यत्वात्।

केचित्तु विजातीयचित्रं प्रति स्वविजातीयत्व-स्वसवलितत्वोभयसम्बन्धेन रूपविशिष्टरूपत्वेनैव हेतुत्वम्। स्ववैजात्यञ्च चित्रत्वातिरिक्तं यत् स्ववृत्ति तद्भिन्नधर्मसमवायित्वं, स्वसवलितत्वञ्च स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिवृत्तित्वम्। न च स्वत्वाननुगमः, सम्बन्धमध्ये तत्प्रवेशादि'त्याहुः।

◆ हेमलता ◆

अवच्छेदकभेदेन भिन्नत्वेनाननुगतत्वात् गुरुत्वाच्चेति पूर्वं विभावितमेव ।

केचित्त्विति। अस्याग्रे आहुरित्यनेनान्वयः। विजातीयचित्रं = समवायेन रूपमात्रजन्यचित्ररूपमात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नं प्रति स्वविजातीयत्व-स्वसवलितत्वोभयसम्बन्धेन रूपविशिष्टरूपत्वेनैव स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वम्। नीलेतररूपत्वादिकमेवकारेण व्यवच्छिन्नम्। वैशिष्ट्यघटक-सम्बन्धमेव स्पष्टयन्ति - स्ववैजात्यञ्च चित्रत्वातिरिक्तं यत् स्ववृत्ति तद्भिन्नधर्मसमवायित्वमिति। यथा नीलपीतकपालद्वयारब्धघटस्थले स्वपदेन नीलरूपग्रहणे चित्रत्वभिन्नं यत् नीलरूपवृत्ति नीलत्व-रूपत्व-गुणत्वादिकं तद्भिन्नस्य पीतत्वधर्मस्य समवायेनाश्रयतायाः कपालपीतरूपे सत्त्वेन निरुक्तं स्वविजातीयत्वसम्बन्धेन नीलरूपविशिष्टं पीतरूपं भवति। स्वसवलितत्वञ्च स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिवृत्तित्वमिति। प्रकृते स्वपदेन कपालनीलरूपग्रहणं, तत्समवायिनि नीलकपाले समवेतं यत् घटद्रव्यं तस्य समवायेनाश्रयीभूते पीतकपाले वृत्ति = समवेतं पीतरूपमिति स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिवृत्तित्वसम्बन्धेनाऽपि नीलरूपविशिष्टं पीतरूपं भवति। यदि च द्वितीयसम्बन्धकुक्षौ द्रव्यपदनिवेशो न स्यात् तर्हि स्वसमवायिसमवेतविधया नीलकपालवृत्तिकपालत्व-द्रव्यत्व-नीलरूपत्वादेरपि ग्रहणं प्रसज्येतेति तदपोहाय द्रव्यपदनिवेशः। द्वितीयसम्बन्धानुपादाने तु नीलकपालद्वयारब्धघटेऽपि समवायेन चित्रोत्पादप्रसङ्गात्, स्वविजातीयत्वसम्बन्धेनैतद्घटानारम्भककपालनीलरूपविशिष्टनीलरूपस्य स्वसमवायिसमवेतत्व-सम्बन्धेन तत्र सत्त्वात्, विशिष्टस्य शुद्धानतिरिक्तत्वात्। केवलं स्वसवलितत्वसम्बन्धेनैव रूपविशिष्टरूपत्वेन नीलरूपविशिष्टनीलरूपस्य स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलकपालद्वयारब्धे घटे सत्त्वात्। अतः प्रकृते उभयसम्बन्धेन वैशिष्ट्योपादानम्। चित्रत्वातिरिक्तत्वविशेषणानुपादाने चित्रकपालद्वयारब्धावयविचित्ररूपे व्यभिचारस्यादिति तदुपादानम्। ततो निरुक्तस्ववैजात्य-स्वसवलितत्वोभयसम्बन्धेन रूपविशिष्टरूपं स्वसमवायिसमवे-तत्वसम्बन्धेन यत्र तत्र समवायेन विजातीयचित्ररूपमुत्पद्यत इति कार्यकारणभावः फलितः। न च स्वत्वाननुगम = प्रकृतवैशिष्ट्यघटकस्वत्वानुगतनिर्वचना-सम्भवो दोषोऽत्रेति वक्तव्यम् सम्बन्धमध्ये = वैशिष्ट्यघटकसम्बन्धकुक्षौ एव तत्प्रवेशात् = स्वत्वनिवेशाभ्युपगमात्। सम्बन्धशरीरप्रविष्टाना परिचायकत्वमेव न तु विशेषणत्वमिति सम्बन्धाननुगमस्याऽदोषत्वमिति तात्पर्यम्। रूपमात्रजाऽतिरिक्तचित्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नं प्रति च विजातीयतेजःसयोगत्वेन कारणत्वम्। तेन न व्यभिचारावकाश इति ध्येयम्।

आहुरित्यनेनास्वरसः प्रदर्शितः। तद्बीजञ्च स्फुटगौरवग्रस्तत्वमेव।

▶ वल्लभा ◀

व्याप्यवृत्ति नीलआदि रूप का अवच्छेदक मानने मे वदतो व्याघात दोष प्रसक्त होता है। तथा आपने पूर्व मे जो कहा था कि → 'अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलादि के प्रति द्रव्यविशिष्टनीलादि समवाय सम्बन्ध से कारण हे' ← वह भी असगत है, क्योकि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलादिरूप के प्रति द्रव्यविशिष्ट नीलरूपादि को कारण मानना या नीलादिविशिष्ट द्रव्य को कारण मानना? इस विषय मे कोई पक्षपाती युक्ति नही है।

➛ अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलादि की कारणता गौरवग्रस्त ➛

अव०। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि अवच्छेदकता सम्बन्ध से नीलादि के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलेतरादि को प्रतिवन्धक मानने की अपेक्षा समवाय सम्बन्ध से नीलादि के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलेतर रूपादि को ही प्रतिवन्धक मानना मुनासिव है, क्योकि अवच्छेदकता अननुगत हे जव कि समवाय एक होने से अनुगत हे। अत अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलादि की उत्पत्ति की कल्पना गौरवग्रस्त होने से त्याज्य है। अत अनेक रूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी मे समवाय सम्बन्ध से अतिरिक्त चित्र रूप की सिद्धि का स्वीकार करना ही सगत है।

▲ रूपविशिष्टरूप चित्ररूपकारण - मतविशेष ▲

केचित्तु०। यहाँ कुछ विद्वानो का यह वक्तव्य है कि - 'विजातीय चित्र रूप यानी रूपमात्रजन्य विजातीय चित्र रूप के प्रति स्वविजातीयत्व-स्वसवलितत्व उभयसम्वन्ध से रूपविशिष्टरूप स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से कारण हे। वैशिष्ट्यघटक सम्वन्धो मे स्वविजातीयत्वपद का अर्थ है चित्रत्वभिन्न स्ववृत्ति धर्मों से भिन्न धर्म का समवायसम्वन्ध से आश्रयत्व ओर स्वसवलितत्वपद का अर्थ है समवाय सम्वन्ध से स्व के आश्रय मे समवायसम्बन्ध से रहनेवाले द्रव्य का जो समवायसम्वन्ध से आश्रय, उसमे वृत्तित्व। जैसे यदि किसी

यत्तु नीलपीतोभयाभाव-पीतरक्तोभयाभावादीनां स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकानां समवायावच्छिन्नप्रतियोगिताकानां च विजातीयविजातीयपाकोभयाभावादीनां यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽभावश्चित्रत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुरिति तन्न,

◆ हेमलता ◆

एतेन चित्रत्वावच्छिन्नं प्रत्येव स्वविजातीयत्व-स्वसमवेतत्वोभयसम्बन्धेन रूपसमवायिकारणविशिष्टरूपासमवायिकारणत्वेन हेतुता। रूपासमवायिकारणत्वञ्च जनकताविशेषसम्बन्धेन रूपवत्त्वमेवेत्यपि निरस्तम् कारणतावच्छेदकगौरवे महागौरवात्।

ननु समवायेनावयविनि चित्ररूपं क्वचित् स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलपीतोभयस्य पीतरक्तोभयादेर्वा सत्त्वे जायते क्वचिच्च समवायेन विजातीयरूप-विजातीयरूपजनकपाकयोः सत्त्वे उपजायते। अतस्तदनुरोधेन लाघवात् स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकानां नीलपीतोभय-पीतरक्तोभयाभावादीनां समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकानां विजातीयरूप-विजातीयरूपजनकोभयाभावादीनां स्वरूपसम्बन्धेन यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक एक एवाभावः समवायेन चित्रसामान्यं प्रति हेतुरित्याशयवता मतं स्वण्डयितुमुपदर्शयति-यत्त्विति। तन्नेत्यन्तोऽग्रेऽन्यान्वयः। विभावितप्रायमेतत् तथापि विशेषभावनया क्रिया - नीलपीतकपालद्वयारब्धे घटे स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य नीलपीतोभयाभावस्य स्वरूपसम्बन्धेन विरहात् निरुक्तयावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽभावः स्वरूपसम्बन्धेन नास्ति इति तत्र समवायेन चित्रोत्पत्तिः सुवचा। नीलकपालद्वयारब्धे घटे तु स्वरूपसम्बन्धेन निरुक्ता नीलपीतोभयाभावादयः विजातीयरूप-विजातीयरूपजनकपाकोभयाभावादयश्च वर्तन्ते इति स्वरूपसम्बन्धेन निरुक्तयावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्याऽभावस्य विरहेण चित्ररूपं नोपजायते कारणविरहे कार्योत्पादायोगात्। नीलकपालद्वयारब्धे घटे केवलं प्रथमनीलकपालावच्छेदेन समवायेन पीतरूपजनक-विजातीयपाकसत्त्वदशायां तु समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य नीलरूपलक्षणविजातीयरूप-तद्विजातीयपीत- रूपजनक-पाकोभयाभावस्य स्वरूपसम्बन्धेन विरहेण निरुक्तयावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्याभावस्य स्वरूपेण सत्त्वात् समवायेन चित्रोत्पत्तिर्निराबाधा। ततश्च समवायेन चित्रत्वावच्छिन्नं प्रति दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन निरुक्तयावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्याभावस्यैकस्यैव तादृशाभावत्वेन हेतुतेति यत्तुमताभिप्रायः. एतत्कल्पेऽवयविनि स्वरूपजनकः पाकः स्वीक्रियते।

► वल्लभा ◄

घट की उत्पत्ति नील और पीत कपाल से होती है तब उस घट में विजातीय चित्ररूप की, जो रूपमात्रजन्य है, उत्पत्ति होती है, क्योंकि कपालगत नीलरूप से अन्यकपालगत पीतरूप विशिष्ट बनता है। वह इस तरह, स्वपद से ग्राह्य है कपालगत नीलरूप, उसमें वृत्ति चित्रत्वभिन्न धर्म नीलत्व, रूपत्व आदि। उनसे भिन्न धर्म है पीतत्व, जिसका समवाय सम्बन्ध से आश्रय है अन्यकपालगत पीत रूप। अतः स्वविजातीयत्व सम्बन्ध से नीलरूपविशिष्ट पीत रूप बनता है। इस तरह दूसरे सम्बन्ध का घटकीभूत स्वपदार्थ है कपालगत नीलरूप, जिसका समवाय सम्बन्ध से आश्रय है नील कपाल। उसमें समवाय सम्बन्ध से घट द्रव्य रहता है जिसका समवाय सम्बन्ध से आश्रय है पीत कपाल। उस पीत कपाल में वृत्ति है पीत रूप। अतः स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवायिवृत्तित्व सम्बन्ध से नीलरूपविशिष्ट पीतरूप हो सकता है। इस तरह उपर्युक्त दो सम्बन्धों से रूपविशिष्टरूप, जो कि समवाय सम्बन्ध से उस घट में रहता है। अतः उस घट में रूपमात्रजन्य चित्ररूप की समवाय सम्बन्ध से उत्पत्ति हो सकती है। यहाँ इस शंका का कि → 'विशिष्टघटक स्वत्व पदार्थ अननुगत होने से यह कार्यकारणभाव मान्य नहीं हो सकता' ← समाधान यह है कि स्वत्व का यहाँ सम्बन्धशरीर के मध्य में निवेश किया जाता है न कि कारणतावच्छेदकधर्मादि के शरीर में। सम्बन्ध में अननुगम दोषरूप होता नहीं है। इसलिए यह कार्यकारणभाव निर्दोष ही है।

▼ यावत्त्वावच्छिन्नाभावविशेष में चित्ररूपकारणता अश्रद्धेय ▼

यत्तु०। यहाँ अन्य विद्वानों का यह कथन है कि → नील-पीत एवं पीत-रक्त आदि स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से जिसमें रहते हैं उसमें समवाय सम्बन्ध से चित्ररूप की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार जिसमें विजातीयरूप और विजातीयरूपजनक पाक समवाय सम्बन्ध से रहते हैं उसमें भी चित्र रूप की समवाय सम्बन्ध से उत्पत्ति होती है। वह इस तरह-नीलकपालद्वय से आरब्ध घट में किसी एकअवयवावच्छेदेन विजातीयरूपजनक पाक होने पर चित्र रूप समवाय सम्बन्ध से घट में उत्पन्न होता है। इन सभी स्थितिओं के संग्रहार्थ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलपीतोभयाभाव, पीतरक्तोभयाभाव आदि और समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक विजातीयरूप-विजातीयरूपजनकपाकोभयाभाव आदि का जो यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव, सर्वत्र समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले चित्ररूप सामान्य के प्रति दैशिकविशेषणताविशेष(स्वरूप) सम्बन्ध से कारण है। मतलब यह है कि जहाँ समस्त ये अभाव रहेंगे वहाँ यावत्अभाव का अभाव नहीं होने से कारण का बाध होने की वजह समवाय सम्बन्ध से चित्र रूप की उत्पत्ति नहीं होगी। जहाँ इन अभावों में से कोई एक अभाव न होगा, जैसे नीलपीतकपाल से घटोत्पत्तिस्थल में घट में स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्न नीलपीतोभयाभाव

प्रसिद्धान्वयव्यतिरेकग्रहविषयतावच्छेदकरूपणैव कारणत्वौचित्याद्, अन्यथा प्रायशोऽन्यत्राऽप्यभावविशेषस्यैव हेतुत्वप्रसङ्गात्।

परे तु चित्रत्वावच्छिन्ने रूपत्वेनैव हेतुता नीलपीतोभयारब्धवृत्तिचित्रत्वावान्तरवैलक्षण्यावच्छिन्ने च नीलत्वेन पीतत्वेन च हेतुता, एवं त्रितयारब्धे तत्तत्त्रितयत्वेन, नीलपीतोभयादिमात्रारब्धे च नीलपीतान्यतराद्यीतररूपत्वेन प्रतिबन्धकत्वान्न

◆ हेमलता ◆

तन्निराकरोति - तन्नेति। प्रसिद्धान्वयव्यतिरेकग्रहविषयतावच्छेदकरूपेणैव कारणत्वोचित्यात् = कार्यान्वयव्यतिरेकप्रयोजकौ प्रसिद्धौ यावन्वयव्यतिरेकौ तद्विषयकज्ञाननिरूपितविषयताया यदवच्छेदकरूपं तदवच्छिन्नाया एव कारणताया स्वीकारस्य न्याय्यत्वात्। निरुक्ताखण्डाभावत्वेन तु नान्वयव्यतिरेकग्रह इति न तादृशाभावत्वावच्छिन्नकारणताया स्वीकार उचितः। विपक्षबाधमाह- अन्यथेति। कार्यान्वयव्यतिरेकप्रयोजकप्रसिद्धान्वयव्यतिरेकग्रहविषयतानवच्छेदकावच्छिन्नाया कारणताया स्वीकारे, प्रायश अन्यत्र = अनलादिकारणतास्थले अपि अभावविशेषस्य तृणाभावमण्यभावादीना तृणारण्युभयाभावारणिमण्युभयाभावादीना यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्यैकस्याऽभावस्य एव हेतुत्वप्रसङ्गात्। प्रतियोगिकोटौ चोदासीनप्रवेशाप्रवेशाभ्या विनिगमनाविरहस्य दुर्वारत्वादित्यन्यत्र विस्तर।

परे तु चित्रत्वावच्छिन्ने = समवायेन चित्रसामान्य प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपत्वेनैव यद्यपि हेतुता तथापि प्रसिद्धान्वयव्यतिरेकाभ्या नीलपीतोभयारब्धवृत्तिचित्रत्वावान्तरवैलक्षण्यावच्छिन्ने = नीलपीतोभयावयवसमवेतावयविसमवेतचित्रमात्रवृत्तिचित्रत्वव्याप्यवैजात्यावच्छिन्न प्रति च स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन तत्तत्त्रितयत्वेन = नील- पीत - रक्तादित्रितयत्वेन हेतुतेत्यत्रानुवर्तते। उपलक्षणात् चतुष्कारब्धे तच्चतुष्कत्वेनासमवायिकारणतेत्यादि गम्यम्।

नन्वेवं सति नील-पीत-रक्तत्रितयजन्यतावच्छेदकचित्रत्वव्याप्यवैजात्यावच्छिन्नचित्ररूपवति घटादौ नीलपीतोभयादिजन्यतावच्छेदकचित्रात्वावान्तरवैलक्षण्यावच्छिन्नचित्रापत्तिरपि दुर्वारा, तत्र स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलपीतोभयादे सत्त्वात्। न च रूपत्वावच्छिन्नस्य व्याप्यवृत्तित्वेनैक चित्ररूपवत्यपरचित्ररूपोत्पाद्यापत्त्ययोगादिति वाच्यम्, तथापि तादृशद्विविधसामग्रीसत्त्वे प्रथममुभयजन्य चित्रमाहोस्वित्त्रितयजन्य जनयितव्य ? इत्यत्राविनिगमादित्याशङ्कायामाह - नीलपीतोभयादिमात्रारब्धे = नीलपीतोभयमात्रजन्यतावच्छेदकचित्रत्वव्याप्यवैजात्यावच्छिन्न प्रति च नीलपीतान्यतरादीतररूपत्वेन स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन प्रतिबन्धकत्वात् न त्रितयारब्धचित्रवति = समवायेन नीलपीतरक्तादित्रितयासमवायिकारणकचित्ररूपविशिष्टे

► वल्लभा ◄

नही होगा। अत वहाँ उपर्युक्त सभी अभावो का यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव स्वरूपसम्बन्ध से होने की वजह समवाय सम्बन्ध से चित्ररूप की उत्पत्ति होने मे कोई बाधा होती नही है'←

तन्न प्र०। मगर प्रकरणकार श्रीमद्जी इस मत को यह कह कर असगत बताते है कि कारणता का स्वीकार उसी रूप से करना उचित है जो रूप(धर्म) प्रसिद्ध अन्वय-व्यतिरेक के ज्ञान की विषयता का अवच्छेदक हो। मतलब कि कार्य का अन्वय-व्यतिरेक जिस अन्वय- व्यतिरेक का अनुसरण करता है उसके प्रतियोगी का येन रूपेण अन्वय-व्यतिरेकज्ञान मे अवगाहन हो उसी रूप से अवच्छिन्न कारणता का स्वीकार करना उचित है। जैसे घट के अन्वय-व्यतिरेक दण्डान्वय-व्यतिरेकाधीन होने से दण्डप्रतियोगिकान्वय-व्यतिरेकगोचर ज्ञान मे दण्ड का दण्डत्वेन रूपेण ही भान होता है न कि पृथ्वीत्व-द्रव्यत्वादिरूप से। अत वहाँ तादृशज्ञानविषयतावच्छेदक दण्डत्व धर्म से ही घटनिरूपितकारणता अवच्छिन्न होती है - यह तो सर्वविदित है। प्रस्तुत मे चित्ररूपात्मक कार्य का अन्वय-व्यतिरेक जिस अन्वय-व्यतिरेक का अनुविधान करता है उसका प्रदर्शित यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेन रूपेण भान होता नही है। प्रसिद्धान्वयव्यतिरेकगोचर ज्ञान की विषयता का अवच्छेदक न होने से तादृशयावत्त्वावच्छिन्नाभावत्व चित्ररूपकारणता का अवच्छेदक हो सकता नही है। यदि प्रसिद्ध अन्वय-व्यतिरेक के ज्ञान की विषयता का जो धर्म अनवच्छेदक हो उस धर्म से अवच्छिन्न कारणता का स्वीकार किया जाय तब तो अन्यत्र तृण-मणिआदिसपाद्य वह्नि आदि स्थल मे भी अभावविशेष यानी यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव ही कारण बन जायेगा। इसलिए तादृशाभाव को चित्र रूप का कारण मानना नामुनासिब है।

► विभिन्न चित्ररूप की विभिन्नकारणता - मतविशेष ◄

परे०। यहाँ अन्य विद्वानो का यह मत है कि - 'चित्रसामान्य के प्रति रूपत्वेन रूपसामान्य कारण है। मगर सब चित्ररूप समान होते नही है। जैसे नीलपीतकपाल से उत्पन्न घट के चित्र रूप मे, रक्तपीतकपालद्वय से आरब्ध घट के चित्ररूप मे एव नील-पीत-रक्त कपालत्रितय से जन्य घट के चित्र रूप मे वैलक्षण्य अनुभवसिद्ध है। अत अन्वय-व्यतिरेक से नीलपीतउभयकपालजन्य घट मे समवेत चित्रत्वव्याप्यवैलक्षण्य(जातिविशेष)अवच्छिन्न के प्रति नील और पीत रूप हेतु होते है। एव नील-पीत-रक्त कपालत्रितय से आरब्ध घट मे वृत्ति चित्रत्वव्याप्यजातिविशेषावच्छिन्न के प्रति नील-पीत-रक्त की नील-पीत-रक्तत्रितयत्वेन कारणता है। यहाँ इस

त्रितयारब्धचित्रवति द्वितयारब्धचित्रप्रसङ्ग'। न चैव गोरव, प्रामाणिकत्वात्।

वस्तुत समवायेन द्वितयजचित्रादौ स्वाधिकरणपर्याप्तवृत्तिकत्वसम्बन्धेनैव द्वितयादीना हेतुत्वम्। नातः प्रागुक्तप्रतिबन्धकत्वकल्पनागौरवम्।

◆ हेमलता ◆

द्वितयारब्धचित्रप्रसङ्ग =नीलपीतोभयायसमवायिकारणकचित्रापत्ति , नीलपीतरक्तादिकपालत्रितयारब्धघटे स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलपीतान्यतरेतरस्य रक्तरूपस्य द्वितयजचित्रविशेषप्रतिबन्धकस्य सत्त्वात्। न हि प्रतिबन्धकसत्त्वे कार्यमुत्पत्तुमर्हति। एव नीलपीतरक्तादित्रितयमात्रारब्धचित्रे च नीलपीतरक्तान्यतमेतररूपस्य प्रतिबन्धकत्वात्र रूपचतुष्कारब्धचित्रवति समवायेन त्रितयमात्रजविजातीयचित्ररूपोत्पादप्रसङ्ग इत्यादिक स्वधियोहनीयम्। न च एव = चित्रत्वव्याप्यनानावैजात्य-तदवच्छिन्ननिरूपितनानाकारणता-प्रतिबन्धकतादिकल्पने गौरव इति वाच्यम्, प्रामाणिकत्वात्। न हि विशदतरकार्यविशेषप्रतीतौ कल्पनागौरवभयादेव तदपाकर्तुं शक्यते, अद्वैतवादप्रसङ्गात्।

अत्र नीलतर-नीलतमोभयत्वादिना तदुभयजन्यचित्र प्रत्यपि हेतुता वाच्या, तत्प्रति च नीलतर-नीलतमान्यतमेतररूपत्वेन प्रतिबन्धकता, तेन न नीलपीतोभयारब्धचित्रवति तदापत्ति। रूपजरूप प्रत्येव विजातीयाग्निसयोगस्य प्रतिबन्धकत्वाच यत्रकावयवे नीलमपरत्र च पीत तदन्यत्र च श्वेतजनकाग्निसयोगस्तदवयविनि द्वितयासमवायिकारणकचित्रोत्पादायापत्तिर्नेति ध्येयम्।

प्रकृतकल्पे चित्रत्वावच्छिन्ने स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपत्वेन हेतुत्व, विजातीयचित्रत्वावच्छिन्ने नीलपीताद्युभयत्वेन हेतुत्व तदन्यतमेतररूपत्वेन च प्रतिबन्धकत्व, विजातीयचित्रत्वावच्छिन्ने नीलपीतरक्तादित्रितयत्वेन हेतुत्व तदन्यतमेतररूपत्वेन च प्रतिबन्धकत्व, विजातीयचित्रत्वावच्छिन्ने रूपचतुष्कत्वेन हेतुत्व तदन्यतमेतररूपत्वेन च प्रतिबन्धकत्व, विजातीयचित्रत्वावच्छिन्ने च रूपपञ्चकत्वेन हेतुत्व तदन्यतमेतररूपत्वेन च प्रतिबन्धकत्व, विजातीयचित्रत्वावच्छिन्ने च रूपषट्कत्वेन हेतुत्व तदन्यतमेतररूपत्वेन च प्रतिबन्धकत्व, रूपमात्रजरूपत्वावच्छिन्ने च विजातीयतेजःसयोगत्वेन प्रतिबन्धकत्वमित्येव गुरुतरकल्पनाया प्रमाणप्रवृत्तिपूर्वमेवोपस्थितत्वेन निरुक्तगौरवस्य फलाभिमुखत्वायोगादित्याशङ्कायामाह - वस्तुत इति। समवायेन द्वितयजचित्रादौ = रूपद्वितयमात्रजन्यचित्रादिक प्रति, आदिपदेन रूपत्रितयजन्यचित्रादिग्रहणम्, स्वाधिकरणपर्याप्तवृत्तिकत्वसम्बन्धेनैव द्वितयादीना हेतुत्वम्। प्रकृते कारणतावच्छेदक द्वितयत्वादिक न तु प्रत्येक नीलत्व-पीतत्वादिक, नीलपीतकपालद्वयजन्यघटेऽपि द्वितयजचित्रानापत्ते घटे निरुक्तसम्बन्धेन प्रत्येकाऽवृत्ते, घटस्य प्रत्येक कपालेऽपर्याप्तत्वात्, अन्यथा द्वाभ्या कपालाभ्या द्वौ घटौ जायेताम्। अत्र स्वपदेन रूपद्वितयादेर्ग्रहणम्। तस्य पर्याप्तिसम्बन्धेनाधिकरण कपालद्वयम्। कपालद्वयारब्धो घट पर्याप्तिसम्बन्धेन तत्रैव वर्तते न तु कपालत्रितयादौ । अतो नीलपीतोभयकपालारब्धघटस्य रूपद्वितयपर्याप्त्यधिकरणीदभूतकपालद्वयपर्याप्तवृत्तिकत्वात् नीलपीतद्वितय स्वपर्याप्त्यधिकरणपर्याप्तवृत्तिकत्वसम्बन्धेन तत्रैव घटे वर्तते। अत एव नील-पीत-रक्तत्रितयारब्धचित्राश्रयीभूते घटे द्वितयजोत्पादप्रसङ्गोऽपि परिहत नील-पीत-रक्तकपालत्रितयारब्धघटस्य त्रितयपर्याप्त्यधिकरणकपालत्रितयपर्याप्तवृत्तिकत्वेन नीलपीतद्वितयस्य स्वपर्याप्त्यधिकरणपर्याप्तवृत्तिकत्वसम्बन्धेन तस्मिन् घटेऽसत्त्वात्। न अत = निरुक्तकार्यकारणभावाभ्युपगमात् प्रागुक्तप्रतिबन्धकत्वकल्पनागौरव =नीलपीतोभयजचित्रादौ नीलपीतान्यतरादीतररूपत्वेन प्रतिबन्धकत्वकल्पनागौरवप्रसङ्ग , निरुक्तरीत्या नीलपीतरक्तकपालत्रितयाद्यारब्धघटे निरुक्तसम्बन्धेन द्वितयादेरेव विरहेण द्वितयजचित्रानापत्ते तादृशप्रतिबन्धकत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्। चित्र प्रति चित्रेतरसामग्रीत्वेन

► वल्लभा ◄

शका का कि → 'नील-पीत-रक्तकपालत्रिक से जन्य घट मे नील-पीतोभयजन्य चित्र रूप भी क्यो उत्पन्न होता नही है ?' ← समाधान यह है कि नीलपीतोभयमात्रजन्य चित्ररूपविशेष के प्रति नील-पीतान्यतरादि से भिन्न रक्तादिरूप प्रतिबन्धक होता है। यहाँ यह शका कि → 'चित्रत्वव्याप्य अनेक वैजात्य की एव विभिन्न कार्य-कारणभाव, प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव की कल्पना का गौरव प्रसक्त होने से यह मतविशेष अश्रद्धेय है' ← इसलिए निराधार है कि यह गौरव प्रामाणिक होने से दोषात्मक नही है। प्रामाणिकता इसलिए है कि नील-पीतोभयमात्रजन्य चित्ररूप, नील-पीत-रक्तत्रितयजन्य चित्र आदि मे वैलक्षण्य अनुभवसिद्ध है। अबाधित प्रत्यक्ष प्रमाण से प्रतीत वस्तु का अपलाप किया जा नही सकता। अतएव तदनुसार कार्यकारणभाव एव प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव की कल्पना का गौरव भी फलमुख होने से निर्दोष है'।

वस्तुतः। मगर वस्तुस्थिति को लक्ष्य मे ली जाय तो समवाय सम्बन्ध से विजातीयरूपद्वयजन्य चित्ररूप आदि के प्रति विजातीयरूपद्वितय स्वपर्याप्त्यधिकरणपर्याप्तवृत्तिकत्व सम्बन्ध से ही कारण बनता है। ऐसा कार्यकारणभाव मानने का लाभ यह है कि नीलपीतादिविजातीयरूपद्वितयारब्ध चित्ररूप के प्रति नीलपीतान्यतरेतररूप को प्रतिबन्धक मानने की जरूरत रहती नही है, क्योकि नील-पीत-रक्तादिकपालत्रितयारब्ध घट कपालत्रितय मे पर्याप्तिसम्बन्ध से वृत्ति होने से उस घट मे नील-पीतरूपद्वितय का स्वपर्याप्त्यधिकरणपर्याप्तवृत्तिकत्वसम्बन्ध बाधित है। मतलब कि नील-पीत रूपद्वय का उक्त सम्बन्ध नीलपीतकपालद्वयजन्य घट मे रहता है, न कि नील-पीत-रक्तकपालत्रितयसमवेत घट मे। अतएव नील-पीत-रक्तकपालत्रितयजन्य घट मे नीलपीतोभयमात्रजन्य चित्ररूप की आपत्ति नही होगी। इस तरह प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव

उच्छृङ्खलास्तु नीलपीतरक्ताद्यारब्धघटादौ नीलपीतरक्तादेव नीलपीतोभयजपीतरक्तोभयज-तत्त्रितयजचित्राणामुत्पत्तिः, सर्वेषा सामग्रीसत्त्वात्। न चैकमेव तदस्त्विति वाच्यम्, तत्तदवयवद्वयमात्राद्यवच्छेदेनेन्द्रियसन्निकर्षे विलक्षण-विलक्षणचित्रोपलम्भात्। जातेरव्याप्यवृत्तित्वे पुनरस्त्वेकमेव तत्, किञ्चिदवच्छेदेन तत्र नीलत्व-पीतत्व-रक्तत्वविलक्षणचित्रत्वादिसम्भवादित्याहु· ।

◆ हेमलता ◆

प्रतिबन्धकत्वात्र नीलमात्रारब्धे चित्रापत्ति.। न चैव नीलपीतोभयकपालारब्धघटे नीलापत्तिरिति वाच्यम्, स्वाश्रयसम्बन्धेन नील प्रति स्वव्यापकसमवायेनेव नीलादेर्हेतुत्वात्। एतेन नीलादौ नीलेतररूपादे· प्रतिबन्धकत्वमपि प्रत्युक्तम्। न च तथापि तत्र समवायेन नीलापत्ति., स्वाश्रयसम्बन्धेन नीलसामग्र्या समवायेन नीलसामग्रीव्यापकत्वादित्यन्यत्र विस्तर ।

उच्छृङ्खलास्तु इति। अस्याग्रे आहुरित्यनेनान्वयः। नीलपीतरक्ताद्यारब्धघटादौ = नील-पीत-रक्तादिकपालत्रितयसमवेतघटादौ नीलपीतरक्तादेव = स्वावयवसमवेतेभ्यो नीलपीतरक्तरूपादिभ्य एव नीलपीतोभयज-पीतरक्तोभयज-तत्त्रितयजचित्राणा = नीलपीतोभयजन्यतावच्छेदकविलक्षणचित्रत्वावच्छिन्नस्य पीतरक्तोभयकार्यतावच्छेदकविजातीयचित्रत्वविशिष्टस्य नीलरक्तोभयरूपनिरूपितजन्यतावच्छेदकचित्रत्वव्याप्यवैजात्यवतो नील-पीत-रक्तत्रितयकार्यतावच्छेदकचित्रत्वविशेषाश्रयस्य च समवायेन उत्पत्ति, सर्वेषा एव निरुक्तचित्राणा सामग्रीसत्त्वात्। न च लाघवात् तत्र एकमेव त्रितयज तत् = चित्ररूप अस्त्विति वाच्यम् तत्तदवयवद्वयमात्राद्यव- च्छेदेन नीलपीतकपालद्वयावच्छेदेन पीतरक्तकपालद्विकावच्छेदेन रक्तनीलकपालद्वितयावच्छेदेन च विलक्षण-विलक्षणचित्रोपलम्भात् = मिथो विजातीय-विजातीयचित्ररूपाणामबाधितानुभवात्। इयास्तु विशेष तत्रावयविनि त्रितयजचित्र व्याप्यवृत्ति अन्यत्तु चित्रमव्याप्यवृत्ति। तेन न नीलपीतकपालावच्छेदेन घटे चक्षुसन्निकर्षसत्त्वे पीतरक्तादिजन्यविजातीयचित्रोपलम्भप्रसङ्ग.।

नानाजातीयचित्ररूप-तत्प्रागभाव-प्रध्वसादिकल्पनाया गौरवात्स्वमतानुसारेण कल्पान्तरमाहुः - जातेरव्याप्यवृत्तित्वे स्वीक्रियमाणे पुनरस्त्वेकमेव तत् चित्ररूप समवायेन घटादौ। न चैव जातेर्व्याप्यवृत्तित्वनियमो भज्येतेत्यारेकणीयम्, अव्याप्यवृत्तिगुणविशेषाणामिव जातिविशेषाणामप्यव्याप्यवृत्तित्वे विरोधाभावात्, परस्परव्यभिचारीजात्योः सामानाधिकरण्यस्य बाधकविरहसत्तर्कप्रमाणसिद्धस्यानभ्युपगममात्रेण निराकरणाऽसम्भवात्। अत एव किञ्चिदवच्छेदेन = विभिन्नावयवावच्छेदेन तत्र = एकस्मिन् चित्ररूपे नीलत्व-पीतत्व-रक्तत्वविलक्षणचित्रत्वादिसम्भवादिति। नीलपीतरक्तकपालत्रितयारब्धघटसमवेतचित्ररूपे नीलकपालावच्छेदेन नीलत्वस्य, पीतकपालावच्छेदेन पीतत्वस्य, रक्तकपालावच्छेदेन रक्तत्वजातेः, नीलपीतकपालावच्छेदेन विलक्षणचित्रत्वस्य, पीतरक्तकपालावच्छेदेन चित्रत्वावान्तरवैजात्यस्य रक्तनीलकपालावच्छेदेन चित्रत्वव्याप्यवैजात्यस्य, नीलपीतरक्तकपालावच्छेदेन च चित्रत्वन्यूनवृत्तिजातिविशेषस्य प्रतीतिव्यवहारौ सम्भवत इत्याहु ।

▶ वल्लभा ◀

की कल्पना के गौरव का परिहार हो जाता हे।

■ एकत्र अनेक चित्ररूप का स्वीकार - उच्छृखलमत ■

उच्छृ । किसी भी दार्शनिक या साम्प्रदायिक शृङ्खला मे बद्ध न होनेवाले उच्छृङ्खल विद्वानो का यह कथन है कि → 'नील, पीत, रक्त आदि कपालो से आरब्ध घट आदि मे नीलपीतोभयजन्य, पीतरक्तोभयजन्य, रक्तनीलरूपोभयजन्य एव नील-पीत-रक्तरूपत्रितयजन्य इन सभी चित्ररूपो की उत्पत्ति होती है, क्योकि उक्त घट आदि मे इन सब चित्ररूपो की सामग्री विद्यमान है। उक्त घट मे किसी एक चित्र रूप की उत्पत्ति मानी जा नही सकती, क्योकि भिन्न भिन्न अवयवद्वितयावच्छेदेन इन्द्रियसन्निकर्ष होने पर विलक्षण - विलक्षण चित्र रूपो का अनुभव होता है। नील-पीतकपालावच्छेदेन चक्षुसन्निकर्ष होने पर जिस चित्र रूप का भान होता हे उससे विलक्षण चित्र रूप का अनुभव पीत-रक्तकपालावच्छेदेन चक्षुसन्निकर्ष होने पर होता है- यह तो निर्विवादसिद्ध है। अत इस सार्वलोकिक अनुभव के विरुद्ध केवल लाघवमात्र से वहाँ सिर्फ एक चित्र रूप का स्वीकार किया जा नही सकता।

जाते । यदि जाति को अव्याप्यवृत्ति मानी जाय तब तो नील-पीत-रक्त कपाल त्रितयारब्ध घट मे केवल एक चित्ररूप का भी स्वीकार किया जा सकता है। अत तादृश घट मे केवल एक रूप होने पर भी उस घट के चित्ररूप मे नीलकपालावच्छेदेन नीलत्व, पीतकपालावच्छेदेन पीतत्व, रक्तकपालावच्छेदेन रक्तत्व नीलपीतकपाल अवच्छेदेन विलक्षणचित्रत्व, पीतरक्तकपालावच्छेदेन अन्य विलक्षणचित्रत्व, नील-पीत-रक्तत्रितयकपालावच्छेदेन अन्य विलक्षणचित्रत्व आदि का ज्ञान एव व्यवहार मुमकिन हो सकता है।'←

▶ अवान्तर चित्ररूप अस्वीकार्य - नवीन नैयायिक ◀

अत्र वदन्ति०। उपर्युक्त वक्तव्य के खिलाफ कतिपय नेयायिको का यह वक्तव्य हे कि चित्र रूप एक ही होता है। अवान्तर

अत्र वदन्ति० नीलविशिष्टपीतादिना नीलपीतोभयादिना वाऽवान्तरचित्रबुद्धिसम्भवान्नावान्तरचित्रसिद्धिः चित्रत्वेन समम-वान्तरचित्रत्वसामानाधिकरण्यप्रत्ययस्यापि नीलपीतविशिष्टचित्रत्वसामानाधिकरण्यावगाहित्वात्।

वस्तुतो नीलाद्यविशेषितनीला- दिभेदाश्रयरूपसमुदायेनानुगतचित्रप्रतीतिसम्भवाच्चित्रत्वसामान्यमप्यसिद्धमेवेति।

◆ हेमलता ◆

चित्रत्वव्याप्यजात्यमनङ्गीकुर्वन्त अत्र वदन्ति - नीलपीतरक्तादिकपालारब्धघटचित्ररूपे स्वसमवायिसमवेतसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन यद्वा सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन नीलविशिष्टपीतादिना स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन यद्वा समवायेन नीलपीतोभयादिना वाऽवान्तरचित्रबुद्धिसम्भवान्नावान्तरचि-त्रसिद्धिः पीतविशिष्टनीलादिना विनिगमनाविरहात् कल्पान्तरप्रदर्शनं कृतम्। चित्ररूपस्य चित्रत्वव्याप्यवैजात्यशून्यस्यैकत्वेऽपि नीलपीतोभयत्वादिना अवान्तरचित्रत्वबुद्धिकारणतायाः सम्भवेन नावान्तरचित्ररूपाणां चित्रत्वव्याप्यजातिविशेषाणां वा कल्पना युक्ता। नीलपीतकपालद्वयावच्छेदेनेन्द्रियसन्निकर्षे तत्र नीलपीतोभाभ्यां विलक्षणचित्रप्रतीतिः पीतरक्तकपालद्वितयावच्छेदेन चक्षुःसन्निकर्षे तत्र पीतरक्तोभाभ्यां विलक्षणचित्रप्रतीतिः रक्तनीलकपालद्विका-वच्छेदेन नयनसन्निकर्षे तत्र रक्तनीलाभाभ्यामवान्तरचित्रधीः नीलपीतरक्तकपालत्रितयावच्छेदेन च तत्र नीलपीतरक्तरूपत्रिकेन विलक्षणचित्रबुद्धिः सम्भवन्ति। ततो न तदनुरोधेनाऽवान्तरनानाचित्ररूप-तद्वैजात्यकल्पनाऽऽवश्यकी, गौरवात् प्रयोजनविरहाच्च।

नन्ववान्तरचित्ररूपानङ्गीकारे चित्रत्वेन साकमवान्तरचित्रत्वप्रतीतिर्न स्यात्, समानाधिकरणचित्ररूपद्वयानङ्गीकारादित्याशङ्कया आहुः- चित्रत्वेन सम अवान्तरचित्रत्वसामानाधिकरण्यप्रत्ययस्यापि = घटे नीलपीतरक्तकपालत्रितयावच्छेदेन चित्ररूपग्रहदशायां जायमानस्य नीलपीतादिकपालद्वयावच्छेदेन तत्रावान्तरचित्ररूपभानस्यापि, नीलपीतविशिष्टचित्रत्वसामानाधिकरण्यावगाहित्वात् = नीलपीतोभयादिविशिष्टत्वात्मकस्यैव चित्रत्वस्य सामानाधि-करण्यविषयीकरणाद् उपपत्तिः सुकरा।

वस्तुतः नीलाद्यविशेषितनीलादिभेदाश्रयरूपसमुदायेन = नीलादिप्रतियोग्यविशेषिता अखण्डा ये नीलादिभेदाः तदाश्रयाणि यानि पीतादिरूपाणि तेषां कूटेन एव अनुगतचित्रप्रतीतिसम्भवात् = चित्रत्वप्रकारकधियः उपपत्तेः नीलत्वादिजातिव्यतिरिक्तं चित्रत्वसामान्यमपि किमुत चित्रत्वव्याप्यवैजात्यं असिद्धं= अक्लृप्तत्वेन प्रमाणाऽगोचरं एवेति। नीलपीतकपालद्वयारब्धघटे नील-रक्तादिभेदाश्रयस्य पीतरूपस्य पीत-रक्तादिभेदाश्रयस्य नीलस्य च समुदायो वर्तते इति तेनैव तत्र चित्रत्वप्रकारकप्रतीत्युपपत्तेर्नास्त्येवातिरिक्तचित्र-तत्समवेतचित्रत्वजात्यादिकम्। शुक्लपीताद्यारब्धवृत्तिसमुदायप्रति-

▶ वल्लभा ◀

चित्र रूप नाम की कोई चीज इस दुनिया में नहीं है। फिर भी नीलपीतकपालारब्ध, पीतरक्तकपालारब्ध, नीलपीतरक्तकपालारब्ध घट आदि में अवान्तर चित्र रूप की यानी तत् तत् चित्र रूप में वैजात्य की प्रतीति होती है उसकी उपपत्ति तो नीलविशिष्टपीतरूप आदि में या नीलपीताभय आदि में भी हो सकती है। नीलपीतकपालावच्छेदेन नीलपीतोभय होने से विलक्षण चित्र रूप की प्रतीति होती है, नीलरक्तकपालावच्छेदेन नीलरक्ताभय होने से उससे विलक्षण चित्र रूप का भान होता है और नीलपीतरक्तकपालावच्छेदेन नील-पीत-रक्तत्रितय होने से तदवच्छेदेन इन्द्रियसन्निकर्ष होने पर विलक्षण चित्र रूप की ज्ञप्ति होती है। इसलिए चित्र रूप को एकविध मानना ही मुनासिब है। अतः चित्र रूप के अवान्तर भेदों की कल्पना अनावश्यक एवं गौरवग्रस्त होने से त्याज्य है। यहाँ यह शंका भी कि → 'चित्ररूप के अवान्तर कोई भेद नहीं है, तो एक चित्र रूप के आश्रय में दूसरे चित्र रूप की प्रतीति क्यों होती है ?' ← इसलिए निराधार हो जाती है कि चित्रत्व जाति के साथ अवान्तर चित्रत्व के सामानाधिकरण्य का अवगाहन करनेवाली जो प्रतीति लोगों को होती है वह भी नीलपीतविशिष्टचित्रत्व के सामानाधिकरण्य का अवगाहन करती है। मतलब कि नील-पीत-रक्तकपालारब्ध घट स्थल में कपालत्रितयावच्छेदेन प्रतीत चित्र रूप अधिकरण घट में नीलपीतकपालद्वितयावच्छेदेन अवान्तर चित्ररूप की प्रतीति होती है यानी प्रथम चित्रत्व के आश्रय में अवान्तरचित्रत्व की प्रतीति होती है उसे तो चित्रत्व के साथ नीलपीतरूपविशिष्टत्वात्मक चित्रत्व के सामानाधिकरण्य की अवगाही मानी जा सकती है। तदर्थ अवान्तर विजातीय चित्र रूप के स्वीकार की कोई आवश्यकता नहीं है।

◇ चित्रत्वजाति ही असिद्ध - नव्यनैयायिक ◇

वस्तुत । मगर वस्तुस्थिति को लक्ष्य में ली जाय तब तो चित्रत्वनामक कोई जाति ही नहीं है, क्योंकि नीलाद्यविशेषितनीलादिभेदों के आश्रयभूतरूपों के समुदाय से ही विजातीयरूपवदवयवारब्ध अवयवी में चित्रत्वप्रकारक प्रतीति की उपपत्ति मुमकिन है। जैसे नीलपीतकपालारब्ध घट में उन नील, पीत रूप का समुदाय रहता है जिनमें क्रमशः पीतादिभेद एवं नीलादिभेद रहता है। मगर पीतरूप में नीलादिभेद का अखण्डाभावत्वेन भान होता है। मतलब कि प्रतियोगी से अविशेषित ऐसे नीलादिभेदों के आश्रय पीतरूप और नीलरूप के समुदाय का आश्रय होने की वजह नीलपीतकपालारब्ध घट में चित्रत्वप्रकारक भान हो सकता है। 'इदं चित्रं' इत्याकारक अनुगत प्रतीति

तच्चिन्त्यम्, चित्रत्वजातेरनुभवसिद्धत्वेनापलापायोगात्, अन्यथा नीलादिप्रतीतेरपि भेदविशेषावगाहित्वेन नीलत्वादिकमपि विलीयेत, चित्रत्वग्रहे च परम्परयाऽवयवगतनीलेतररूप-पीतेतररूपादिमत्त्वग्रहो हेतुः। अत एव त्र्यणुकचित्रं चक्षुषा न गृह्यते

◆ हेमलता ◆

योगिरूपवृत्तिभेदानां नीलादिप्रतियोगिकत्वेन सर्वेषां भानं न भवति किन्त्वखण्डत्वेन अतो नीलाद्यविशेषितेति नीलादिभेदविशेषणम्। पीतमात्रारब्धेऽवयविनि चित्रत्वप्रकारकप्रतीत्यनुत्पत्तिनिर्वाहाय समुदायेति। 'चित्रोऽयमि'त्यनुगतप्रतीतिः स्वाश्रयत्व-स्वभिन्नरूपाश्रयत्वोभयसम्बन्धेन रूपवत्त्वावगाहिनीति तात्पर्यम्। ततो नीलादिरूपाऽसमवायिकारणको नीलगुण एवेति विधिकोटिस्थिताः केचन नव्यनैयायिकाः।

अक्षपादसम्प्रदायानुसारिणोऽत्र व्याचक्षते-तच्चिन्त्यमिति। चित्रत्वजातेरनुभवसिद्धत्वेनापलापायोगात्। एतेन नीलाद्यविशेषितनीलादिभेदाश्रयरूपसमुदायेनानुगतचित्रप्रतीतिसम्भवाच्चित्रत्वसामान्यमप्यसिद्धमिति प्रत्याख्यातम्। 'एकोऽयं चित्रो गुणः' इत्यादिसार्वजनीनप्रतीतेरेव। विपक्षबाधमाह - अन्यथा = स्वरसवाह्यनुभवसिद्धत्वेऽपि चित्रत्वप्रकारकप्रतीतेर्भेदविशेषावगाहित्वोपगमे, नीलादिप्रतीतेः = नीलत्वादिप्रकारकप्रतीतेः अपि भेदविशेषावगाहित्वेन पीताद्यविशेषितपीतादिभेदविषयकत्वेन नीलत्वादिकमपि विलीयेत 'अयं नीलः' इति प्रतीतेः 'अयं स्वप्रतियोगितावच्छेदकतत्तद्व्यक्तिभेदकूटाभाववत्त्वसम्बन्धेन भेदवान्' इत्येवमवगाहित्वेनाऽप्युपपत्तेः, तत्तद्व्यक्तिभेदकूटस्य संसर्गकोटौ प्रविष्टत्वेन तत्तद्व्यक्तिभानानपेक्षणात्। एतेन भेदस्य तत्तद्धर्मावच्छिन्नप्र- तियोगिताकत्वेन तादृशप्रतीतिविषयीकरणे प्रतियोगितावच्छेदकतयैव नीलत्वादिसिद्धिरपि प्रत्युक्ता, तत्तद्भेदात्मकतत्तद्व्यक्तित्वेन भाने तदनवकाशात्।

चित्रत्वग्रहे = चित्रत्वप्रकारकचाक्षुषप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति च परम्परया = स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन अवयवगतनीलेतररूप-पीतेतररूपादिमत्त्वग्रहः =चित्ररूपाश्रय-समवायिसमवेतनीलेतररूप-पीतेतररूपादिमत्त्वप्रकारकचाक्षुषसाक्षात्कारः हेतुः। न हि कपालगतनीलेतरपीतेतररूपादिचाक्षुषं विना कदापि घटनिष्ठचित्रे चित्रत्वप्रकारकलौकिकचाक्षुषसाक्षात्कारोदयो दृष्टचरः। अत एव = चित्रत्वप्रकारकलौकिकचाक्षुषं प्रति परम्परयाऽवयवगतनीलेतर-पीतेतररूपादिमत्त्वग्रहस्य हेतुत्वादेव, त्र्यणुकचित्रं = त्रसरेणुसमवेतं चित्ररूपं चक्षुषा न गृह्यते = साक्षात्क्रियते इत्याचार्यः = उदयनाचार्यः प्रोक्तवान्। द्व्यणुकस्यातीन्द्रियत्वेन तद्गतनीलेतररूप-पीतेतररूपादिचाक्षुषस्याऽप्यभावेन त्रुटिसमवेतचित्रगोचरचाक्षुषासम्भवस्ततः लौकिकविषयतासम्बन्धेन चित्रत्वप्रकारकचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्न-नीलेतररूपत्व-पीतेतररूपत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकचाक्षुषत्वेन लौकिकविषयतया कारणतेति फलितम्।

▶ वल्लभा ◀

का अर्थ है- यह स्वाश्रयत्व और स्वभिन्नरूपाश्रयत्वसम्बन्ध से रूपवान् है। अतः तदनुरोधेन चित्रनामक अतिरिक्त चित्ररूप के स्वीकार की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए चित्रत्वसामान्य ही प्रमाण से असिद्ध होता है तब चित्रत्वव्याप्य जाति की तो बात ही कहाँ?

अवयवगत नीलेतररूपादिग्रह चित्रत्वचाक्षुषजनक-उदयनाचार्य

तच्चिन्त्यम्। मगर यह वक्तव्य भी विचारणीय है। इसका कारण यह है कि विजातीयरूपवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी के रूप में चित्रत्वप्रकारक प्रतीति प्रसिद्ध एवं स्वारसिक होने से चित्रत्व जाति का अपलाप करना अनुचित है। यदि ऐसा न माना जाय तब तो जैसे चित्रप्रतीति की नीलाद्यविशेषितनीलादिभेदावगाहित्वेन उपपत्ति कर के चित्रत्वजाति का अपलाप किया जाता है ठीक वैसे ही नीलादि प्रतीति की भी पीताद्यविशेषितपीतरूपादिभेदविषयकत्वेन उपपत्ति कर के नीलत्वादि जाति का भी अपलाप सुकर हो जायेगा। मतलब यह है कि 'अयं नीलः' इत्याकारक प्रतीति नीलत्वादि भावात्मक धर्म को विषय न करती हुयी अनीलभेदादि को ही विषय करती है - ऐसा भी कहा जा सकता है। अतः 'अयं नीलः' का अर्थ होगा 'अयं अनीलभेदवान्' अथवा वह प्रतीति जितनी भेदव्यक्ति हैं तत्तद्व्यक्तिभेदकूटवद्भेद को स्वप्रतियोगितावच्छेदकाभाववत्त्व सम्बन्ध से भेदत्वेन विषय करती है। अर्थात् 'अयं नीलः' इस प्रतीति का अर्थ है 'अयं स्वप्रतियोगितावच्छेदकतत्तद्व्यक्तिभेदकूटाभाववत्त्वसम्बन्धेन भेदवान्'। इस प्रतीति में तत्तद्व्यक्तिभेदकूट का संसर्गकोटि में प्रवेश होने के सबब इस प्रतीति की उपपत्ति में तत् तत् व्यक्ति के ज्ञान की अपेक्षा रहती नहीं है। ऐसा माना जाय तब तो नीलत्व जाति ही विलीन हो जायेगी। अतः चित्रत्वजाति का स्वीकार करना योग्य ही है।

यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि चित्रत्वप्रकारक चाक्षुष प्रत्यक्ष के प्रति परम्परासम्बन्ध = स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से अवयवगत नीलेतररूप पीतेतररूप आदि का अवयवी में भान हेतु होता है। जैसे नीलपीतकपालद्वयारब्ध घट में स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नीलेतर पीतरूप एवं पीतेतर नीलरूप का ज्ञान होने पर ही घट में समवाय सम्बन्ध से विद्यमान चित्र रूप का चाक्षुष होता है। इसीलिए तो त्र्यणुक के चित्र रूप का चाक्षुष प्रत्यक्ष होता नहीं है, क्योंकि द्व्यणुक अप्रत्यक्ष होने से द्व्यणुकगत नीलेतररूप पीतेतररूप का भी परम्परासम्बन्ध से अवयवी में भान होता नहीं है- ऐसा उदयनाचार्य ने कहा है।

7

इत्याचार्याः। न च नीलेतररूपत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकग्रहो न हेतुर्नीलत्व-पीतत्वादिनाऽवयवगतनीलपीतादिग्रहेऽप्यवयविचित्रप्रत्यक्षादिति वाच्यम्, विलक्षणचित्रप्रत्यक्षे तेन तेन रूपेण तत्तद्ग्रहस्यापि हेतुत्वात्।

वस्तुतो नीलेतररूपत्वादिव्याप्यत्वेन नीलेतररूपत्व-पीतत्वाद्यनुगमान्न क्षतिः। त्रसरेणोश्चित्ररूपाऽग्रहे चतुरणुकचित्रप्रत्यक्षानुपपत्तेः नीलेतररूप-पीतेतररूपादिमदवयवावच्छेदेनेन्द्रियसन्निकर्षोऽवयवनीलानुगतनीलत्वादिग्रहविरोधिदोषाभावश्च हेतुः इति वदन्ति।

◆ हेमलता ◆

व्यतिरेकव्यभिचारशङ्कामपाकर्तुमुपक्षिपति - न चेति। वाच्यमित्यनेनास्यान्वयः। नीलेतररूपत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकग्रहः = स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्न-नीलेतररूपत्व-पीतेतररूपत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकचाक्षुषसाक्षात्कारः न लौकिकविषयतया चित्रत्वप्रकारकचाक्षुषं हेतुः, नीलत्व-पीतत्वादिनाऽवयवगत-नीलपीतादिग्रहे = स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्न-नीलत्व-पीतत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकचाक्षुषे सति अपि अवयविचित्रप्रत्यक्षात् = लौकिकविषयतयाऽवयविसमवेतचित्रत्वप्रकारकचाक्षुषोदयात्, नीलेतररूपत्व-पीतेतररूपत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकचाक्षुषं विनाऽपि निरुक्त-नीलत्वपीतत्वादिधर्मावच्छिन्नप्रकारताकचाक्षुषादप्यवयविचित्रत्वचाक्षुषोदयाद् व्यतिरेकव्यभिचार इति शङ्काकृदाशयः।

समाधत्ते - विलक्षणचित्रप्रत्यक्षे = विजातीये चित्रत्वप्रकारकचाक्षुषे तेन तेन रूपेण = नीलत्व-पीतत्वादिना तत्तद्ग्रहस्य अवयवगतनील-पीतादिचाक्षुषस्य अपि हेतुत्वात्। विजातीयं चित्रचाक्षुषं प्रति निरुक्तसम्बन्धावच्छिन्न-नीलेतररूपत्व-पीतेतररूपत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकचाक्षुषत्वेन कारणता विजातीये चित्रचाक्षुषे च तादृश-नीलत्व-पीतत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकचाक्षुषत्वेनेति कार्यकारणभावद्वयाभ्युपगमान्न व्यतिरेकव्यभिचार इति समाधानाशयः।

प्रकृतकल्पे चित्रचाक्षुषवृत्तिवैजात्यद्वय-कार्यकारणभावद्वयकल्पनागौरवादाह वस्तुत इति नीलेतररूपत्वादिव्याप्यत्वेन नीलेतररूपत्व-पीतत्वाद्यनुगमात् = चित्रचाक्षुषत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयचाक्षुषनिरूपितप्रकारतावच्छेदकीभूताना नीलेतररूपत्व-पीतत्वादीना अनुगमात् न क्षतिः = न गौरवम्। नीलेतररूपत्वादिव्याप्यत्वस्य तत्साधारण्यात् तदनतिप्रसक्तत्वाच्च प्रकृते न चित्रचाक्षुषत्वव्याप्यवैजात्यद्वयकल्पनं न वा तदधीनकार्यकारणभावद्वयकल्पनमिति तात्पर्यम्।

ननु 'त्र्यणुकचित्रं चक्षुषा न गृह्यते' इत्युदयनेनोक्तं तन्न चारु, त्रसरेणोः चित्ररूपाऽग्रहे = त्रुटिसमवेतचित्ररूपचाक्षुषानङ्गीकारे, चतुरणुक-चित्रप्रत्यक्षानुपपत्तेः नीलेतरत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकत्रसरेणुचित्रज्ञानरूपस्य चतुरणुकचित्रग्राहकस्य विरहात्। अवयवगतनीलेतररूप-पीतेतररूपा-दिमत्त्वग्रहविरहे कथं त्रुटिचित्रचाक्षुषं ? इत्याशङ्कायामाहुः - नीलेतररूप-पीतेतररूपादिमदवयवावच्छेदेन इन्द्रियसन्निकर्षः = चक्षुरिन्द्रियप्रत्यासत्तिः अवयवगतनीलानुगतनीलत्वादिग्रहविरोधिदोषाभावश्च = लौकिकविषयतया चित्रत्वप्रकारकचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुः। त्रुटौ

► वल्लभा ◄

न च नी०। यहाँ इस शंका का कि → 'नीलपीतकपालादि से आरब्ध घट में परम्परासम्बन्ध से अवयवगत नील, पीत आदि रूप का नीलत्व, पीतत्व आदि धर्म से ज्ञान होने पर भी अवयवी घट के चित्ररूप का प्रत्यक्ष होता है। मतलब कि नीलेतररूपत्वेन, पीतेतररूपत्वेन अवयवगत रूपों का भान न होने पर भी पीतत्व, नीलत्व आदि धर्म के पुरस्कार से अवयवगत रूपों का भान होने पर अवयवी के चित्ररूप का प्रत्यक्ष होता है। अतः नीलेतररूपत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताक ज्ञान को अवयवी के चित्ररूप के प्रत्यक्ष का कारण माना जा नहीं सकता, क्योंकि उपर्युक्त रीति से व्यतिरेक व्यभिचार प्रसक्त होता है' ← समाधान यह है कि विलक्षण चित्रप्रत्यक्ष के प्रति नीलत्व, पीतत्व आदि धर्मपुरस्कार से अवयवगत नील-पीतादिरूपों का ज्ञान भी हेतु होता है तथा विलक्षण चित्रप्रत्यक्ष के प्रति नीलेतररूपत्व-पीतेतररूपत्वादिधर्मपुरस्कार से अवयवगतपीत-नीलादिरूपों का ज्ञान हेतु होता है।

वस्तुत०। मगर वास्तविकता तो यह है कि उपर्युक्त द्विविध कार्यकारणभाव के स्वीकार की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि चित्रत्वप्रकारक चाक्षुष के जनक ज्ञान के प्रकारतावच्छेदकविधया अभिमत नीलेतररूपत्व, पीतत्व आदि धर्मों का नीलेतररूपत्वादिव्याप्यत्वेन अनुगम हो सकता है, क्योंकि वह उनमें साधारण एवं अनतिप्रसक्त धर्म है। अतः द्विविध कार्यकारणभाव के स्वीकार का गौरव दोष भी यहाँ क्षतिकारक नहीं होगा। मगर - 'त्रसरेणु के चित्ररूप का चाक्षुष होता नहीं है' - ऐसा माना जा नहीं सकता, क्योंकि त्रसरेणु के चित्ररूप का चाक्षुष साक्षात्कार न हो तब तो चतुरणुक के चित्ररूप का भी चाक्षुष प्रत्यक्ष अनुपपन्न हो जायेगा। इसलिए समीचीन पहलु तो यही है कि चित्रचाक्षुष के प्रति नीलेतररूप-पीतेतररूपादिविशिष्टावयवावच्छेदेन चक्षु सन्निकर्ष को कारण माना जाय। त्रसरेणु के नीलेतररूप-पीतेतररूपविशिष्टअवयवावच्छेदेन चक्षुसन्निकर्ष होने से त्रसरेणु के चित्ररूप के चाक्षुष की उपपत्ति हो सकती है। मगर अवयवगत नीलादिरूपों में अनुगत नीलत्वादि के चाक्षुष के विरोधी दोषों की उपस्थिति होने पर अवयवी के चित्ररूप का चाक्षुष होता नहीं है। अतः तादृश दोषों का अभाव भी उसके प्रति हेतु होता है। ← ऐसा भी कतिपय विद्वानों का कथन है।

अवयविनि साक्षान्नीलपीतादिग्रह एव तद्ग्रहहेतुः चित्रवति नीलपीतादिसमावेशस्य प्रामाणिकत्वे तत्प्रमाया इतरथापि तद्भ्रमस्य सम्भवादित्यप्याहुः ।

यत्तु अव्याप्यवृत्तिनीलादिकल्पे तादृग्नीलादिप्रत्यक्षे द्रव्यसमवेतप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न प्रत्यव्याप्यवृत्तिद्रव्यसमवेतप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न

◆ हेमलता ◆

तदवयवगतनीलेतररूप-पीतरूपादिग्रहविरहेऽपि नीलेतररूप-पीतेतररूपादिमदवयवावच्छिन्नचक्षुःसन्निकर्षस्य तादृशदोषाभावस्य च सत्त्वात्त्रसरेणुचित्रचाक्षुषमनपायम् । नीलेतरपीतेतररूपाश्रयपरमाणुद्वयारब्धे द्व्यणुके नीलेतरपीतेतररूपविशिष्टावयवावच्छिन्नचक्षुःसन्निकर्षसत्त्वेऽपि द्व्यणुकचित्रचाक्षुषानुदयात् अवयवगतनीलानुगतनीलत्वादिग्रहविरोधिदोषस्य तत्र प्रतिबन्धकत्वमवश्यकल्पनीयमेवति तादृशदोषाभावस्य प्रतिबन्धकाभावविधया तत्कारणत्वाभिधानम् । द्व्यणुकस्याऽप्रत्यक्षत्वेन परमाणुनीलाद्यनुगतनीलत्वादिग्रहविरोधिदोषस्य तत्र सत्त्व त्रुटेस्तु प्रत्यक्षत्वात्तदवयवगतनीलाद्यनुगतनीलत्वादिग्रहः सम्भवत्येवेत्यभ्युपगमान्न त्रसरेणुचित्रप्रत्यक्षानापत्तिः । निरुक्तदोषाभावसत्त्वेऽपि निमिलितनयनस्य समुन्मिलिनयनस्याऽपि केवलनीलेतररूपवदवयवावच्छिन्नचक्षुःसन्निकर्षवतः पुसो घटादिचित्रचाक्षुषानुदयात् नीलेतररूप-पीतेतररूपादिमदवयवावच्छिन्नचक्षुःसन्निकर्षस्याऽपि कारणत्वाभिधान सप्रयोजनमेव । न च नीलपीतादिमदवयवावच्छिन्नेन्द्रियसन्निकर्षस्यैव कारणत्वमस्तु लाघवादिति वाच्यम् । रक्तशुक्लादिमदवयवावच्छिन्नचक्षुःसन्निकर्षे चित्रचाक्षुषानापत्तेः, चित्रचाक्षुषे वैजात्य कल्पयित्वा पृथक्कार्यकारणभावोपगमे तु विपरीतमेव गौरवमिति वदन्ति ।

अत्रेवान्येषा मतमाह अवयविनि साक्षात् = समवायसम्बन्धेन नीलपीतादिग्रह = विजातीयनानारूपगोचरचाक्षुषसाक्षात्कार एव तद्ग्रहहेतु अवयविचित्रत्वप्रकारकचाक्षुषकारणम् । एवकारेण स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेनावयविनि नीलपीतादिग्रहस्य तद्धेतुत्वमपाकृतम्, गौरवात् ।

नन्ववयविनि चित्ररूपसत्त्वे कथ समवायेन नील-पीतादिचाक्षुषसम्भवः ? इत्याशङ्कायामाहुः चित्रवति समवायेन चित्ररूपविशिष्टेऽवयविनि समवायेन नीलपीतादिसमावेशस्य प्रामाणिकत्वे स्वीक्रियमाणे तत्प्रमाया = चित्ररूपविशिष्टविशेष्यक-समवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिनीलपीतादिप्रकारक-प्रमायाः सम्भवादित्यत्रानुषज्यते । इतरथा = चित्रवति समवायेन नीलपीतादिसमावेशस्याऽप्रामाणिकत्वे अपि तद्भ्रमस्य = नीलपीतादिशून्य-चित्ररूपविशिष्टविशेष्यक - समवायसम्बन्धावच्छिन्नवृत्तिताकनीलपीतादिप्रकारकभ्रमज्ञानस्य सम्भवात् । तच्चाहार्यमनाहार्यं वेत्यन्यदेतदित्यप्याहु ।

अत्रैव केषाञ्चिन्मतमाविष्करोति - यत्त्विति । अस्याऽग्रे तन्नेत्यनेनान्वयः। अव्याप्यवृत्तिनीलादिकल्पे = अतिरिक्तचित्ररूपमपक्षिप्य नानाविजातीयरूपवदवयवारब्धेऽवयविनि समवायेनाऽव्याप्यवृत्तिनीलपीतादिनानारूपाङ्गीकर्तॄणा मते, तादृग्नीलादिप्रत्यक्षे = अव्याप्यवृत्तिनीलादिचाक्षुषे स्वीक्रियमाणे लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्यसमवेतप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न प्रति = द्रव्यसमवेतविषयकचाक्षुषत्वावच्छिन्ने, अव्याप्यवृत्तिद्रव्यसमवेतप्रत्यक्ष-

▶ वल्लभा ◀

अवयवी मे साक्षात् नील-पीतादिग्रह चित्रप्रत्यक्षजनक - मतविशेष

अवय०। कुछ विद्वानो का यह कथन हे कि - 'अवयवी मे परम्परासम्बन्ध = स्वसमवायिसमवेतत्व सम्बन्ध से नील-पीतादि रूपो का ज्ञान चित्रगोचर प्रत्यक्ष का कारण नही हे किन्तु साक्षात् = समवाय सम्बन्ध से ही अवयवी मे नील, पीत आदि रूपो का ज्ञान अवयवी मे समवेत चित्र रूप के चाक्षुष का जनक हे, क्योकि परम्परा से अवयवी मे नील, पीत आदि का भान मानने मे गौरव है। अवयवी मे साक्षात् नील, पीत आदि रूपो का भान इस तरह मुमकिन हे। यदि चित्ररूपवाले अवयवी मे समवाय सम्बन्ध से नील, पीत आदि अनेक रूपो के समावेश को प्रामाणिक माना जाय तब तो नीलपीतादिकपालारब्ध चित्ररूपवाले घट मे साक्षात् नील, पीत आदि रूपो का ज्ञान प्रमात्मक हो सकता है। यदि चित्ररूपविशिष्ट अवयवी मे नील, पीत आदि रूपो की समवाय सम्बन्ध मे वृत्तिता को अप्रामाणिक मानी जाय तो भी चित्रावयविनिष्ठतया नील, पीत, आदि रूपो का भ्रमात्मक ज्ञान तो मुमकिन ही हैं'।

▼ आधारताविशेष अव्याप्यवृत्तिजातीय रूपो के प्रत्यक्ष का हेतु - अन्यमत ▼

यत्तु०। यहाँ कुछ बुद्धिजीविओ का यह कथन हे कि → 'नील, पीत आदि विजातीय अनेक रूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी मे अव्याप्यवृत्ति अनेक रूपो की कल्पना करने पर अवयवी मे उत्पन्न रूपो के प्रत्यक्ष के प्रति पृथक् कारणता की कल्पना अनावश्यक होने से लाघव हैं आर तादृश अवयवी मे चित्र रूप की कल्पना करने पर चित्ररूपप्रत्यक्ष के प्रति पृथक् कारणता की कल्पना करने की आवश्यकता होने से गोरव प्रसक्त होता हे। वह इस तरह-तादृश अवयवी के अव्याप्यवृत्ति नीलादि रूपो के प्रत्यक्ष का स्वीकार किया जाय तव तो उसकी उपपत्ति के लिए सिर्फ इतना ही कहना होगा कि लौकिकचाक्षुषविषयता सम्बन्ध से द्रव्यसमवेतप्रत्यक्षसामान्य के प्रति या अव्याप्यवृत्तिद्रव्यसमवेतविषयकप्रत्यक्षमात्र के प्रति स्वनिरूपकतासम्बन्ध से चक्षुसयोगअवच्छेदकावच्छिन्नसमवायावच्छिन्न आधारतासन्निकर्ष, जो विषय मे रहता है, ही कारण होता है जो सयोग आदि के चाक्षुष प्रत्यक्ष के प्रति अवश्यकॢप्त ही है, कल्पनीय नही है ।

प्रति वा चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधारतासन्निकर्ष एव निरूपकतया विषयनिष्ठो हेतुः। स च संयोगादिप्रत्यक्षस्थले क्लृप्त एव। न च नीलकपालिकावच्छेदेन चक्षुःसन्निकर्षस्य तत्समवेतनीलपीतोभयकपालावच्छिन्नत्वनियमात् तदवच्छेदेन सन्निकर्षे पीतग्रहापत्तिः, संयोगव्यक्तिर्यद्देशव्यापिनी तत्र परम्परया तद्देश एवावच्छेदको न तु सम्पूर्णोऽवयव इत्यभ्युपगमात्।

◆ हेमलता ◆

त्वावच्छिन्नं प्रति = अव्याप्यवृत्तिर्यो द्रव्यसमवेतस्तद्गोचरचाक्षुषत्वावच्छिन्नं = अव्याप्यवृत्तिचाक्षुषत्वावच्छिन्नं वा चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधारतासन्निकर्षः = चक्षुःसंयोगावच्छेदको यो विषयदेशः तदवच्छिन्नेन समवायसम्बन्धेनावच्छिन्ना याऽव्याप्यवृत्तिनिरूपिता अधिकरणता तत्स्वरूपः सम्बन्ध एव निरूपकतया = स्वनिरूपितनिरूपकतासम्बन्धेन विषयनिष्ठः = अव्याप्यवृत्तिनिष्ठविधया हेतुः । एतेन नीलकपालावच्छेदेन नीलपीतकपालद्वयारब्धघटे चक्षुःसन्निकर्षे सति पीतादिचाक्षुषापत्तिरपि प्रत्युक्ता पीतरूपे चक्षुःसंयोगावच्छेदकनीलकपालावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधारतानिरूपकत्वस्य विरहेण स्वनिरूपितनिरूपकतासम्बन्धेन निरूपकताधारताया विरहात् ।

सः = चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायावच्छिन्नाधारतासन्निकर्षः च संयोगादिप्रत्यक्षस्थले = संयोगविभागादिचाक्षुषस्थले क्लृप्तः = हेतुत्वेन प्रमाणप्रसिद्ध एव । एतेन गौरवप्रसङ्गोऽपि परिहृतः । यथा शाखाया कपिसंयोगवति वृक्षे मूलावच्छेदेन चक्षुःसंयोगसत्त्वे कपिसंयोगे स्वनिरूपकतासम्बन्धेन चक्षुःसंयोगावच्छेदकमूलावच्छिन्नसमवायावच्छिन्नाधारताया विरहान्न तत्र लौकिकविषयतासम्बन्धेन कपिसंयोगचाक्षुषमुपजायते तद्वदेव नीलपीतकपालद्वयारब्धघटे नीलकपालावच्छेदेन चक्षुःसंयोगसत्त्वे चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायावच्छिन्नाधारतायाः स्वनिरूपकतासम्बन्धेन पीतरूपेऽसत्त्वान्न लौकिकविषयतयाऽव्याप्यवृत्तिपीतचाक्षुषप्रसङ्गः । लाघवात्प्रकृते कार्यतावच्छेदकमव्याप्यवृत्तिग्रहत्वमेव लौकिकचाक्षुषविषयतासम्बन्धश्च कार्यतावच्छेदकसंसर्ग इति न कोऽप्यतिप्रसङ्गः । निष्कर्षे लाघवादेव प्रकृते स्वसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधारतानिरूपकत्वसम्बन्धेन चक्षुष्ट्वेन कारणता बोध्या ।

न च नील मात्र-पीत मात्रकपालिकाद्वयारब्धनीलपीतकपालारब्धघटस्थले नीलकपालिकावच्छेदेन = नीलमात्रकपालिकावच्छेदेन चक्षुःसन्निकर्षस्य = चक्षुःसंयोगस्य तत्समवेतनीलपीतोभयकपालावच्छिन्नत्वनियमात् नीलमात्रकपालिकासमवेतनीलपीतोभयकपालनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितावच्छेद्यत्ववत्त्वावश्यम्भावात् तदवच्छेदेन = नीलमात्रकपालिकावच्छेदेन तत्रावयविनि सन्निकर्षे = चक्षुःसंयोगे सति पीतग्रहापत्तिः = लौकिकचाक्षुषविषयतया कपालपीतरूपे अव्याप्यवृत्तिगोचरग्रहप्रसङ्गः दुर्निवारः, कपालपीतरूपस्य नीलमात्रकपालिकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगावच्छेदकीभूतनीलपीतोभयकपालावच्छिन्ननीलपीतोभयप्रतियोगिताकसमवायावच्छिन्नाधारत्वनिरूपकतया तत्र स्वनिरूपकत्वसम्बन्धेन चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायावच्छिन्नाधारतायाः सत्त्वादिति वक्तव्यम्, संयोगव्यक्तिः यद्देशव्यापिनी = यद्देशवृत्त्यत्यन्ताभावाऽप्रतियोगिनी तत्र स्थले परम्परया = स्वसमवायिसमवायिसमवायित्व-स्ववत्त्वोभयसम्बन्धेन तद्देश एवावच्छेदको न तु तत्समवेतः सम्पूर्णोऽवयव इत्यभ्युपगमात् घटे नीलकपालिकाया चक्षुःसंयोगसत्त्वे चक्षुःसंयोगसमवायिघटसम-

▶ वल्लभा ◀

आशय यह है कि वृक्ष में शाखावच्छेदेन कपिसंयोग होने पर भी मूलावच्छेदेन चक्षुसंयोग होने पर कपिसंयोग का चाक्षुष प्रत्यक्ष होता नहीं है। इसके अनुरोध से ऐसा कार्यकारणभाव माना जाता है कि लौकिकविषयतासम्बन्ध से अव्याप्यवृत्तिपदार्थ में उत्पन्न होनेवाले चाक्षुष साक्षात्कार के प्रति स्वनिरूपकत्वसम्बन्ध से चक्षुसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नाधारता सन्निकर्ष विषयनिष्ठतया कारण है। चक्षुसंयोगअवच्छेदकमूलावच्छिन्न समवाय सम्बन्ध से अवच्छिन्न आधारता स्वनिरूपकत्वसम्बन्ध से कपिसंयोग में नहीं रहती है, क्योंकि मूल में कपिसंयोग ही नहीं रहता है । शाखाअवच्छेदेन नेत्रसंयोग होने पर चक्षुसंयोगअवच्छेदक शाखा से अवच्छिन्न कपिसंयोगप्रतियोगिक समवायसम्बन्ध से अवच्छिन्न आधारता का निरूपक कपिसंयोग होने से कपिसंयोग में चक्षुसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायावच्छिन्नआधारता स्वनिरूपकत्वसम्बन्ध से रहती है और तब लौकिकविषयतासम्बन्ध से अव्याप्यवृत्तिकपिसंयोगविषयक चाक्षुषसाक्षात्कार उत्पन्न होता है । ठीक इसी तरह नील-पीत-कपालद्वयारब्ध घट में नीलकपालावच्छेदेन चक्षुसंयोग होने पर चक्षुसंयोगअवच्छेदक नीलकपाल से अवच्छिन्न नीलरूपप्रतियोगिक समवायसम्बन्ध से अवच्छिन्न आधारता का निरूपक नीलरूप होने से नीलरूप में स्वनिरूपकत्वसम्बन्ध से चक्षुसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायावच्छिन्नआधारता रहेगी और वहाँ लौकिकविषयता सम्बन्ध से अव्याप्यवृत्तिनीलरूपविषयक चाक्षुष प्रत्यक्ष उत्पन्न होगा न कि पीतरूप का । इसी तरह पीतकपालअवच्छेदेन चक्षुसंयोग होने पर स्वनिरूपकतासम्बन्ध से चक्षुसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायावच्छिन्नाधारता पीतरूप में रहने से वहाँ अव्याप्यवृत्तिपीतरूप का चाक्षुष होगा न कि नीलरूप का, क्योंकि नीलरूप तादृशाधारता का निरूपक नहीं है । इस तरह संयोगादिचाक्षुषस्थल में अवश्यकलृप्त कार्यकारणभाव से ही अव्याप्यवृत्ति नील पीत आदि के चाक्षुष का निर्वाह हो जाने से अतिरिक्त कार्यकारणभाव की कल्पना विजातीयरूपवदवयवारब्ध अवयवी में अव्याप्यवृत्ति अनेक रूपों का स्वीकार करने पर अनावश्यक रहेगी । इस तरह इस पक्ष में लाघव है ।

न च नी०। यहाँ इस शंका का कि→ उपर्युक्त कार्यकारणभाव का मान्य करने पर तो नीलमात्र-पीतमात्र-कपालिकाद्वयारब्ध कपाल आदि से जन्य घट में नीलकपालिकावच्छेदेन चक्षुसंयोग होने पर भी पीतरूप के प्रत्यक्ष की आपत्ति आयेगी, क्योंकि

चित्ररूपकल्पे च चित्रप्रत्यक्षे उक्तकार्यकारणभावकल्पनागौरवमिति, तन्न तादृशगौरवस्य फलमुखत्वेनाऽदोषत्वात्।

अपरे तु तत्र व्याप्यवृत्तीन्येव नीलपीतादीन्युत्पद्यन्ते, नीलादिकं प्रति नीलेतरादिप्रतिबन्धकत्वनीलाभावादिकारणत्व-

◆ हेमलता ◆

वायिनीलपीतोभयकपालसमवायित्वं चक्षुःसंयोगसमवायित्वं च नीलकपालिकायामेव न नीलपीतोभयकपाले पीतकपालिकायां वेति चक्षुःसंयोगावच्छेदक-ताऽपि तत्रैव। अतः पीतरूपनिरूपिताधारतावच्छेदकसमवायावच्छेदकस्य नीलकपालिकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगानवच्छेदकत्वम्। अतः स्वनिरूपितनिरूपकता-सम्बन्धेन नीलकपालिकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायावच्छिन्नाधारताऽपि न घटपीतरूपे किन्तु घटनीलरूप एव। अतो न तदानीं लौकिकचाक्षुषविषयतया घटपीतग्रहप्रसङ्गः। इत्थं नानाविजातीयरूपवदवयवारब्धावयविनि नानाविधाव्याप्यवृत्तिरूपस्वीकारेऽव्याप्यवृत्तिनीलादिप्रत्यक्षे न पृथक्कारणत्वकल्पनागौरवम्।

चित्ररूपकल्पे = अवयविनि नीलादिव्यतिरिक्तचित्ररूपस्वीकारपक्षे च चित्रप्रत्यक्षे = लौकिकचाक्षुषप्रत्यक्षविषयतासम्बन्धेन चित्रग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति उक्तकार्यकारणभावकल्पनागौरवं अवयवनीलेतररूप-पीतेतररूपादिग्रहस्य यद्वा नीलेतररूप-पीतेतररूपादिमदवयवावच्छिन्नचक्षुःसंयोगस्यावयवनीला-नुगतनीलत्वादिग्रहविरोधिदोषाभावस्य च यद्वाऽवयविनि साक्षाद्विजातीयनानारूपग्रहस्य पृथक्कारणत्वकल्पनागौरवमिति तत्राऽव्याप्यवृत्तिनानारूपकल्प एव लाघवात् श्रेयानिति केषाञ्चिन्मतम्।

तन्न, समीचीनं, तादृशगौरवस्य अतिरिक्तचित्रचाक्षुषकारणत्वकल्पनागौरवस्य फलमुखत्वेन = प्रमाणबलसिद्धचित्ररूपलक्षणफलनिर्वाहकत्वेन, अदोषत्वात्। न हि प्रत्येतव्यगौरवभयात्प्रमेयमुपेक्षितुमर्हति, अन्यथा शून्यवादी एव विजयमालालङ्कारभाक् स्यात्।

अपरे इति। अस्याग्रे आहुरित्यनेनान्वयः। तुः पूर्वोक्तापेक्षया विशेषबोधनार्थम्। तथाहि तत्र = नीलपीतादिकपालारब्धघटे समवायेन व्याप्यवृत्तीन्येव = स्वाभावाऽसमानाधिकरणान्येव न त्वव्याप्यवृत्तीनि नीलपीतादीनि रूपाणि उत्पद्यन्ते अतिरिक्तचित्ररूपकल्पे समवायेन नीलादिकं प्रति नीलेतरादिप्रतिबन्धकत्व-नीलाभावादिकारणत्वकल्पनापेक्षया = स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धादिना नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्वं समवायेन चित्र

▶ वल्लभा ◀

नीलकपालिका से अवच्छिन्न चक्षुःसंयोग नीलपीतोभयरूपविशिष्टकपाल से भी अवच्छिन्न ही होता है, क्योंकि वह कपाल नीलकपालिका में समवेत हैं। अतः नीलकपालिकावच्छिन्न चक्षुःसंयोग के अवच्छेदकीभूत नीलपीतोभयरूपवाले कपाल से अवच्छिन्न नीलपीतरूपप्रतियोगिक समवायसम्बन्ध से अवच्छिन्न आधारता का पीतरूप भी निरूपक होने से उस पीतरूप में भी स्वनिरूपकत्वसम्बन्ध से नीलकपालिकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधारता रहती है। अतः नीलकपालिकावच्छेदेन चक्षुःसंयोग होने पर लौकिकविषयता सम्बन्ध से पीत रूप में चाक्षुषप्रत्यक्ष उत्पन्न होने लगेगा' ← समाधान यह है कि संयोगव्यक्ति जिस देश = अवयव में व्यापक होती है अर्थात् जिस अवयव में संपूर्णतया व्याप्त होती है वही अवयव=देश संयोग का परम्परा से अवच्छेदक बनता है न कि संपूर्ण अवयव, जो उस देश से घटित है- ऐसा हम मानते हैं। अतः नीलकपालिकावच्छेदेन चक्षुसंयोग होने पर नीलकपालिका ही उसकी अवच्छेदक बनेगी न कि नीलपीतोभयकपाल, क्योंकि तादृशचक्षुसंयोग नीलकपालिका में ही व्याप्त है, न कि नीलपीतोभयकपाल में। नीलपीतोभयकपाल में तो पीतकपालिकाच्छेदेन चक्षुसंयोगाभाव भी रहता ही है। अतः चक्षुःसंयोग के अवच्छेदक नीलकपालिका से अवच्छिन्न नीलरूपप्रतियोगिक समवायसम्बन्ध से अवच्छिन्न आधारता का निरूपक नीलरूप ही होगा, न कि पीतरूप। अतः स्वनिरूपकत्वसम्बन्ध से तादृशचक्षुसंयोगावच्छेदकावच्छिन्न समवाय सम्बन्ध से अवच्छिन्न आधारता केवल नीलरूप में रहने से तब उसीका प्रत्यक्ष होगा न कि पीतरूप का भी। इस तरह यह उपर्युक्त कार्यकारणभाव निर्दोष है।

△ चित्रप्रत्यक्षकारणताकल्पना फलमुख होने से निर्दोष △

चित्ररूप०। मगर चित्ररूप का स्वीकार करने पर चित्ररूप के चाक्षुष के प्रति पूर्वोक्त कारणता की कल्पना करनी पड़ती है, जो अन्यत्र क्लृप्त नहीं है किन्तु कल्पनीय है। अतः चित्ररूपपक्ष में पृथक् कार्य-कारणभाव के स्वीकार का गौरव है।'

तन्न० मगर यह कथन भी असंगत है, क्योंकि पूर्वोक्त प्रमाण से जब अतिरिक्त चित्ररूप की सिद्धि हो जाती है बाद में यह गौरव उपस्थित होने से वह प्रामाणिक पदार्थ का निर्वाहक है, अतः एव वह दोषात्मक नहीं है। प्रमाणसिद्धफल का अभिमुख = निर्वाहक गौरव सर्वदा निर्दोष ही होता है। इसलिए गौरवभय से चित्ररूप का अपलाप हो नहीं सकता।

☛ एकत्र व्याप्यवृत्तिनीलपीतादिरूपकल्पना अप्रामाणिक ☚

अपरे०। अपर विद्वानों का इस विषय में कुछ अलग ही वक्तव्य है। वह यह है कि →'नील, पीत आदि कपालों से उत्पन्न घट में चित्ररूप या अव्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि रूप उत्पन्न होते नहीं है किन्तु व्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि रूप ही

कल्पनापेक्षया व्याप्यवृत्तिनीलादिकल्पनाया एव न्याय्यत्वादित्याहु । तदपि न, नीलकपालावच्छेदेन चक्षुःसन्निकर्षे पीतादेरुपलम्भापत्तेः, नीलाद्यवयवावच्छेदेन सन्निकर्षस्य नीलादिग्राहकत्वकल्पने च गौरवात्।

यत्तु एतत्कपालावच्छिन्नसयोगादिप्रत्यक्षानुरोधेनैतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकत्वे सति यत् तन्नीलान्य तद्भिन्न यदेतद्घटसमवेत

◆ हेमलता ◆

प्रति च स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य नीलाभावादे' कारणत्व, तत्राऽव्याप्यवृत्तिनीलादिकल्पेऽवच्छेदकतया नीलादिक प्रति समवायेन नीलेतररूपादेः प्रतिबन्धकत्व समवायेन नीलत्वादिना यद्वा नीलेतररूपविशिष्टनीलत्वादिना कारणत्वमित्येव कल्पनापेक्षया तत्र व्याप्यवृत्तिनीलादिकल्पनाया एव न्याय्यत्वात् समवायेन नीलादौ स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलत्वादिना क्लृप्तकारणतयैव तदुपपत्तेः लाघवात्। इत्थमेव सविषयाऽवृत्ति-व्याप्यवृत्तिवृत्तिजातेरव्याप्यवृत्तिवृत्तित्वविरोधनियमोऽप्युपपद्यते। न चाऽप्रयोजकोऽय नियम इति शङ्कनीयम्, लाघवतर्कस्यैवात्र प्रयोजकत्वादित्याहुः।

तन्निराकुरुते - तदपि नेति नीलपीतादिकपालारब्धघटे नीलकपालावच्छेदेन चक्षु सन्निकर्षे सति पीतादेरुपलम्भापत्ते यथा केवलनीलावयवारब्धे व्याप्यवृत्ति- नीलमात्राश्रयेऽवयविनि यत्किञ्चिदवयवावच्छेदेन चक्षु'सन्निकर्षे नीलोपलम्भवत् व्याप्यवृत्तिनीलपीतादिमत्यवयविन्यपि यत्किञ्चिदवच्छेदेन चक्षु'सन्निकर्षे सर्वेषामेव नीलपीतादिरूपाणा चाक्षुषत्वस्य न्याय्यत्वात्, अन्यथा व्याप्यवृत्तित्वानुपपत्तेः। न च तत्र नीलादेर्व्याप्यवृत्तित्वेऽपि नीलाद्यवयवावच्छेदेन सन्निकर्षस्य लौकिकचाक्षुषविषयतया नीलग्रह प्रति कारणत्वमिति न नीलकपालावच्छेदेन सन्निकर्षे पीतोपलम्भापत्तिरिति वक्तव्यम्, नीलाद्यवयवावच्छेदेन अवयविनि सन्निकर्षस्य = चक्षु'सन्निकर्षस्य नीलादिग्राहकत्वकल्पने = नीलादिरूपगोचरलौकिकचाक्षुषप्रतीतिजनकत्व-स्वीकारे च गौरवात्। गौरवपरिजिहीर्षया व्याप्यवृत्तिनीलपीतादिरूपाभ्युपगमेऽपि प्रदर्शितनवीनकार्यकारणभावस्याऽवश्यकल्पनीयत्वेन 'स्थण्डिलेऽपि शीले न शान्त' काम' इति न्यायागम ।

नीलावयवावच्छेदेन चक्षुःसयोगस्य लौकिकचाक्षुषविषयतया नीलग्रहत्वावच्छिन्न प्रति कारणत्वकल्पने गौरवात्तत्परिहृत्यान्यथैव पीतकपालावच्छेदेन नयनसयोगे नीलादिग्रहवारणाय व्याप्यवृत्तिनानारूपवादिमतविशेषमपहस्तयितुमुपक्षिपति - यत्त्विति। अग्याऽग्रे तन्नत्यनेनान्वय । एतत्कपालावच्छिन्नस-योगादिप्रत्यक्षानुरोधेन = एतत्कपालावच्छिन्नसयोगादौ यत् लौकिकचाक्षुषविषयतया ग्रह' तदनुसारेण, अनेन प्रकृतकार्यकारणभावस्याऽवश्यक्लृप्तत्वमावे-

► वल्लभा ◄

उत्पन्न होते ह। इसका कारण यह ह चित्ररूपवादी के मतानुसार नीलपीतादिकपालारब्ध घट मे समवाय सम्बन्ध से नील आदि रूप की उत्पत्ति के परिहारार्थ नीलादि के प्रति अवयवगत नीलेतररूपादि को प्रतिबन्धक मानना होगा और नीलमात्रावयवारब्ध अवयवी मे चित्ररूप की आपत्ति के निराकरणार्थ चित्ररूप के प्रति अवयवगत नीलाभावादि को कारण मानना होगा। एव अव्याप्यवृत्तिनीलादिपक्ष मे अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलादि के प्रति समवाय सम्बन्ध से नीलेतररूपादि को प्रतिबन्धक मानना होगा और नीलेतरादिविशिष्टनीलादिरूप को समवाय सम्बन्ध से कारण मानना होगा, जो पूर्वोक्त रीति से आवश्यक है। इस तरह अनेक प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव एव कार्यकारणभाव की कल्पना करने की अपेक्षा विजातीयरूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी मे समवाय सम्बन्ध से व्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि अनेक रूपो की कल्पना करना ही उचित है, क्योंकि तब समवाय से नीलादि के प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से नीलादि की क्लृप्त कारणता से, जो उभयमतसम्मत ह, ही सब सगत हो जाता ह। अत वहाँ अनेक व्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि रूपो का स्वीकार ही मुनासिब है।'

तदपि न०। मगर विचार करने पर यह वक्तव्य भी असगत प्रतीत होता ह। इसका कारण यह है कि नीलपीतादिकपालारब्ध घट मे व्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि अनेक रूपो की उत्पत्ति मानने पर तो नीलकपालावच्छेदेन चक्षु सयोग होने पर भी पीतादिरूप के साक्षात्कार की आपत्ति आयेगी, क्योंकि पीतादिरूप व्याप्यवृत्ति होने से सपूर्ण घट मे रहता है। यदि इस समस्या के समाधानार्थ यह कहा जाय कि → 'नीलावयवावच्छेदेन अवयवी मे चक्षु सयोग नीलादि रूप का ही ग्राहक चाक्षुषसाक्षात्कारजनक होता है, न कि पीतादिरूप का भी। अत नीलकपालावच्छेदेन चक्षु सन्निकर्ष होने पर पीतादिरूप के साक्षात्कार का अवकाश रहता नहीं है' ← तो यह भी ठीक नहीं ह, क्योंकि इस तरह कार्यकारणभाव मे अवच्छेद्य-अवच्छेदक का प्रवेश होने से गौरव दोष प्रसक्त होता है। जिसके निराकरणार्थ व्याप्यवृत्ति अनेक समानाधिकरण रूपो का स्वीकार किया जाता ह वह गौरव तो पुन उपस्थित होता है। अत उपर्युक्त मत भी अश्रद्धेय है।

☆ प्रकारान्तर से पीतावयव मे नीलचाक्षुष का परिहार ☆

यत्तु०। कुछ मनीषियो का यह मन्तव्य है कि → नीलपीतादिकपालारब्ध घट मे व्याप्यवृत्ति नील, पीत आदि अनेक रूपो

तस्यैतत्कपालविषयकसाक्षात्कार प्रत्येतत्कपालावच्छेदेनैतद्घटचक्षुःसन्निकर्षस्य हेतुत्वान्न पीतावयवावच्छेदेन सन्निकर्षे नीलादिचाक्षु-

◆ हेमलता ◆

दितम्। एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकत्वे सति यत् तन्नीलान्य तद्भिन्न यद् एतद्घटसमवेत तस्य = एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकत्वविशिष्ट-तन्नीलान्यप्रतियोगिकभेदवदेतद्घटसमवेतस्य लौकिकचाक्षुषविषयतया एतत्कपालविषयकसाक्षात्कार प्रति एतत्कपालावच्छेदेन एतद्घटचक्षु सन्निकर्षस्य = एतद्घटचक्षुःसयोगस्य हेतुत्वात् = कारणत्वोपगमात्, न पीतावयवावच्छेदेन घटे सन्निकर्षे = चक्षुसयोगे सति नीलादिचाक्षुषापत्ति = व्याप्यवृत्तिनीलादिगोचरचाक्षुषोदयप्रसङ्गः, नीलादेरेतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिक यत् तन्नीलान्य तद्भिन्नत्वे सत्येतद्घटसमवेतत्वेन तद्विषयकचाक्षुषस्यैतत्कपाला-वच्छिन्नैतद्घटनयनसयोगजन्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात्तमृते तदुत्पादायोगात्। न च कार्यतावच्छेदककुक्षौ एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकत्वस्य तन्नीलान्यवि-शेषणत्व मास्तु गौरवादिति वक्तव्यम् तथा सति एतत्कपालावच्छिन्नपटादिसयोगस्य तन्नीलान्यत्वेन तन्नीलान्यभिन्नत्वविरहात् तद्विषयकचाक्षुषस्यैतत्कपा-लावच्छिन्नैतद्घटचक्षुःसयोगनिरूपितकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वापत्तौ तमृतेऽपि तदुत्पादापत्तेः। न च एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकभिन्नैतद्घटसमवेतचाक्षु-षत्वस्यैव कार्यतावच्छेदकत्वमस्तु तन्नीलान्याऽप्रवेशेन लाघवादिति वाच्यम्, नीलपीतकपालारब्धघटीयनीलरूपस्यैतद्घटसमवेतत्वेऽपि व्याप्यवृत्तित्वेनैतत्कपा-लानवच्छिन्नवृत्तिकत्वात् तद्विषयकचाक्षुषस्य एतत्कपालावच्छिन्नैतद्घटचक्षुःसयोगनिष्ठकारणतानिरूपितकार्यतानाक्रान्तत्वापत्तौ नीलकपालावच्छेदेन घटे चक्षुःसन्निकर्षविरहेऽपि तदुत्पादस्य दुर्वारत्वात्। न चैतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकनीलान्यप्रतियोगिको यो भेदस्तद्वदेतद्घटसमवेतचाक्षुषत्वस्यैव तत्कार्यतावच्छे-दकत्वमस्तु नीलविशेषणविधया तत्पदाऽनिवेशेन लाघवादिति वाच्यम् व्यवहितनीलमात्रकपालद्वय-पीतमात्रकपालद्वयारब्धघटवृत्तिव्याप्यवृत्तिनीलद्वयस्य व्याप्यवृत्तित्वेनैवैतत्कपालानवच्छिन्ननीलान्यभिन्नैतद्घटसमवेतत्वेनाऽन्यकपाल गतनीलरूपजन्यघटीय- नीलरूपविषयकचाक्षुषस्यैतत्कपालावच्छिन्नैतद्घ-टचक्षु'सयोगकार्यतावच्छेदकताक्रान्तत्वेनाऽन्यकपालावच्छिन्नैतद्घटनयनसयोगविरहेऽपि एतत्कपालावच्छिन्नैतद्घटनेत्रसयोगदशायामुत्पादापत्तेः। न च तथाप्येतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकतन्नीलान्यभिन्नगोचरचाक्षुषत्वस्यैवैतत्कपालावच्छिन्नैतद्घटचक्षुःसन्निकर्षकार्यतावच्छेदकत्वमस्तु, एतद्घटसमवेतत्वाऽनिवे-शेन लाघवादिति शङ्कनीयम् सयोगेन द्रव्यस्याव्याप्यवृत्तित्वनये एतत्कपालावारकवस्त्रस्यापि एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकतन्नीलान्यभिन्नत्वेन 'एतत्कपाले वस्त्र' इत्याकारकस्य तद्विषयकचाक्षुषस्यैतत्कपालावच्छिन्नैतद्घटचक्षुःसयोगजन्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वेन व्यतिरेकव्यभिचारप्रचारस्य दुर्निवारत्वापत्ते। न हि वस्त्रे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेनैतत्कपालावच्छिन्नैतद्घटचक्षु सयोगो वर्तते। अतो लौकिक चाक्षुषविषयतासम्बन्धेनैतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकतन्नीलान्यभि-न्नैतद्घटसमवेतगोचरैतत्कपालग्रहत्वावच्छिन्न प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेनैतत्कपालावच्छिन्नैतद्घटचक्षु सयोगत्वेन कारणताङ्गीकारान्न नीलपीतादिक-पालारब्धघटवृत्तिनीलपीतादेर्व्याप्यवृत्तित्वेऽपि पीतकपालावच्छेदेनैतद्घटे चक्षु.सन्निकर्षे पीतादिचाक्षुषप्रसङ्ग इति फक्किकार्थ.।

▶ वल्लभा ◀

की उत्पत्ति मानने पर पीतावयवावच्छेदेन चक्षु सन्निकर्ष से नीलादि रूप के चाक्षुष के परिहारार्थ किसी नूतन कार्यकारणभाव की कल्पना आवश्यक नही हे किन्तु एतत्कपालावच्छिन्न सयोगादि का चाक्षुष साक्षात्कार एतत्कपालावच्छेदेन नयनसयोग से ही होने के सब एतत्कपालावच्छिन्न सयोग आदि के प्रत्यक्ष के प्रति जो एतत्कपालावच्छेदेन एतत् घट के साथ चक्षुसन्निकर्ष की जो कारणता होती है उस कारणता से निरूपित कार्यता के अवच्छेदक धर्म मे किञ्चित् परावर्तन करने से ही उक्त आपत्ति का परिहार हो सकता है। जैसे यह कहा जा सकता हे कि एतत्कपालावच्छिन्नवृत्तिक जो तन्नीलान्य, उससे भिन्न जो एतद्घटसमवेत, तद्विषयक जो एतत्कपालविषयक चाक्षुष साक्षात्कार, उसके प्रति एतत्कपालावच्छेदेन एतद्घटचक्षु सयोग कारण होता हे। कार्यकारणभाव को इस ढग से परिवर्तित कर देने पर नीलपीतादिकपालारब्ध घट मे उत्पन्न होनेवाले व्याप्यवृत्ति नील रूप का चाक्षुष प्रत्यक्ष पीतकपालावच्छेदेन घट के साथ चक्षु सन्निकर्ष होने पर प्रसक्त नही होगा, क्योकि उस घट मे विद्यमान नील रूप तो एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिक जो तन्नीलान्य, उससे भिन्न एतद्घटसमवेत होता है। अतएव एतत्कपाल के साथ उसका चाक्षुष साक्षात्कार तब हो सकता है जब एतत्कपालावच्छेदेन एतद्घट के साथ नयनसयोग हो। अत पीतावयवावच्छेदेन घट मे नयनसन्निकर्ष होने पर नीलरूप के प्रत्यक्ष की आपत्ति नही होगी। उक्त कार्यतावच्छेदक धर्म के शरीर मे एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकत्व यदि तन्नीलान्य का विशेषण न बनाया जाय तब एतत्कपालावच्छिन्न सयोग तन्नीलान्यभिन्न नही होगा। अत उसका प्रत्यक्ष एतत्कपालावच्छेदेन एतद्घट के साथ नयनसन्निकर्ष के कार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त नही होने की वजह उपर्युक्त सन्निकर्ष के बिना भी उसके प्रत्यक्ष की आपत्ति आयेगी। इसी तरह उपर्युक्त कार्यतावच्छेदक धर्म मे तन्नीलान्यत्व का निवेश न करने पर एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिकभिन्न एतद्घटसमवत का ही प्रवेश होगा। फलत नीलपीतकपालादि से आरब्ध घट मे उत्पन्न नील रूप व्याप्यवृत्ति होने की वजह एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिक होगा, क्योकि व्याप्यवृत्ति का अवच्छेदक होने मे कोई प्रमाण नही होने से वह सर्वदा निरवच्छिन्न ही होता है। अत तद्भिन्न एतद्घटसमवेत मे इसका समावेश नही होने के सबब उसका चाक्षुष साक्षात्कार भी उक्त सन्निकर्ष के कार्यतावच्छेदक से आक्रान्त न हो सकेगा। अत उक्त सन्निकर्ष के बिना भी नीलावयवावच्छेदेन चक्षुसयोग होने पर उसके चाक्षुष साक्षात्कार के उदय की आपत्ति दुर्वार होगी। एव यदि उक्त कार्यतावच्छेदककोटि मे तन्नीलान्य

पापत्तिरिति, तन्न, तथा हेतुताया महागौरवात्। किञ्च नीलावयवाद्यवच्छेदेन नीलादिप्रतीतेर्भ्रमत्वापत्तिरपि, नीलेतरादेर्नीलादिविरोधित्वे कथं तत्र व्याप्यवृत्तिनीलपीतादिकमित्याद्यूहनीयम्।

रसगन्धौ तु व्याप्यवृत्ती एव, नानारसाद्यवयवारब्धावयविनो नीरसत्वादिकमेव, तत्र नानारसकल्पने गौरवात्। 'षड्रसा

◆ हेमलता ◆

तमपाकरोति तन्नेति। लौकिकचाक्षुषनिरूपितविषयतासम्बन्धेन तत्कपालावच्छिन्नग्रहत्वावच्छिन्ने तत्कपालावच्छिन्नचक्षुःसन्निकर्षस्य कारणत्वस्यानपेक्षया तथाहेतुताया स्वीक्रियमाणाया कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरकुक्षौ महागौरवात्।

किञ्च, एव = नीलपीतादिनानाजातीयरूपवदवयवारब्धावयविनि व्याप्यवृत्तिनील-पीतादिरूपस्वीकारे, नीलपीतकपालारब्धे घटे नीलावयवावच्छेदेन नीलादिप्रतीतेः भ्रमत्वापत्तिः अपि दुर्वारा निरवच्छिन्नवृत्तिताविशिष्टे नीलरूपे सावच्छिन्नत्वावगाहित्वात्। न हि व्याप्यवृत्तेरवच्छेदकं सम्भवति। अतोऽवच्छेदकतासम्बन्धेन नीलावयवे नीलाऽवगाहनात् सम्बन्धांशेऽपि भ्रमत्वं, समवायेन भूतले घटप्रतीतिवत्। किञ्च नीलेतरादेः नीलादिविरोधित्वे कथं तत्र = नीलेतरादिवति व्याप्यवृत्ति नीलपीतादिकं ? अन्यथा तयोर्विरोधप्रसङ्गात्। किञ्च नीलावयवावच्छेदेन घटे चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नसमवायसम्बन्धावच्छिन्नाधारताया सन्निकर्षत्वेनैतत्कपालावच्छिन्नघटसंयोगस्यान्यकपालावच्छेदेन चक्षुःसंयोग - तद्याक्षुषानुदयनिर्वाहादनुपदोक्तकारणत्वस्य निर्युक्तिकत्वाच्चेत्यादिसूचनार्थं प्रकरणकृता इत्याद्यूहनीयमित्युक्तमित्यवधेयम्।

रसगन्धौ तु व्याप्यवृत्ती = स्वाभावाऽसमानाधिकरणौ एव न तु अव्याप्यवृत्ती। न चैवं विजातीयनानारसगन्धवदवयवारब्धेऽवयविनि व्यञ्जनकर्दमादौ व्याप्यवृत्तिनानाविजातीयरसगन्धोत्पादप्रसङ्गः तत्सामग्रीसत्त्वादिति वाच्यम् समवायेन तिक्तादौ सौरभादौ च स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन क्रमेण तिक्तेतररसादेः सौरभेतरगन्धादेः प्रतिबन्धकत्वात्। अतो नानारसाद्यवयवारब्धावयविन = नानाजातीयरसगन्धवदवयवसमवेतस्याऽवयविन नीरसत्वादिकमेव आदिपदेन निर्गन्धत्वग्रहणम्। तत्र = नानाविजातीयरसगन्धवदवयवारब्धेऽवयविनि नानारसकल्पने = व्याप्यवृत्तिनानाजातीयरसगन्धोत्पादस्वीकारे गौरवात्। तिक्तावयवाद्यवच्छेदेन रसनेन्द्रियसन्निकर्षे मधुरादयुपलम्भवारणाय तिक्तावयवाद्यवच्छिन्नरसनेन्द्रियसन्निकर्षस्य तिक्तादिग्राहकत्वकल्पनाया महागौरवात्। तदपेक्षया तिक्तादौ तिक्तेतरादेः प्रतिबन्धकत्वकल्पने एव लाघवम्। न चावयविनि व्याप्यवृत्तिनानारसानङ्गीकारे 'षड्रसा हरितकी'त्यादिप्रतीतिव्यवहारानुपपत्तिरिति वाच्यम्, यतः 'षड्रसा हरितकी' इतिव्यवहारस्तु उपलम्भनात्तादृशप्रतीतिश्च तस्या हरितक्या

► वल्लभा ◄

के स्थान में केवल नीलान्यमात्र का प्रवेश किया जायेगा तो परस्पर व्यवहित दो पीत और दो नील कपालों से उत्पन्न घट में जो दो नील रूप उत्पन्न होंगे, दोनों ही एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिक नीलान्यभिन्न एतद्घटसमवेत होंगे। अतः अन्यकपालगत नीलरूप से उत्पन्न घटगत नील रूप का चाक्षुष भी एतत्कपालावच्छिन्नचक्षुःसन्निकर्ष के कार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त हो जायेगा। अतः अन्यकपालावच्छिन्न नयनसंयोग के विरह में भी एतत्कपालावच्छिन्न नयनसन्निकर्ष होने पर इसके चाक्षुष की आपत्ति आयेगी। इसी प्रकार उक्त कार्यतावच्छेदककोटि में यदि 'एतद्घटसमवेतत्व' का निवेश न किया जाय तब एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्तिक तन्नीलान्य से भिन्न एतत्कपाल का आवारक वस्त्र भी संयोग सम्बन्ध से द्रव्य के अव्याप्यवृत्तित्वपक्ष में एतत्कपालानवच्छिन्नवृत्ति तन्नीलान्य से भिन्न होगा। अतः तद्विषयक चाक्षुष प्रतीति भी एतत्कपालावच्छेदेन नयनसन्निकर्ष के कार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त हो जायेगी तथा उसका 'एतत्कपाले वस्त्र' इस प्रकार का चाक्षुष साक्षात्कार भी एतत्कपालावच्छेदेन एतद्घटचक्षुःसंयोग के कार्यतावच्छेदक से आक्रान्त हो जायेगा, किन्तु उक्त संयोग स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से वस्त्र में नहीं है। अतः वस्त्र के उक्त चाक्षुष की अनुपपत्ति होगी' ←

तन्न। मगर यह वक्तव्य भी आपाततः सगत है न कि वास्तव में, क्योंकि उपर्युक्त रीति से कार्यकारणभाव का स्वीकार करने पर कार्यतावच्छेदक धर्म के शरीर में महागौरव मुँह फाडे खडा रहता है। दूसरी बात यह है कि अनेक विजातीयरूपवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी में व्याप्यवृत्ति अनेक विजातीय रूपों का स्वीकार करने पर तो नीलपीतकपालद्वयारब्ध घट में नीलकपालावच्छेदेन नीलादि की प्रतीति भी भ्रमात्मक हो जायेगी, क्योंकि उस घट में नीलरूप व्याप्यवृत्ति होने से निरवच्छिन्नवृत्तिताक है। निरवच्छिन्नवृत्तिताशाली नीलरूप में सावच्छिन्नत्व का अवगाहन करने से अवच्छेदकतासम्बन्ध से नीलकपाल में नीलरूप की बुद्धि में भ्रमत्व की आपत्ति दुर्वार होगी। एवं नीलेतर रूपादि को नीलादि का विरोधी मानने पर नीलेतररूपवाले घट में नीलादि रूप व्याप्यवृत्ति कैसे हो सकते है ? इस सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार हो सकता है। यहाँ जो कहा गया है, वह तो एक दिग्दर्शनमात्र है।

➔ रस एवं गन्ध व्याप्यवृत्ति ही है ←

रस। मगर रस एवं गन्ध तो व्याप्यवृत्ति ही होते है। अतः अनेक विजातीय रस या गन्धवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी तो नीरस और निर्गन्ध ही होते है, क्योंकि अवयवी में अनेक रस, गंध आदि की कल्पना करने में गौरव है। तादृश अवयवी में जो रस आदि की प्रतीति है वह परम्परासम्बन्ध से अवयवगत गन्ध आदि को अपना विषय बनाती है। यहाँ इस शंका के

हरितकी' इति व्यवहारस्तु तस्याः षड्रसकार्यकारित्वात् परम्परयाऽवयवगतषड्रसवत्तया वोपपादनीयः।

नन्वेव नीरूपो निःस्पर्शस्तत्रावयवी किं न स्यात् ? न चैवमप्रत्यक्षः स्यात्, द्रव्य- तत्समवेतचाक्षुपस्पार्शनसाधारण्येन

हेमलता

षड्रसकार्यकारित्वात्। षड्रसशून्याया तस्याः कथ षड्रसकार्यकारित्व अन्यथाऽनलानिलादेरपि तथात्वापत्तेरित्याशङ्काया समाधानान्तरमाह- परम्परया = स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन वा अवयवगतषड्रसवत्तया वोपपादनीय । एतेन 'षड्रसा हरितकी'ति प्रतीतिरपि व्याख्याता, अवयविनो हरितकीपदार्थस्य नीरसत्वेऽपि परम्परयाऽवयवषड्रसानामेव तत्प्रतीतिविषयत्वात्। एतेन 'चित्रगन्ध कर्दम.' 'चित्ररस तेमनमि'तिप्रतीतिव्यवहारावपि व्याख्यातो अवयवगतनानाजातीयगन्ध- रससमुदायेनैव तदुपपत्तेः, अतिरिक्तचित्ररसगन्धतत्प्रागभावध्वसादिकल्पने तु गौरवम्। न चावयविनो नीरसत्वे निर्गन्धत्वे वाऽप्रत्यक्षत्वापत्तिरिति शङ्कनीयम् आश्रितगसनादेर्नियमत पूर्वमभावात्। तस्य चित्ररसवत्त्वे तु तिक्तत्वादिना तत्प्रतीत्यनुपपत्ते मन्मते त्ववयवगतरसादेरेव परम्परयाऽवगाहनान्नानुपपत्ति ।

एतेन नानारसवद्व्यणुकत्रयारब्धचतुरणुके प्राचीनमते परस्परविरोधेन रसानुत्पत्त्या तत्र रसस्य रासनानुपपत्ति रूप विहायान्येषा त्रसरेणुसमवेताना गुणाना प्रत्यक्षायोग्यतया त्रसरेणुरस विषयीकृत्य चतुरणुकादिविशेष्यकरासनासम्भवात्। तस्मात् तत्र रसप्रत्यक्षानुरोधेन चित्ररसोऽप्यवश्यमङ्गीकार्य इति [मु प्र पृ ६७२] मुक्तावलीप्रभाकृतो वचन निरस्तम् त्रसरेणुसमवेताना रूपेतरगुणाना प्रत्यक्षायोग्यत्वे मानाभावात्, त्रसरेण्वेकत्व-परिमाण-सयोगादीना प्रत्यक्षेणैवोपलम्भात्। न च त्रसरेणुसमवेताना रूपेतरविशेषगुणानामप्रत्यक्षत्वनियम इति वाच्यम् अप्रयोजकत्वात्।

नव्यास्तु नानारसवदवयवारब्धावयविन्यव्याप्यवृत्तिनानारसोत्पत्तौ नानागन्धवद्द्रव्यारब्धावयविन्यव्याप्यवृत्तिनानागन्धोत्पत्तौ च बाधकाभावेन तादृशावयविनि नानारसगन्धानामेव रासनादिप्रत्यक्षविषयत्व 'चित्रो रस' इत्यादिप्रतीतिविषयत्वञ्च स्वीक्रियत इति चित्ररसादिकल्पनमप्रामाणिकमेवेति वदन्ति।

ननु एव = नानारसाद्यवयवारब्धावयविनो नीरसत्व-निर्गन्धत्वस्वीकारे नीरूपो निःस्पर्श तत्र = नानाजातीयरूप-स्पर्शारब्धावयविस्थले अवयवी घटादि. किं न स्यात् ? समवायेन नील प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन नीलेतररूपस्य पीत प्रति पीतेतररूपस्य शुक्ल प्रति च शुक्लेतररूपस्य प्रतिबन्धकत्वाद्विजातीयानेकरूपवदवयवारब्धेऽवयविनि नैकमपि रूपमुपजायते चित्ररूपकल्पने तु गौरवमिति स्वोत्पादानन्तरमपि नीरूप एव स भविष्यति। एव नानास्पर्शवदवयवारब्धावयविनो निःस्पर्शत्वमेवेति भाव। न च एव = स्वोत्पादानन्तरकालेऽपि नानारूपस्पर्शवदवयवारब्धावयविनो नीरसत्वे निर्गन्धत्वे च सोऽवयवी अप्रत्यक्ष = चाक्षुषस्पार्शनसाक्षात्कारागोचर स्यात् लौकिकविषयतया द्रव्यचाक्षुष प्रति स्वसमवायसम्बन्धेनोद्भूतरूपस्य द्रव्यस्पार्शन प्रति च समवायेनोद्भूतस्पर्शस्य कारणत्वादिति वाच्यम् द्रव्यतत्समवेतचाक्षुषस्पार्शनसाधारण्येन =

वल्लभा

किं → "यदि अवयवी मे व्याप्यवृत्ति अनेक रस आदी नहीं होते है तो फिर 'षड्रसा हरितकी' यानी 'हरड छ रसवाली है' इस व्यवहार की उपपत्ति कैसे हो सकेगी ?" ← समाधानार्थ यह कहा जा सकता है कि हरितकी षड्विध रस के कार्य को करती है। इसकी वजह 'षड्रसा हरितकी' ऐसा व्यवहार होता है। मगर इसका अर्थ यह नहीं है कि हरडे मे ही छ रस विद्यमान है। अथवा इसके समाधानार्थ यह भी कहा जा सकता है कि हरितकी के अलग अलग अवयवो मे तिक्त, मधुर, अम्ल आदि रस होते है और उनका स्वसमवायिसमवेतत्वलक्षण परम्परासम्बन्ध से हरितकी मे भान एव व्यवहार होता है।

रूपस्पर्शोभयविहीनघटवादी मतविशेष

पूर्वपक्ष · नन्वेव। 'अनेकरूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी रसविहीन होता है और अनेकगन्धवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी निर्गन्ध होता है' इस मान्यता के मुताबिक अनेकविजातीयरूपवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी को रूपशून्य एव अनेक विजातीयस्पर्शवाले अवयवो से आरब्ध अवयवी को स्पर्शरहित ही क्यों न माना जाय ? यहाँ इस शका का कि → 'यदि तादृश अवयवी मे रूप ही न माना जाय तब तो उसका प्रत्यक्ष ही न हो सकेगा क्योकि रूपविहीन वायु आदि का चाक्षुष या स्पर्शविहीन आकाश आदि का स्पार्शन साक्षात्कार कभी किसीको कहाँ भी नहीं होता है'← समाधान यह है कि द्रव्यविषयक चाक्षुष आदि मे रूप आदि को स्वतन्त्र कारण न मान कर द्रव्य और द्रव्यसमवेत के चाक्षुष के प्रति स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से रूप को कारण मान लेने से एव द्रव्य-द्रव्यसमवेतविषयक स्पार्शन प्रत्यक्ष के प्रति स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से स्पर्श को कारण मान लेने से नीरूप एव निःस्पर्श घट का भी चाक्षुष एव स्पार्शन प्रत्यक्ष होने मे कोई बाधा नहीं हो सकती, क्योंकि नीरूप घट के चाक्षुष मे कपालिकागत रूप स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से कारण होगा। स्व = कपालिकारूप की आश्रय कपालिका मे समवेत कपाल है जिसमे घट वृत्ति है। एव नीरूपघटसमवेत परिमाण सख्या आदि के प्रत्यक्ष मे कपालगत रूप स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से कारण होगा। स्व= कपालरूप

चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति स्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रत्येव च स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन च रूपस्य स्पर्शस्य च हेतुत्वात्। अत एव त्रुटिचाक्षुषानुरोधेन परमाणुद्व्यणुकयोरपि सिद्धिः इत्याहुः।

◆ हेमलता ◆

द्रव्य-द्रव्यवृत्तिगोचरचाक्षुषानुगतरूपेण द्रव्य-द्रव्यवृत्तिविषयस्पार्शनसाक्षात्कारानुगतरूपेण च लौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं = द्रव्य-तद्वृत्तिचाक्षुषमात्रवृत्तिवजात्यावच्छिन्नं प्रति च स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन स्पर्शस्य = उद्भूतस्पर्शस्य हेतुत्वाभ्युपगमात्। लौकिकविषयतया घटचाक्षुषं यदा घटे वर्तते तदा स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन कपालिकारूपमपि तत्र वर्तत एव, घटस्य कपालिकारूपाश्रयीभूतकपालिकासमवेतकपालवृत्तित्वात्। यदा च लौकिकविषयतया घटपरिमाणादिचाक्षुषं घटपरिमाणादौ जायते तदा स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन कपालरूपमपि तत्र वर्तत एव, घटपरिमाणादेः कपालरूपाश्रयीभूतकपालसमवेतघटवृत्तित्वात्। वाय्वादि-तद्वृत्तिपरिमाणादौ तु स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन रूपस्य विरहान्न तत्र लौकिकविषयतया चाक्षुषोत्पाद इत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां लौकिकविषयतया द्रव्य-द्रव्यवृत्तिगोचरचाक्षुषमात्रवृत्तिजात्यावच्छिन्नं प्रति स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेनोद्भूतरूपस्य कारणत्वावधारणान्न तादृशनीरूपघट-तत्परिमाणादेश्चाक्षुषत्वानापत्तिः। एतेनोद्भूतरूपस्य लौकिकविषयतया द्रव्यचाक्षुषे समवायेन कारणत्वं, द्रव्यसमवेतगोचरचाक्षुषे स्वसमवायिसमवेतविशेषणतयेति निरस्तम्, महागौरवात्। एवं लौकिकविषयतया घटस्पार्शनं यदा घटे जायते तदा स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन कपालिकास्पर्शोऽपि तत्र वर्तत एव, घटस्य कपालिकास्पर्शाश्रयीभूतकपालिकासमवेतकपालवृत्तित्वात्। यदा च घटवृत्तिपरिमाणादौ लौकिकविषयतया स्पार्शनं जायते तदा कपालस्पर्शोऽपि तत्र स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन वर्तत एव, घटपरिमाणादेः कपालस्पर्शाश्रयीभूतकपालसमवेतघटवृत्तित्वात् प्रभापिशाचादितद्वृत्तिपरिमाणादौ तु स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेनोद्भूतस्पर्शस्य विरहान्न तत्र लौकिकविषयतया स्पार्शनोदय इत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां लौकिकविषयतया द्रव्य-द्रव्यवृत्तिगोचरस्पार्शनमात्रवृत्तिजात्यावच्छिन्नं प्रति स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेनोद्भूतस्पर्शस्य कारणत्वावधारणान्न तादृशनिःस्पर्शघटादि - तत्परिमाणादेरस्पार्शनत्वापत्तिः तत्र स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेनोद्भूतस्पर्शस्य सत्त्वात्। एतेनोद्भूतस्पर्शस्य लौकिकविषयतया द्रव्यस्पार्शनप्रत्यक्षे समवायेन कारणत्वं द्रव्यसमवेतगोचरस्पार्शने स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन द्रव्यस्पार्शनप्रत्यक्षे स्वसमवायिवृत्तित्वसम्बन्धेन द्रव्यसमवेतवृत्त्यभावादिस्पार्शने च स्वसमवायिसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन कारणतेति प्रत्युक्तम् तथाहेतुताया महागौरवात्। स्वाश्रयसमवेतसमवेतत्वसम्बन्धेन कारणताङ्गीकारे तु पशुत्वादेश्चाक्षुषत्व-स्पार्शनत्वापत्तिः तस्योपाधित्वेन समवायातिरिक्तसम्बन्धेन वृत्तित्वादित्यत स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वस्य तत्कारणतावच्छेदकसम्बन्धत्वाभिधानमिति ध्येयम्।

प्रकृतकल्पस्वीकारफलविशेषमाविष्कुर्वन्ति - अत एव = द्रव्य-तद्वृत्तिसाधारणे चाक्षुषे स्पार्शने च स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेनोद्भूतरूपस्योद्भूतस्पर्शस्य च यथाक्रमं कारणत्वस्वीकारादेव, त्रुटिचाक्षुषाद्यनुरोधेन = त्रसरेणुचाक्षुष-त्र्यणुकपरिमाणादिचाक्षुषान्यथानुपपत्त्या परमाणु-द्व्यणुकयोरपि सिद्धिः निराबाधा। तथाहि लौकिकविषयतया त्र्यणुकचाक्षुषाश्रये त्र्यणुके स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन परमाणुरूपस्यैव वृत्तित्वं सम्भवति, त्र्यणुकस्य परमाणुरूपाश्रयपरमाणुसमवेतद्व्यणुकवृत्तित्वात्। लौकिकविषयतया त्रुटिपरिमाणादिचाक्षुषाधिकरणे च त्रुटिपरिमाणादौ स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन द्व्यणुकरूपस्यैव वृत्तित्वसम्भवः, त्रुटिपरिमाणादेः द्व्यणुकरूपाश्रयद्व्यणुकसमवेतत्रुटिवृत्तित्वात्। परमाणु-द्व्यणुकानङ्गीकारे तु गुणत्वावच्छिन्नस्य द्रव्यमात्रवृत्तित्वनियमेन त्रुटि-तत्परिमाणादिचाक्षुषकारणविरहसिद्ध्या त्रसरेणु-तत्परिमाणाद्यचाक्षुषापत्तिः। एतच्च प्रत्यक्षविरुद्धमिति निरुक्तकार्यकारणभाव-

▶ वल्लभा ◀

के आश्रय कपाल में समवेत है घट, जिसमें घटपरिमाणादि वृत्ति है। अतः तादृशघटपरिमाणादि में कपालरूप स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से रहेगा। इस तरह निःस्पर्श घट के स्पार्शन प्रत्यक्ष में कपालिकास्पर्श स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्व सम्बन्ध से कारण होगा। स्व = कपालिकास्पर्श की आश्रय कपालिका में समवेत कपाल है, जिसमें घट वृत्ति है। अतः निःस्पर्श घट में कपालिकास्पर्श स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्व सम्बन्ध से रहेगा। एवं निःस्पर्श घट के परिमाणादि के स्पार्शन के प्रति कपालस्पर्श स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से कारण होगा। स्व=कपाल स्पर्श के आश्रय कपाल में समवेत घट है, जिसमें तादृशपरिमाणादि वृत्ति है। अतः स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से तादृशपरिमाणादिविषयक स्पार्शन को उत्पन्न करेगा। इस प्रकार के कार्यकारणभाव के स्वीकार में ही परमाणु और द्व्यणुक की सिद्धि हो सकती है, क्योंकि त्रुटि = त्र्यणुक एवं त्र्यणुकपरिमाणादि के चाक्षुष के प्रति स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्व सम्बन्ध से क्रमशः परमाणुरूप एवं द्व्यणुकरूप ही कारण हो सकता है। परमाणु का स्वीकार किये विना त्रुटि के चाक्षुष की कथमपि संगति न हो सकेगी, क्योंकि स्व = परमाणुरूप के आश्रय परमाणु में समवेत द्व्यणुक में त्र्यणुक वृत्ति होने से परमाणु का स्वीकार करने पर ही स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्व सम्बन्ध से परमाणुरूप के आश्रय त्र्यणुक के चाक्षुष की उपपत्ति होगी। एवं त्रुटिगत परिमाण आदि के चाक्षुष की संगति द्व्यणुक को मान्य न करने पर नामुमकिन बनेगी, क्योंकि स्व = द्व्यणुकरूप के आश्रय = द्व्यणुक में समवेत त्र्यणुक में त्रसरेणुपरिमाणादि वृत्ति होने पर द्व्यणुक को मान्य करने पर ही स्वाश्रसमवेतवृत्तित्व सम्बन्ध से द्व्यणुकरूप के आश्रय त्रसरेणुपरिमाणादि के चाक्षुष की संगति हो सकेगी। इस तरह द्रव्य और द्रव्यसमवेत के चाक्षुष की साधारण कारणता का स्वीकार कर के स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्व सम्बन्ध से रूप को उसका कारण मानना ही सुसंगत है' ←

तच्चिन्त्यम्। चित्रकपालिकास्थले तदसम्भवात्।

किञ्च घटाकाशसयोगाद्यचाक्षुपत्वानुरोधेन चाक्षुपत्वावच्छिन्न प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्व कल्पनीय, व्यासज्यवृत्तिगुणप्रत्यक्ष प्रति यावदाश्रयप्रत्यक्षस्य हेतुत्वेऽप्यव्यासज्यवृत्त्याकाशादिगुणाचाक्षुपत्वोपपत्तये रूपवत्त्वस्य

◆ हेमलता ◆

वलेन तदन्यथानुपपत्त्या परमाणूद्भूतरूप- द्व्यणुकोद्भूतरूपसिद्धौ तदाश्रयतया परमाणु-द्व्यणुकयोरपि सिद्धिरप्रत्यूहैव इत्याहु.।

आहुरित्यनेन प्रकरणकृता स्वकीयाऽस्वरसोद्भावन कृतम्। तदेव कण्ठत आवेदयति - तच्चिन्त्यमिति। चिन्ताबीजमेव प्रदर्शयति - चित्रकपालिकास्थले = नानाविजातीयरूपवदवयवारब्धकपालिकासमवेतकपालरब्धघटस्थले तदसम्भवात् = घट-तद्वृत्तिपरिमाणसयोगादिचाक्षुपानुपपत्तेः प्रदर्शितकार्यकारणभावाऽसम्भवात्। नानाविजातीयरूपवदवयवारब्धघटस्येव तत्र कपालिकाया अपि नानाविजातीयरूपवदवयवारब्धत्वेन नीरूपत्वसिद्धेः तदारब्धकपालस्यापि नीरूपत्वसिद्ध्या तत्र घटे स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन कपालिकारूप न वर्तते न वा तद्घटपरिमाणादौ स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन कपालरूप वर्तते येन तच्चाक्षुप सम्भवेत्। सार्वजनीनञ्च नानारूपवदवयवारब्धकपालिकासमवेतकपालारब्धघट-तत्परिमाणादिगोचर चाक्षुपम्। ततश्चैतादृशव्यतिरेक-व्यभिचारादेव नोक्तकारणत्वकल्पनमुचितम्।

'इत्थञ्च तादृशघटस्य नीरूपत्वे तादृशघटवृत्तिसयोगादिचाक्षुप न स्यादि'ति वक्ष्यमाणग्रन्थप्रस्तावार्थमुपक्रमते किञ्चेति। यदि लौकिकविषयतया द्रव्यतद्वृत्तिगोचरचाक्षुप प्रति स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन घटाकाशसयोगादौ सत्त्वात्, घटाकाशसयोगादिचाक्षुपमपि स्यादेव, कपालरूपस्य स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्धेन घटाकाशसयोगादौ सत्त्वात्, घटाकाशसयोगादे कपालरूपाश्रयकपालसमवेतघटवृत्तित्वात्। न चैव भवतीत्यतो घटाकाशसयोगाद्यचाक्षुपत्वानुरोधेन लौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुपत्वाऽवच्छिन्न = द्रव्यसमवेतगोचरचाक्षुपमात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्न प्रति स्वाश्रय-समवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्व कल्पनीय एव। आकाशस्य नीरूपत्वेन घटाकाशसयोगादौ रूपाभावस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन सत्त्वात्, घटाकाशसयोगादे रूपाभावाश्रयाकाशसमवेतत्वात् रूपपदमत्रोद्भूतरूपपर तेन न घटपरमाणुसयोगादिप्रत्यक्षापत्ति । ततश्च नानारूपवदवयवारब्ध-घटस्य नीरूपत्वोपगमे तादृशघटपरिमाणादेरचाक्षुपत्वापत्तिर्वज्रलेपायितैवेति न नानारूपवदवयवारब्धावयविनो नीरूपत्वाभ्युपगम श्रेयानिति निहितार्थो विभावनीयः।

ननु यावदाश्रयप्रत्यक्षे सत्येव व्यासज्यवृत्तिगुणप्रत्यक्ष भवति न तु यत्किञ्चिदाश्रयप्रत्यक्षे सति, व्यासज्यवृत्तिगुणप्रत्यक्ष प्रति यावदाश्रयप्रत्यक्षस्य हेतुत्वादित्याशङ्कायामाह व्यासज्यवृत्तिगुणप्रत्यक्ष प्रति = स्वावच्छिन्नाधेयतावद्गुणप्रत्यक्षत्वसम्बन्धेन पर्याप्तिमत्त्वावच्छिन्न प्रति, यावदाश्रयप्रत्यक्षस्य

▶ वल्लभा ◀

■■ रूपविहीनघटवादी के मत की समालोचना ■■

तच्चिन्त्यम्। मगर प्रकरणकार श्रीमद्जी का उपर्युक्त मान्यता के खिलाफ यह कथन हे कि → उक्त मत विचारणीय है न कि विना विचार के स्वीकार्य। इसका कारण यह है कि चित्रकपालिकास्थल मे उपर्युक्त कार्यकारणभाव नामुमकिन है। अन्तर्निहितार्थ यह है कि जहाँ कपालिका ही विभिन्नरूपवदवयवो से उत्पन्न होगी वहाँ कपालिका भी नीरूप ही होगी। तव कपालिकारूप स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से घट मे ओर कपालरूप स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से घटपरिमाणादि मे न रहने से वहाँ लौकिकविषयता सम्बन्ध से चाक्षुप साक्षात्कार की कथमपि सगति न हो सकेगी। इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि द्रव्य-द्रव्यसमवेतविषयक चाक्षुप के प्रति स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से रूप को कारण मानने पर तो घटाकाशसयोगादि के भी प्रत्यक्ष की आपत्ति आयेगी, क्योकि आकाश नीरूप होने पर भी कपाल रूपवान् होने से कपालरूप के आश्रय कपाल मे समवेत घट मे घटाकाशसयोग आदि वृत्ति होने से उसमे स्वाश्रयसमवेतवृत्तित्वसम्बन्ध से रूप रहता है। मगर घटाकाशसयोग आदि के चाक्षुप के अनुरोध से द्रव्यसमवेतविषयक चाक्षुप के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से रूपाभाव को प्रतिवन्धक मानना ही पडेगा, क्योकि तभी रूपाभाव के आश्रय आकाश मे समवेत घटकाशसयोगादि मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रूपाभाव रहने से विपयतासम्बन्ध से वहाँ घटा काशसयोगादिविषयक चाक्षुप की उत्पत्ति की आपत्ति न आयेगी। इस तरह जव द्रव्यसमवेतविषयक चाक्षुप के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रूपाभाव को प्रतिवन्धक मानना आवश्यक ही है तव तो नानाविजातीयरूपवाले अवयवो से आरव्ध घट को नीरूप मानने पर उस घट मे समवेत सयोग, परिमाण आदि का चाक्षुप न हो सकेगा, क्योकि रूपाभाव के आश्रय उस घट मे समवेत ऐसे सयोग, परिमाण आदि मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रूपा भाव रह जायेगा, जो वहाँ विषयतासम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले तादृशघटसयोग-परिमाणादिविषयक चाक्षुप साक्षात्कार का प्रतिवन्धक होता है।

▼ घटाकाशसयोगादि के अचाक्षुप की उपपत्ति का प्रयास ▲

व्या । यहाँ नीरूपघटवादी की ओर से यह कहा जाय कि → 'व्यासज्यवृत्ति गुण के प्रत्यक्ष के प्रति यावदाश्रयगोचर

द्रव्यसमवेतप्रत्यक्षनियामकप्रत्यासत्तिघटकत्वे गौरवात्। न च स्पर्श-शब्दाद्यन्यतमभेदस्य चाक्षुषहेतुत्वात् स्पर्शादेरिव शब्दादेरपि

◇ हेमलता ◈

= स्वावच्छिन्नगुणाधिकरणतावत्प्रत्यक्षत्वसम्बन्धेन पर्याप्तिमत् हेतुत्वे = कारणत्वकल्पने सति घटाकाशसंयोगादिव्यासज्यवृत्तिगुणप्रत्यक्षापत्तिनिराकरण नानारूपवदवयवारब्धनीरूपघटपटसंयोगादिचाक्षुषस्य चापादने अपि विषयतासम्बन्धेन द्रव्यसमवेतगोचरचाक्षुषं प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्वानुपगमे त्वयाऽसज्यवृत्त्याकाशगुणादिचाक्षुषमापत्स्यतेऽयेन चक्षुषः स्वसंयुक्तसमवायेनाकाशगुणे शब्दादौ सत्त्वात्, शब्दादेरव्यासज्यवृत्तित्वाभावेन विषयतासम्बन्धेन तच्चाक्षुषं प्रति स्वावच्छिन्नगुणाधिकरणतावत्प्रत्यक्षत्वसम्बन्धेन पर्याप्तिमत् प्रत्यक्षस्याऽहेतुत्वात्। ततश्च अव्यासज्यवृत्त्याकाशादिगुणाऽचाक्षुषत्वोपपत्तये रूपवत्त्वस्य = रूपसमवायित्वस्य द्रव्यसमवेतप्रत्यक्षनियामकप्रत्यासत्तिघटकत्वे = द्रव्यसमवेतगोचरचाक्षुषनिरूपितकारणतावच्छेदकसम्बन्धकुक्षिप्रविष्टत्वे, गौरवात्। व्यासज्यवृत्तिगुणप्रत्यक्षे यावदाश्रयप्रत्यक्षस्य हेतुत्वकल्पनेन, अव्यासज्यवृत्तिगुणचाक्षुषे च चक्षुषः स्वसंयुक्तरूपसमवायिद्रव्यानुयोगिकसमवायप्रतियोगित्वसम्बन्धेन हेतुत्वकल्पनं तदपेक्षया चाक्षुषं प्रति रूपाभावस्यैव प्रतिबन्धकत्वकल्पनोचिता। तथा च विजातीयानेकरूपवदवयवारब्धघटस्य नीरूपत्वे तत्समवेतगोचरं चाक्षुषं नैव स्यात्, तत्समवेते परिमाणादौ स्वाश्रयसमवायसम्बन्धेन रूपाभावस्य सत्त्वादिति निष्कृतार्थः।

ननु मया नानारूपवदवयवारब्धनीरूपघटवादिना लौकिकविषयतया द्रव्यसमवेतचाक्षुषं प्रति चक्षुषः स्वसंयुक्तसमवायेनैव कारणत्वमुपेयते न तु स्वसंयुक्तरूपसमवायिसमवायेनेति न तत्कारणतावच्छेदकप्रत्यासत्तिगौरवम्। न चाकाशादिगुणगोचरचाक्षुषापत्तिः पूर्वोक्तरीत्या दुर्निवारैवेति वक्तव्यम्, लौकिकविषयतया चाक्षुषं प्रति स्वरूपसम्बन्धेन स्पर्श-शब्दरसाद्यन्यतमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य कारणत्वाभ्युपगमेनैव तन्निरासात्, शब्दादौ स्पर्शशब्दरसाद्यन्यतमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य कारणत्वाभ्युपगमेनैव तन्निरासात्, शब्दादौ स्पर्शशब्दरसाद्यन्यतमत्वस्य सत्त्वेन तदवच्छिन्नप्रतियोगिता- कान्योन्याभावस्याऽसम्भवात्, भेदस्य स्वप्रतियोगितावच्छेदकेन सम विरोधादित्याशङ्कामपाकर्तुमुपक्षिपति न चेति। अत्र वाच्यमित्यनेनाऽन्वयः। स्पर्शशब्दाद्यन्यतमभेदस्य = दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नस्पर्श-शब्द-रस-गन्ध-गुरुत्व-ज्ञानेच्छा-कृति-द्वेष-संस्कार-गगनपरिमाणाद्यन्यतमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य चाक्षुषहेतुत्वात् = लौकिकविषयतया चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वात् नाकाशादिगुणचाक्षुषापत्तिरित्यत्रान्वीयते। विभावितार्थमेव। गत्यन्तरेण गगनशब्दादिगुणचाक्षुषमुपपादयति - स्पर्शादेरिव शब्दादेरपि तत्त्व-तत्त्वेन

▷ वल्लभा ◁

प्रत्यक्ष हेतु होता है। जैसे घटपटसंयोग व्यासज्यवृत्ति गुण होने से घट एवं पट दोनों का प्रत्यक्ष होने पर ही घटपटसंयोग का प्रत्यक्ष होता है। केवल घट या केवल पट का प्रत्यक्ष होने पर उसका प्रत्यक्ष हो सकता नहीं है। घटाकाशसंयोग का प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है, क्योंकि उसके एक आश्रय घट का प्रत्यक्ष होने पर भी अन्य आश्रय आकाश का प्रत्यक्ष होता नहीं है। यावदाश्रय का प्रत्यक्ष नहीं होने से घटाकाशसंयोग आदि का प्रत्यक्ष हो सकता नहीं है ← तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि घटाकाशसंयोगादि के चाक्षुष की आपत्ति का निराकरण उक्त रीति से करने पर भी आकाश आदि के अव्यासज्यवृत्ति शब्द आदि गुण के चाक्षुष की आपत्ति मुँह फाड़े खड़ी रहती है। मतलब कि स्वसंयुक्तसमवाय सम्बन्ध से चक्षु शब्द में, जो चक्षुःसंयुक्त आकाश में समवेत है, रहने से उसका चाक्षुष होना चाहिए। शब्द तो केवल आकाश में ही समवायसम्बन्ध से रहने से अव्यासज्यवृत्ति गुण होने की वजह उसके प्रत्यक्ष के प्रति तो यावदाश्रयप्रत्यक्ष कारण होता नहीं है। यदि उक्त आपत्ति के परिहारार्थ यह कहा जाय कि →'द्रव्यसमवेतविषयक चाक्षुष के प्रति चक्षु स्वसंयुक्तसमवाय सम्बन्ध से कारण नहीं है किन्तु स्वसंयुक्तरूपसमवायिद्रव्यसमवाय सम्बन्ध से कारण है। आकाश रूपसमवायिद्रव्य नहीं होने से चक्षु उपर्युक्त सम्बन्ध से शब्द में नहीं रहने की वजह शब्दादि के चाक्षुषसाक्षात्कारापत्ति को अवकाश नहीं है'← तो यद्यपि शब्दादि के अचाक्षुष की तो उपपत्ति हो जायेगी मगर द्रव्यसमवेतविषयक चाक्षुष की कारणतावच्छेदकप्रत्यासत्ति के मध्य में रूपवत्त्व = रूपसमवायित्व का प्रवेश होने की वजह गौरव दोष प्रसक्त होगा। स्वसंयुक्तसमवाय की अपेक्षा स्वसंयुक्तरूपसमवायिद्रव्यसमवाय को कारणतावच्छेदक मानने में गौरव तो स्पष्ट ही है।

न च स्पर्श। यहाँ इस शंका का कि → "लौकिक विषयता सम्बन्ध से द्रव्यसमवेतविषयक चाक्षुष के प्रति चक्षु तो स्वसंयुक्तसमवाय सम्बन्ध से ही कारण है मगर स्वरूपसम्बन्ध से स्पर्शशब्दादिअन्यतमभेद भी उसका कारण होता है। आकाशादि के शब्द आदि गुण तो स्पर्श-शब्द आदिअन्यतम होने से उनमें स्पर्श-शब्दादिअन्यतमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद रहता नहीं है, क्योंकि अन्योन्याभाव स्वप्रतियोगितावच्छेदक का विरोधी होता है। भेदप्रतियोगितावच्छेदक स्पर्शशब्दादिअन्यतमत्व के आश्रय शब्दादि में उक्त भेद रहता नहीं है। अतः उनके चाक्षुष का आपादन असंगत है। अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि - जैसे स्पर्श, रूप आदि स्पर्शत्व, रूपत्वादिरूपेण विषयविधया चाक्षुष के अहेतुप्रतिबन्धक होते हैं ठीक वैसे ही शब्द, आकाशपरिमाण आदि भी शब्दत्व, आकाशपरिमाणत्व आदि प्रातिस्विकरूप से विषयविधया चाक्षुष के अहेतु = प्रतिबन्धक होते हैं। इसलिए शब्द आदि का भी चाक्षुष आपादनाऽयोग्य है। आकाशादिगुण विषयविधया चाक्षुष के हेतु नहीं हैं तब उनके चाक्षुष का आपादन कैसे हो सकता है ?" ← समाधान यह है कि स्पर्श-शब्दादिअन्यतमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक

तत्त्वतत्त्वेन चाक्षुषाऽहेतुत्वादेव वा नाकाशादिगुणचाक्षुषापत्तिरिति वाच्यम्, अखण्डभेदस्याऽहेतुत्वात्, रूपाभावस्य चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वे शब्दादीना तत्त्व-तत्त्वेन हेतुत्वाऽकल्पनलाघवाच।

◆ हेमलता ◆

= शब्दत्व- गगनपरिमाणत्वादिना विषयविधया चाक्षुषाहेतुत्वादेव वेति। यथा स्पर्शरसगन्धगुरुत्वादि स्पर्शत्व-रसत्व-गन्धत्व-गुरुत्वत्वादिना विषयविधया चाक्षुषत्वावच्छिन्न प्रति अहेतु = प्रतिबन्धक इति शब्दादो स्वसयुक्तसमवायेन चक्षुषः सत्त्वेऽपि न लौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषमुत्पद्यते तथैव शब्द-गगनपरिमाणादि विषयविधया शब्दत्व-गगनपरिमाणत्वादिना चाक्षुषत्वावच्छिन्न प्रति अहेतु = प्रतिबन्धक इति शब्दादौ स्वसयुक्तसमवायेन चक्षुष सत्त्वेऽपि न लौकिकविषयतया चाक्षुषोत्पादसम्भव। अत एव विजातीयनानारूपवदवयवारब्धघटस्य नीरूपत्वेऽपि तत्सयोगादिचाक्षुषोदयप्रसङ्गो निरवकाश., रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्वाकल्पनादिति शकाकृदाशय।

प्रकरणकारस्तन्निराकुरुते- अखण्डभेदस्याऽहेतुत्वादिति। चाक्षुषत्वावच्छिन्नकारणीभूतभेदप्रतियोगिकुक्षौ उदासीनप्रवेशाप्रवेशाभ्या विनिगमनाविरहात्। अयमाशय स्पर्श-रस-गन्ध-गुरुत्वादेस्तु चाक्षुषकारणीभूतभेदप्रतियोगिकोटौ निवेशो निर्विवादसिद्ध। पर तत्र गगनगुणादे प्रवेश कार्यो न वा ? इत्यत्र न विनिगमक किञ्चिल्लभ्यते तस्योदासीनत्वात्। तथापि तत्र तस्य प्रवेशे परमाणु-द्व्यणुक-पिशाचादेरपि तत्र प्रवेशापत्ति। यदि भेदप्रतियोगिकोटौ तन्निवेशो नाङ्गीक्रियेत, तत एव मा भूत् शब्दादेरपि तत्र निवेश। शब्दादेस्तत्र निवेशे च परमाणु-द्व्यणुक-पिशाचादेरपि निवेशस्य तत्र प्रत्याख्यातुमशक्यत्वात्, अन्यथाऽर्धवैशसापत्ते। न च महत्त्वोद्भूतरूपादिविरहादेव तदचाक्षुषोपपत्तेर्न तस्य प्रतियोगिकोटौ निवेश इति वाच्यम् चाक्षुषप्रतिबन्धकीभूतरूपाभावविशिष्टत्वेन शब्दादेरप्यचाक्षुषोपपत्तेर्न तस्य प्रतियोगिकोटौ निवेशनीयत्वमित्यस्यापि सुवचत्वात्। एवञ्चोदासीनसमावेशासमावेशाभ्यामविनिगमात् निरुक्तान्योन्याभावस्य न चाक्षुषकारणत्व सम्भवतीति भाव।

अस्तु तर्हि स्पर्शशब्दादीना तत्त्वतत्त्वेन चाक्षुषाहेतुत्वम्। एवमपि शब्दाद्यचाक्षुषोपपत्ते चाक्षुषे रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्वकल्पनादित्याशङ्कायामाह- रूपाभावस्य चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वे = चाक्षुषत्वावच्छिन्ननिष्ठप्रतिबध्यतानिरूपितप्रतिबन्धकतावत्त्वे स्वीक्रियमाणे सति शब्दादीना तत्त्व-तत्त्वेन हेतुत्वाकल्पनलाघवात् = चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वाऽकल्पनेन लाघवात्। अय भाव लौकिकविषयतया चाक्षुष प्रति शब्दस्य शब्दत्वेन गगनपरिमाणस्य च गगनपरिमाणत्वेन प्रतिबन्धकत्वमित्यादिकल्पनाया गौरव तदपेक्षया रूपाभावस्यैकस्यैव चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वकल्पनाया लाघवमिति रूपाभावस्यैव चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वे न्यायप्राप्ते नानारूपवदवयवारब्धनीरूपघट-तत्समवेतसयोगाद्यचाक्षुष वज्रलेपायितमेवेति ध्वनितार्थ।

ननु लौकिकविषयतया द्रव्यसमवेतविषयकचाक्षुष प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन चाक्षुषाभावस्यैव प्रतिबन्धकत्व न तु रूपाभावस्य। न च त्रसरेणुचाक्षुषे व्यभिचार तदाश्रयस्य द्व्यणुकस्याऽचाक्षुषत्वेऽपि त्रुटिचाक्षुषोदयादिति वाच्यम् प्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ त्रुटिद्रव्यान्यत्वस्य निवेशनेव तत्प्रच्यवात् त्रुटिभिन्न-द्रव्यसमवेतगोचरचाक्षुष प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन चाक्षुषाभावस्य शब्दादौ सत्त्वात्। इत्यञ्च रूपाभावस्य चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वाऽस्वीकारेऽपि घटाकाशसयोगाद्यचाक्षुषत्वोपपत्तौ नानाविजातीयरूपवदवयवारब्धघटस्य स्वोत्पादानन्तरमपि नीरूपत्वे दोपलेशोऽपि नास्तीति नीरूपघटवाद्य-

▶ वल्लभा ◀

भेद को स्वरूपसम्बन्ध से द्रव्यसमवेतविषयक चाक्षुष का, जो विषयतासम्बन्धावच्छिन्न कार्यता का आश्रय है, कारण मानने पर कारणीभूत भेद की प्रतियोगिकोटि मे उदासीन के प्रवेशाऽप्रवेश मे कोई विनिगमक नही होने से अखण्डभेदविधया वह कारण हो सकता नही है। मतलब यह है कि चाक्षुषकारणीभूत भेद के प्रतियोगि के शरीर मे स्पर्श-रस-गुरुत्व आदि का समावेश तो सर्वमान्य है। मगर शब्दादि का निवेश विवादग्रस्त है, क्योकि वे चाक्षुष के प्रति उदासीन है। फिर भी भेदप्रतियोगिकुक्षि मे शब्दादि का निवेश किया जायेगा तब तो परमाणु, पिशाच आदि का भी उसमे समावेश हो जायेगा, जो नीरूपघटवादी को भी अभिमत नही है। फिर भी स्पर्श-रस-गन्ध-गुरुत्व-शब्दविभुपरिमाण-परमाणु-पिशाचादिअन्यतमत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद को ही चाक्षुषकारण मानने की आपत्ति नीरूपघटवादी के मत मे आयेगी। यदि चाक्षुषकारणविधया अभिमत भेद की प्रतियोगिकोटि मे परमाणु-पिशाचादि का निवेश अमान्य हो तब तो विनिगमनाविरह से शब्दादि का निवेश भी अमान्य होने से केवल स्पर्शादिअन्यतमप्रतियोगिक भेद को ही चाक्षुषकारण मानना होगा जिसके फलस्वरूप मे प्रतिवादी के मत मे शब्दादि के चाक्षुष की पुन आपत्ति आयेगी। इस तरह भेदप्रतियोगिकोटि मे उदासीन के प्रवेशाऽप्रवेश का विनिगमक नही होने से उक्त अखण्ड भेद को चाक्षुष साक्षात्कार का कारण माना जा नही सकता। तथा शब्दादि को तत्त्व-तत्त्वरूप से विषयविधया चाक्षुष का कारण मानने की अपेक्षा उचित तो यही है कि रूपाभाव को ही चाक्षुष साक्षात्कार का प्रतिबन्धक माना जाय। रूपाभाव को ही चाक्षुषप्रतिबन्धक मान लेने पर शब्दादि मे तत्त्व-तत्त्वेन = शब्दत्वादिधर्म से विषयविधया चाक्षुष की प्रतिबन्धकता की कल्पना अनावश्यक होने से लाघव भी है। इस तरह जब रूपाभाव मे प्रतिबन्धकता सिद्ध हो गई तब नानारूपवदवयवारब्ध घट को नीरूप मानने पर तत्समवेत सयोगादि धर्म का चाक्षुष साक्षात्कार कैसे सिद्ध हो सकेगा ? अत अनेक विजातीयरूपवदवयवारब्ध घट को नीरूप माना जा नही सकता-यह फलित होता है।

न च चाक्षुषाभावस्यैवाऽस्तु द्रव्यान्यसच्चाक्षुषं प्रति प्रतिबन्धकत्वं, आश्रयाचाक्षुषत्वेनैव द्व्यणुकाणुयचाक्षुषत्वोपपत्तौ महत्त्वस्यापि प्रत्यासत्त्यघटकत्वे लाघवादिति वाच्यम्, लौकिकविषयितावच्छिन्नचाक्षुषा- भावापेक्षया समवायसम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावस्य लघुत्वात्।

◆ हेमलता ◆

भिप्रायमपहस्तयितुमुपक्रमते - न चेति। वाच्यमित्यनेनास्यान्वयः। स्वाश्रयसमवेतत्वसंसर्गेण चाक्षुषाभावस्यैव न तु रूपाभावस्य अस्तु द्रव्यान्यसच्चाक्षुषं प्रति प्रतिबन्धकत्वमिति। द्रव्यपदमत्र त्रसरेणुपरं, अन्यथाऽनुपद वक्ष्यमाणशङ्काग्रन्थालग्नतापत्तेः। सत्पदं च सत्ताजातिमतो द्रव्यसमवेतस्य बोधकं, प्रतिबध्यतावच्छेदकशरीरलाघवानुरोधेन द्रव्यसमवेतपदं विहाय सत्पदोपादानमिति ध्येयम्। त्रुटिमिन्नसच्चाक्षुषं प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्वकल्पने तु द्व्यणुकादिचाक्षुषापत्तिः, पार्थिवपरमाण्वादौ रूपस्य सत्त्वेन तत्समवेतद्व्यणुकादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावस्य विरहात्। न च महत्त्वस्यापि चाक्षुषसहकारित्वान्नाय दोष इति वाच्यम् तथा सति महत्त्वस्य पृथक्कारणत्वकल्पनागौरवात्। न च चाक्षुषकारणतावच्छेदक सम्बन्धकोटौ तत्प्रवेशान्न पृथक्कारणत्वकल्पनमिति वक्तव्यम् तथापि मन्मते आश्रयाचाक्षुषत्वेनैव द्व्यणुकाद्यचाक्षुषत्वोपपत्त्या द्व्यणुकपार्थिवपरमाणुरूपादिग्रहणे महत्त्वस्यापि प्रत्यासत्त्यघटकत्वे लाघवात् = कारणतावच्छेदकसम्बन्धशरीरलाघवात्। नानारूपवदवयवारब्धनीरूपघटवादिमते आश्रयचाक्षुषाभावस्यैव प्रतिबन्धकत्वस्वीकारात् लौकिकविषयतया द्रव्यसमवेतचाक्षुषे स्वसंयुक्तसमवायेनैव चक्षुषः कारणत्वं परन्तु रूपाभावनिष्ठचाक्षुषप्रतिबन्धकतावादिमते तु द्रव्यसमवेतचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चक्षुषः स्वसंयुक्त-महत्त्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन चक्षुषः कारणत्वमिति स्फुटमेव तत्पक्षे गौरवम्। न च सम्बन्धगौरवस्याऽदोषत्वमिति वक्तव्यम्, सति लघौ गुरौ सम्बन्धत्वकल्पनाया अन्याय्यत्वादिति शङ्काग्रन्थतात्पर्यम्।

प्रकरणकारः तन्निराकरोति - लौकिकविषयितासम्बन्धावच्छिन्नचाक्षुषाभावापेक्षया = स्व-निष्ठलौकिकविषयितानिरूपितविषयतासम्बन्धावच्छिन्न-प्रतियोगिताकचाक्षुषाभावापेक्षया, समवायसम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावस्य = समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकरूपाभावस्य चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वोपगमे लघुत्वात् = लाघवात्। अथ समाधानाशयः अलौकिकविषयितानिरूपितविषयतया यत्र चाक्षुषं नास्ति तत्समवेतरूपादीनां चाक्षुषत्वानुरोधाल्लौकिकविषयि-

▶ वल्लभा ◀

▷ रूपाभाव मे चाक्षुषप्रतिबन्धकता का समर्थन ◀

न च चा। यदि यहाँ नीरूपघटवादी की ओर से शब्दादि के अचाक्षुष की उपपत्ति के लिए ऐसा कहा जाय कि → ''विषयता सम्बन्ध से द्रव्यान्यसद्विषयक चाक्षुष के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से चाक्षुषाभाव प्रतिबन्धक होने से आकाशादि के गुण का, जो द्रव्यभिन्न होते हुए सत्ताजातिमान् है, चाक्षुष प्रत्यक्ष हो सकता नहीं है, क्योंकि आकाशादि का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होने से स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से चाक्षुषाभाव आकाशादिगुण मे रह जाता है। यह तो सर्वजनविदित है कि घटादि द्रव्य का चाक्षुष नहीं होने पर घटगत परिमाण, रूप आदि का भी चाक्षुष होता नहीं है। अतः आश्रयविषयक चाक्षुष के अभाव को गुणादि के चाक्षुष मे प्रतिबन्धक मानना न्यायप्राप्त है। द्व्यणुक का चाक्षुष नहीं होने पर भी त्र्यणुक का चाक्षुष होने से सद्विषयक चाक्षुष को प्रतिबध्य न कह कर द्रव्यान्य-सद्विषयक चाक्षुष का प्रतिबध्य कहा गया है। इस प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव का स्वीकार करने का लाभ यह है कि द्व्यणुक के आश्रय परमाणु का चाक्षुष नहीं होने से ही द्व्यणुक के अचाक्षुष की उपपत्ति हो जाने से महत्त्व को चाक्षुषकारणतावच्छेदक प्रत्यासत्ति का घटक मानने की आवश्यकता नहीं होने से लाघव भी है। मतलब कि चक्षु को स्वसंयुक्तमहत्त्ववद्द्रव्यसमवेतत्व सम्बन्ध से द्रव्यचाक्षुष का कारण मानने की आवश्यकता नहीं है, स्वसंयुक्तसमवाय सम्बन्ध से ही द्रव्यचाक्षुषकारणता का स्वीकार किया जा सकता है। अतः शब्दादि के अचाक्षुष के अनुरोध से रूपाभाव को चाक्षुषप्रतिबन्धक मानने की आवश्यकता नहीं है। इस परिस्थिति मे नानारूपवदवयवारब्ध घटादि को नीरूप मानने पर भी तत्समवेत संयोगादि के अचाक्षुष की आपत्ति को भी अवकाश नहीं रहता है'' ← तो यह वक्तव्य भी असंगत है। इसका कारण यह है कि यदि आप लाघव से ही चाक्षुषाभाव को चाक्षुषप्रतिबन्धक मानते हैं तब तो रूपाभाव को चाक्षुषप्रतिबन्धक मानना मुनासिब है। मतलब यह है कि चाक्षुषाभाव भी लौकिकविषयितावाला और अलौकिकविषयितावाला इस तरह द्विविध है। इनमे से अलौकिकचाक्षुषविषयितावाले चाक्षुष के अभाव को आश्रितगोचर चाक्षुष का प्रतिबन्धक माना जा सकता नहीं है, क्योंकि अलौकिकविषयितावाले घटचाक्षुष का अभाव होने पर भी घट मे आश्रित रूपादि का चाक्षुष होता है। अतः लौकिक विषयितावाले चाक्षुष के अभाव को ही स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से चाक्षुष का प्रतिबन्धक मानना होगा। अतः प्रतिबन्धकतावच्छेदक लौकिकविषयिताविशिष्टचाक्षुषप्रतियोगिकाभावत्व होगा मगर रूपाभाव को चाक्षुष का प्रतिबन्धक मानने पर केवल समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक रूपाभावत्व को प्रतिबन्धकतावच्छेदक माना जा सकता है। अतः हमारे पक्ष मे लाघव है। अथवा यह भी कहा जा सकता है नीरूपघटवादी को लौकिकविषयितानिरूपितविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक चाक्षुषाभाव को स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से प्रतिबन्धक मानना होगा जब कि हमारे मत मे समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक रूपाभाव को स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से प्रतिबन्धक

किञ्च त्रुटावेव विश्रामे महत्त्वस्योभयथा प्रत्यासत्त्यघटकत्वे विनिगमनाविरहादपि रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्वम्। इत्थञ्च तादृशघटस्य नीरूपत्वे तादृशघटवृत्तिसयोगादिचाक्षुष न स्यात्।

◆ हेमलता ◆

तानिरूपितविषयतासंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकचाक्षुषाभावस्यैव स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वमभ्युगन्तव्य नीरूपघटवादिना। मया तु समवायसम्बन्धावच्छिन्नरूपाभावस्यैव तथात्वमिति प्रतिबन्धकतावच्छेदकताघटकशरीरलाघवाद्रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्व युक्तम्। न च सम्बन्धगौरवस्यादोषत्वमिति वक्तव्यम् सति लघौ गुरोः सम्बन्धत्वकल्पनाया अन्याय्यत्वादिति त्वयैवोक्तत्वात्। किञ्च मया सचाक्षुष प्रत्येव रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्व कल्प्यते त्वया तु त्रसरेणुद्रव्यान्यत्वस्य प्रतिबध्यावच्छेदककोटौ देयत्वेन प्रतिबन्धकाभावनिरूपितकार्यतावच्छेदकधर्मगौरवमप्यधिकम्। आश्रयाऽचाक्षुषत्वेनैव द्व्यणुकाद्यचाक्षुषोपपादनेऽपि गगनादेरचाक्षुषत्वोपपादन न कथमपि परस्य सङ्गच्छते, तत्र स्वाश्रयसमवायेन चाक्षुषाभावस्यैव विरहात्। न च द्रव्यपद न त्रुटिद्रव्यपरमिति न तदनुपपत्तिरिति वाच्यम्, तथा सति द्व्यणुकादेरपि प्रतिबध्यताकुक्षिवहिर्भावेन महत्त्वस्य प्रत्यासत्त्यघटकत्वाभिधानासङ्गत्यापत्तेः। ततश्च सचाक्षुष प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन समवायावच्छिन्नरूपाभावस्यैव प्रतिबन्धकत्वमर्हति। ततश्च नानारूपवदवयवारब्धघटस्य नीरूपत्वे तत्समवेतसयोगपरिमाणादीना चाक्षुष नैव स्यादिति प्रकरणकृतस्तात्पर्यम्।

चाक्षुषलौकिकविषयत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षाभावादेरपि तथात्वे विनिगमकाभावोक्तिस्तु कस्यचिन्न शोभते, समनियताभावाऽभेदात्।

किञ्च 'त्रसरेणुः सावयवः चाक्षुषद्रव्यत्वात् घटवत्' 'त्रसरेणोरवयवा' सावयवा महदारम्भकत्वात् कपालवदि'त्यनुमानयोरप्रयोजकत्वेन त्रुटावेवावयविनो विश्रामः। न च चाक्षुष प्रति महत्त्वस्य कारणत्वेन त्रुटौ महत्त्वमावश्यक तच्चावयवसङ्ख्याजन्यमिति विनावयव नोत्पद्यत इत्यनुकूलतर्कसत्त्वान्नाप्रयोजकत्व द्व्यणुकसाधनाकानुमानस्येति वाच्यम् त्रसरेणुमहत्त्वस्य नित्यत्वस्वीकारेणोक्ततर्कानवतारात्। न चाणुव्यवहारस्याणुपरिमाणनिबन्धनत्वात् तदाश्रयद्रव्यसिद्धिरावश्यकीति वाच्यम् तस्यापकृष्टपरिमाणनिबन्धनत्वात महत्यपि महत्तमादणुव्यवहारात्। न चैव त्रसरेणुपुञ्ज एवायवव्यस्त्विति वाच्यम् विशकलितेष्वपि तेषु 'घट' त्यादिप्रत्ययप्रसङ्गात्। न च तत्सयोगवृत्त्येव घटत्व घटो द्रव्यमित्यादिप्रतीतौ च परम्परया तद्भानमिति वक्तव्यम् सम्भवति साक्षात्सम्बन्धविषयत्वे परम्परासम्बन्धविषयकत्वकल्पने गौरवादिति नव्यमतानुसारेणावयविनः त्रुटावेव विश्रामे स्वीक्रियमाणे सति महत्त्वस्य उभयथा = चाक्षुषाभावनिष्ठप्रतिबन्धकत्वपक्षे रूपाभावनिष्ठप्रतिबन्धकत्वपक्षे च प्रत्यासत्त्यघटकत्वे = चाक्षुषत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितायाः चक्षुर्निष्ठकारणताया अवच्छेदकत्वकुक्षावप्रविष्टत्वे विनिगमनाविरहादपि रूपाभावस्य चाक्षुष प्रति प्रतिबन्धकत्व स्वीकार्यम्। रूपाद्युत्पत्तिक्षणे रूपचाक्षुष तु पूर्वं विषयाभावादेव नेत्युभयत्र तुल्यम्। ततश्च रूपाभावस्यैव चाक्षुषप्रतिबन्धकत्वमभ्युपेयम्। निगमयति - इत्थञ्च = व्यावर्णितरीत्या स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावस्यैव विषयतासम्बन्धेन सचाक्षुष प्रति प्रतिबन्धकत्वसिद्धौ च तादृशघटस्य = नानाविजातीयरूपवदवयवारब्धघटस्य स्वोत्पादानन्तरमपि नीरूपत्वे स्वीक्रियमाणे तादृशघटवृत्तिसयोगादिचाक्षुष लौकिकविषयतया तत्सयोगादौ न स्यात् तत्र स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावस्य सत्त्वात्। अतो न तादृशघटस्य नीरूपत्व श्रद्धेयमिति निष्कर्षः।

► वल्लभा ◄

मानना होगा। स्पष्ट ही है कि नीरूपघटवादी के मत मे प्रतिबन्धकतावच्छेदकताघटक सम्बन्ध मे हमारे मत की अपेक्षा गौरव है। लघुसम्बन्ध मुमकिन होने पर गुरुभूत सम्बन्ध की कल्पना करना एव उसे मान्य करना अन्याय्य है। अत रूपाभाव को ही चाक्षुषप्रतिबन्धक मानना होगा जिसके फलस्वरूप नीरूपघटसमवेत सयोग, परिमाण आदि के अचाक्षुष की आपत्ति पुन मुँह फाडे खडी रहेगी। अत अनेक रूपवाले अवयवो से आरब्ध घटादि को नीरूप माना जा नही सकता-यह फलित होता है।

किञ्च त्रु। इसके अतिरिक्त एक बात यह है कि अवयवी का परमाणु मे विश्राम न मान कर त्रसरेणु मे ही विश्राम माना जाय तब तो चाक्षुष के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से चाक्षुषाभाव को प्रतिबन्धक मानो या रूपाभाव को प्रतिबन्धक मानो, दोनो ही पक्ष मे चाक्षुष के प्रति चक्षुनिष्ठकारणतावच्छेदकसम्बन्धकुक्षि मे महत्त्व का निवेश अनावश्यक होने से रूपाभाव को चाक्षुषप्रतिबन्धक मानने पर भी प्रत्यासत्तिगौरव दोष अप्रसक्त है। अतएव रूपाभाव को चाक्षुषप्रतिबन्धक मानना या चाक्षुषाभाव को ? इस विवाद का कोई अन्त नही आने की वजह रूपाभाव को भी चाक्षुष का प्रतिबन्धक माना जा सकता है। जब अनिच्छा से भी यह प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव प्रतिवादी को स्वीकार्य होगा तब तो नानाविजातीयरूपवाले अवयवो से आरब्ध घट को अपनी उत्पत्ति के बाद भी नीरूप मानने पर उसमे समवायसम्बन्ध से रहनेवाले सयोग आदि के अचाक्षुष की आपत्ति वज्रलेप हो जायेगी, क्योकि उस सयोग आदि मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रूपाभाव रहता है। प्रतिबन्धक के रहने पर कार्य का जन्म कैसे हो सकता है ? इसी सबब नील, पीत आदि अनेकवर्णवाले अवयवो से आरब्ध घटादि को स्वोत्पत्ति के बाद नीरूप नही माना जा सकता - यह फलित होता है। यह प्रकरणकार श्रीमद् का अभिप्राय है।

एतेन उद्भूतैकत्वस्यायोग्यव्यावृत्तधर्मविशेषस्यैव वा द्रव्यचाक्षुषकारणत्वेन रूपं विनाऽपि घटादिचाक्षुषत्वोपपादने स्वतन्त्राणां तादृशघटस्य नीरूपत्वं प्रत्याख्यातम्। स्पार्शनं प्रति तु स्पार्शनाभावस्यैव प्रतिबन्धकत्वं न तु स्पर्शाभावस्य, त्रुटिसमवेताऽस्पार्शनानुरोधेन

◆ हेमलता ◆

एतेन =लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्यसमवेतचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन रूपाभावस्य प्रतिबन्धकत्वप्रतिपादनेन अस्य चाग्रे प्रत्याख्यातमित्यनेनान्वयः। उद्भूतैकत्वस्येति। पिशाचादेः चाक्षुषत्ववारणाय उद्भूतपदनिवेशः। लौकिकविषयतया द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं समवायेनोद्भूतैकत्वस्य कारणत्वमिति भावः। यद्यपि उद्भूतत्वं रूप-स्पर्शादिष्वेव प्रसिद्धं न तु सङ्ख्यायां तथापि फलबलेन प्रकृते तत्कल्पनम्। परन्त्वेवं तत्कल्पनायामन्योन्याश्रयः एकत्वे उद्भूतत्वसिद्धावुद्भूतैकत्वस्य द्रव्यचाक्षुषकारणतासिद्धिः तत्सिद्धौ चैकत्वे उद्भूतत्वसिद्धिरिति। न च पिशाचादिचाक्षुषत्वाभावान्यथानुपपत्त्या तत्कल्प्यत इति वाच्यम् उद्भूतरूपाभावादेव तदुपपत्तेः। न चोद्भूतस्पर्शसमानाधिकरणैकत्वमेवोद्भूतैकत्वमिति वक्तव्यम् तथा सति वायोरपि चाक्षुषत्वापत्तेः। न चोद्भूतरूपसमानाधिकरणमेकत्वमेवोद्भूतत्वपदार्थ इति वक्तव्यम् एवं सति नानाविजातीयरूपवदवयवारब्ध-घटादेरचाक्षुषत्वापातेन नीरूपत्वसिद्धिमनोरथ आयुष्मता व्याहन्येत। न च प्रकृष्टमहत्त्वसमानाधिकरणमेकत्वमेवोद्भूतैकत्वपदेन ज्ञाप्यत इति वाच्यम् तथा सति गगनादेरपि चाक्षुषत्वप्रसङ्गात्। इत्थमेकत्वे उद्भूतत्वस्याऽसिद्धौ उद्भूतैकत्वस्य द्रव्यचाक्षुषकारणत्वाभिधानं वन्ध्यासुतस्य पर्वतोत्पादनव्यावर्णनतुल्यमापद्येतेत्याशङ्कायां कल्पान्तरमाविर्भावयति - अयोग्यव्यावृत्तधर्मविशेषस्य = चक्षुर्योग्यद्रव्यावृत्तिधर्मविशेषस्य चक्षुर्योग्यद्रव्यमात्रनिरूपितवृत्तित्वविशिष्ट-द्रव्यत्वादिस्वरूपस्य एव न तूद्भूतरूपस्य वा द्रव्यचाक्षुषकारणत्वेन = लौकिकविषयतया द्रव्यविषयकचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वेन रूपं विनाऽपि घटादिचाक्षुषत्वोपपादनेन = निरुक्तधर्मविशेषबलेनैव घटादिद्रव्ये लौकिकविषयतया चाक्षुषोदयसाधनेन स्वतन्त्राणां विदुषां तादृशघटस्य = नानाविजातीयरूपवदवयवारब्धघटस्य नीरूपत्वं नीरूपत्वसमर्थनं प्रत्याख्यातम्, सिद्धप्रतिबन्धकतावद्रूपाभावे सति तादृशघटसमवेतचाक्षुषानुदयापातात् द्रव्यचाक्षुषकारणीभूतधर्मविशेषनिष्ठायोग्यद्रव्यव्यावृत्तिनियामकोद्भूतरूपस्यैव 'तद्धेतोरस्तु किं तेन ?' इतिन्यायेन चाक्षुषकारणत्वस्वीकारस्य न्याय्यत्वात्।

एतेन घटाकाशसंयोगादीनां गुरुत्वादिवदयोग्यत्वादेव न तच्चाक्षुषोदयप्रसङ्ग इति निरस्तम् उदासीनप्रवेशाप्रवेशाभ्यां विनिगमनाविरहस्योक्तत्वादिति दिक्।

यथा नानारूपवदवयवारब्धनीरूपघटवादिना लौकिकविषयतया द्रव्यसमवेतचाक्षुषे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन चाक्षुषाभावस्यैव प्रतिबन्धकत्वं स्वीक्रियते न तु रूपाभावस्य तथैव शक्यते वक्तुं मया तादृशनिःस्पर्शघटवादिना यदुत लौकिकविषयतया स्पार्शनं प्रति तु स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन स्पार्शनाभावस्यैव = त्वगिन्द्रियजन्यसाक्षात्काराभावस्यैव प्रतिबन्धकत्वं न तु स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन स्पर्शाभावस्य । इयांस्तु विशेषो नीरूपघटवादिमते उक्तदोषपरम्पराया अनिर्वालनीयत्वं मत्पक्षे तु नास्ति दोषगन्धलेशोऽपि। न च स्पर्शाभावस्य कुतो न तत्प्रतिबन्धकत्वमिति वाच्यम् तथा

▶ वल्लभा ◀

■□ नीरूपघटवादी नव्यनैयायिक के मत की समालोचना □■

एतेन०। यहाँ नव्य विद्वानो का यह वक्तव्य है कि →- 'समवाय सम्बन्ध से उद्भूत एकत्व अथवा अयोग्यव्यावृत्त धर्मविशेष अर्थात् चक्षुयोग्यवृत्तित्वविशिष्ट द्रव्यत्व लौकिकविषयता सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले द्रव्यचाक्षुष के प्रति कारण है। अतः विभिन्नरूपवाले अवयवों से आरब्ध घट मे रूप उत्पन्न न होने पर भी उसका चाक्षुष साक्षात्कार हो सकता है, क्योंकि उसमें समवाय सम्बन्ध से उद्भूत एकत्व रहता है, जो पिशाचादि मे रहता नहीं है अथवा समवाय सम्बन्ध से वहाँ अयोग्यव्यावृत्त धर्मविशेष रहने से भी लौकिकविषयता सम्बन्ध से चाक्षुष साक्षात्कार की उत्पत्ति हो सकती है'←

मगर प्रकरणकार श्रीमद्जी नव्य नैयायिको को कहते है कि अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत! हमने अभी बता दिया कि स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से रूपाभाव द्रव्यसमवेतविषयक चाक्षुष का, जो लौकिकविषयता सम्बन्ध से स्वविषय मे उत्पन्न होता है, प्रतिबन्धक है तब तो तादृश नीरूप घट मे रहनेवाले संयोग, परिमाण आदि का भी चाक्षुष साक्षात्कार न हो सकेगा, क्योंकि उन संयोग आदि मे स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से रूपाभाव रहता है । अनेकविजातीयरूपवाले अवयवो से आरब्ध घटादि मे समवेत संयोग आदि का चाक्षुष तो अनुभवसिद्ध होने से समवायसम्बन्ध से उद्भूत एकत्व को अयोग्यव्यावृत्त धर्मविशेष को लौकिक विषयता सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले द्रव्यचाक्षुष का कारण माना जा नहीं सकता ।

▶ स्पर्शविहीन घट का समर्थन ◀

स्पा । महोपाध्यायजी एक नयी दिशा मे अपनी कलम को चलाते हुए यह बताते है कि जैसे विभिन्नरूपवाले अवयवो से आरब्ध घटादि को उत्पत्ति के अनन्तर काल मे भी नीरूप माननेवाले स्वतन्त्र विद्वानो ने कहा था कि स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से चाक्षुषाभाव ही द्रव्यसमवेतचाक्षुष का प्रतिबन्धक है, न कि रूपाभाव ठीक वैसे ही हम यह कह सकते है कि लौकिकविषयतासम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले द्रव्यसमवेतविषयक स्पार्शनप्रत्यक्ष के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से स्पार्शनाभाव ही प्रतिबन्धक है, न कि स्पर्शाभाव।

सयुक्तसमवायप्रत्यासत्तिमध्ये प्रकृष्टमहत्त्वस्य घटकत्वे गौरवात्। एवञ्च तादृशघटस्य निःस्पर्शत्वे तु न क्षतिः इति मदेकपरिशीलितः पन्थाः।

◆ हेमलता ◆

सति त्रुटिस्पर्शस्पार्शनापत्तेः सुरगुरुणाऽपि निराकर्तुमशक्यत्वात् स्वसयुक्तसमवायेन त्वगिन्द्रियस्य स्वसयुक्तत्रुटिसमवेतस्पर्शे सत्त्वात् त्रुटेः स्पर्शवत्त्वेन तत्स्पर्शे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन स्पर्शाभावस्य च विरहात् सति कारणकलापे कार्योत्पादस्य न्याय्यत्वात्। न च प्रकृष्टमहत्त्वस्यापि तत्र सहकारित्वान्नाय दोष इति वक्तव्यम् तत्र पृथक्कारणत्वकल्पने गौरवात् न च द्रव्यसमवेतस्पार्शने त्वचः स्वसयुक्तप्रकृष्टमहत्त्ववद्द्रव्यसमवेतत्वसम्बन्धेनैव कारणत्वान्नाय दोषः, त्रुटिमहत्त्वस्याऽपकृष्टत्वेन निरुक्तसम्बन्धेन त्वचस्तत्स्पर्शे विरहादिति वाच्यम् त्रुटिसमवेतास्पार्शनानुरोधेन सयुक्तसमवायप्रत्यासत्तिमध्ये = त्वगिन्द्रियनिष्ठका- रणतावच्छेदकीभूतस्वसयुक्तसमवायसम्बन्धशरीरकुक्षौ प्रकृष्टमहत्त्वस्य घटकत्वे = निरुक्तरीत्या निवेशे गोरवात् =द्रव्यसमवेतगोचरस्पार्शननिरूपितकारणता- वच्छेदकप्रत्यासत्तिगौरवापातात्। न च सम्बन्धगौरवस्याऽदुष्टत्वमिति वक्तव्यम्, सति लघौ गुरोः ससर्गत्वकल्पनाया अन्याय्यत्वात्, अन्यथा दण्डत्वस्यापि स्वाश्रयजन्यभ्रमिवत्त्वसम्बन्धेन घटकारणत्वाभ्युपगमापत्ते'। न च त्वन्मते कथ न त्रुटिसमवेतस्पर्शस्पार्शनाभावस्य त्रुटिस्पर्शादौ सत्त्वात्, सति प्रतिबन्धके कार्योत्पादाऽयोगात्।

एतेन कोमलकठिनस्पर्शवदवयवाभ्यामारब्धे घटे स्पर्शानङ्गीकारे घटस्य स्पार्शनानापत्तिरित्यादिरीत्या चित्रस्पर्श आवश्यक इति [मु दि पृ ६७२] दिनकरभट्टवचनमपाकृतम्, स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन तत्र स्पर्शनाभावाऽसत्त्वेन निःस्पर्शघटादिस्पार्शनोपपत्तेः, अतिरिक्तचित्रस्पर्शकल्पने गौरवाच्च।

एतेन लौकिकविषयितासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्पार्शनाभावापेक्षया समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्पर्शाभावस्य लघुत्वादिति विपरीतमेव गौरवमिति निरस्तम् त्रुटि-तत्समवेतस्पर्शादिस्पार्शनत्वस्य परमते दुर्वारत्वात्। न च द्व्यणुयस्पार्शनानुरोधेनोभयपक्षे महत्त्वस्य प्रत्यासत्तिमध्येऽवश्य निवेशनीयत्वादिति वक्तव्यम्, त्रुटावेवावयविनो विश्रान्तत्वमतवलम्ब्य प्रकृते स्पार्शनाभावस्य प्रतिबन्धकत्वप्रतिपादनात्। अस्तु वा परमाणावेवाऽवयविनो विश्रान्तिः तथापि मन्मते त्वगिन्द्रियनिष्ठकारणताया अवच्छेदकत्वप्रत्यासत्तौ केवल महत्त्वस्यैव निवेशः तव तु त्रुटिसमवेताऽस्पार्शनत्वोपपत्तये तत्राऽपि प्रकृष्टत्वदानावश्यकत्वादधिक गौरवमिति ध्येयम्।

ननु तथापि त्वन्मते वायुसमवेतस्पर्शाऽस्पार्शनत्वापत्तिर्दुर्निवारैव, वायोरस्पार्शनत्वेन तत्स्पर्शे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन स्पार्शनाभावस्य सत्त्वादिति चेत् ? नैवम् 'शीतो वायुर्वाती'त्यादिप्रतीत्या तत्स्पार्शनत्वसिद्धेः। न च तस्या वायुस्पर्शावगाहित्वेनाप्युपपत्तिरिरिति वक्तव्यम्, एव सति 'वायु स्पृशामी'त्यनुव्यवसायानुपपत्तेः। इत्थञ्च वायोः स्पार्शनत्वेन तत्स्पर्शे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन स्पार्शनाभावविरहान्न लौकिकविषयतया स्पार्शनानुपपत्तिः। निगमयति -एवञ्च = 'द्रव्यसमवेतस्पार्शनत्वावच्छिन्ने स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन स्पार्शनाभावस्यैव प्रतिबन्धकत्व न तु स्पर्शाभावस्ये'त्येव सिद्धौ च तादृशघटस्य नानाविजातीयस्पर्शवदवयवारब्धघटस्य नि स्पर्शत्वे तु न क्षति तत्कपालस्पार्शनत्वसिद्धेः तत्र घटे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन

▶ वल्लभा ◀

इसका कारण यह है कि यदि वेसा न मान कर द्रव्यसमवेतविषयक स्पार्शनप्रत्यक्ष के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से स्पर्शाभाव को प्रतिबन्धक माना जाय तव तो त्रुटिस्पर्श के स्पार्शन साक्षात्कार की आपत्ति आयेगी, क्योकि त्रसरेणु मे स्पर्श होने की वजह त्रसरेणुस्पर्श मे स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से स्पर्श ही रहेगा न कि स्पर्शाभाव। जब कि कार्याधिकरणविधया अभिमत मे प्रतिबन्धक ही नही रहता हैं तव तो स्वसयुक्तसमवेतत्व सम्बन्ध से त्रुटिस्पर्श मे रह जाने की वजह त्रुटिस्पर्श का स्पार्शनप्रत्यक्ष होना ही चाहिए। मगर वह नही होता है, - यह तो सर्व दार्शनिको को सम्मत है। यदि उसके निवारणार्थ यह कहा जाय कि ⟶ 'स्पर्शन इन्द्रिय केवल स्वसयुक्तसमवाय सम्बन्ध से द्रव्यसमवेतविषयक स्पार्शन प्रत्यक्ष का कारण नही है किन्तु स्वसयुक्तप्रकृष्टमहत्त्ववत्समवाय सम्बन्ध से ही उसका कारण हे। त्रसरेणु मे स्पर्श अवश्य है मगर उसका महत्त्व = महत्परिमाण प्रकृष्ट होता नही है, अपकृष्ट होता हे। अतएव त्वगिन्द्रिय स्वसयुक्तप्रकृष्टमहत्समवायसम्बन्ध से स्वसयुक्तत्रसरेणुस्पर्श मे नही रहने की वजह उसमे लौकिकविषयता सम्बन्ध से स्पार्शन साक्षात्कार उत्पन्न होने का अवकाश ही नही है' ⟵ तो यह भी असगत हैं, क्योकि तव द्रव्यसमवेतविषयक स्पार्शन प्रत्यक्ष की कारणतावच्छेदक प्रत्यासत्ति मे प्रकृष्ट महत्त्व के निवेश का गौरव प्राप्त होता हे। अतएव आपके वक्तव्य को मान्यता दी जा नही सकती। हमारे मत मे तो त्रसरेणुस्पर्श के साक्षात्कार का कोई अवकाश ही नही है, क्योकि त्रसरेणु का स्पार्शन साक्षात्कार नहीं होने से स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से स्पार्शनाभाव त्रसरेणुसमवेत स्पर्श मे रहता है, जो लोकिकविषयतासम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले द्रव्यसमवेतविषयक स्पार्शन साक्षात्कार का प्रतिबन्धक होता हे। प्रतिबन्धक रहने पर कार्य को उत्पन्न होने का अवकाश ही कहाँ? अत लोकिक विषयता सम्बन्ध से द्रव्यसमवेतगोचर स्पार्शन के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से स्पार्शनाभाव को ही प्रतिबन्धक मानना चाहिए, न कि स्पर्शाभाव को-

५ यह सिद्ध होने पर विभिन्नस्पर्शवाले अवयवो से आरब्ध घटादि को स्पर्शविहीन माना जा सकता हे, क्योकि उसके कारणीभूत कपालो

अथ चाक्षुषसामान्य प्रत्येव भावाभावसाधारणेन शक्तिविशेषेण लाघवाद्धेतुत्वम्, अन्यथा द्रव्यचाक्षुषे समवायेन गुणादिचाक्षुषे च सम्बन्धविशेषेण रूपस्य हेतुत्वे वक्तव्ये गौरवादिति किमर्थं नानारूपवदवयवारब्धावयविन्यनन्तरूपादिकल्पनमिति चेत्? न रूपत्वादिनाऽन्वयव्यतिरेकग्रहात्तेनैव रूपस्य विषयस्य च तत्तद्रूपेण चाक्षुषहेतुत्वात्, अन्यथा दण्डचक्रादीनामपि घटं प्रति शक्तिविशेषेणैव हेतुत्वप्रसङ्गात्।

◆ हेमलता ◆

स्पार्शनाभावविरहात् स्वसंयोगसम्बन्धेन त्वचा स्पार्शनोत्पादे बाधकाभावात्। अत एव तादृशस्पर्शहीनघटसमवेतपरिमाणादिस्पार्शनत्वानुपपत्तिरपि प्रत्याख्याता तत्परिमाणादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन स्पार्शनाभावविरहात्। इत्थञ्च तादृशघटस्य नीरूपत्वाभ्युपगमापेक्षया निःस्पर्शत्वाभ्युपगम एव श्रेयानिति तात्पर्यम्। इदञ्च प्राढिवादेन बोध्यं तेन नापसिद्धान्तनिग्रहस्थानप्राप्तिरिति ध्येयम्।

नीरूपघटवादी शङ्कते अथेति। चेदित्यनेनास्यान्वयः। चाक्षुषसामान्यं प्रत्येव चाक्षुषत्वावच्छिन्ने एव भावाभावसाधारणेन रूप-रूपाभावानुगतेन शक्तिविशेषेण लाघवात् = कार्यकारणभावलाघवात् हेतुत्वम्। लौकिकविषयतया चाक्षुषत्वावच्छिन्ने शक्तिविशेषेण स्वाश्रयसम्बन्धेन सत्त्वात्तत्र विषयतया घटचाक्षुषमनपायम्। नानारूपवदवयवारब्धे नीरूपे घटे शक्तिविशेषविशिष्टस्य रूपाभावस्य स्वाश्रयसम्बन्धेन सत्त्वात्तत्राऽपि विषयतया घटचाक्षुषं निराबाधम्। एवं नीरूपे घटसमवेतपरिमाणादौ शक्तिविशेषविशिष्टस्य रूपाभावस्य स्वाश्रयसम्बन्धेन सत्त्वात्तत्राऽपि विषयतया परिमाणादिचाक्षुषं निरपायम्। न चैवं पिशाचादिचाक्षुषप्रसङ्ग इति वाच्यम् रूपपदस्योद्भूतरूपपरत्वात्। न च तथापि गगन-तत्परिमाण-घटाकाशसंयोग-ज्ञानादेरपि चाक्षुषापत्तिः तत्र स्वाश्रयसम्बन्धेन रूपाभावस्य सत्त्वादिति वाच्यम् गगनादिवृत्तिरूपाभावव्यावृत्तरूपाभावेष्वेव शक्तिविशेषस्वीकारात्। अन्यथा = चाक्षुषत्वावच्छिन्ने उद्भूतरूप-तदभावानुगतशक्तिविशेषावच्छिन्नकारणताया अस्वीकारे, विषयतया द्रव्यचाक्षुषे = द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति समवायेन रूपस्य = उद्भूतरूपस्य हेतुत्वे गुणादिचाक्षुषे = लौकिकविषयतया द्रव्यसमवेतचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति च सम्बन्धविशेषेण = स्वसमवायिसमवेतत्व-सम्बन्धेन रूपस्य उद्भूतरूपस्य हेतुत्वे वक्तव्ये गौरवात् = नानाकार्यकारणभावगौरवात् इति हेतोः किमर्थं नानारूपवदवयवारब्धावयविनि घटादौ अनन्तरूपादिकल्पनं? तस्य नीरूपत्वेऽपि तत्र तत्परिमाणादौ च शक्तिविशेषविशिष्टरूपाभावस्य स्वाश्रयसम्बन्धेन सत्त्वेन चाक्षुषोपपत्तेः।

प्रकरणकारस्तन्निराकरोति नेति। चाक्षुषत्वावच्छिन्ने रूपत्वादिना अन्वयव्यतिरेकग्रहात् तेनैव रूपेण = कार्यान्वयव्यतिरेकप्रयोजकान्वयव्यतिरेकनि-रूपितप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मस्य कारणताच्छेदकत्वस्वीकारे, दण्डचक्रादीनामपि घटं प्रति शक्तिविशेषेणैव = दण्डचक्र-कुलालादिसाधारणशक्तिविशेषेणैव हेतुत्वप्रसङ्गात् न तु दण्डत्व-चक्रत्वादिना। न चैवं भवति। अतः चाक्षुषान्वयव्यतिरेकप्रयोजकान्वयव्यतिरेकनिरूपितप्रतियोगितानवच्छेदकत्वान्न

► वल्लभा ◄

का स्पार्शन साक्षात्कार होने में उस घट में स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से स्पार्शनाभाव नहीं रहने से स्वसंयोगसम्बन्ध से त्वगिन्द्रियजन्य साक्षात्कार उसमें लौकिक विषयता सम्बन्ध से हो सकता है। इस तरह तादृश घट को स्पर्शशून्य मानने पर भी उसका एवं उसके परिमाण आदि का स्पार्शन साक्षात्कार हो सकता है। अतः उसे स्पर्शशून्य माना जा सकता है, मगर रूपविहीन माना जा नहीं सकता। यह केवल महोपाध्यायजी के द्वारा ही सोचा गया नवीन मीमांसामार्ग है।

▼ शक्तिविशेष से चाक्षुषकारणता नामुमकिन ▲

अथ चा। यहाँ नीरूपघटवादी का यह वक्तव्य कि →चाक्षुषसामान्य के प्रति ही भावाभावसाधारण शक्तिविशेष से कारणता का स्वीकार उचित है, क्योंकि ऐसा मानने में लाघव है। यदि शक्तिविशेष को चाक्षुषसामान्य की कारणता का अवच्छेदक न माना जाय और रूपत्वेन रूप को चाक्षुषकारणतावच्छेदक माना जाय तब गौरव प्रसक्त होगा, क्योंकि द्रव्यचाक्षुष के प्रति रूप को समवाय सम्बन्ध से कारण कहना होगा और द्रव्यसमवेत गुणादि के चाक्षुष के प्रति रूप को स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से कारण कहना होगा। इस तरह द्विविध कार्यकारणभाव के स्वीकार का गौरव प्रसक्त होता है। तथा इस तरह कारणता का स्वीकार करने में अनेक रूपवाले अवयवों से आरब्ध अनन्त अवयवी के प्रत्यक्ष की उपपत्ति के लिए अनन्त रूप आदि की कल्पना का गौरव होगा। हमारे मत में तो अनेक रूपवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी में एक भी रूप उत्पन्न नहीं होने पर भी उस घट का चाक्षुष हो सकता है, क्योंकि रूपाभाव में एक शक्तिविशेष विद्यमान है। इस तरह भावाभावसाधारण शक्तिविशेष से चाक्षुषसामान्य की कारणता का स्वीकार किया जा सकता है।←

न०। भी इसलिए निराधार है कि जिस धर्म के पुरस्कार से कार्य के प्रति कारण के अन्वय-व्यतिरेक का ज्ञान होता है उसी धर्म से कारणता अवच्छिन्न=नियन्त्रित होती है- यह सर्वमान्य है। चाक्षुष के प्रति रूप का अन्वय-व्यतिरेक शक्तिविशेष के पुरस्कार से ज्ञात होता नहीं है किन्तु रूपत्व धर्म के पुरस्कार से ही। एवं घट, पट आदि विषय भी घटत्व, पटत्व आदि

किञ्चैव रूपादीनामेव शक्तिविशेषेण हेतुत्व विषयस्य वा? इति विनिगमनाविरहः। न च रूपादीना प्रत्यासत्तिभेदेन कारणताभेदस्तत्प्रत्यासत्तीनामेव शक्तिविशेषेणानुगताना हेतुत्वप्रसङ्गात्। अपि चैव चाक्षुपसामान्य प्रति प्रयोजको रूपस्यैव सिध्यतु कश्चन सम्बन्धविशेषो न तु शक्तिविशेषः।

◆ हेमलता ◆

शक्तिविशेषस्य चाक्षुपत्वावच्छिन्ननिरूपितकारणताच्छेदकत्व सम्भवति। नानाकार्यकारणभावकल्पनागौरवस्य तु फलमुखत्वेन निर्दोषत्वम्। न हि प्रामाणिकगौरवस्य दोषत्वमामनन्ति मनीपिणः।

किञ्च एव = भावाभावसाधारणशक्तिविशेषावच्छिन्नकारणतानिरूपितचाक्षुपत्वावच्छिन्नकार्यताङ्गीकारे तु रूपादीनामेव शक्तिविशेषेण चाक्षुपत्वावच्छिन्न प्रति हेतुत्व विषयस्य वा? इति विनिगमनाविरह । विषयस्यैव शक्तिविशेषेण चाक्षुपत्वावच्छिन्नकारणत्वेऽपि गगनादिचाक्षुपानुत्पादस्य नीरूपघट-तत्परिमाणादिचाक्षुपोदस्य च निर्वाहात्। न च रूपादीना = उद्भूतरूप-तदभावादीना प्रत्यासत्तिभेदेन = स्वसमवाय स्वदैशिकविशेषणताविशेषा-दिकारणतावच्छेदकसम्बन्धभेदेन कारणताभेद = चाक्षुपनिरूपितकारणताभेदः दुर्निवारः घटकभेदे घटितभेदस्य न्याय्यत्वादिति वक्तव्यम्, तत्प्रत्यासत्तीना = समवाय-दैशिकविशेषणताविशेषादिसम्बन्धाना एव शक्तिविशेषेण अनुगताना हेतुत्वप्रसङ्गात्। न चैव वाय्वादिचाक्षुपप्रसङ्ग इति शङ्कनीयम्, प्रतियोग्यादिभेदेन नानासमवायाङ्गीकारादित्यत्र तात्पर्यात्। अपि च एव = कार्यकारणभावलाघव एव दृष्टिदाने विषयतया चाक्षुपसामान्य =चाक्षुपत्वावच्छिन्न प्रति प्रयोजको रूपस्यैव = उद्भूतरूपस्यैव सिध्यतु कश्चन सम्बन्धविशेष घटादि-तत्समवेतपरिमाणादि- तत्समवेतसमवेतपरिमाणत्वादिभिः साक न तु शक्तिविशेष प्रयोजनविरहात्।

► वल्लभा ◄

धर्म के पुरस्कार से अन्वय-व्यतिरेक के प्रतियोगी होते हैं, न कि शक्तिविशेषरूपेण। अत चाक्षुष के प्रति रूप का रूपत्वेन एव विषय का तत् तत् धर्मविशेष से अन्वय-व्यतिरेक ज्ञात होने से रूपत्व आदि को ही चाक्षुपकारणतावच्छेदक माना जा सकता है न कि शक्तिविशेष को। यदि कार्य के अन्वय-व्यतिरेक जिसके अन्वय-व्यतिरेक के अधीन है उसका ज्ञान जिस धर्म के पुरस्कार से नही होता है उसे भी कारणतावच्छेदक मान जाय तब तो घट के प्रति दण्ड, चक्र, कुलाल आदि भी शक्तिविशेष से कारण बन जायेंगे, न कि दण्डत्व, चक्रत्व आदि धर्म के पुरस्कार से।

किञ्चैव । इसके अतिरिक्त यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि शक्तिविशेष से कारणता का स्वीकार किया जाय तब तो चाक्षुप के प्रति रूपादि को ही शक्तिविशेषरूपेण चाक्षुपकारण मानना या विषय को? इस विषय मे भी निर्णायक तर्क नही रहेगा। मतलब कि नीरूप रूपवान् घट आदि मे शक्तिविशेष का स्वीकार कर के उनके चाक्षुष प्रत्यक्ष की उपपत्ति की जाय या नीरूप घट आदि मे रहनेवाले रूपाभाव एव रूपवाले घट आदि मे रहनेवाले रूप मे शक्तिविशेष का स्वीकार कर के तादृश घट आदि के चाक्षुप का समर्थन करना? इस विषय मे कोई भी अन्यतरनिर्णायक तर्क रहता नही हे। यहाँ यह शका कि → 'रूपाभाव आदि को चाक्षुष का कारण मानने पर तो कारणतावच्छेदक सम्बन्ध भिन्न भिन्न होंगे। रूप समवायसम्बन्ध से द्रव्यचाक्षुप का जनक होगा, रूपाभाव दैशिकविशेषणताविशेष सम्बन्ध से चाक्षुष का कारण होगा । कारणतावच्छेदक सम्बन्ध भिन्न होने से उससे नियन्त्रित कारणता भी अलग बनेगी, जिससे कार्यकारणभाव मे गौरव होगा ← भी इसलिए निराधार है कि समवाय, दैशिकविशेषणताविशेष आदि मे शक्तिविशेष का स्वीकार कर के उन्हे अनुगत कर के उनको ही शक्तिविशेषरूपेण चाक्षुपकारण मानने की आपत्ति मुँह फाडे खडी रहेगी - यही यहाँ आपादन अश मे तात्पर्य है।

►► चतुरणुक आदि को नीरूप मानने की आपत्ति ◄◄

अपि चैव०। दूसरी बात यह हे कि अनेक सम्बन्ध को शक्तिविशेष से अनुगत कर के चाक्षुप का कारण मानने पर तो चाक्षुप सामान्य के प्रति रूप का कोई एक अनुगत सम्बन्धविशेष सिद्ध हो जायेगा जो चाक्षुष सामान्य के प्रति प्रयोजक होगा। तदर्थ शक्तिविशेष की कल्पना भी अनावश्यक है। अनेक सम्बन्धो मे शक्तिविशेष की कल्पना तब निष्प्रयोजन हो जायेगी । इस तरह द्रव्य, द्रव्यसमवेत गुणादि के साथ यदि रूप का कोई एक अनुगत सम्बन्धविशेष सिद्ध हो जायेगा तब तो त्र्यणुक आदि मे रहनेवाला रूप ही सम्बन्धविशेष से चतुरणुक आदि मे रह जायेगा ओर चतुरणुक आदि के चाक्षुप साक्षात्कार को उत्पन्न कर देगा । ऐसा मुमकिन होने पर तो चतुरणुक आदि अनन्त अवयवी मे रूप आदि की कल्पना अनावश्यक होने से लाघव भी होगा। मगर

एवञ्च त्र्यणुकादिवृत्तिरूपस्यैव सम्बन्धविशेषेण चतुरणुकादिसाक्षात्कारसम्भवेऽनन्तावयविरूपाऽकल्पनाया लाघवमिति। यदि च समवायेनैव रूपस्यान्वयव्यतिरेकग्रहादिना तेनैव द्रव्यचाक्षुषहेतुत्वं तदा सिद्धं नः समीहितम्। इति चित्ररूपविवेचको वादः ॥ प्रथमो वादः समाप्तः ॥१॥

◆ हेमलता ◆

एवञ्च प्रत्यासत्तीनां शक्तिविशेषेणानुगमे च त्र्यणुकादिवृत्तिरूपस्यैव = अवयविनः त्रुटावेव विश्रामे त्रसरेणुसमवेतोद्भूतरूपस्यैव, परमाणावेव विश्रामे च परमाणुसमवेतोद्भूतरूपस्यैव सम्बन्धविशेषेण चतुरणुकादि-तत्परिमाणादिसाधारणसम्बन्धविशेषेण चतुरणुकादिसाक्षात्कारसम्भवे चतुरणुकादि-तत्परिमाणादिचाक्षुषप्रत्यक्षोपपत्तौ अनन्तावयविरूपाऽकल्पनया चतुरणुकाद्यनन्तावयविसमवेतरूपकल्पनाया अनावश्यकतया लाघवमिति किं न विभाव्यते तत्रभवद्भिः भवद्भिः ?

यदि च समवायेनैव रूपस्यान्वयव्यतिरेकग्रहादिना तेनैव = समवायेनैव रूपस्य = उद्भूतरूपस्य द्रव्यचाक्षुषहेतुत्वं न तु सम्बन्धविशेषेण इति विभाव्यते तदा सिद्धं नः = नानारूपवदवयवारब्धेऽवयविनि रूपवादिनामस्माकं समीहितम् रूपत्वेनैव रूपस्यान्वयव्यतिरेकग्रहादिना तेनैव रूपेण रूपस्य तद्धेतुत्वं न तु शक्तिविशेषेणेत्यस्य तुल्ययोगक्षेमत्वात्। एतेन भावाभावसाधारणेन शक्तिविशेषेणैव चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति कारणतेति निरस्तम् । अत एव नानारूपवदवयवारब्धघटस्य नीरूपत्वकल्पनाऽपि प्रत्याख्याता तच्चाक्षुषानुदयापातात् । किञ्च तस्य नीरूपत्वमनुभवबाधितम् तत्र रूपवत्ताधियः सार्वजनीनत्वात्। न च तत्र सम्बन्धविशेषेणावयवरूपमेव प्रतीयत इति वाच्यम् अन्यत्राप्यवयवरूपस्यैवैकत्वप-रिणामाख्यसम्बन्धेनावयविगततया प्रतीतावस्मन्मतप्रवेशापातात्। न चान्यत्रावयवगतेभ्योऽनेकरूपेभ्य एकस्यावयविगतस्य विलक्षणस्यैव रूपस्यानुभवादयम-दोष इति वक्तव्यम् अत्रैव तत्रापि घटवृत्तित्वावच्छेदेनैकत्वस्य तदवयववृत्तित्वावच्छेदेन च नानात्वस्याऽविरुद्धत्वात्।

व्याप्यवृत्तिशुक्लादिनानारूपवदवयविस्वीकारे च शुक्लाद्युपलम्भे नीलाद्युपलम्भापत्तिरेव बाधिका । तदुक्तं वादमहार्णवे 'आश्रयव्यापित्वेऽप्येकावयव-सहितेऽप्यवयविन्युपलभ्यमानेऽपरावयवानुपलब्धावप्यनेकरूपप्रतिपत्तिः स्यात्, सर्वरूपाणामाश्रयव्यापित्वात्' [स. त. ३/५०/पृ.७०८] इति । चित्रैकरूपप्रतिपत्तिरप्यनुभवविरुद्धा, तत्तदवयवावच्छेदेन नीलादिरूपाणामपि निर्विगानं तत्र प्रतीतेः नीलावयवावच्छेदेनाऽपि चित्रोपलम्भापत्तेः। न च चित्रत्वग्रहे परम्परयाऽवयवगतनीलेतरपीतेतररूपादिमत्त्वग्रहस्य हेतुत्वम्, अत एव 'त्र्यणुकचित्रं न चक्षुषा गृह्यते' इत्युदयनाचार्या वदन्तीति वक्तव्यम् त्र्यणुकचित्रप्रत्यक्षानुपपत्तेः, नीलेतररूप-पीतेतररूपादिमदवयवावच्छेदेनेन्द्रियसन्निकर्षस्यावयवगतनीलत्वादिग्रहविरोधिदोषाभावानां च हेतुत्वे गौरवात्। अवयविनि साक्षान्नीलपीतादिग्रहस्य चित्रग्राहकत्वे च तत्र नीलादिसिद्धिरनपाया, तद्ग्रहस्य भ्रमत्वायोगात्।

वस्तुतः सत्यामपि चित्रत्वग्राहकसामग्र्यां नीलभागावच्छेदेन 'इह न चित्रं' इति प्रतीतेस्तत्तदवयवावच्छेदेन पर्याप्तापर्याप्ततया स्वरूपतोऽपि तस्यैकानेकात्मकत्वमेव युक्तम्। एवं हि चित्रप्रतिभासे नीलपीतादिमत्त्वग्रहहेतुत्वमपि न कल्पनीयम् पलाशमात्रावच्छेदेन 'वनमि'ति बुद्ध्यभावस्येव नीलमात्रावच्छेदेन चित्रप्रतिभासाभावस्य विषयाभावादेवोपपत्तेः, तदंशेनाऽचित्रादिधियश्च नयाधीनत्वात्। तदिदमाह सम्मतिटीकाकारः 'अत एवकानेकरूपत्वाच्चित्ररूपस्यैकावयवसहितेऽवयविन्युपलभ्यमाने शेषावयवावरणे चित्रप्रतिभासाभाव उपपत्तिमान्। सर्वथा त्वेकरूपत्वे तत्रापि चित्रप्रतिभासः स्यात्, अवयविव्याप्त्या तद्रूपस्य वृत्तेः। न चावयवनानारूपोपलम्भसहकारीन्द्रियमवयविनि चित्रप्रतिभासं जनयति, इति तत्र सहकार्यभावाच्चित्रप्रतिभासा-नुत्पत्तिरिति वाच्यम् अवयविनोऽप्यनुपलब्धिप्रसङ्गात्। न हि चाक्षुषप्रतिपत्त्याऽगृह्यमाणरूपस्यावयविनो वायोरिव ग्रहणं दृष्टम्। न च चित्ररूपव्यतिरेकेणापरं तत्र रूपमात्रमस्ति यतस्तत्प्रतिपत्त्या पटग्रहणं भवेत्' [स. त. ३/५०/पृ. ७००] इत्यादिकम्।

अतश्च स्याद्वादशासनमेव सर्वत्र विजयि । तदुक्तं वीतरागस्तोत्रे श्रीहेमचन्द्रसूरिभिः 'चित्रमेकमनेकं च रूपं प्रामाणिकं वदन्। योगो वैशेषिको वापि नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥' [वी. स्तो. ८/०] इति शम् ॥

इति मुनियशोविजयविरचितायां हेमलताभिधानायां वादमालाटीकायामाद्यः वादः ।

► वल्लभा ◄

यह तो प्रतिवादी को भी अभीष्ट नहीं है। यदि यहाँ प्रतिवादी की ओर से यह कहा जाय कि → 'चाक्षुष के अन्वय-व्यतिरेक के प्रति रूप का अन्वय-व्यतिरेक समवाय सम्बन्ध से ही ज्ञात होता है, न कि सम्बन्धविशेष से। अतः द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्न के प्रति रूप समवाय सम्बन्ध से ही कारण होगा, न कि सम्बन्धविशेष से' ←तब तो हमारे इष्ट फल की सिद्धि होने में कोई बाधा नहीं होगी, क्योंकि तब हम भी यह कह सकते है कि चाक्षुष अन्वय-व्यतिरेक के प्रति रूप के अन्वय-व्यतिरेक का ज्ञान रूपत्वेन ही होता है, न कि शक्तिविशेषरूपेण। अतः रूपत्वेन ही चाक्षुषकारणता का स्वीकार किया जा सकता है। इसलिए शक्तिविशेष के पुरस्कार से भावाभावसाधारण कारणता स्वीकार्य हो नहीं सकती । इसलिए अनेक रूपवाले अवयवों से आरब्ध अवयवी को नीरूप नहीं माना जा सकता किन्तु चित्ररूपवाला ही मानना न्याय्य है - यह फलित होता है ।

इस तरह चित्ररूपप्रकाश नामक प्रथम वाद समाप्त हुआ ॥

★ २ - लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादः ★

वैशेपिकाणा लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानाभ्युपगमो निर्युक्तिकत्वेन न श्रद्धेयः । न च वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यताकवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्य धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदकत्वात् तत्सिद्धिः; शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यमात्रावगाहिन्यामनुमितौ

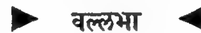


◆ हेमलता ◆

जगवल्लभपार्श्व नत्वा बीजापुरमण्डनम् । लिङ्गोपहितलिङ्गिप्रतीतिवादः प्रतन्यते ॥१॥

तत्र 'अनुमितिविधेयता लिङ्गोपहिता न वा?' इति विप्रतिपत्तिः, विधिकोटिः कणादानुयायिनामवच्छेदकावच्छेदेन निषेधकोटिश्चाक्षपादानुयायिनामवच्छेदकसामानाधिकरण्येन तेन न सिद्धसाधनमशतो बाधो वा । यद्यपि उदयनाचार्या गौतमीयसम्प्रदायवर्त्तिनस्तथाप्यत्र विधिकोटिपातिन' ते विशेपतो वैशेपिकाम्नायमुपबृम्हयन्ति । तेपाममयमाशयः 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इति परामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्याकारिकैवानुमिति र्भवति न तु 'पर्वतो वह्निमानि'त्याकारिका । न चात्र विनिगमकाभावः शङ्कनीय कार्यकारणभावस्यैव विनिगमकत्वात् । तथाहि—>'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमिति प्रति 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शस्य कारणत्व न सम्भवति, तद्विरहेऽपि 'पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवानि'ति परामर्शात्तादृशानुमितेर्निपेधकोटिस्थितैरभ्युपगमेन व्यतिरेकव्यभिचारपिशाचदुःसञ्चारस्य सुरगुरुणाऽपि निवारयितुमशक्यत्वात् । एतेन 'पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवानि'ति परामर्शस्य 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिजनकत्वमिति प्रत्युक्तम् तमृतेऽपि 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शात्तादृशानुमित्युदयस्य नैयायिकैस्स्वीकारेण तद्दोपतादवस्थ्यात् । अत एव ताम्प्रति 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इति परामर्शस्य 'पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवानि'ति परामर्शस्य च कारणत्वमित्यपि पराकृतम् गौरवाच्च। अनेन 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमिति प्रति 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमालोकोभयवानि'ति परामर्शस्य कारणत्वमित्यपि निराकृतम् । न हि पर्वतपक्षकवह्निविधेयकानुमितित्वावच्छिन्नाव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन तादृशः परामर्शः सम्भवति । तस्मात् 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्येवरूपाऽनुमितिस्स्वीकार्या 'पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवानि'ति परामर्शाच्च 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निमानि'त्याकाराऽनुमितिरभ्युपेया ।

अत्र निपेधकोटिवादिनो नैयायिका वदन्ति - वैशेपिकाणा व्यावर्णितस्वरूपः लिङ्गोपहितलेङ्गिकभानाभ्युपगम निर्युक्तिकत्वेन =बलवत्तर्कविरहेण न श्रद्धेय =प्रमाणोपोद्बलिताभ्युपगमविपयीकरणीयः । न च प्रदर्शितरीत्या शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्य धूमपरामर्शकार्यतावच्छेदकत्वासम्भवेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्य धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदकत्वात् धूमावगाहिपरामर्शनिष्ठकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकत्वात् उपलक्षणात् वह्निव्याप्यालोकवत्पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यताकवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्यालोकपरामर्शनिरूपितकार्यतावच्छेदकत्वात् तत्सिद्धि = लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानप्रसिद्धिरिति वाच्यम्, शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यमात्रावगाहिन्याम-



► वल्लभा ◄

अनुमाननामक अतिरिक्त प्रमाण का स्वीकार करनेवाले नैयायिक ओर वैशेपिक के बीच यह विवाद हे कि—>अनुमिति में लिङ्गी=साध्य का भान लिङ्गोपहित होता हे या नही? यहाँ वैशेपिक मनीपियो का यह मन्तव्य हे कि परामर्शजन्य अनुमिति मे लिग का भान भी अवश्य होता है । जसे पर्वत मे धूम देख कर व्याप्ति का स्मरण करनेवाले पुरुप को 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इत्याकारक परामर्श के अनन्तर 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति होती है, न कि 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति । इसके प्रतिवाद मे नैयायिक मनीपियो का यह कथन है कि—>वैशेपिको का लिङ्गोपहितलेङ्गिकभान (यानी हेतुसहित साध्य का अनुमिति मे भान) का स्वीकार युक्तिरिक्त होने से श्रद्धेय नही है । विना प्रमाण के किसी बात का अङ्गीकार करना मूर्खता का प्रथम लक्षण हे ।

► कार्यकारणभाव से लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धि का प्रयास ◄

वैशेपिकः न च० इति ।—>अजी जनाव! आपने यह क्या वोला कि - 'लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान मे कोई प्रमाण नही है'? कार्यकारणभाव के वल से ही उसकी सिद्धि की जा सकती है । देखिये, 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति के प्रति 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श को कारण माना जा नही सकता, क्योकि उसके विरहकाल मे भी 'पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवान्' इत्याकारक परामर्श से भी 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का नैयायिक विद्वानो ने स्वीकार किया हे । इस तरह 'पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवान्' इत्याकारक परामर्श को भी 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का कारण माना जा नही सकता, क्योकि तादृश परामर्श के विना भी 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का नैयायिक स्वीकार करते है । अत मानना ही होगा कि धूमपरामर्श यानी 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक ज्ञान का कार्यतावच्छेदक पर्वतत्वावच्छिन्न उद्देश्यता की निरूपक वह्नित्वावच्छिन्न=वह्नित्वधर्म से नियन्त्रित विधेयता का निरूपक अनुमितित्व नही है, जो 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति मे रहता

सामानाधिकरण्यमात्रावगाहिपरामर्शस्य शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितविशेषणतासंसर्गावच्छिन्नप्रकारताशून्य-शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमप्रकारताशालित्वेन हेतुताया पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वलक्षणशुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नत्वस्थले वह्निव्या-

◆ हेमलता ◆

नुमितौ = 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिं प्रति, सामानाधिकरण्यमात्रावगाहिपरामर्शस्य = पर्वतत्वसामानाधिकरण्येनैवोद्देश्यताकस्य धूमपरामर्शस्य, पर्वत- निष्ठविशेष्यतानिरूपितधूमनिष्ठप्रकारताशालित्वेन हेतुत्वोपगमे 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शस्यापि तां प्रति कारणत्वमापद्येत, शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमनिष्ठप्रकारताशालित्वेन कारणत्वाङ्गीकारे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् न वा ?' इति परामर्शस्यापि तद्धेतुत्वप्रसङ्गः, विरोधिप्रकारताशून्यशुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमनिष्ठ- प्रकारतानिरूपकत्वेन जनकत्वकक्षीकारे तु 'ह्रदोऽनलाभाववान् पर्वतश्च वह्निव्याप्यधूमवान्' इति ज्ञानदशायामपि तादृशानुमितिः न स्यात्, तस्य विरोधिप्रकारताशालित्वात्। पर्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपितविशेषणतासंसर्गावच्छिन्नविरोधिप्रकारताशून्यशुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमनिष्ठप्रकारताकत्वेन तत्कारणत्वाभ्युपगमे तु 'नीलपर्वतोऽनलाभाववान् पर्वतश्चाय वह्निव्याप्यधूमवानि'तिधीसत्त्वेऽपि तादृशानुमितिर्न जायेत । शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितविशेषणतासंसर्गावच्छिन्नविरोधिप्रकारताशून्यशुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमप्रकारताशालित्वेन = पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नात्मकशुद्धपर्वतत्वनियन्त्रितविशेष्यतानिरूपितविशेषणतावच्छेदकसम्बन्धलक्षणसाध्यतावच्छेदकसंसर्गावच्छिन्नतदभाव-तदभावव्याप्यान्यतरनिष्ठप्रकारत्वाऽनिरूपकत्वे सति पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्निव्याप्यत्वावच्छिन्नधूमनिष्ठप्रकारतानिरूपकत्वेन हेतुताया स्वीक्रियमाणाया सत्या 'समवायेन धूमाभाववान् पर्वतः संयोगेन वह्निव्याप्यधूमवानि'ति विज्ञानावस्थाया तादृशानुमित्युपपादनेऽपि व्याप्तिज्ञानशून्यस्य पुंसश्च'पर्वतो धूमवानि'ति ज्ञानात्तादृशानुमित्यनुदयनिर्वाहेऽपि 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'- तिपरामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्युदयो न सम्भवेत्, तस्याः पर्वतत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्नविशेष्यतावगाहित्वात् । न च मास्तु कार्यतावच्छेदककोटौ शुद्धपदनिवेश इति वाच्यम् एवं सति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानपक्षे 'नीलपर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितेरपि 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'- तिपरामर्शकार्यतावच्छेदकाऽऽलिङ्गितत्वापत्तेः । न च निरुक्तपरामर्शकार्यतावच्छेदककोटौ यौगाभिमते पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वलक्षणशुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नत्वस्थले वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वाद्यतिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वनिवेशे विवक्षिते सति न 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शानन्तर

▶ वल्लभा ◀

है। किन्तु वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्न उद्देश्यता की निरूपक वह्नित्वावच्छिन्न विधेयता का निरूपक अनुमितित्व है, जो केवल 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति मे रहता है। मतलब कि वह्निव्याप्यधूमवाले पर्वत को उद्देश्य बना कर वह्नि का विधान किया जाता है न कि पर्वतमात्र को उद्देश्य बना कर। इस तरह कार्यकारणभाव के बल से ही लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान की सिद्धि होती है।

●○ लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानपक्ष गौरवग्रस्त ○●

नैयायिकः शुद्ध० इति। → नहीं, उस्ताद! इस तरह लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान की सिद्धि नहीं की जा सकती। इसका कारण यह है कि 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्य मात्र अवगाही अनुमिति के प्रति सामानाधिकरण्यमात्रावगाही परामर्श कारण होता है जो 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक होता है। 'नीलपर्वतो वह्निमान्' इत्यादि अनुमिति का व्यवच्छेद करने के लिए कार्यतावच्छेदकधर्मकुक्षि मे पर्वतत्वसामानाधिकरण्य का निवेश न कर के शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्य का निवेश किया है। शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्य मात्र कहने का मतलब यह है कि यत्किञ्चित् पर्वत को उद्देश्य बना कर वह्नि की अनुमिति करना विवक्षित है, न कि सभी पर्वत को उद्देश्य बना कर या नीलपर्वत आदि विशेष को उद्देश्य बना कर। एतादृश अनुमिति के प्रति पर्वतविशेष्यकधूमप्रकारकत्वेन रूपेण सामानाधिकरण्यमात्रावगाही परामर्श को कारण मानने पर तो 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श भी उपर्युक्त अनुमिति का कारण हो जायेगा, जो किसीको भी अभिमत नहीं है। अतः सामानाधिकरण्यमात्रावगाही परामर्श को शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यता निरूपितधूमप्रकारताकत्वेन तादृश अनुमिति के प्रति कारण मानना होगा। मगर तब 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् न वा?' इत्याकारक संशयात्मक परामर्श होने पर भी विवक्षित अनुमिति का उदय होने लगेगा, क्योंकि वह शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमनिष्ठप्रकारताशाली है। अतः तादृश अनुमिति के प्रति सामानाधिकरण्यमात्रावगाही परामर्श को शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितविशेषणतासंसर्गावच्छिन्नविरोधिप्रकारता शून्य-शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमप्रकारताकत्वेन कारण मानना होगा। 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् न वा?' इत्याकारक संशयात्मक सामानाधिकरण्यमात्रावगाही परामर्श शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमप्रकारतावगाही होने पर भी शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितविशेषणतासंसर्गावच्छिन्न ऐसी विरोधी प्रकारता से शून्य नहीं होने से प्रदर्शित कारणतावच्छेदकधर्मवाला नहीं है। अतएव तदुत्तर क्षण मे शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यमात्रावगाही अनुमिति के उदय की आपत्ति नहीं दी जा सकती। अव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन कारणतावच्छेदकधर्मावच्छिन्न यावत् की उपस्थिति न होने पर कार्यतावच्छेदकावच्छिन्न के उदय का आपादन नहीं किया जा सकता। 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श ही उपर्युक्त कारणतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त है। मगर उसके अव्यवहित उत्तर क्षण मे 'नीलपर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक

प्यधूमवत्पर्वतत्वाद्यतिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वनिवेशे गौरवात्, पक्षेऽलौकिकहेत्वाद्यभावनिश्चयाद् द्वितीयक्षणोत्पन्नाद्धेत्वाद्यंशे लौकिकपरामर्शाद् द्वितीयक्षणेऽनुमित्यनापत्तेश्च।

◆ हेमलता ◆

'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्यनुदयापत्तिरिति वक्तव्यम् गोरवात् = कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरगौरवात्। इत्थञ्च तन्निवेशे गौरवप्रसङ्गः तदनिवेशे च लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानाऽसिद्धिरित्युभयतः पाशारज्जुन्यायापातः।

इदन्त्वत्रावधेयम्-शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतासमानाधिकरणोद्देश्यतानिरूपितसयोगसम्बन्धावच्छिन्न-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वलक्षणे निरुक्तपरामर्शकार्यतावच्छेदकधर्मे नैयायिकाभिमत यत् पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वलक्षण शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नत्व तत्रैव लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिभिः वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्व निवेशनीय, कारणतावच्छेदकधर्मशरीरे तु नैयायिकाभीष्ट पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वात्मकमेव शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नत्व लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिभिरुपादेयम्।

लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानपक्षे दोषान्तरमावेदयति- पक्षे=पक्षपदप्रतिपाद्येऽनुमित्साविरहविशिष्टसिद्धिशून्यत्वलक्षणपक्षताक्रान्ते पर्वतादौ, अलौकिकहेत्वाद्यभावनिश्चयात् = ज्ञानलक्षणाद्यलौकिकसन्निकर्षजन्य धूमाद्यभावनिश्चय अपेक्ष्य, द्वितीये समये उत्पन्नात् = द्वितीयक्षणोत्पन्नात् हेत्वाद्यंशे = धूमाद्यंशे लौकिकपरामर्शात् = षड्विधान्यतमलौकिकसन्निकर्षजन्यात् 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'त्याद्याकारकात् परामर्शात् द्वितीयक्षणे पक्षेऽलौकिकहेत्वाद्यभावनिश्चयोत्पादापेक्षया तृतीयक्षणे अनुमित्यनापत्तेश्च = 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्याद्याकारकानुमित्युदयाऽसम्भवाच्च। अयमत्र नैयायिकाभिसन्धिः —> 'शङ्खो न पीतः' इति ज्ञाने सत्यपि पित्तादिदोषमहिम्ना 'पीतः शङ्ख' इति ज्ञानस्य 'घटोऽनील' इति भ्रमात्मके ज्ञाने सत्यपि लौकिकसन्निकर्षबलेन 'घटो नील' इति ज्ञानस्य चानुभविकत्वात् दोषविशेषाऽजन्य-लौकिकसन्निकर्षाऽजन्यतद्वत्ताज्ञान प्रति तदभाव-तदभावव्याप्यवत्तानिश्चयत्वेन प्रतिबन्धकता यौगवैशेषिकोभयमतसिद्धा। ततश्च 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमाभाववानि'ति प्रमात्मकस्याऽलौकिकसन्निकर्षजन्यस्य निश्चयस्याऽव्यवहितोत्तरक्षणावच्छेदेन 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति लौकिकसन्निकर्षजन्य ज्ञान भवितुमर्हति। परन्तु तदनन्तरक्षणावच्छेदेन सर्वसम्मता वह्निविधेयकानुमितिः लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमते नैव सम्भवति, तत्सम्मतायाः 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो धूमवानि'त्यनुमितेः धूमावगाहित्वात्, कार्योत्पादाऽव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन प्रतिबन्धकसत्त्वे कार्योदयाऽसम्भवात्, प्रतिबन्धकाभावस्य सामग्रीप्रविष्टत्वात्। लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानाङ्गीकारे तु न तदसम्भवः 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितेर्धूमानवगाहित्वेन तदव्यवहितपूर्वक्षणवर्तिनोऽलौकिकधूमाभावज्ञानस्य ग्राह्याभावानवगाहित्वात्। हेत्वादीत्यत्र आदिपदेन पक्षतावच्छेदकादेः परिग्रहः। एतेन 'पर्वतो न नील' इति पक्षेऽलौकिकपक्षतावच्छेदकाभावनिश्चयमपेक्ष्य द्वितीयक्षणे जातात् 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति लौकिकपरामर्शाद् द्वितीयक्षणेऽनुमित्यनापत्तिर्लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानपक्षे आवेदिता दृष्टव्या। पक्षपदञ्चात्र मूले हेत्वादेरुपलक्षकम्। तदपेक्षया च हेत्वादीत्यत्रादिपदेन व्याप्यत्वप्रभृतिपरिग्रहः। एतेन हेतावलौकिकव्याप्यत्वाभावनिश्चयमपेक्ष्य द्वितीये क्षणे जातात् 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति लौकिकपरामर्शाद् द्वितीयक्षणेऽनुमित्यनुदयप्रसङ्गोऽपि लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानमते प्रदर्शितः।

▶ वल्लभा ◀

अनुमिति का आपादन नही किया जा सकता, क्योकि वह शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यमात्रावगाही नही है। यहाँ तक जो कहा गया वह तो लिङ्गापहितलैङ्गिकभानवादी वैशेपिक को भी मान्य हे ओर हम नैयायिको को भी, मगर इस तरह कार्यकारणभाव का स्वीकार करने पर हम नैयायिक के मतानुसार कार्यतावच्छेदक धर्म मे लाघव होता हे जब कि लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी वैशेपिक के मतानुसार कार्यतावच्छेदक धर्म के शरीर मे गोरव होता है, क्योकि शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नत्व का अर्थ नैयायिकमतानुसार पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्व होगा और वैशेपिकमतानुसार वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्व होगा। यदि लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी कार्यतावच्छेदकधर्मघटकीभूत शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नत्व का अर्थ केवल पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्व ही मान्य करे तब तो 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श के अनन्तर 'वह्निमान् पर्वत' इत्याकारक ही अनुमिति हो सकेगी न कि 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति, क्योकि वह पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वात्मक शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नत्व से विशिष्ट नही है। अत उसके उदय के निर्वाहार्थ वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वलक्षण शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नत्व का अगीकार करना होगा मगर तब कार्यतावच्छेदक धर्म मे गौरव होता है। अत लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान निर्युक्तिक हे।

▶ लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानमत मे दोषान्तर ◀

नैयायिक :- पक्षेऽलौ०। इसके अतिरिक्त दोष वैशेपिकमत मे यह प्रसक्त होता है कि जब पर्वतादि= पक्ष मे अलौकिक सन्निकर्ष से धूमादि हेतु आदि के अभाव का निश्चय होता है और उसके अव्यवहित उत्तर क्षण मे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्यादिआकारक लोकिकसन्निकर्षजन्य परामर्श होता है तब एतादृश परामर्श के द्वितीय क्षण मे यानी अलौकिकधूमाभावादिनिश्चय के तृतीय क्षण मे

एतेन 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इति परामर्शयोरेकरूपेणानुमितिहेतुत्वात् तत्सिद्धिरित्यपास्तम् पर्वते हेत्वभावनिश्चयदशायां लिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमित्यनुपपत्तेः ।

◆ हेमलता ◆

यत्तु—व्यवसायस्य स्वाऽव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्वेनानुव्यवसाये व्यवसायविषयभाननियमवत् परामर्शस्य स्वाऽव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्वेनानुमितौ परामर्शविषयलिङ्गावगाहित्वसिद्धिः क्लृप्तसामग्रीबलादिति—तन्न एवं सति उपमित्यादेरपि 'गोसदृशो गवयो गवयपदवाच्य' इत्याद्याकारकत्वप्रसङ्गात्।

एतेनेति। अस्याग्रेऽपास्तमित्यनेनान्वयः। 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शानन्तरक्षणावच्छेदेन 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमानि'त्यानुमितेरुभयमतसिद्धत्वेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतासमानाधिकरणोद्देश्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्न-संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताकानुमितित्वावच्छिन्ने वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताविशेषणतावगसर्गावच्छिन्नविरोधि-प्रकारताशून्य-वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमनिष्ठवह्निव्याप्यत्वावच्छिन्नप्रकारताकत्वेन कारणत्वस्यावश्यं वक्तव्यतया निरुक्तकारणतावच्छेदकधर्मस्य 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शेऽपि सत्त्वेनोभयोः परामर्शयोः प्रदर्शितेन एकरूपेण अनुमितिहेतुत्वात् = वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतासमानाधिकरणोद्देश्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणता-त्वात् लाघवेन तत्सिद्धिः = 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इति परामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्याकारिकाया अनुमितेः लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमते प्रसिद्धिः कार्यकारणभावबलादेव। एतेन कार्यतावच्छेदकगौरवमपि प्रत्युक्तम् उभयमते तुल्यत्वात्, तदनुपगमे तु विपरीतमेव द्विविधकार्यकारणभावस्वीकारगौरवं लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिपक्षे इति लाघवेन लिङ्गोपहितलैङ्गिभानसिद्धिरिति वैशेषिकानुयायितात्पर्यम्।

लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी प्रकृतेऽतिदिष्टमेव निरासहेतुमाविष्करोति पर्वते हेत्वभावनिश्चयदशायां = अलौकिकसन्निकर्षजन्यधूमाभावनिश्चयसत्त्वे वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकपरामर्शबलेनाऽपि तदनन्तरं लिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमित्यनुपपत्ते = 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान्'

► वल्लभा ◄

वह्नि की अनुमिति का होना सर्वमान्य है, जो लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मतानुसार अनुपपन्न बन जायेगा। इसका कारण यह है कि दोषविशेषाऽजन्य एवं लौकिकसन्निकर्षाऽजन्य तद्वत्ताज्ञान के प्रति तदभाव-तदभावव्याप्यवत्ताज्ञान प्रतिबन्धक होता है - इस सिद्धान्त का स्वीकार केवल हम नैयायिकों ने नहीं अपितु वैशेषिकों ने भी किया है। वैशेषिक के मतानुसार 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याक[illegible] परामर्श के अनन्तर होनेवाली अनुमिति 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक होगी जो लौकिकसन्निकर्षाऽजन्य एवं दोषविशेष[illegible] होते हुए धूमाऽवगाही है, जिसका प्रतिबन्धकीभूत 'पर्वतो धूमाभाववान्' इत्याकारक अलौकिकसन्निकर्षजन्य निश्चय उसके [illegible] क्षण में रहता है। प्रतिबन्धकाभाव भी सामग्रीप्रविष्ट होने से कार्याव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन उसकी उपस्थिति आवश्यक [illegible]। 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का, जो नैयायिकसम्मत है, उदय तब हो सकता है, क्योंकि वह धूमा[illegible] [illegible] वह्निअवगाही है, जिसके अभाव का निश्चय हुआ नहीं है। उपर्युक्त परिस्थिति में वह्नि की अनुमिति का अनुपपन्न होना भी [illegible] में बाधक है।

■□ लाघव से लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धि का प्रयास □■

वैशेषिक :- एतेन वह्नि०। लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान की सिद्धि इस तरह भी की जा सकती है कि 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से होनेवाली अनुमिति 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक ही होगी, क्योंकि यहाँ पक्षतावच्छेदक पर्वतत्व नहीं है किन्तु वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व है। यह निश्चयात्मक परामर्श उक्त अनुमिति के प्रति वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितधूमप्रकार-तावगाहित्वेन रूपेण ही कारण हो सकता है जो 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श में भी अबाधित है। अतः उस परामर्श से होनेवाली अनुमिति भी 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक हो सकती है, क्योंकि पूर्वोक्त परामर्श का कार्यतावच्छेदक पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतासमानाधिकरणोद्देश्यताकवह्निविधेयताकानुमितित्व नहीं है किन्तु वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नवि-शेष्यता समानाधिकरणोद्देश्यताक-वह्निविधेयकानुमितित्व है। उपर्युक्त द्विविध परामर्शों को एकरूपेण एकधर्मावच्छिन्न अनुमिति के प्रति कारण मानने में दो कार्यकारणभावों का स्वीकार करने का गौरव भी प्रसक्त होता नहीं है। इस तरह लाघवसहकार से भी लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि हो सकती है।

► हेत्वभावनिश्चयकाल में लिङ्गोपहित अनुमिति नामुमकिन ◄

नैयायिक :- पर्वते०। उस्ताद! अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत! हमने अभी बता दिया कि पर्वत में अलौकिकसन्निकर्षजन्य हेत्वभावनिश्चय=धूमाभावविषयक निश्चय के द्वितीय क्षण में लौकिकसन्निकर्षजन्य धूमपरामर्श होने पर भी उसके अव्यवहितोत्तर क्षण में 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक लिङ्गोपहित लैङ्गिकानुमिति उत्पन्न न हो सकेगी ठीक वैसे ही वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वत में अलौकिकसन्निकर्षजन्य धूमाभावादिविषयक निश्चय के द्वितीय क्षण में लौकिकसन्निकर्षजन्य धूमादिपरामर्श के होने पर भी परामर्शोत्तर

तत्र शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकानुमित्यभ्युपगमेऽपि तादृशानुमितौ तादृशपरामर्शस्य हेतुताया व्यभिचारः, वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकपरामर्शस्य वह्निव्याप्यधूमविषयतामनन्तर्भाव्य स्वाव्यवहितोत्तरपर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकानुमितित्वा-

◆ हेमलता ◆

इत्यनुमित्युदयाऽसम्भवात्, तस्या लौकिकसन्निकर्षाऽजन्य-दोषविशेषाजन्य-वह्निव्याप्यधूमप्रकारक-पर्वतविशेष्यकज्ञानत्वलक्षणप्रतिबध्यतावच्छेदकाक्रान्ततया ता प्रति प्रतिबन्धकस्य वह्निव्याप्यधूमाभावप्रकारक-पर्वतविशेष्यकनिश्चयात्मकस्यालौकिकसन्निकर्षजन्यस्य धूमाभावनिश्चयस्य तदव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन सत्त्वात्। न हि सामग्रीविरहे कार्यार्जनमर्हति।

ननु पर्वतेऽलौकिकस्य धूमाभावनिश्चयस्य सत्त्वे धूमपरामर्शोत्तर नास्माभिः 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितिरुपेयते किन्तु 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारिकैवानुमितिः स्वीक्रियते, तस्याः प्रतिबध्यतावच्छेदकानालिङ्गितत्वादिति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवाधाशङ्काया लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवाधाह तत्र = पर्वतेऽलौकिकधूमाभावनिश्चयस्थले लौकिकसन्निकर्षजन्यधूमपरामर्शानन्तर शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकानुमित्यभ्युपगमे = पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतासमानाधिकरणोद्देश्यतानिरूपितवह्निविधेयताकानुमितिस्वीकारे अपि तादृशानुमितौ = वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतासमानाधिकरणोद्देश्यतानिरूपितवह्निविधेयताकानुमिति प्रति, तादृशपरामर्शस्य = वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकपरामर्शस्य हेतुताया व्यभिचार = अन्वयादिव्यभिचारः। तथाहि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतविशेष्यकानुमितिकारणस्य वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतविशेष्यकवह्निव्याप्यधूमप्रकारकस्य निश्चयात्मकपरामर्शस्य सत्त्वेऽपि तदानी तत्र वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतविशेष्यकानुमितेरनुदयेनान्वयव्यभिचारः या च तदानी तत्र शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नवि- शेष्यताकानुमितिर्जायते ता प्रति नोक्तपरामर्शस्य कारणत्व लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिभिस्स्वीक्रियते इति व्यतिरेकव्यभिचार इति लिङ्गानुपहितलैङ्गिभानवा- दिनोऽभिप्रायः।

नन्वस्माभिः धूमपरामर्शकार्यतावच्छेदककोटौ न वह्निव्याप्यधूमविषयत्व निविश्यते किन्तु तत्स्थाने स्वाव्यवहितोत्तरत्वमेवोपादीयते। ततश्च पर्वतेऽलौकिकधूमाभावनिश्चयदशाया धूमपरामर्शानन्तर 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमित्यनुत्पादेऽपि नान्वयव्यभिचारपङ्कलेशावकाशः, 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शस्य स्वाव्यवहितोत्तरपर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकानुमितित्वावच्छिन्न प्रत्येव हेतुत्वाभ्युपगमात्, तादृशानुमितित्वस्य तु 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारिकाया तदव्यवहितोत्तरक्षणावच्छेदेन जायमानायामनुमितावपि सत्त्वादिति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवाधाशङ्काया लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवाधाह वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकपरामर्शस्य = वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्निव्याप्यत्वावच्छिन्नधूमनिष्ठप्रकारताकस्य निश्चयात्मकपरामर्शस्य कार्यतावच्छेदककोटौ वह्निव्याप्यधूमविषयता = वह्निव्याप्यत्वावच्छिन्नधूमनिष्ठप्रकारताख्यविषयतानिरूपितविषयिता अनन्तर्भाव्य = अनुपादाय, स्वाव्यवहितोत्तरपर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकानुमितित्वावच्छिन्न = स्वाव्यवहितोत्तरत्वविशिष्ट-

▶ वल्लभा ◀

क्षण मे 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक लिङ्गोपहित वह्निविधेयक अनुमिति न हो सकेगी, क्योकि उस कार्योत्पत्तिअधिकरणविधया अभिमत क्षण के अव्यवहित पूर्वण मे प्रस्तुत अनुमिति का प्रतिबन्धक धूमाभावादिनिश्चय विद्यमान होता है। प्रतिबन्धकाभावात्मककारण अव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन नही होने से तब 'वह्निव्याप्यधूमवाम् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति न हो सकेगी। अत 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' और 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इन दो परामर्शों को एकरूपेण अनुमिति का कारण नही माना जा सकता, जिसके बल पर लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि हो सके।

■■ लिङ्गोपधानमत मे व्यभिचार ■■

तत्र०। यदि यहाँ वैशेषिक की ओर से यह कहा जाय कि—›'पर्वत मे अलोकिकसन्निकर्षजन्य धूमाभावनिश्चय के अनन्तर होनेवाले धूमपरामर्श से वहाँ 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकानुमिति का हम स्वीकार करते है जिसका प्रतिबन्धक धूमाभावनिश्चय हो सकता नही है, क्योकि वह ग्राह्याभाववगाही नही है ←— तो भी 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति के प्रति 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श की कारणता मे व्यभिचार होगा, क्योकि पर्वत मे धूमाभावनिश्चयदशा मे धूमपरामर्श होने पर भी 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति होती नही है - वैशेपिको के उपर्युक्त कथन से कि —›''तब होनेवाली अनुमिति 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक होती है'' ←— ऐसा फलित होता हे। इस अन्वय व्यभिचार के सबब लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान का स्वीकार नही किया जा सकता।

▶ लिङ्गानुपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि - नैयायिक ◀

वह्नि०। यदि उक्त व्यभिचार दोष के निवारणार्थ वैशेपिक मनीपिओ की ओर से यह कहा जाय कि—›'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक परामर्श के कार्यतावच्छेदकधर्मदेह मे वह्निव्याप्यधूमविषयता का अन्तर्भाव किये विना स्वाव्यवहितोत्तर पर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयक अनुमितित्व को ही उसका कार्यतावच्छेदक मानने पर अन्वयव्यभिचार की कोई सभावना
10 नही रहेगी, क्योकि पर्वत मे अलोकिकसन्निकर्षजन्य धूमाभावनिश्चय के अव्यवहित उत्तर क्षण मे होनेवाले धूमपरामर्श के अनन्तर क्षण

वच्छिन्नं प्रत्येव हेतुत्वे तु शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकपरामर्शस्यापि स्वाव्यवहितोत्तरतादृशानुमितित्वावच्छिन्नं प्रत्येव हेतुत्वेनास्मत्पक्षप्रवेशात्।

अथाव्यवहितोत्तरत्वमनिवेश्य वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन परामर्शस्य हेतुत्वम्। नातः पर्वतत्वपर्याप्तविशे-

◆ हेमलता ◆

पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतासमानाधिकरणोद्देश्यतानिरूपित-संयोगसम्बन्धावच्छिन्न-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रत्येव हेतुत्वे लिङ्गोपहित-लैङ्गिकभानवादिना स्वीक्रियमाणे तु निरुक्तव्यभिचारपरिहारकरणेऽपि शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकपरामर्शस्य =पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतानि-रूपित-वह्निव्याप्यत्वावच्छिन्नधूमनिष्ठप्रकारताकस्य निश्चयात्मकपरामर्शस्य अपि स्वाव्यवहितोत्तरतादृशानुमितित्वावच्छिन्नं = स्वाव्यवहितोत्तरत्वविशिष्ट-पर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रत्येव हेतुत्वेन = कारणत्वस्वीकारेण अपि धूमपरामर्शादालोकपरामर्शजन्यदहनानुमितिवारणसम्भवेन व्यभिचारपरिहाराय न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानस्यावश्यकता। तथाहि 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतः' इति परामर्शाज्जायमानाया 'पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितेः धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वान्न धूमपरामर्शमृतेऽप्युत्पादे व्यतिरेकव्यभिचारः। एवमेव 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इतिपरामर्शाज्जायमानायाः 'पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितेरालोकपरामर्शजन्यतावच्छेदकानालिङ्गितत्वान्नालोकपरामर्शमृतेऽप्युदये व्यतिरेकव्यभिचारः तन्निष्ठकार्यतावच्छेदकावच्छिन्नानि-रूपितकारणतावच्छेदकावच्छिन्नस्य तदव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन सत्त्वात्। एतेन शुद्धपर्वतविशेष्यकवह्निप्रकारकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति वह्निव्याप्यधूमवत्पर्व-तविशेष्यकवह्निव्याप्यधूमप्रकारकपरामर्शस्य कारणत्वे तद्विरहे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इतिपरामर्शात् 'पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमित्युत्पादेन व्यतिरेकव्यभिचार इत्यपि प्रत्युक्तम् तादृशानुमितौ 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इतिपरामर्शाव्यवहितोत्तरत्वविशिष्टपर्वतविशेष्यकवह्निविधेयकानुमितित्वलक्षणका-र्यतावच्छेदकस्य विरहात्। इत्थञ्च कार्यतावच्छेदककोटौ स्वाव्यवहितोत्तरत्वनिवेशेन व्यभिचारवारणसम्भवे लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनः तव अस्मत्पक्षप्रवे-शात् =लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानस्वीकारापातात् न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरिति नैयायिकाकूतम्।

नैयायिकं प्रति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी शङ्कते-अथेति। चेदित्यनेनास्यान्वयः। परामर्शजन्यतावच्छेदकधर्मकोटौ अव्यवहितानन्तरत्वं = स्वाव्यवहितोत्तरक्षणत्वं अनिवेश्य उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक- वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमिति-त्वावच्छिन्नं प्रति वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन परामर्शस्य हेतुत्वं स्वीक्रियते लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिभिः। 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इति परामर्शो वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वे वर्तते तत्रैव चोद्देश्यतावच्छेदकत्वसम्बन्धेन 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारकानुमितिर्जायते तदनन्तरं च 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतं वह्निमनुमिनोमी'त्यनुव्यवसीयते। 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इति परामर्शादपि 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारिकैवानुमितिर्जायते किन्तु तादृशपरामर्शस्य वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्व एव सत्त्वेन तज्जन्यानुमितिरपि उद्देश्यतावच्छेदकतासम-म्बन्धेन पर्वतत्व एवोत्पद्यते न तु वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वे, ततः किमित्याशङ्कया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवाद्याह- न अत = प्रोक्तकार्यकारणभावस्वीकारतः,

▶ वल्लभा ◀

मे होनेवाली 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति, जो तब हम लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी को भी अभिमत है, स्वाव्यवहितोत्तर-पर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकानुमितित्वलक्षण प्रस्तुतपरामर्शकार्यतावच्छेदकधर्म से आक्रान्त है। सामग्री के अनन्तर उत्तर क्षण में कार्यतावच्छेदकावच्छिन्न की उत्पत्ति होने पर अन्वय व्यभिचार को अवकाश कहाँ? झूठ को पाँव कहाँ? साँच को आँच कहाँ?←— तब तो लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी की ओर से भी यह कहा जा सकता है कि→शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक निश्चयात्मक परामर्श भी स्वाव्यवहितोत्तर-पर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकअनुमितित्वावच्छिन्न के प्रति ही कारण है न कि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक-वह्निविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्न के प्रति। इस परिस्थिति में 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श के अव्यवहित उत्तर क्षण में 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का ही उदय होगा न कि 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का। ऐसा होने पर तो तादृशअनुमितिस्वरूप लैङ्गिकभान लिङ्गानुपहित ही होगा न कि लिङ्गोपहित। इस बात की सिद्धि एवं स्वीकार न्याय्य होने पर तो वैशेषिक मनीषियों का हम लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी के मत में प्रवेश हो जायेगा। हो गया दूध का दूध, पानी का पानी।

वैशेषिक :- अथा० इति। नहीं, जनाब! ऐसा नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि हम लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी भी कार्यतावच्छेदकधर्मशरीर में स्वाव्यवहितोत्तरत्व का निवेश न कर के इस तरह कार्यकारणभाव का स्वीकार करते हैं कि उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताक अनुमिति के प्रति वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यताव-च्छेदकतासम्बन्ध से परामर्श कारण होता है। जब परामर्श 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्', इत्याकारक होता है तब वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वत

प्यतावच्छेदकताकपरामर्शजन्यानुमितौ 'पर्वते वह्निमनुमिनोमी'तिवद् 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वते वह्निमनुमिनोमी'त्यनुव्यवसायापत्तिः, तत्र वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वस्य विशेष्यतावच्छेदकत्वेऽप्युद्देश्यतानवच्छेदकत्वात्। न वा 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवॉश्चे'ति परामर्शाद् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'त्यनुमितेर्धूमपरामर्श विनाऽप्युत्पत्तौ व्यभिचारः; तादृशानुमितेर्वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितपर्वतविशेष्यताकत्वेऽपि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्य-

◆ हेमलता ◆

पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताकपरामर्शजन्यानुमितौ 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इतिपरामर्शजन्याया 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्यनन्तर 'पर्वते वह्निमनुमिनोमी'तिवत् = 'पर्वत वह्निमत्त्वेनानुमिनोमी'त्यनुव्यवसायवत्, 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वते वह्निमनुमिनोमी'त्यनुव्यवसायापत्ति, तत्र = 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इतिपरामर्शजन्याया 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितौ वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वस्य = सयोगसम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वस्य विशेष्यतावच्छेदकत्वे = निरुक्तानुमितिविशेष्यतावच्छेदकत्वे अपि उद्देश्यतानवच्छेदकत्वात् = निरुक्तानुमित्युद्देश्यतानवच्छेदकत्वात्, परामर्शविशेष्यतावच्छेदकस्यैवानुमित्युद्देश्यतावच्छेदकत्वनियमात्, 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इति परामर्शीयविशेष्यतावच्छेदकतायाः पर्वतत्व एव पर्याप्तत्वात्। एतेन धूमपरामर्शमृतेऽपि दहनानुमितेरालोकपरामर्शाज्जायमानत्वेन व्यतिरेकव्यभिचार इत्यपि प्रत्याख्यातम् तस्या वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकत्वेऽपि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताकत्वशून्यत्वेन धूमपरामर्शकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वादेव।

वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताकत्वस्य कार्यतावच्छेदकधर्मघटकविधयोपादानस्य प्रयोजन लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवाधाह- न वेति। अस्य चाग्रे व्यभिचार इत्यनेनान्वयः। 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवॉश्च' इति परामर्शात् 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निमान् वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'त्यनुमिते 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'त्याकारक धूमपरामर्श विनाप्युत्पत्तो व्यभिचार = व्यतिरेकव्यभिचारः। तादृशानुमिते वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितपर्वतविशेष्यताकत्वेऽपि =पर्वतनिष्ठविशेष्यताया वह्निव्याप्यधूमनिष्ठप्रकारतानिरूपितत्वेऽपि, वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताकत्वाभावात् = पर्वतनिष्ठविशेष्यतावच्छेदकतायाः पर्याप्तिसम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वे विरहात्,

► वल्लभा ◄

विशेष्य होता है ओर वह्निव्याप्यधूम प्रकार होता है। प्रकारतावच्छेदक वह्निव्याप्यधूमत्व होता है और विशेष्यतावच्छेदक होता है वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व। अत उपर्युक्त परामर्श वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकता सम्वन्ध से वह्निव्याप्यवत्पर्वतत्व मे रहेगा। एव 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का उद्देश्यतावच्छेदक वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व होगा। इसलिए स्वोद्देश्यतावच्छेदकतासम्वन्ध से वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व मे तादृश अनुमिति की उत्पत्ति होगी। अतएव तादृश अनुमिति के अनन्तर होनेवाला अनुव्यवसाय भी 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वते वह्निमनुमिनोमि' इत्याकारक होगा। मगर जब परामर्श 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक होगा तब वह वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्वन्ध से पर्वतत्व मे रहेगा न कि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व मे, क्योकि उसका विशेष्यतावच्छेदक केवल पर्वतत्व ही हे। एव उस परामर्श के अनन्तर होनेवाली 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति भी उद्देश्यतावच्छेदकतासम्वन्ध से पर्वतत्व मे ही उत्पन्न होगी, न कि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व मे। अतएव उसके अनन्तर होनेवाला अनुव्यवसाय भी 'पर्वते वह्निमनुमिनोमि' इत्याकारक ही होगा न कि 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वते वह्निमनुमिनोमि' इत्याकारक। यद्यपि वह अनुमिति 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक होने से वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व विशेष्यतावच्छेदक है तथापि वह उद्देश्यतावच्छेदक नही है, क्योकि 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श के अनन्तर होनेवाली अनुमिति मे केवल पर्वत ही उद्देश्य हे न कि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वत। वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व उद्देश्यतावच्छेदक न होने से तादृश अनुमिति के अनन्तर 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वते वह्निमनुमिनोमि' इत्याकारक अनुव्यवसाय की आपत्ति नही है।

नैयायिक :- वह्निविधेयताक अनुमिति के प्रति वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिप्रकारताकविशेष्यतावच्छेदकतासम्वन्ध से परामर्श को कारण मानने पर व्यतिरेक व्यभिचार होगा। तथाहि—>'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवॉश्च' इत्याकारक परामर्श के अनन्तर होनेवाली अनुमिति 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निमान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक होगी जो वह्निव्याप्यधूमनिष्ठप्रकारतानिरूपितपर्वतविशेष्यताक एव वह्निविधेयताक हे। मगर उसके अव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन वह्निव्याप्यधूमलिङ्गक परामर्श नही है किन्तु वह्निव्याप्यधूमव्याप्यलिङ्गक हे। इस तरह कारण के विना कार्य की उत्पत्ति होने से व्यतिरेक व्यभिचार दुर्वार है।

वैशेषिक : न वा०। आपकी 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान्' इत्याकारक परामर्श के अनन्तर होनेवाली उपर्युक्त अनुमिति वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपितपर्वतविशेष्यताक होने पर भी वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्त विशेष्यतावच्छेदकता की निरूपक नही है। मतलव केवल वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्व मे पर्याप्तिसम्वन्ध से रहती नही हे, क्योकि वह्निव्याप्यालोकवत्पर्वतत्व भी उपर्युक्त अनुमिति की विशेष्यता का अवच्छेदक हे। अत वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वात्मक धूमपरामर्शकार्यतावच्छेदक धर्म उपर्युक्त अनुमिति मे रहता नही है भले ही उस अनुमिति मे वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व रहता हो। धूमपरामर्श का कार्यतावच्छेदक

तावच्छेदकताकत्वाभावात्। नापि 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटश्च' इति परामर्शजन्यानुमितौ घटस्योद्देश्यतापत्तिः, तत्र तत्परामर्शविशेष्यतायाः सत्त्वेऽपि वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपकविशेष्यताया अभावात्। उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वावच्छि-

◆ हेमलता ◆

वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवत्पर्वतत्वेऽपि पर्वतनिष्ठविशेष्यताया अवच्छेदकत्वस्य सत्त्वात्। इत्थञ्च तस्या वह्निविधेयताकत्वेऽपि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकतात्वशून्यत्वेन निरुक्तकार्यतावच्छेदकधर्मानाक्रान्तत्वान्न धूमलिङ्गकपरामर्शमृतेऽप्युत्पादे व्यतिरेकव्यभिचार इति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनोऽभिप्रायः।

वैशेषिकः कारणतावच्छेदकसम्बन्धशरीरघटकविधया वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकत्वेन विशेष्यताया निवेशे प्रयोजनमाह- नापीति। उद्देश्यतापत्तिरित्यनेनास्याऽन्वय'। 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटश्च' इति परामर्शजन्यानुमिता घटस्य उदासीनस्यापि उद्देश्यतापत्ति = 'वह्निनिष्ठविधेयतानिरू- पितोद्देश्यत्वप्रसङ्ग', घटत्वस्यापि निरुक्तपरामर्शविशेष्यतावच्छेदकत्वादिति शङ्काकृत्तात्पर्यम्। तदपाकरणे हेतुमाह- तत्र= घटे, तत्परामर्शविशेष्यताया 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटश्चे'तिपरामर्शनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यताख्यविषयतायाः, सत्त्वेऽपि वह्निव्याप्यधूमप्रकारता-निरूपकविशेष्यताया = 'वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यताया अभावात्, घटत्वनिष्ठप्रकारतानिरूपकविशेष्यताया एव तत्र सत्त्वात्। ततश्च घटत्वे वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनोक्तपरामर्शस्य विरहान्न तत्रोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन निरुक्तानुमित्युत्पादापत्ति। अत एव तत्र 'घटे वह्निमनुमिनोमी'त्यनुव्यवसायप्रसङ्गोऽपि प्रत्युक्त घटत्वे उद्देश्यतावच्छेदकताविरहात्।

ननु 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमाभाववा- नि'ति निश्चयनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतानिरूपिताया' प्रकारताया अभावे इवाभावप्रतियोगिनि धूमेऽपि सत्त्व तावन्निर्विवादसिद्धम्, प्रकारतायाः प्रकारतावच्छेदकादावपि योगदर्शनादा स्वीकारात्। अत एव तादृशनिश्चयनिरूपितपर्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपितप्रकारतावच्छेदकता धूमे इव धूमत्वेऽपि निरावाधा। ततश्च वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमाभाववानि'ति निश्चयस्य पर्वतत्वे सत्त्वेनोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वे पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमित्युत्पत्तिप्रसङ्गो न सुरगुरुणापि दूरीकर्तुं शक्यत इति लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवाद्याशङ्काया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी व्याकरोति-उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन

▶ वल्लभा ◀

नहीं होने से उसके विना भी उपर्युक्त अनुमिति का उदय हो तो भी व्यतिरेक व्यभिचार का प्रसङ्ग कैसे प्रसक्त हो सकता है? स्वकार्यतावच्छेदकावच्छिन्न की स्वविरह मे उत्पत्ति हो तो ही व्यतिरेक व्यभिचार की आपत्ति मुमकिन हो सकती है। इसलिए लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान को मान्य करने मे कोई भी दोष नहीं है।

वैशेषिक :- नापि०। यहाँ नैयायिक का यह कथन भी कि—"यदि परामर्शविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से परामर्श को उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्ध मे होनेवाली अनुमिति के प्रति कारण माना जाय तब तो 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटश्च' इत्याकारक परामर्श से होनेवाली अनुमिति का उद्देश्य घट भी बन जायेगा, क्योकि घट मे परामर्श की विशेष्यता होने से उद्देश्यता भी उसमें रह सकती है। तब तो पर्वत की भाँति घट को उद्देश्य कर के भी वह्निविधेयक अनुमिति उत्पन्न होने की आपत्ति मुँह फाडे खडी रहेगी←इसलिए निराधार है कि घट मे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटश्च' इत्याकारक परामर्श की विशेष्यता होने पर भी वह्निव्याप्यधूमनिष्ठप्रकारतानिरूपक विशेष्यता रहती नहीं है। यहाँ परामर्श केवल विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से कारण नहीं है किन्तु वह्निव्याप्यधूमनिष्ठ प्रकारता की निरूपक विशेष्यता की अवच्छेदकतात्मक सम्बन्ध से कारण होता है। वह्निव्याप्यधूमप्रकारतानिरूपक विशेष्यता का आश्रय घट नहीं है किन्तु पर्वत है। अतएव तादृश अनुमिति का उद्देश्य घट नहीं किन्तु केवल पर्वत ही होगा। इसलिए तादृश अनुमिति के अनन्तर होनेवाला अनुव्यवसाय भी 'पर्वते वह्निमनुमिनोमि' इत्याकारक होगा न कि 'घटे वह्निमनुमिनोमि' इत्याकारक।

नैयायिक :- यदि लिङ्गी की अनुमिति मे लिङ्ग का भान माना जाय और उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से होनेवाली अनुमिति के प्रति वह्निव्याप्यधूमत्वाववच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से निश्चय को कारण माना जाय तब तो पर्वत मे वह्निव्याप्यधूमाभाव का निश्चय होने पर भी 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति होने लगेगी, क्योकि 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इस निश्चय मे जैसे पर्वतात्मक विशेष्य का प्रकार=विशेषण वह्निव्याप्यधूमाभाव है ठीक वैसे ही अभाव का विशेषण प्रतियोगिताकत्वसम्बन्ध से वह्निव्याप्यधूम है। अपने विशेषण का विशेषण भी अपना विशेषण कहा जाता है। अत पर्वत का विशेषण वह्निव्याप्यधूम भी अवश्य बनेगा। अत वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकता सम्बन्ध मे तादृग निश्चय पर्वतत्व मे रहने से उद्देश्यतावच्छेदकता सम्बन्ध मे पर्वतत्व मे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति उत्पन्न होने की आपत्ति आयेगी।

○● लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान में प्रतिवन्धकताकल्पना ●○

वैशेषिक :- उद्दे० इति। जनाब! हम भी सात घाट के पानी पी चूके है। इस आपत्ति को नौ-दो-ग्यारह करना तो हमारे बाएँ हाथ का खेल है। देखिये, हम उद्देश्यतावच्छेदकता सम्बन्ध से होनेवाली पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक अनुमिति के प्रति

न्नविशेष्यताकानुमितिं प्रति च पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावप्रकारतानिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेन ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वात् 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'ति बाधकाले न वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तोद्देश्यतावच्छेदकताकानुमित्या-

◆ हेमलता ◆

पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकानुमिति = पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्न, प्रति च पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावप्रकारतानिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेन ज्ञानस्य = निश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वात् = प्रतिबन्धकत्वाभ्युपगमात्, 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'तिबाधकाले = तदभाववत्तानिश्चयावस्थाया निरुक्तस्वरूपासिद्धिदशायामिति यावत्, न वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तोद्देश्यतावच्छेदकताकानुमित्यापत्ति 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिप्रसङ्गः। अय लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनोऽभिप्रायः 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'तिनिश्चये पर्वतस्य विशेष्यत्वमभावस्य च प्रकारत्वम्। अभावे च स्वनिष्ठप्रतियोगितानिरूपकत्वसम्बन्धेन धूमस्य प्रकारत्वम्। अभावस्य पर्वतापेक्षया प्रकारत्व धूमापेक्षया च विशेष्यत्वम्। गदाधरमते एकज्ञानीयसमानाधिकरणविषयतयोरैक्यमिति तादृशनिश्चयस्य पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावनिष्ठप्रकारत्वाभिन्नविशेष्यत्वनिरूपिता प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता धूमे वर्तते। जगदीशमते एकज्ञानीयसमानाधिकरणविषयतयोः परस्परमवच्छेद्यावच्छेदकभावः स्वीक्रियते इति तादृशनिश्चयस्य पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावनिष्ठप्रकारतावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिता प्रतियोगितासंसर्गावच्छिन्नप्रकारता धूमे वर्तते। या चोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनानुमितिर्जननीया साऽपि वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वे उत्पादनीया। धूमस्याऽप्युद्देश्यतावच्छेदकधर्मघटकत्वेनोद्देश्यतावच्छेदकत्वम्। पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावत्वावच्छिन्नप्रकारत्वाभिन्नविशेष्यतानिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेन 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'तिज्ञानस्य धूमे वर्तमानत्वान्न तद्घटिते वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वे उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपप्तोश्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमित्युदयप्रसङ्ग इति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनोऽभिप्रायः।

केचित्तु ननु वह्निव्याप्यधूमाभावस्य पर्वतेऽलौकिकसन्निकर्षेण निश्चयेऽपि लौकिकसन्निकर्षेण 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शस्य सम्भवात्तस्य वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वे सत्त्वेन तत्र तज्जन्यानुमितेरुद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनोत्पत्त्यापत्तिरित्यत आह - उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनेत्यवतारयन्ति, तन्न, यतः अलौकिकहेत्वभावनिश्चयाद् द्वितीयक्षणोत्पन्नाद्धेत्वाद्यशे लौकिकपरामर्शाद् द्वितीयक्षणेऽनुमित्युदयस्याभिमतत्वमग्रे कण्ठत एव प्रतिपादितम्। ततो न पर्वतेऽलौकिकधूमाभावनिश्चयानन्तरक्षणोत्पन्नाद्

▶ वल्लभा ◀

पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभाव- प्रकारतानिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता सम्बन्ध से अर्थात् पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यता से निरूपित अभाववृत्ति प्रकारता से अवच्छिन्न (या अभिन्न) विशेष्यता से निरूपित प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता सम्बन्ध से निश्चय को प्रतिबन्धक मानते है। अत 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक बाधकाल मे यानी तदभाववत्तावगाही ज्ञान दशा मे उद्देश्यतावच्छेदकता सम्बन्ध से पर्वतत्व मे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति के उदय की समस्या को अवकाश रहता नही है, क्योकि 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इस ज्ञान मे पर्वत विशेष्य हे और उसका विशेषण हे अभाव। एव अभाव भी वह्निव्याप्यधूमप्रतियोगिताक होने से वह्निव्याप्यधूम स्वप्रतियोगिताकत्वसम्बन्ध से अभाव का विशेषण बनता हे। मतलब कि एक ही ज्ञान मे भासमान अभाव मे पर्वत की अपेक्षा विशेष्यता का एव वह्निव्याप्यधूम की अपेक्षा प्रकारता का अवगाहन होता हे। यह एक नियम है कि एक ही ज्ञान मे भासमान समानाधिकरण विषयता परस्पर अभिन्न या अवच्छिन्न होती हे। अत पर्वतत्वावच्छिन्न विशेष्यता से निरूपित अभावनिष्ठ प्रकारता से अभिन्न या अवच्छिन्न विशेष्यता से निरूपित प्रकारता धूम मे रहेगी, जो प्रतियोगिताकत्वसम्बन्ध से अवच्छिन्न होती है, क्योकि विशेष्यभूत अभाव मे वह्निव्याप्यधूम स्वप्रतियोगिताकत्वसम्बन्ध से रह कर विशेषण बनता है। विशेषण जिस सम्बन्ध से रहता हे उस सम्बन्ध से प्रकारता अवच्छिन्न कही जाती हे। अत 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' यह निश्चय पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावनिष्ठप्रकारताऽवच्छिन्न(अभाव) विशेष्यतानिरूपितप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता सम्बन्ध से धूम मे रह जाने से उद्देश्यतावच्छेदकता सम्बन्ध से तव 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्त उद्देश्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताक अनुमिति की कोई सम्भावना रहती नही है। प्रतिबन्धक रहने पर कार्य का जन्म कैसे हो सकेगा?

●○● शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक अनुमिति अमान्य-वैशेषिक ●○●

नैयायिक :- यदि आप लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श एव 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श का कार्यतावच्छेदक वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्निविधेयताक अनुमितित्व को ही कहेंगे तव तो शुद्धपर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्निविधेयताक अनुमिति दोनो मे से किसी भी परामर्श के कार्यतावच्छेटक धर्म से विशिष्ट नही होगी। अर्थात् उसका कोई भी परामर्श कारण नही होगा। तव तो विना कारण के उत्पत्ति होने से 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति आकस्मिक हो जायेगी। यह तो वकरे को निकालने पर ऑगन मे सॉप घूस गया।

पत्तिः। न च तत्र शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकानुमितेराकस्मिकत्वापत्तिः, तादृशसिद्ध्यभावादेरेव तन्नियामकत्वादिति चेत्?

अत्र वदन्ति - लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानस्वीकारेऽनन्तसिद्धिप्रतिबन्धकत्वकल्पनागौरवम्, न चान्यथा द्वितीयानुमित्य(?न)-

◆ हेमलता ◆

धूमपरामर्शाद् द्वितीयक्षणे जायमानाया दहनानुमितेर्निवारणार्थं लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिना निरुक्तप्रतिबन्धकताकल्पनावश्यकी स्यात्, अन्यथाऽभिमत-कल्पपादपे स्वयमेव कुठारो निहितः स्यात्।

ननु लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमते 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शस्य कार्यतावच्छेदकीभूतं वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वमेव 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शस्य कार्यतावच्छेदकमिति पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताकानुमितेः परामर्शकार्यतावच्छेदकशून्यत्वादाकस्मिकत्वापत्तिरित्याशङ्कामपाकर्तुमुपक्षिपति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी-न चेति। आकस्मिकत्वापत्तिरित्यनेनास्यान्वयः। तत्र= उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन शुद्धपर्वतत्वे।

केचित्तु तत्र= 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'ति बाधकाले इति व्याचक्षते, तन्न, तेरेवानुपद पर्वतेऽलौकिकधूमाभावनिश्चयदशाया 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति लौकिकपरामर्शाज्जायमानाया अनुमितेः प्रतिबन्धकस्य प्रदर्शितत्वेन तदनवकाशात्। तत्र='वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'त्यलौकिकनिश्चयानन्तरं 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति लौकिकपरामर्शदशाया इति तु तद्व्याख्यानं सम्भवति, तदनन्तरं 'पर्वतो वह्निमानि'ति शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितेः नैयायिकैः स्वीकारात्।

लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी तन्निषेधे हेतुमाह-तादृशसिद्ध्यभावादे = शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्नकार्यतावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपितकारणतावच्छेदकविशिष्टनिश्चयात्मकपरामर्शाभावादेः एव तन्नियामकत्वात् = शुद्धपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकानुमित्यनुदयनिर्वाहकत्वात्, कारणविरहे कार्योत्पादासम्भवात्। मूलं नास्ति कुतः शाखा? ततश्च लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानमनाविलं सिध्यतीत्ययमाशयः।

अत्र लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिनः समाधानार्थं वदन्ति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानस्वीकारे = 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्'इत्याकारकानुमितिस्वीकारे तादृशानुमितेरपि वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारताकपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिश्चयरूपत्वेन परामर्शात्मकतया तस्या वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन तत्र वर्तमानतया तादृशानुमित्यनन्तरमपि उद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन द्वितीयानुमितिरापद्येत। न हि प्रयोजनक्षतिभयेन सामग्री कार्यं नार्जयति। एवं च सर्वत्र लिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमित्यनन्तरं द्वितीयानुमितिप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वम्। न चोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेना- नुमितिं प्रति विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन सिद्धिविधया तादृशानुमितीनां वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपकानुमितित्वेन प्रतिबन्धकत्वकल्पनान्नाय दोष इति वक्तव्यम् यतः तादृशानुमितीनामनन्तत्वेनैव स्वीकारे अनन्तसिद्धिप्रतिबन्धकत्वकल्पनागौरवं सुरगुरुणाऽपि निराकर्तुमशक्यम्। अस्मन्नये चानुमितेर्लिङ्गानवगाहित्वेन सर्वत्रानुमित्यनन्तरं वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारताकपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिश्चयविरहादेव न द्वितीयानुमित्यापत्तिः सम्भवतीति न तादृशप्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावकल्पनागौरवमिति लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानपक्षे लाघवमिति योगाशयः।

न च अन्यथा = सिद्धिप्रतिबन्धकताया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानपक्षाऽनङ्गीकारे द्वितीयानुमित्यनापत्तिरिति द्वितीयानुमित्यापत्तिरेवेत्यर्थः नञ्द्वयेन

► वल्लभा ◄

वैशेषिक :- न च तत्र०। उस्ताद! सेर को सवासेर मिलना इस दुनिया में मुश्किल नहीं है। आप 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति में आकस्मिकता की आपत्ति दे रहे हैं मगर आपको मालूम ही कहाँ है कि सारे जहाँ में कभी भी किसीको भी 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताक अनुमिति ही होती नहीं है। तादृश अनुमिति का उत्पादक हो तो उसकी आकस्मिकता का वारण करना आवश्यक होता। मगर वही वन्ध्यापुत्र की वहनतुल्य है। कारणविरह ही उसके अनुदय का नियामक होने से उसमें आकस्मिकता का आपादन करना बिना भित्ति के चित्रकामतुल्य समझा जाता है। इसलिए द्विविध परामर्श के कार्यतावच्छेदकविधया वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्निविधेयताकअनुमितित्व का स्वीकार करना निर्दोष ही है जिसके फलरूप में 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति की निष्पत्ति सिद्ध होने से लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान अनायास ही सिद्ध हो जायेगा। यह हम वैशेषिकों का सिद्धान्त है। देखा हमारा जादूटोना!

▲△ वैशेषिकमत में प्रतिबन्धकताकल्पना गौरव-नैयायिक ▽▼

नैयायिक :- अत्र वद०। अरे जनाब! रुपेया परखे बार बार, आदमी परखे एक बार! आपके वक्तव्य से ही भली भाँति मालूम हो जाता है कि आप लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी गुमराह हैं। इसका कारण यह है कि लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान का स्वीकार

नापत्तिः, द्वितीयानुमितिस्थानीयपरामर्शानुव्यवसायकल्पने चातिगौरवादिति।

तच्चिन्त्यम् फलमुखस्य तस्याऽदोषत्वात्, 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यव्याप्यवानि'-

◆ हेमलता ◆

प्रकृतार्थबोधनात्। न च द्वितीयानुमित्युत्पत्त्यधिकरणविषयाऽभिप्रेते क्षणे लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानपक्षे परामर्शानुव्यवसायोत्पत्तिरेव कल्प्यते इति न तदानी द्वितीयानुमित्युदयावकाशः युगपज्ज्ञानद्वयोत्पादप्रतिषेधादिति वाच्यम् सर्वत्र द्वितीयानुमितिस्थानीयपरामर्शानुव्यवसायकल्पने मानाभावात् भावे वा तत्कारणत्वकल्पनापत्त्या अतिगोरवाच्च। चकारो व्यवहितान्वयोऽस्मदुक्तदिशा योजनीयः। स चास्माभिर्योजित एव।

तत् = लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिप्रोक्त प्रतिविधान चिन्त्य न तु चिन्तामृतेऽङ्गीकर्तव्यम्। प्रकरणकारः चिन्ताबीजमुपदर्शयति- फलमुखस्य = प्रमाणसिद्धकार्यकारणभावाधीनस्य तस्य = अनन्तसिद्धिनिष्ठत्वेन प्रतिबन्धकत्वकल्पनागौरवस्य, अदोषत्वात् = निर्दोषत्वात्। धूमलिङ्गकपरामर्शमृतेऽपि आलोकपरामर्शाद् वह्निविधेयकानुमित्युत्पादेन व्यभिचारवारणाय तत्तत्परामर्शस्य कार्यतावच्छेदककोटौ तत्तत्परामर्शाव्यवहितोत्तरत्वस्य निवेशापेक्षया लाघवाल्लिङ्गस्यैवानुमितौ पक्षविशेषणतया भानसिद्धिः। एतेन वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक - वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वा-पेक्षया पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्याताकवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वे लाघवाल्लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरिति प्रत्याख्यातम् द्विविधगुरुतरकार्यतावच्छेदककल्पनाया आवश्यकत्वेऽपि तत्तत्परामर्शाव्यवहितोत्तरत्वविशिष्टपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक - वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमि-तित्वलक्षणानन्तगुरुतमकार्यतावच्छेदकधर्मकल्पनाया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमतेऽनावश्यकत्वेनातिलाघवात्। न च स्वाव्यवहितोत्तरत्वस्य सम्बन्धकोटो निवेशान्नैतादृशकल्पनागौरवमिति वक्तव्यम्, सम्बन्धगौरवस्यापि सदोषत्वात् तददोषत्वप्रवादस्य निर्युक्तिकत्वेनाश्रद्धेयत्वात्, अन्यथैव सति सर्वत्रैव धर्मगौरवस्य सम्बन्धकोटो निक्षेपेन गौरवोच्छेदप्रसङ्गात्। इत्थ लाघवसहकारेण लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धो पश्चादुपस्थितस्य निरुक्तप्रतिबन्धकताकल्पनागौ-रवस्य प्रमाणसिद्धकार्यकारणभावनिर्वाहकस्य न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानविरोधित्व, उपजीवकस्य हीनबलत्वेनोपजीव्यविरोधित्वासम्भवात्। न ह्यप्रतीयमा-नकल्पनाभिया विशदतरकार्यमपह्नोतुमर्हति।

किञ्च, लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिमतेऽपि सिद्धिप्रतिबन्धकत्वमवश्यकल्पनीयम्, अन्यथा परामर्शविशेषस्थलेऽनुमितिधारापत्तिर्गीर्वाणगुरुणाऽप्यप-सारयितुमशक्यैवेत्याशयेन प्रकरणकृदाह- 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यव्याप्यवानि'त्यादिपरामर्शात् अनुमितिधा-

▶ वल्लभा ◀

करने पर 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यादि अनन्त सिद्धि=अनुमिति मे अन्य तादृश अनुमिति के प्रति प्रतिबन्धकता की कल्पना का गौरव प्रसक्त होता है। यदि लिङ्गोपहित अनुमिति को अन्य तादृश अनुमिति की प्रतिबन्धक न मानी जाय तब तो 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति भी वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारताक-पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक परामर्शात्मक बनने की वजह उसके अव्यवहित उत्तर क्षण मे द्वितीय तादृश अनुमिति की आपत्ति आयेगी और द्वितीय अनुमिति भी निरुक्तपरामर्शस्वरूप होने के सबब तदनन्तर तृतीय लिङ्गोपहित अनुमिति का उदय होने लगेगा। इस तरह अनुमिति की धारा चलती रहेगी। उसके निवारणार्थ यही मानना पडेगा कि लिङ्गोपहित अनुमिति द्वितीयादि अनुमिति की प्रतिबन्धक है। लिङ्गोपहित अनुमिति भी एक, दो या तीन होती नही है किन्तु अनन्त होती है। अत तादृश अनन्त प्रतिबन्धकता की कल्पना करनी वेशेषिकमत मे आवश्यक होगी। उसकी अपेक्षा अच्छा यही है कि लिङ्गानुपहित अनुमिति का स्वीकार किया जाय । यहाँ वैशिषिकअनुयायी का यह कथन कि ⟶'लिङ्गावगाही लिङ्गिविषयक अनुमिति का स्वीकार करने पर भी उपर्युक्त प्रतिबन्धकता की कल्पना आवश्यक नही है, क्योकि लिङ्गावगाही अनुमिति के अव्यवहित उत्तर क्षण मे परामर्श का ही अनुव्यसाय होता है ओर एक ही काल मे एक ही आत्मा मे अनेक ज्ञान की उत्पत्ति होती नही हे। इसलिए तब द्वितीय अनुमिति के उदय की आपत्ति को अवकाश नही है'⟵भी निराधार हे, क्योकि सर्वत्र प्रथम लिङ्गोपहित अनुमिति की अव्यवहित उत्तर क्षण मे द्वितीय अनुमिति के स्थान मे परामर्शानुव्यवसाय की कल्पना करने पर उसकी कारणता आदि की कल्पना आवश्यक बनने से अत्यन्त गौरव लिङ्गोपहितलेङ्गिकभानवादी के मत मे प्रसक्त होगा जो असह्य है। इसलिए लिङ्गोपहित लेङ्गिकभान की कल्पना अप्रामाणिक है।

▲▲ नैयायिकप्रतिविधान चिन्तनीय-स्याद्वादी ▲▲

तच्चिन्त्यम्०। मगर इसके खिलाफ प्रकरणकार का यह कथन हे कि-उपर्युक्त नैयायिकवक्तव्य चिन्तनीय=विचारणीय है, न कि बिना विचार के ऑखे मूँद कर ग्राह्य। इसका कारण यह है कि लिङ्गोपहितलेङ्गिकभानवादी के मत मे प्राप्त प्रतिबन्धकताकल्पनागोरव फलमुख होने से निर्दोष है। आशय यह है कि धूमपरामर्श के बिना आलोकलिङ्गक परामर्श से भी वह्निविधेयक अनुमिति का उदय अनुभवसिद्ध होने से वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्न के प्रति धूमपरामर्श को कारण मानने मे व्यतिरेक व्यभिचार दोष प्रसक्त

त्यादिपरामर्शादनुमितिधारापत्तेः सिद्धिप्रतिबन्धकत्वं विनाऽवारणात्, लाघवाद् भिन्नविषयत्वाप्रवेशेनानुमितिसामग्रीत्वेन प्रत्यक्षत्वेन प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावे क्लृप्ते विशेषदर्शनोत्तरमनुमितिमनङ्गीकृत्य व्यवहारविलोपभियाऽग्रे प्रत्यक्षकल्पनात् तदुत्पत्तिकालेऽनुमित्यापत्ति-

◆ हेमलता ◆

रापत्ते = 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान्' 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' 'पर्वतो वह्निमान्' इत्येव अनुमितिप्रवाहप्रसङ्गस्य सिद्धिप्रतिबन्धकत्व = अनुमितिनिष्ठप्रतिबध्यतानिरूपितसिद्धिनिष्ठप्रतिबन्धकत्वकल्पन विना अवारणात्। ततश्चानुमिति प्रति सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वकल्पन लिङ्गोपहित-तदनुपहितलैङ्गिकभानवादिनोस्तुल्यमेव। एतेन सिद्धिविधयाऽनन्तलिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमितीना प्रतिबन्धकत्वकल्पनागौरवमपि प्रत्युक्तम् अन्यत्र क्लृप्ते प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावे सङ्कोचकरणे मानाभावात्, अवच्छेदकधर्मगौरवाच्च।

किञ्च भिन्नविषयकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न प्रति अनुमितिसामग्रीत्वेन प्रतिबन्धकत्वकल्पने गौरवेण लाघवात् = प्रतिबध्यतावच्छेदकधर्मशरीरकृतलाघव-मपेक्ष्य प्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ भिन्नविषयत्वाप्रवेशेन अनुमितिसामग्रीत्वेन प्रतिबन्धकत्व प्रत्यक्षत्वेन च प्रतिबध्यत्वमित्येव प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभावे क्लृप्ते= प्रमाणसिद्धे सति 'अय स्थाणुर्न वा?' इति सशयदशाया 'स्थाणुत्वव्याप्यशाखादिमानयमि'ति विशेषदर्शनोत्तर 'अय स्थाणु' इत्येव अनुमितिः जायेत 'पुरुषत्वव्याप्यकरादिमानयमि'ति विशेषदर्शनोत्तरञ्च 'अय पुरुष' इत्येवमनुमितिरुत्पद्येत न तु तादृश प्रत्यक्ष, तदानीमनुमितिसामग्री-सत्त्वात्, प्रत्यक्षसामग्र्या अनुमितिसामग्रीतो दुर्बलत्वात्। अतो विशेषदर्शनोत्तर व्यावर्णितस्वरूपा अनुमितिमङ्गीकृत्य व्यवहारविलोपभिया = 'स्थाणुत्वव्याप्यकरादिमानयमि'ति विशेषदर्शनोत्तरकाले 'अय स्थाणु' इत्येव साक्षात्कारो जायते 'स्थाणु पश्यामी'त्यनुव्यवसायस्य तत्र सार्वजनीनत्वादिति व्यवहारस्योच्छेदभयेन अग्रे = निरुक्तानुमित्युदयानन्तरकाले 'अय स्थाणु'इत्यादिप्रत्यक्षकल्पनात्। न च प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नेऽनुमितिसामग्र्या' प्रतिबन्धकत्वोपगमे तदानीं तादृशसाक्षात्कारो न सञ्जायेत किन्तु तादृशानुमितिरेवेति वक्तव्यम् तदुत्पत्तिकाले = विशेषदर्शनानन्तरोत्पन्नानुमित्यनन्तर प्रत्यक्षोत्पत्तिक्षणे पुन' अनुमित्यापत्तिवारणाय = अनुमित्युदयापादननिवारणकृते तत्कल्पनाया = अनुमितित्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितसिद्धिनिष्ठप्रतिब-न्धकत्वकल्पनाया आवश्यकत्वाच्च। न च गौरवमित्याशङ्कनीयम्, प्रमाणेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतानिरूपितानुमितिसामग्रीनिष्ठ-प्रतिबन्धकत्वे सिद्धे

► वल्लभा ◄

होता है। उसके निवारणार्थ पूर्वोक्त रीति के अनुसार तत्तत्परामर्शाव्यवहितोत्तरत्व का कार्यतावच्छेदकधर्म कोटि मे निवेश करना होगा, मतलब कि तत् तत् परामर्श और तत् तत् अनुमिति के बीच अनन्त कार्यकारणभाव के स्वीकार का गौरव नैयायिकमत मे प्रसक्त होगा। इसकी अपेक्षा लिङ्गोपहित लैङ्गिकानुमिति का स्वीकार ही उचित है अर्थात् वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताक-अनुमितित्वावच्छिन्न के प्रति ही वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से परामर्श को कारण मानना एव वह्निव्याप्यालोकवत्पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपकवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकअनुमितित्वावच्छिन्न के प्रति वह्निव्याप्यालोकत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरू-पकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से परामर्श को कारण मानना लाघवसहकृतयुक्तिसगत है। इस पक्ष मे अनन्त कार्यकारणभाव के स्वीकार का गौरव अप्रसक्त है। इस तरह कार्यकारणभाव का निश्चय होने से ही 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का होना सिद्ध होता है। इसी अनुमिति को लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान कहते है। इस तरह प्रमाण से लिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमिति की सिद्धि होने के पश्चात्काल मे उपस्थित गौरव फलमुख=प्रमाणसिद्ध कार्यकारणभाव के अधीन होने से निर्दोष है। दूसरी बात यह है कि लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी को भी परामर्शविशेष के अनुरोध से सिद्धि मे प्रतिबन्धकता की कल्पना आवश्यक ही है। वह इस तरह→जब 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान् वह्निव्याप्यधूमव्याप्यव्याप्यवान्' इत्याकारक परामर्श होने के पश्चात् 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान्' 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याद्याकारक अनुमिति धारा की आपत्ति आयेगी। अनुमिति के प्रति सिद्धि को प्रतिबन्धक माने विना उपर्युक्त समस्या का निवारण न हो सकेगा। इस तरह जब लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी के मत मे भी सिद्धि मे अनुमितिप्रतिबन्धकता मान्य है तब लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मत मे सिद्धि मे अनुमितिप्रतिबन्धकता की कल्पना गौरवग्रस्त कैसे कही जा सकती है?

लाघ०। दूसरी बात यह है कि अनुमिति और प्रत्यक्ष दोनो की सामग्री उपस्थित होने पर उत्तरक्षण मे अनुमिति होती है न कि प्रत्यक्ष। अत अनुमितिसामग्री को प्रत्यक्ष के प्रति प्रतिबन्धक मानना आवश्यक है। मगर भिन्नविषयकत्व का उसमे निवेश करने पर गौरव होता है। मतलब कि भिन्नविषयकप्रत्यक्षत्व को अनुमितिसामग्री का प्रतिबध्यतावच्छेदक मानने मे गौरव होने से लाघव मे प्रत्यक्षत्व को ही अनुमितिसामग्री का प्रतिबध्यतावच्छेदक मानना आवश्यक है। मतलब कि भिन्नविषयक एव समानविषयक स्थल मे अनुमितिसामग्री और प्रत्यक्षसामग्री उपस्थित होने पर वहाँ अनुमिति का ही उदय होगा न कि प्रत्यक्ष का। जैसे कि 'अय स्थाणुर्न वा?' इत्याकारक सशय की उत्पत्ति के बाद मे शाखादि का दर्शन होने पर व्याप्तिस्मृति से 'स्थाणुत्वव्याप्यशाखादिमानय' इत्याकारक

वारणाय तत्कल्पनाया आवश्यकत्वाच्च।

◆ हेमलता ◆

सति व्यवहारबलेनानुमितिं प्रति सिद्धेः प्रतिबन्धकत्वकल्पनाया उत्तरकालीनत्वेन तादृशगौरवस्य फलमुखत्वेनाऽदोषत्वात् अन्यथा सिद्ध्यसिद्धिभ्यां व्याघातापातात्। अनेन लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानोपगमेऽपि द्वितीयानुमित्यापत्तिः प्रत्याख्याता परामर्शघटिताया अपि लिङ्गोपहिताया लैङ्गिकानुमितेः सिद्धिविधयाऽनुमित्यन्तरप्रतिबन्धकत्वात्। अत एव द्वितीयानुमितिस्थानीयपरामर्शानुव्यवसायकल्पनेऽतिगौरवमित्यपि निरस्तम् अनुमितेस्तदानीं सिद्धिस्वरूपलिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमितिप्रतिबद्धत्वेन परामर्शानुव्यवसायसामग्र्याश्च सत्त्वेन तदानीं परामर्शानुव्यवसायस्य निराकर्तुमशक्यत्वात्।

केचित्तु समानविषयकप्रत्यक्षसामग्र्याः समानविषयकानुमितिम्प्रति प्रतिबन्धकत्वं भिन्नविषयकानुमितिसामग्र्या भिन्नविषयकप्रत्यक्षम्प्रति प्रतिबन्धकत्वमितिनियमस्य स्वीकार एव परामर्शानुव्यवसायलक्षणं प्रत्यक्षं भिन्नविषयकम्प्रति भिन्नविषयकद्वितीयानुमितिसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वान्न स्यात्परामर्शप्रत्यक्षम्। अथाप्युत्तेजकविशेषं प्रकल्प्य तत्रानुव्यवसायकल्पनेऽतिगौरवं स्यात् परन्तु लाघवाद्भिन्नविषयकत्वं प्रतिबन्धकतावच्छेदककोटावनिवेश्यैव प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रत्यनुमितिसामग्रीत्वेन प्रतिबन्धकत्वमित्यत्र व्याख्यानयन्ति तन्न प्रकृते 'पर्वतं वह्निव्याप्यधूमवत्त्वेन परामृशामी'त्याकारकस्य परामर्शानुव्यवसायस्य न भिन्नविषयकत्वेनानुमितिसामग्रीप्रतिबध्यत्वं सम्भवति किन्तु भोगान्यमानसप्रत्यक्षत्वेनैव रूपेण, भोगान्यमानससामग्र्याः सर्वतो दुर्बलत्वात्, अनुव्यवसायस्य भोगान्यमानसप्रत्यक्षात्मकत्वात्। किञ्च भिन्नविषयकत्वस्य प्रतिबन्धकतावच्छेदककोटौ निवेशेऽपि न दोषः, प्रतिबन्धकतावच्छेदकगौरवस्याऽदोषत्वात्, कार्यतावच्छेदकसम्बन्धेन कार्याधिकरणविधयाऽभिमते कार्याव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन सतोऽभावस्याऽप्रतियोगित्वादिस्वरूपे कारणत्वशरीरे तस्याऽप्रविष्टत्वेन कारणताशरीरगौरवानवकाशात्।

वस्तुतो लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिनये बहिरिन्द्रियजन्यत्वस्य प्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ निवेशेन गौरवम्। न च तस्यादोषत्वमिति वक्तुं युज्यते प्रतिबध्यतावच्छेदकस्य प्रतिबन्धकाभावनिरूपितकार्यतावच्छेदकत्वेन तद्गौरवे कार्यतावच्छेदकधर्मगौरवापातेन कार्यकारणभावगौरवात्। एतेन लिङ्गानुपहितानुमितिवादिना भिन्नविषयकत्वं न प्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ निविश्यते किन्तु प्रतिबन्धकतावच्छेदकशरीर एव, भिन्नविषयकानुमितिसामग्र्या' प्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने प्रतिबन्धकत्वादिति प्रत्युक्तम् लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनये बहिरिन्द्रियजन्यत्वस्यापि प्रतिबध्यतावच्छेदककोटावनिवेशेन लाघवात्, भोगसामग्र्या उत्तेजकत्वं तूभयमते तुल्यमेवेति दिक्।

तत्कल्पनाया = अनुमितिम्प्रति तादृशप्रत्यक्षसामग्र्याः प्रतिबन्धकत्वमुपगम्य प्रत्यक्षकल्पनाया इत्यपि अपव्याख्यानम्, तादृशपदस्य सम्यग्निर्वचनासम्भवात्। तथाहि तादृशपदस्य भिन्नविषयकपरत्वे दहनानुमितिं प्रति घटादिसाक्षात्कारसामग्र्या अपि प्रतिबन्धकत्वापातात् तादृशपदस्य समानविषयकपरत्वे तु लिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमित्युत्तरं द्वितीयानुमितिरेव जायेत न तु परामर्शानुव्यवसाय' परामर्शानुव्यवसायसामग्र्याः ज्ञानविषयकत्वेन दहनानुमितिविषयापेक्षया भिन्नविषयकत्वात्। किञ्चैवं विशेषदर्शनोत्तरमपि प्रत्यक्षमेव जायेत न त्वनुमिति'। न चेदमत्राभिमतम्, विशेषदर्शनोत्तरमनुमितेरुदयस्यात्रोक्तत्वात्। न चानुमित्युत्तरत्वविशिष्टप्रत्यक्षसामग्र्याः अनुमितिं प्रति प्रतिबन्धकत्वमिति वाच्यम् एवं सति अनुमित्युत्तरं कदापि न

▶ वल्लभा ◀

परामर्श का जब जन्म होता है उसके अव्यवहित उत्तर क्षण मे 'स्थाणुत्वव्याप्यशाखादिमान् अयं स्थाणु', इत्याकारक अनुमिति होगी, क्योंकि परामर्शात्मक अनुमितिसामग्री की अपेक्षा प्रत्यक्षसामग्री दुर्बल है। मगर यहाँ समस्या यह उपस्थित होती है कि विशेषदर्शन के उत्तरकाल मे प्रत्यक्ष का जन्म व्यवहार मे देखा जाता है, उसका उच्छेद हो जायेगा। इस प्रसिद्ध व्यवहार के विलोप के भय से वहाँ अनुमिति के अनन्तर प्रत्यक्ष की कल्पना करनी आवश्यक होती है। मतलब कि विशेषदर्शन के उत्तर काल मे अनुमिति का और उसके अव्यवहितोत्तर क्षण मे प्रत्यक्ष का जन्म होगा। तब विशेषदर्शन के उत्तर काल मे प्रत्यक्षोदय का प्रसिद्ध प्रवाद भी उपपन्न हो जायेगा। विशेषता इतनी है कि विशेषदर्शन और प्रत्यक्ष के बीच मे अनुमिति का जन्म होगा। मगर लाघव से भिन्नविषयकत्व का निवेश किये बिना अनुमितिसामग्रीत्वेन प्रतिबन्धकता एवं प्रत्यक्षत्वेन प्रतिबध्यता का स्वीकार कर के विशेषदर्शन कोटि के उत्तरकाल मे अनुमिति का स्वीकार करने पर उसके उत्तरकाल मे प्रत्यक्ष का जन्म हो नहीं सकेगा किन्तु अनुमिति का ही जन्म होगा, क्योंकि उपस्थित-विशेषदर्शनादिघटित अनुमितिसामग्री से वहाँ तब प्रत्यक्ष प्रतिबद्ध हो जायेगा। अर्थात् प्रत्यक्ष के उदय के समय भी वहाँ अनुमिति का ही उदय होगा। इसके निवारणार्थ भी सिद्धिविधया अनुमिति को भिन्नअनुमिति का प्रतिबन्धक मानना आवश्यक होगा तभी नैयायिकमत मे तब प्रत्यक्ष के उदय की उपपत्ति हो सकेगी। इस तरह लिङ्गानुपहितलङ्गिकभानवादी नैयायिक को भी सिद्धि को अनुमिति के प्रति प्रतिबन्धक मानना आवश्यक है, अन्यथा जब तक विशेषदर्शन होगा तब तक विशेषदर्शन के उत्तरकाल मे अनुमिति की धारा चलती रहेगी। उसका प्रत्यक्ष हो नहीं सकेगा। इस तरह लिङ्गोपहित या लिङ्गानुपहित अनुमिति का स्वीकार करनेवाले वादी के मत मे सिद्धि को अनुमिति का प्रतिबन्धक मानना आवश्यक है तब लिङ्गोपहितलङ्गिकभानवादी के मत मे अधिक गौरव कैसे कहा जायेगा? उभयपक्ष मे तुल्य गौरव है। इस तरह सिद्धि मे अनुमितिप्रतिबन्धकता को मान्य करने से लिङ्गोपहित लैङ्गिकअनुमिति के अव्यवहित उत्तर क्षण मे द्वितीय अनुमिति का उदय हो नहीं सकेगा, क्योंकि सिद्धि=लिङ्गोपहित लङ्गिकानुमिति उसकी प्रतिबन्धक

11

गुरुचरणास्तु ''अनुमितित्वपरामर्शत्वाभ्या सामान्यत एव कार्यकारणभावान्न धूमलिङ्गकत्वादेः कार्यतावच्छेदकताया घटकतया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिः, परामर्शत्वञ्च 'मानसत्वव्याप्यो जातिविशेष' इति परामर्शे वक्ष्यते। न च घटव्याप्यवत्तापरामर्शाद्

◆ हेमलता ◆

जायेतानुमितिः। न च तादृशपदस्यानुमित्यव्यवहितोत्तरपरत्वान्नाय दोष इति वक्तव्यम् एव सति 'पुरुपत्वव्याप्यकरादिमानयमि'त्यनुमित्यव्यवहितोत्तरक्षणे धूमपरामर्शघटसन्निकर्षयोर्युगपदुत्पादे तदव्यवहितोत्तरक्षणे दहनानुमितिरपि न स्यात्। एतेन तादृशपदस्यानुमितिसमकालीनत्वविशिष्टपरत्वमपि प्रत्युक्तम् 'वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'त्यनुमिते' घटसन्निकर्षसहिताया अव्यवहितोत्तरक्षणे दहनानुमितिरपि न स्यादिति यत्किञ्चिदेतत्। ततश्चास्मत्कृतमेव व्याख्यान श्रद्धेयतयोपादेयम्।

इतः किञ्चित्तत' किञ्चिदुपादाय प्रधाविता'।
व्याख्यातारोऽनुमन्त्रानविकला' प्रायशोऽधुना ॥१॥

वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्न प्रति वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारताकविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन परामर्शस्य हेतुत्वेन धूमलिङ्गकत्वादेः परामर्शकार्यतावच्छेदकघटकतया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिमसहमानाना गुरुचरणाना मतमावेदयन्ति-गुरुचरणास्त्विति। आहुरित्यनेनास्य सम्बन्ध'। अनुमितित्व-परामर्शत्वाभ्या सामान्यत = सामान्यधर्मपुरस्कारेण एव कार्यकारणभावात् = कार्य-कारणभावाभ्युपगमात् न धूमलिङ्गकत्वादे कार्यतावच्छेदकताया = परामर्शनिष्ठकारणतानिरूपितकार्यतानिरूपितावच्छेदकताया घटकतया वैशेषिकमतानुयायिसम्मता लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धि सम्भवति। लिङ्गोपहितानुमितिसिद्धि' तदा स्यात् यदा धूमलिङ्गकत्वादेः परामर्शकार्यतावच्छेदकघटकत्व स्यात्। पर तदेवासिद्धम्, लाघवेनानुमितित्वावच्छिन्ने परामर्शत्वेनैव सामान्यत' कारणत्वस्य क्लृप्तत्वादिति गुरुचरणानामभिप्रायः। कारणतावच्छेदकधर्मनिर्वचन कुर्वन्ति- परामर्शत्वञ्च मानसत्वव्याप्यो जातिविशेष इति परामर्शे = तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे परामर्शप्रतिपादके प्रकरणे वक्ष्यते। यद्यपि तत्र कण्ठतो नैवमुक्त तथापि तत्र 'असन्निकृष्टधूमादाविव सर्वत्र मानस एव परामर्श' इत्येवमुक्तवता मणिकृता एवकारोपादानेन मानसत्वव्याप्यत्व परामर्शत्वेऽर्थत' प्रतिपादितमेव।

न च घटव्याप्यवत्तापरामर्शात्= 'पर्वतो घटव्याप्यवानि'तिपरामर्शात् वह्न्यनुमित्यापत्ति दुर्वारा, दहनानुमितिरपि निरुक्तपरामर्शकार्यतावच्छेद-

▶ वल्लभा ◀

होती है। अत तव परामर्शानुव्यवसाय की उत्पत्ति होने मे कोई बाधा नही है। इसलिए लिङ्गोपहित लैङ्गिकअनुमिति के स्वीकार मे भी कोइ दोष नही है। अत लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी वैशेषिक के खिलाफ लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी नैयायिक का वक्तव्य अनुचित है - यह प्रकरणकार का मन्तव्य है।

■□ गुरुचरणमतप्रदर्शन ■□

गुरुच०। गुरुचरण का मन्तव्य यह है कि⟶''वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व को परामर्श का कार्यतावच्छेदक धर्म मान कर कार्यतावच्छेदकता के घटकविधया धूमलिङ्गकत्व आदि की अनुमितिस्वरूप कार्य मे सिद्धि कर के लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान की सिद्धि करना ठीक नहीं है, क्योकि परामर्श का कार्यतावच्छेदक सामान्यत अनुमितित्व ही है। अनुमितित्वावच्छिन्न के प्रति परामर्शत्वेन कारणता लाघव से अवश्यक्लृप्त है। इस लघु कार्यकारणभाव को मान्य करने पर लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि हो नही सकती, क्योकि धूमलिङ्गकत्वादि कार्यतावच्छेदक धर्म का घटक नही है - यह तत्त्वचिन्तामणि के अनुमानखण्ड मे परामर्श प्रकरण मे कहा जायेगा। यहाँ इस शङ्का का कि⟶'अनुमितित्वावच्छिन्न के प्रति परामर्श सामान्य को कारण मानने पर तो 'पर्वतो घटव्याप्यवान्' इत्याकारक घटव्याप्यवत्तावगाही परामर्श से भी 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक दहनानुमिति की आपत्ति आयेगी, क्योकि दहनानुमिति भी अनुमितित्वलक्षण परामर्शकार्यतावच्छेदकधर्म से विशिष्ट है। कारण के रहने पर कार्य का उदय होना न्याय्य है⟵ समाधान यह है कि अनुमिति और परामर्श के बीच विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से हम कार्यकारणभाव का स्वीकार करते है। मतलब कि विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से अनुमितिसामान्य के प्रति विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से परामर्शसामान्य कारण होता है। 'पर्वतो घटव्याप्यवान्' इत्याकारक परामर्श मे विधेय है घट और विधेयतावच्छेदक है घटत्व। अत विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से वह परामर्श घटत्व मे रहेगा। जब कि दहनानुमिति मे विधेय है दहन और विधेयतावच्छेदक है दहनत्व=वह्नित्व। अत विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से वह अनुमिति वह्नित्व मे रहेगी। जब कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध से कार्याधिकरणविधया अभिमत मे कारणतावच्छेदकसम्बन्ध से कारण रहता हो तभी कार्य उत्पन्न हो सकता है - यह सर्वमान्य नियम है। प्रस्तुत मे वह्नित्व मे विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से घटव्याप्यप्रकारक परामर्श नही रहने से वह्निविधेयक अनुमिति का आपादन नही किया जा सकता।

वह्न्यनुमित्यापत्तिः, विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनैव तयोः कार्यकारणभावात्। अत एव न प्रमेयवह्नित्वपर्याप्तविधेयतावच्छेदकताकपरामर्शाच्छुद्धवह्नित्वपर्याप्तविधेयतावच्छेदकताकानुमित्यापत्तिः, न वा वह्नित्वपर्याप्तविधेयतावच्छेदकत्व विनाऽपि

◆ हेमलता ◆

काक्रान्तत्वादिति शङ्कनीयम् विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनैव तयो = अनुमिति-परामर्शयोः कार्यकारणभावात् =फल-फलवद्भावस्वीकारात्। विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनानुमितित्वावच्छिन्ने विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन परामर्शत्वेन कारणत्वम्। घटव्याप्यप्रकारकपरामर्शश्च विधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन घटत्व एव वर्तते न तु वह्नित्वे, वह्नेः प्रकृतपरामर्शाऽविधेयत्वात्। अनुमितित्वावच्छिन्नस्य उदयस्तु ततोऽनुभवसिद्ध एव। वह्निविधेयकत्वस्य तु कार्यतावच्छेदकप्रविष्टत्वेनैवानापाद्यत्वात् तस्मात् न ततो दहनानुमित्यापत्तिः सम्भवति।

यदि चात्र विधेयतावच्छेदकता विहाय व्यापकतावच्छेदकतोपादीयेत तदा 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमव्याप्यवानि'तिपरामर्शादपि दहनानुमितिरापद्येत धूमवृत्तिव्याप्यतानिरूपितव्यापकतावच्छेदकत्वस्य धूमत्व इव वह्नित्वेऽपि सत्त्वादिति विधेयतावच्छेदकत्वोपादानम्।

सम्बन्धकोटौ पर्याप्तिनिवेशप्रयोजनमावेदयन्ति अत एव =विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनानुमितिपरामर्शयोः कार्यकारणभावस्वीकारादेव, न 'पर्वतः प्रमेयवह्निव्याप्यधूमवानि'त्याकारकात् प्रमेयवह्नित्वपर्याप्तविधेयतावच्छेदकताकपरामर्शात् शुद्धवह्नित्वपर्याप्तविधेयतावच्छेदकताकानुमित्यापत्ति 'पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितिप्रसङ्गः, निरुक्तपरामर्शीयविधेयतावच्छेदकतायाः प्रमेयवह्नित्वे एव पर्याप्तत्वेन विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन तस्य प्रमेयवह्नित्वे एव सत्त्वात् न तु वह्नित्वे इति निरुक्तपरामर्शान्न 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्यापत्तिरिति भावः।

न वा वह्नित्वपर्याप्तविधेयतावच्छेदकत्व = शुद्धवह्नित्वे विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति विनाऽपि 'पर्वतः प्रमेयवह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शात्

► वल्लभा ◄

यहाँ यह शका कि→'पर्वत प्रमेयवह्निव्याप्यवान्' इत्याकारक परामर्श होता है उसके अनन्तर क्षण मे 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का निवारण कैसे किया जायेगा? क्योकि उपर्युक्त परामर्श का विधेयतावच्छेदक प्रमेयवह्नित्व की भॉति वह्नित्व भी, जो प्रमेयवह्नित्व का घटक हे, होता है''←इसलिए लिए निराधार हे कि हमने कारणतावच्छेदकसम्बन्धविधया विधेयतावच्छेदकता का ग्रहण किया नही ह किन्तु विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति का ग्रहण किया है। 'पर्वत प्रमेयवह्निव्याप्यवान्' इत्याकारक परामर्श की विधेयता की, जो प्रमेयवह्नि मे रहती है, अवच्छेदकता की पर्याप्ति वह्नित्व मे नही हे किन्तु प्रमेयवह्नित्व मे है। निरुक्त परामर्श की विधेयतावच्छेदकता प्रमेयवह्नित्व मे पर्याप्त होने से 'पर्वत प्रमेयवह्निव्याप्यधूमवान्' यह परामर्श भी विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्वन्ध से प्रमेयवह्नित्व मे रहेगा न कि वह्नित्व मे। 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति, जो शुद्धवह्नित्व मे पर्याप्त विधेयतावच्छेदकता का अवगाहन करती हे, का विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्वन्ध से प्रमेयवह्नित्व अधिकरण होता नही है किन्तु वह्नित्व होता है। इस तरह कार्यतावच्छेदकसम्वन्ध से कार्याधिकरणविधया अभिमत मे कारणतावच्छेदकसम्वन्ध से कारण नही होने से 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धवह्नित्वपर्याप्त-विधेयतावच्छेदकतानिरूपक अनुमिति की आपत्ति को अवकाश नही है। इसलिए यहाँ यह शका कि → 'वह्नित्व मे पर्याप्त विधेयतावच्छेदकता के निरूपक नही ऐसे भी 'पर्वत प्रमेयवह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से भी दहनानुमिति की उत्पत्ति होने से व्यतिरेक व्यभिचार होगा'←भी निरस्त हो जाती है, क्योकि वह्नित्वपर्याप्तविधेयतावच्छेदकताशून्य ऐसे 'पर्वत प्रमेयवह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से होनेवाली अनुमिति से निरूपित विधेयतावच्छेदकता शुद्धवह्नित्व मे पर्याप्त नही है किन्तु प्रमेयवह्नित्व मे ही पर्याप्त हे। तादृश परामर्श से होनेवाली अनुमिति तो 'पर्वत प्रमेयवह्निमान्' इत्याकारक ही होती है, न कि 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक - यह तो अनुभवसिद्ध हे। इसलिए व्यतिरेक व्यभिचार दोष को अवकाश नही है-यह फलित होता हे।

यहाँ इस शङ्का को कि→''जब किसी व्यक्ति को 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श होता हे उसके पूर्व मे महानसीय वह्नि मे धूम की व्याप्ति को ग्रहण करने से महानसीय वह्नि की उपस्थिति लघु होने से लाघवज्ञान के सहकार से महानसीयवह्नित्वेन पर्वत मे अनुमिति होगी। जिस वह्नि मे व्याप्ति का ज्ञान हुआ है उसीकी स्मृति = उपस्थिति झटिति हो सकती है। पर्वतीय वह्नि का तो अभी तक अनुभव ही हुआ नही है। इसलिए उसकी उपस्थिति की कल्पना करने मे गोरव है। अदृष्ट की कल्पना और दृष्ट का परित्याग करना नामुनासिव है। इस परिस्थिति मे उपस्थित महानसीयवह्नित्व मे ही विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्वन्ध से अनुमिति होगी। मगर 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श महानसीयवह्नित्व मे विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्वन्ध से रहता नही हे किन्तु शुद्ध वह्नित्व मे ही रहता हे। मतलव कि कारणतावच्छेदकसम्वन्ध से कारण के अनधिकरण मे कार्यतावच्छेदकसम्वन्ध से कार्य का जन्म होने से व्यतिरेक व्यभिचार प्रसक्त होगा'←अवकाश रहता नही है, क्योकि व्यापकतावच्छेदकधर्म के पुरस्कार से ही अनुमिति की उत्पत्ति होती हे। धूमत्वावच्छिन्न व्याप्यता से निरूपित व्यापकता का अवच्छेदक महानसीयवह्नित्व नही है किन्तु वह्नित्व ही हे। वह्नि मे वह्नित्वेन ही धूमव्यापकता होने से 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इस परामर्श के अनन्तर लाघवसहकार से भी महानसीयवह्नित्वेन

वह्नित्वेऽपर्याप्ततया तदुत्पत्तेर्व्यभिचारः। 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् पर्वते महानसीयवह्निकल्पने लाघवमित्यादिज्ञानसहकृतात् महानसीयवह्नित्वेन वह्न्यनुमितिस्तु नाभ्युपेयते, व्यापकतावच्छेदकरूपेणैवानुमित्युपगमात्। न च 'वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् 'पर्वतो न वह्निमानि'ति बाधकालेऽनुमित्यापत्तिः, विधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकज्ञानं प्रति पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावप्रकारतानिरूपितप्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितावच्छेदकत्वाख्यविषयतासम्बन्धेन

◆ हेमलता ◆

तदुत्पत्तेः = 'पर्वतः प्रमेयवह्निमान्' इत्यनुमित्युत्पादात् व्यभिचारः = व्यतिरेकव्यभिचारः, कुतः ? उच्यते 'पर्वतो प्रमेयवह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शीयविधेयतावच्छेदकताया वह्नित्वेऽपर्याप्ततया = शुद्धे वह्नित्वे पर्याप्तिसम्बन्धेन विरहेण। हेत्वर्थे तृतीया ज्ञेया। 'पर्वतः प्रमेयवह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शीयविधेयतावच्छेदकतायाः पर्याप्तिः प्रमेयवह्नित्वे एव न तु शुद्धवह्नित्वे इति 'पर्वतः प्रमेयवह्निमान्' इत्यनुमितिरपि विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन प्रमेयवह्नित्व एव जायते न तु शुद्धवह्नित्वे इति न व्यभिचार इत्यभिसन्धिः।

ननु महानसे प्रथमं धूमे महानसीयवह्निनिरूपिताया व्याप्तेः गृहीतत्वेन वह्निव्याप्यधूमप्रकारक-पर्वतविशेष्यकपरामर्शादपि पर्वते महानसीयवह्नित्वेनैवानुमितिः भवितुमर्हति उपस्थितिकृतलाघवात्। ततश्च व्यतिरेकव्यभिचारस्य दुर्वारत्वम्, 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शस्य विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन शुद्धवह्नित्वे एव सत्त्वेन महानसीयवह्नित्वे विरहात् विधेयतावच्छेदकत्वपर्याप्तिसम्बन्धेन तादृशानुमितिस्तु महानसीयवह्नित्वे जायते इत्याशङ्कामपाकर्तुमुपक्षिपन्ति- पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् 'पर्वते महानसीयवह्निकल्पने लाघवं = व्याप्तिस्मरणलक्षणोपस्थितिकृतलाघवं' इत्यादिज्ञानसहकृतात् महानसीयवह्नित्वेन रूपेण वह्न्यनुमितिः ='पर्वतो महानसीयवह्निमानि'त्यनुमितिः तु विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन महानसीयवह्नित्वे नाभ्युपेयते। कुतः ? उच्यते व्यापकतावच्छेदकरूपेणैव अनुमित्युपगमात् न तु व्याप्यतावच्छेदकरूपेणापि। धूमत्वावच्छिन्नव्याप्यतानिरूपितव्यापकतावच्छेदकत्वं तु वह्नित्वस्यैव न तु महानसीयवह्नित्वस्य। ततः शुद्धवह्नित्वस्यैवानुमितिनिरूपितविधेयतावच्छेदकत्वसम्भवः, व्यापकतावच्छेदकतया गृहीतधर्मस्यैवानुमितिविधेयतावच्छेदकत्वनियमात्। ततश्च विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन पर्वतविशेष्यक - वह्निव्याप्यधूमप्रकारकपरामर्शाधिकरणीभूतस्य शुद्धवह्नित्वस्यैव विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमित्यधिकरणत्वान्न व्यतिरेकव्यभिचार इति गुरुचरणानामाकूतम्।

ननु विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनानुमितिपरामर्शयो जन्यजनकभावोपगमे तु 'पर्वतो न वह्निमानि'तिबाधदशायामपि 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इति परामर्शात् विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन वह्नित्वे 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वम्, विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति कारणीभूतस्य परामर्शस्य वह्नित्वे विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन सत्त्वात्। न चानुमितित्वावच्छिन्नं 'पर्वतो न वह्निमान्' इति बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वमिति शङ्कनीयम् तादृशबाधनिश्चयदशायां 'महानसं वह्निव्याप्यधूमवदि'ति परामर्शात् 'महानसं वह्निमदि'त्यनुमितेः विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन वह्नित्वे उत्पत्तेः सर्वानुभवसिद्धत्वात्। न च विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकानुमितित्वस्य 'पर्वतो न वह्निमानि'ति बाधनिश्चयप्रतिबध्यतावच्छेदकत्वान्नायं दोष इति वक्तव्यम् तथापि पर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकानुमितित्वस्य परामर्शसामान्यकार्यतानवच्छेदकत्वेन विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन वह्नित्वे 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितेः दुर्वारत्वादित्याशङ्कामपाकर्तुमुपक्षिपन्ति न चेति। शङ्काग्रन्थोऽवतरणिकायां विभावित एव। तद्व्यपोहे हेतुमाविष्कुर्वन्ति-विधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकज्ञानं = पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपकज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रति पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावप्रकारतानिरूपितप्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितावच्छेदकत्वाख्यविषयतासम्बन्धेन = पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिता याऽभावत्वावच्छिन्नप्रकारता तदवच्छिन्ना तदभिन्ना वा याऽभावत्वावच्छिन्नविशेष्यता तन्निरूपिता या प्रतियोगितानिरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्ना वह्निप्रभृतिनिष्ठा प्रकारता तन्निरूपिता या वह्नित्वादिनिष्ठाऽवच्छेदकता तदात्मकविषयतासंसर्गेण ज्ञानस्य

► वल्लभा ◄

विधेयतावगाही अनुमिति नहीं होगी किन्तु वह्नित्वेन ही विधेयता का अवगाहन करनेवाली अनुमिति का जन्म होगा। अर्थात् विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्ध से वह्नित्व में ही 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का जन्म होगा और विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से वह्नित्व में 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' यह परामर्श भी रहता ही है। इसलिए व्यतिरेक व्यभिचार को अवकाश नहीं है - यह फलित होता है।

◆☆ बाधज्ञान अनुमितिविशेष का प्रतिबन्धक—गुरुचरणमत ◇★

न च व०। यहाँ इस शङ्का का कि→"जब किसीको 'पर्वतो न वह्निमान्' इत्याकारक बाधनिश्चय होता है तब भी 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' यह तत्समकालीन परामर्श विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से वह्नित्व में रहने से विधेयतावच्छेदकतापर्याप्ति सम्बन्ध से वह्नित्व में 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति की आपत्ति आयेगी। कारण के रहने पर कार्य का जन्म होना न्यायप्राप्त है"←समाधान यह है कि विधेयतावच्छेदकसम्बन्ध से पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक ज्ञान के प्रति स्वनिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावप्रकारताऽवच्छि-

ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वादि''त्याहु ।

अत्रेदमवधेयम्-पर्वते वह्निव्याप्यवत्तापरामर्शाद्बाधाभावबलेन पर्वतविशेष्यिकेव चत्वरविशेष्यिकाऽप्यनुमितिः स्यादिति तद्वारणाय

◆ हेमलता ◆

प्रतिबन्धकत्वात् = प्रतिबन्धकत्वस्वीकारात्। अय भावः विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन वह्नित्वे जायमानायाः 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितेः पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकज्ञानत्वलक्षणप्रतिबध्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वेन ता प्रति 'पर्वतो न वह्निमानि'ति बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्व, वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपकाभावप्रकारतानिरूपक-पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकज्ञानस्य स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावत्वावच्छिन्नप्रकारतावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितप्रतियोगितानिरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नवह्निनिष्ठप्रकारतानिरूपितावच्छेदकत्वलक्षणविषयत्वससर्गेण वह्नित्वे सत्त्वात्। न च पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकज्ञानत्वस्य परामर्शत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताया अवच्छेदकत्वात् विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनानुमितित्वस्य च निरुक्तबाधनिष्ठप्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यताया अनवच्छेदकत्वान्न 'पर्वतो न वह्निमानि'ति बाधसमकालीनात् 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शात् दहनानुमितिप्रतिरोधः सम्भवतीति वाच्यम् व्याप्यधर्मावच्छिन्नोत्पत्तावशेषव्यापकधर्मावच्छिन्नोत्पादकसामग्र्या अपेक्षितत्वेन 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितित्वस्य पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकज्ञानत्वव्यापकतया तदवच्छिन्नोत्पादकसामग्रीमध्ये पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावनिष्ठप्रकारतावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितावच्छेदकताभिधानविषयत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकज्ञानाभावस्य प्रविष्टत्वेन 'पर्वतो न वह्निमानि'ति बाधकाले तस्याभावेन विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन वह्नित्वे 'पर्वतो वह्निमानि'त्यापत्तेरयोगात्। न हि प्रतिबन्धकसत्त्वे कार्यं भवितुमर्हति। 'पर्वतो न घटवानि'ति ज्ञानसमकालीनात् 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शान्न 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्यसम्भवो निरुक्तसम्बन्धेन बाधज्ञानस्य वह्नित्वे विरहात्। इत्थञ्च समानविधेयतावच्छेदकताप्रत्यासत्त्या परामर्शानुमित्योः सामान्यतो हेतु-हेतुमद्भावान्न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरिति गुरुचरणाभिसन्धिः।

ननु गुरुचरणामते यथाऽनुमितिपरामर्शयोः समानविधेयतावच्छेदकताप्रत्यासत्त्या सामान्यतो जन्यजनकभावस्तथा समानविशेष्यतावच्छेदकताप्रत्यासत्त्यापि तयोः कार्यकारणभावस्यावश्यकल्पनीयत्वम् अन्यथा 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शात् विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन वह्नित्वे 'चत्वरो वह्निमानि'त्यनुमित्यापत्तेरपि दुर्वारत्वमित्याशयेन प्रकरणकृदाह-अत्रेदमवधेयमिति। पर्वते वह्निव्याप्यवत्तापरामर्शात् = विधेयतावच्छेदकपर्याप्तिसम्बन्धेन वह्नित्वे 'पर्वतो वह्निव्याप्यवानि'तिपरामर्शमाश्रित्य बाधाभावबलेन = वह्नित्वे स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावनिष्ठप्रकारताऽवच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-प्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितावच्छेदकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक-ज्ञानाभावलक्षणस्य प्रतिबन्धकाभावस्य=बाधाभावस्य बलेन वह्नित्वे विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेन पर्वतविशेष्यिका ='पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारिका इव 'चत्वरो वह्निमानि'त्याकारिका चत्वरविशेष्यिकाऽपि अनुमिति स्यात्, कार्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन कार्याधिकरणविधयाभिमते कारणतावच्छेदकतासम्बन्धेन कारणस्य प्रतिबन्धकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य प्रतिबन्धकाभावस्य च सत्त्वे कार्योदयस्य न्याय्यत्वात् इति हेतोः तद्वारणाय =

► वल्लभा ◄

न्न (अभिन्न)विशेष्यतानिरूपितप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितावच्छेदकत्वनामक विषयतासम्बन्ध से ज्ञान प्रतिबन्धक होता है। 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताक ज्ञानात्मक होने से प्रतिबध्यतावच्छेदकाक्रान्त है और वह वह्निविधेयक होने की वजह विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्ध से शुद्ध वह्नित्व मे रहती है । 'पर्वतो न वह्निमान्' यह बाधनिश्चय पर्वतविशेष्यक एव वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रकारताक है । अभाव मे वह्नि स्वप्रतियोगिताकत्वसम्बन्ध से रहता है, क्योकि वह अभाव वह्निप्रतियोगिताक है। अभाव पर्वत की अपेक्षा प्रकार है और वह्नि की अपेक्षा विशेष्य। अत अभाव मे एक ही ज्ञान की प्रकारता एव विशेष्यता रहेगी। एक ज्ञानीय समानाधिकरण विषयता परस्पर अवच्छिन्न या अभिन्न होती है। वह्नि अभाव मे स्वप्रतियोगितानिरूपकत्व सम्बन्ध से रहने से वह्नि मे रहनेवाली अभावीय प्रकारता प्रतियोगितानिरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्न होगी जिसका अवच्छेदक धर्म है वह्नित्व । अत 'पर्वतो न वह्निमान्' यह निश्चय स्वनिरूपित-पर्वतत्वावच्छिन्न-विशेष्यतानिरूपिताभावनिष्ठप्रकारताऽभिन्न(या अवच्छिन्न)विशेष्यतानिरूपितप्रतियोगितानिरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्न पकारता से निरूपित अवच्छेदकत्वनामक विधेयतासम्बन्ध से वह्नित्व मे रहेगा। कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध से कार्याधिकरणविधया अभिमत मे प्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्ध से प्रतिबन्धक रहने पर कार्य का जन्म हो नही सकता, क्योकि प्रतिबन्धकाभाव भी कार्यजनक होने से सामग्रीप्रविष्ट होता है। अत 'पर्वतो न वह्निमान्' इत्याकारक बाधकालीन 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति के उदय की आपत्ति की कोई शक्यता रहती नही है।

► गुरुचरणमत मे कल्पनागौरव ◄

अत्रेदम०। यहाँ पकरणकार श्रीमद् का यह कथन है कि निरुक्त गुरुचरणमत मे यह बात ध्यातव्य है कि-->जब किसीको

विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनापि परामर्शस्य पृथक्कारणता वाच्या ।

विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निविधेयकानुमितिं प्रति च वह्नित्वविषयतावच्छिन्नावच्छिन्नत्वविषयतावच्छिन्नप्रतियोगित्वविषयतानिरूपिताभावविषयतानिरूपितविशेषणतासंसर्गावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितावच्छेदकत्वाख्यविषयतासम्बन्धेन ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वं,

◆ हेमलता ◆

पर्वतविशेष्यकधूमपरामर्शाच्चत्वरविशेष्यकानुमितिनिरासकरणकृते विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन = स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतानिरूपितावच्छेदकत्वाख्यविषयतासम्बन्धेन अपि किमुत विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनेत्यपिशब्दार्थः, परामर्शस्य =व्याप्यत्वावगाहिनिश्चयस्य पृथक्कारणता = स्वातन्त्र्येण हेतुता वाच्या = अवश्यकल्पनीया। स्वनिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वे विद्यमानस्य 'पर्वतो वह्निव्याप्यवानि'ति परामर्शस्य तेन सम्बन्धेन चत्वरत्वे विरहान्न चत्वरे स्वीयविशेष्यतावच्छेदकत्वसम्बन्धेन 'चत्वरो वह्निमानि'ति चत्वरविशेष्यकवह्निविधेयकानुमितिप्रसङ्गः, कारणान्तरविरहे कार्योदयासम्भवात्, 'सामग्री वै कार्यजनिका न त्वेकं कारणमि'त्यभियुक्तोक्तेः।

ननु समानविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनानुमितिपरामर्शयोः कार्यकारणभावे तु 'पर्वतो न वह्निमान्' इति बाधदशायामपि 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् स्वनिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वे 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वम्, स्वनिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनानुमितिं प्रति कारणीभूतस्य परामर्शस्य पर्वतत्वे विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन सत्त्वात्। न च पर्वतविशेष्यकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति 'पर्वतो न वह्निमानि'ति ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वान्नाय दोष इति वक्तव्यम्, तादृशनिश्चयदशायामपि 'पर्वतो घटव्याप्यवानि'ति परामर्शात् 'पर्वतो घटवानि'त्यनुमितेः पर्वतविशेष्यिकाया मार्जनीनत्वात् । एतेन विशेष्यतावच्छेदकतया वह्निविधेयकानुमितिं प्रति वह्न्यभावप्रकारक-पर्वतविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वमित्यपि प्रत्युक्तम् 'वह्न्यभाववान् ह्रदः पर्वतश्चे'तिज्ञानस्यापि तत्प्रतिबन्धकत्वापत्तेः। न च वह्न्यभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वमिति वाच्यम् 'पर्वतः कालिकेन वह्न्यभाववानि'ति ज्ञानस्यापि तत्प्रतिबन्धकत्वापत्तेः। न च वह्न्यभावनिष्ठविषयतानिरूपितविशेषणतासंसर्गावच्छिन्नविशेष्यतावच्छेदकत्वसम्बन्धेन ज्ञानस्य तत्प्रतिबन्धकत्वमित्युद्भावनीयम्, तथापि द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवह्न्यभावप्रकारताकपर्वतविशेष्यकज्ञानस्य तत्प्रतिबन्धकत्वापत्तेः। ततश्च विशेष्यतावच्छेदकत्वसम्बन्धेन = स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतानिरूपितावच्छेदकताख्यविषयतासंसर्गेण वह्निविधेयकानुमितिं = वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति च वह्नित्वविषयतावच्छिन्नावच्छिन्नत्वविषयतावच्छिन्नप्रतियोगित्वविषयतानिरूपिताभावविषयतानिरूपितविशेषणतासंसर्गावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितावच्छेदकत्वाख्यविषयतासम्बन्धेन ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वं स्वीकर्तव्यम्। तथाहि 'पर्वतो न वह्निमान्' इत्यस्य वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपकाभावप्रकारतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकत्वेन वह्नित्वेऽवच्छिन्नत्वे प्रतियोगितायामभावे पर्वते पर्वतत्वे च विषयता वर्तते। अतः वह्नित्वनिष्ठविषयतया निरूपिता विषयताऽवच्छिन्नत्वे भासते तच्च प्रतियोगितायां भासते सा चाभावे स च पर्वते स च पर्वतत्वे। ततः वह्नित्वनिष्ठविषयतयाऽवच्छिन्नत्वनिष्ठविषयताऽवच्छिद्यते। अवच्छिन्नत्वनिष्ठविषयतया च प्रतियोगितानिष्ठविषयताऽवच्छिद्यते। प्रतियोगितानिष्ठविषयतया चाऽभावनिष्ठविषयताऽवच्छिद्यते।

▶ वल्लभा ◀

'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श होता है वह विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्ध से वह्नित्व में रहता है जिससे जैसे पर्वतविशेष्यक अनुमिति होती है ठीक वैसे ही चत्वरविशेष्यक अनुमिति भी होने लगेगी, क्योंकि विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्ध से चत्वरत्वावच्छिन्नविशेष्यतादिस्वरूप निरुक्तविषयता सम्बन्ध से बाधज्ञान रहता नहीं है और पर्वतविशेष्यक धूमपरामर्श विधेयतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्ध से वह्नित्व में रहता है। मगर पर्वतविशेष्यक धूमपरामर्श से कभी भी चत्वरविशेष्यक दहनानुमिति नहीं होती है। अतः उसके वारणार्थ विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से अनुमिति के प्रति विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से परामर्श को कारण मानना पड़ेगा। 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से पर्वतत्व में रहता है न कि चत्वरत्व में। अतः विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से चत्वरत्व में 'चत्वरो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का अवकाश नहीं रहेगा। कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध से कार्याधिकरणविधया अभिमत में कारणतावच्छेदकसम्बन्ध से कारण न रहने पर कार्य का उदय कैसे हो सकता है?

विशे० इति। यहाँ इस बात पर ध्यान रखना जरूरी है कि विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से वह्निविधेयक अनुमिति के प्रति जैसे विशेष्यतावच्छेदकता सम्बन्ध से परामर्श कारण होता है वैसे विषयताविशेषसम्बन्ध से 'पर्वतो न वह्निमान्' यह बाधनिश्चय प्रतिबन्धक होता है। 'पर्वतो न वह्निमान्' इस ज्ञान में पर्वत विशेष्य है और वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव विशेषण है। वह्नित्व में रहनेवाली विषयता का अवच्छिन्नत्ववृत्ति विषयता में प्रकारविधया भान होता है, अवच्छिन्नत्ववृत्ति विषयता का प्रतियोगितावृत्ति विषयता में भान होता है, प्रतियोगितानिष्ठ विषयता का अभाववृत्ति विषयता में भान होता है। अर्थात् वह्नित्ववृत्तिविषयता से विशिष्ट=अवच्छिन्न होगी अवच्छिन्नत्वनिष्ठ विषयता और उससे अवच्छिन्न=विशिष्ट होगी प्रतियोगितावृत्ति विषयता एवं उससे विशिष्ट=अवच्छिन्न होगी अभावनिष्ठ

नातः 'पर्वतो न वह्निमानि'ति बाधकाले पर्वतत्वे विशेष्यतावच्छेदकतयाऽनुमित्यापत्तिः।

विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतविशेष्यकज्ञान प्रति च पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावप्रकारतानिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेन ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वान्न 'पर्वतो न नील' इति बाधकाले नीलपर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यता(वच्छेदकता) कपरामर्शात्तादृशानुमित्युत्पत्तिरिति।

◆ हेमलता ◆

तादृशाभावस्य पर्वते दैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन वर्तमानतया पर्वतनिष्ठदैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्ना विशेष्यता अभावनिष्ठविषयतयाऽवच्छिद्यते। पर्वतत्वनिष्ठाऽवच्छेदकत्वाभिधानविषयता पर्वतनिष्ठविशेष्यतयाऽवच्छिद्यते। प्रकृतेऽवच्छिन्नत्व निरूपितत्वार्थे बोध्यम्। न अत 'पर्वतो न वह्निमान्' इति बाधकाले तस्य ज्ञानस्य स्वनिरूपितवह्नित्वनिष्ठविषयताऽवच्छिन्नत्वनिष्ठविषयताऽवच्छिन्नप्रतियोगितानिष्ठविषयताऽवच्छिन्नाऽभावनिष्ठविषयताऽव- च्छिन्नदैशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्नपर्वतनिष्ठविशेष्यताऽवच्छिन्नपर्वतत्वनिष्ठावच्छेदकत्वाभिधानविषयतासंसर्गेण पर्वतत्वे सत्त्वदशाया न नत्र विशेष्यतावच्छेदकतया = स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतानिरूपितावच्छेदकत्वाख्यविषयतासम्बन्धेन अनुमित्यापत्ति = 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिप्रसङ्गः। ज्ञाननिष्ठप्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्धविधया प्रकृते स्वनिष्ठप्रकारितानिरूपितवह्नित्वनिष्ठप्रकारताख्यविषयतानिरूपितावच्छिन्नत्वनिष्ठविशेष्यताऽवच्छिन्नप्रकारताभिधानविषयतानिरूपितप्रतियोगित्वनिष्ठविशेष्यताऽवच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावनिष्ठविशेष्यताऽवच्छिन्नप्रकारतानिरूपित-दैशिकविशेषणताविशेषावच्छिन्नपर्वतनिष्ठविशेष्यतानिरूपितावच्छेदकताभिधानविषयतासम्बन्धस्याऽपि ग्रहण सम्भवति, एकज्ञानीयसमानाधिकरणविषयताना परस्परमवच्छेद्यावच्छेदकभावोपगमात्। यदि चावच्छिन्नत्वस्यात्र निरूपितत्वसम्बन्धेन वैशिष्ट्यपरत्व विवक्ष्यते तदा विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निविधेयताकानुमिति प्रति स्वनिष्ठप्रकारितानिरूपितवह्नित्वनिष्ठप्रकारताख्यविषयताविशिष्टावच्छिन्नत्वनिष्ठविशेष्यताऽवच्छिन्नप्रकारताविशिष्टप्रतियोगित्वनिष्ठविशेष्यताऽवच्छिन्नप्रकारताख्यविषयताविशिष्टाभावत्वावच्छिन्नविशेष्यताऽवच्छिन्नप्रकारताऽवच्छिन्न-दशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्नविशेष्यताऽवच्छिन्नप्रकारताविशिष्टावच्छेदकत्वाख्यविशेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वमिति भावनीयमभ्यस्तन्यायशास्त्रैः।

ननु तथापि 'पर्वतो न नील' इत्याश्रयासिद्धिदशाया 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकसम्बन्धेन नीलपर्वतत्वे 'नीलपर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्यापत्तेर्दुर्वारत्वम् स्वनिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतया परामर्शस्य तत्र सत्त्वादित्याशङ्कायामाह- विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन = स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतानिरूपितावच्छेदकत्वनिरूपितपर्याप्तिसंसर्गेण, पर्वतविशेष्यकज्ञान प्रति च पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावप्रकारतानिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेन = पर्वतत्वावच्छिन्नमुख्यविशेष्यतानिरूपिताभावत्वावच्छिन्नप्रकारताऽवच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-प्रतियोगितानिरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताख्यविषयतासंसर्गेण ज्ञानस्य = ज्ञानत्वावच्छिन्नस्य प्रतिबन्धकत्वात् = प्रतिबन्धकत्वस्यावश्यकल्पनीयत्वात् न 'पर्वतो न नील' इति बाधकाले = पक्षतावच्छेदकाभावप्रकारकनिश्चयदशाया 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'त्याकारकात् नीलपर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताकपरामर्शात् तादृशानुमित्यापत्ति = 'नीलपर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्युत्पाद्यापत्तिः,

▶ वल्लभा ◀

विषयता। तथा यह अभाव देशिकविशेषणताविशेषसम्बन्ध से पर्वत मे रहने से पर्वत मे रहनेवाली विशेष्यता देशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्न होगी और निरुक्त अभावनिष्ठप्रकारताख्य विषयता से वह निरूपित होगी। पर्वत मे रहनेवाली विशेष्यता वह्नित्वनिष्ठविषयतावच्छिन्नअवच्छिन्नत्वनिष्ठविषयताऽवच्छिन्न-प्रतियोगितावृत्तिविषयताऽवच्छिन्न-अभावनिष्ठविषयतानिरूपितदशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्न होगी। तादृशविशेष्यता की अवच्छेदकता पर्वतत्व मे रहेगी। अत 'पर्वतो न वह्निमान्' यह ज्ञान स्वनिरूपितवह्निनिष्ठविषयत्वाऽवच्छिन्नावच्छिन्नत्वनिष्ठविषयत्वाऽवच्छिन्नप्रतियोगित्वनिष्ठविषयतानिरूपिताभावनिष्ठविषयतानिरूपित-देशिकविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितावच्छेदकत्वाभिधानविषयता सम्बन्ध से पर्वतत्व मे रहने से विशेष्यतावच्छेदकता सम्बन्ध से पर्वतत्व मे 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति उत्पन्न हो नही सकती। कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध से कार्याधिकरणविधया अभिमत मे प्रतिबन्धकतावच्छेदकतासम्बन्ध से प्रतिबन्धक के रहने पर कार्य का उदय हो नही सकता।

▶▶ आश्रयासिद्धिज्ञान भी अनुमितिप्रतिबन्धक ◀◀

विशे०। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से यानी स्वनिरूपितविशेष्यतावच्छेदकतापर्याप्तिसंसर्ग से पर्वतविशेष्यकज्ञान के प्रति पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावप्रकारतानिरूपितप्रतियोगिता(कत्व)सम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता सम्बन्ध से ज्ञान प्रतिबन्धक होता है। इसलिए तो 'पर्वतो न नील' ऐसा बाधज्ञान = आश्रयासिद्धिज्ञान होने पर 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिआकारक नीलपर्वतत्वपर्याप्तविशेष्यतावच्छेदकताकपरामर्श से 'नीलपर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति की उत्पत्ति की आपत्ति को अवकाश रहता नही है। आशय यह है कि 'पर्वतो न नील' इस ज्ञान मे पर्वत है विशेष्य, पर्वतत्व है विशेष्यतावच्छेदक, नीलत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकअभाव है प्रकार, अभाव मे प्रतियोगिताकत्वसम्बन्ध से नीलत्व भी प्रकार है। अत अभाव पर्वत की अपेक्षा विशेषण एव नीलत्व की अपेक्षा विशेष्य होगा। एकज्ञानीय

इदन्तु चिन्त्यम् - यत् 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् भूतलं घटव्याप्यसंयोगविशेषवदि'ति-समूहालम्बनपरामर्शात् 'पर्वतो

◆ हेमलता ◆

कार्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन कार्याधिकरणविधयाऽभिमते प्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतिबन्धकसत्त्वे कार्योदयाऽयोगात्। 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवा-नि'त्यत्र भवानन्दमतानुसारेण न केवलं नीलत्वस्य विशेष्यतावच्छेदकत्वे, नीलरूपवत उत्पलादेरपि पक्षत्वापत्तेः न वा केवलं पर्वतत्वस्य विशेष्यतावच्छेदकत्वे पीतादिपर्वतस्यापि पक्षत्वप्रसङ्गात्। न च नीलत्वविशिष्टपर्वतत्वस्य तथात्वमिति वक्तव्यम् विशेषणविशेष्यभावे विनिगमनाविरहेण पर्वतत्वविशिष्टनीलत्वादेरपि तत्त्वापातेन महागौरवात्। ततो नीलत्वे पर्वतत्वे तदुभयगतेऽपेक्षाबुद्धिविशेषविषयत्वरूपे द्वित्वे च विशेष्यतावच्छेदकताऽवश्यं स्वीकार्या। 'पर्वतो न नील' इतिज्ञाने पर्वतस्य विशेष्यत्वमभावस्य विशेषणत्वं तत्र च प्रतियोगितानिरूपकतासम्बन्धेन नीलत्वं विशेषणम्। ततः स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितपर्वत-त्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावनिष्ठविशेषणताऽवच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-प्रतियोगितानिरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतासम्बन्धेन ज्ञानस्य नीलत्वे सत्त्वान्न 'नीलपर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिः विशेष्यतावच्छेदकतापर्याप्तिसम्बन्धेनोत्पत्तुमर्हति।

केवलं पर्वतत्वे तु विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन 'पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितिस्तु 'पर्वतो न नील' इतिज्ञानदशायामपि 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शान्निराबाधा, कार्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन कार्याधिकरणविधयाऽभिमते पर्वतत्वे प्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतिबन्धकस्या-ऽसत्त्वात्, तस्य नीलत्वे एव प्रतिबन्धकतावच्छेदकसम्बन्धेन सत्त्वात्। एतेन 'पटो न नील' इतिनिश्चयदशायां 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शसत्त्वे तादृशानुमित्यनापत्तिरपि प्रत्युक्ता नीलत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतायाः पर्वतत्वानवच्छिन्नत्वेन विशेष्यतावच्छेदकतापर्या-प्तिसम्बन्धेन 'नीलपर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्याः प्रकरणे पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताभावनिष्ठप्रकारतावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-प्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताख्यविषयतासम्बन्धेन तादृशानुमितिप्रतिबन्धकस्य ज्ञानस्य विरहात्। न चैव कल्पनाया महागौरवमिति वक्तव्यम्, सिद्ध्यसिद्धिभ्यां व्याघातेन फलमुखस्य तस्यादोषत्वात्, अन्यथा शून्यवादिमतप्रवेशापातात्। इत्थञ्च न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरिति गुरुचरणमतपरि-ष्कारः, सापस्कारत्वात् महर्षिवचनानाम्।

साम्प्रतमान्वीक्षिकीविद्यापारगः प्रकरणकारः गुरुचरणमतमपहस्तयितुमुपक्रमते-इदन्तु चिन्त्यमिति। चिन्तावीजमेवाऽऽवेदयति-यदिति। निरुक्तपराम-र्शस्य स्वनिरूपितविधेयतावच्छेदकत्वसम्बन्धेन वह्नित्वे घटत्वे च सत्त्वात् स्वीयविधेयतावच्छेदकसम्बन्धेन आपाद्यमानाया अनुमितेरपि वह्निघटोभयविधेय-कत्वेन तत्रैव सत्त्वात्तादृशानुमित्यापत्तेः परिणेतुमशक्यत्वम्। एवं स्वनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकत्वसम्बन्धेन निरुक्तपरामर्शस्य पर्वतत्वे भूतलत्वे च सत्त्वात् स्वीयविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनापाद्यमानाया अनुमितेरपि पर्वतभूतलोभयोद्देश्यकत्वेन तत्रैव सत्त्वात्तादृशानुमित्यापादनं द्रष्टव्यम्।

▶ वल्लभा ◀

समानाधिकरण विषयता परस्पर अवच्छिन्न होती है। अतः पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यता से निरूपित अभावनिष्ठप्रकारता से अवच्छिन्न विशेष्यता से निरूपित प्रतियोगिकत्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता नीलत्व में रहेगी। अतः 'पर्वतो न नील' यह ज्ञान स्वनिष्ठपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-प्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता सम्बन्ध से नीलत्व में रहेगा और वहाँ विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से होनेवाली 'नीलपर्वतो वह्निमान्' इस अनुमिति का प्रतिरोध करेगा, भले ही विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से नीलत्व में 'नीलपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' यह परामर्श रहे। प्रस्तुत परामर्श में विशेष्यतावच्छेदक नीलत्व यानी नीलरूप है-इस बात का ख्याल में रखना जरूरी है। इस तरह प्रस्तुत विचारविमर्श से यह फलित होता है कि कार्यतावच्छेदक में धूमलिङ्गकत्वादि का निवेश नहीं होने से लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि नामुमकिन है। यह गुरुचरणमत का तात्पर्य है।

▲△ गुरुचरणमतनिराकरण ▲△

इदन्तु चि०। मगर प्रकरणकार श्रीमद्जी का गुरुचरणमत के खिलाफ यह मन्तव्य है कि निदर्शित मत चिन्तनीय है। प्रस्तुत में विचारणीय यह है कि गुरुचरणमत के अनुसार कार्य-कारणभाव का स्वीकार करने पर भी 'पर्वत वह्निव्याप्यधूमवान् भूतल घटव्याप्यसंयोगविशेषवत्' इत्याकारक समूहालम्बनात्मक परामर्श, जो अनेकविध मुख्य विशेष्यता का अवगाहन करता है, के उत्तर क्षण में 'पर्वत घटवान् भूतल वह्निमत्' इत्याकारक अनुमिति होने की आपत्ति आयेगी। इसका कारण यह है कि दर्शित परामर्श विधेयतावच्छेदकतासम्बन्ध से वह्नित्व और घटत्व में रहता है तथा विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से पर्वतत्व और भूतलत्व में रहता है एवं आपाद्यमान अनुमिति भी विधेयतावच्छेदकतासम्बन्ध से वह्नित्व और घटत्व में रहेगी तथा विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से पर्वतत्व और भूतलत्व में रहेगी जिससे कार्य-कारण में सामानाधिकरण्य अबाधित रहता है। गुरुचरणमतानुसार अनुमिति-परामर्श के बीच सामान्यतः दर्शित कार्यकारणभाव का स्वीकार, उक्त आपत्ति की वजह, नहीं किया जा सकता।

घटवान् भूतल वह्निमदि'त्यनुमित्यापत्तिः। न च पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व परामर्श-कार्यतानवच्छेदकमिति न तदवच्छिन्नापत्तिः, सिद्ध्यभावादिकार्यतावच्छेदकत्वात् तस्य।

अथानुमिताविव परामर्शेऽपि पक्षसाध्ययोरुद्देश्यविधेयभावस्य प्रामाणिकत्वे पर्वतत्वाद्यवच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छे-

◆ हेमलता ◆

तत॰ सामान्यतोऽनुमितिपरामर्शयोः निरुक्तसमानावच्छेदकत्वप्रत्यासत्त्या कार्यकारणभावपुरस्कारेण लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानाऽसिद्धिकरणेऽपि प्रकृतापत्तेर्दुर्वारत्वादजा निष्काशयतः क्रमेलकापात इति प्रकरणकृत्तात्पर्यम्।

न चेति। न तदवच्छिन्नापत्तिरित्यनेनास्यान्वयः। पर्वतत्वेत्याद्युपलक्षण भूतलत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व-स्यापि। परामर्शकार्यतानवच्छेदक = निरुक्तनानामुख्यविशेष्यताशालिपरामर्शनिष्ठकारणतानिरूपितकार्यतानिरूपितावच्छेदकत्वशून्य इति हेतोः न तदवच्छिन्नापत्ति न पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपकानुमितित्वावच्छिन्नस्य भूतलत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितघट-त्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपकानुमितित्वावच्छिन्नस्य च प्रसङ्गः। न हि स्वकार्यतानवच्छदेकावच्छिन्न स्वेनापादयितु शक्यते इति शङ्काकृदभिप्रायः।

प्रकरणकृत्तन्निरासे हेतुमाह- सिद्ध्यभावादिकार्यतावच्छेदकत्वात् तस्य = पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्य भूतलत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्य च। अय समाधानाशयः सिद्धेरनुमितिप्रतिवन्धकत्वादनुमितित्वावच्छिन्न-सिद्धिप्रतियोगिकाभावस्य कारणत्वम्। ततः पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितघट-त्वावच्छिन्नप्रकारताकनिश्चयाभावस्य कार्यतावच्छेदक भूतल- त्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारताकनिश्चयाभावस्य कार्यतावच्छेदक भूतलत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारताकनिश्चयाभावस्य जन्यतावच्छेदकञ्च भूतलत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेय-ताकानुमितित्वम्। निरुक्तप्रतिवन्धकाऽभावसत्त्वात् प्रदर्शितपरामर्शस्याऽपि कार्याधिकरणविधयाऽभिमते सत्त्वात् 'पर्वतो घटवान् भूतल वह्निमदि'तिसमूहाल-म्वनानुमित्यापत्तेर्वज्रलेपायितत्वमिति प्रकरणकृत आशयः।

गुरुचरणमतानुयायी शङ्कते-अथेति। चेदित्यनेनास्यान्वय॰। अनुमितो इव परामर्शेऽपि पक्षसाध्ययो उद्देश्यविधेयभावस्य प्रामाणिकत्वे स्वीक्रियमाणे

▶ वल्लभा ◀

न च प०। यहाँ यह वक्तव्य कि—›'उक्त परामर्श का कार्यतावच्छेदक पर्वतत्वावच्छिन्नउद्देश्यतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व नही हे। आपने जिस अनुमिति का आपादन किया हे वह पर्वतत्वावच्छिन्न उद्देश्यता से निरूपित घटत्वावच्छिन्न विधेयता की निरूपक हे, क्योकि उसमे पर्वत को उद्देश्य बना कर घट का विधान किया जाता है। जो विवक्षित कारण की कार्यता के अवच्छेदक धर्म से अनाक्रान्त हो उसका आपादन विवक्षित कारण के वल मे केसे हो सकता है? अपने कार्यतावच्छेदक धर्म से विशिष्ट का ही आपादन अपनी उपस्थिति मे किया जा सकता है'←—नामुनासिव होने का कारण यह है कि पर्वतत्वाच्छिन्नउद्देश्यतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपक अनुमितित्व भले ही उपर्युक्त समूहालम्वनात्मक परामर्श का कार्यतावच्छेदक न हो लेकिन पर्वत मे घट का अवगाहन करनेवाली सिद्धि=निश्चय के, जो पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-घटत्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपक हे, अभाव का कार्यतावच्छेदक तो हे ही, क्योकि तादृशसिद्धि उपदर्शित कार्यतावच्छेदक धर्म से विशिष्ट अनुमिति की प्रतिवन्धक हे। उपर्युक्त सिद्धि का अभाव विद्यमान होने से प्रोक्त परामर्श के होने पर उपदर्शित अनुमिति का उदय भी होने लगेगा, जो किसीको मान्य नही है। इसलिए गुरुचरणमत अश्रद्धेय हे।

शङ्का :- अथा०। अनुमिति की भॉति परामर्श मे भी पक्ष ओर साध्य के वीच उद्देश्यविधेयभाव को प्रामाणिक माना जाय तव तो कार्यतावच्छेदकसम्वन्धविधया ओर कारणताच्छेदकसम्वन्धविधया पर्वतत्वावच्छिन्नउद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकता का ही ग्रहण किया जा सकता है। जैसे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' यह परामर्श पर्वत को उद्देश्य बना कर वह्नि का विधान करने से पर्वतत्वावच्छिन्न उद्देश्यता से निरूपित विधेयता की, जो वह्नि मे रहती है, अवच्छेदकता का वह्नित्व मे अवगाहन करता हे। अतएव तादृशविधेयतावच्छेदकतासम्वन्ध से वह परामर्श वह्नित्व मे रह कर वहाँ पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्वन्ध से 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति को उत्पन्न करता हे, क्योकि वह अनुमिति भी पर्वत के उद्देश से वह्नि का विधान करती हे। इस कार्यकारणभाव का स्वीकार करने पर 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् भूतल घटव्याप्यसयोगविशेषवत्' इत्याकारक समूहालम्वन परामर्श से 'पर्वतो घटवान् भूतल वह्निमत्'

दकतैवास्तु कार्यकारणतावच्छेदकः सम्बन्धोऽनन्तलिङ्गाद्यन्तर्भावेन हेतुत्वाकल्पनलाघवप्राच्यवात्। इत्थमपि च लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसाधन निर्मूलमिति चेत्? न, वह्नित्वाद्यवच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकसम्बन्धस्य तथात्वे विनिगमनाविरहादेवमप्यनन्तप-

हेमलता

सति पर्वतत्वाद्यवच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकता एव अस्तु कार्यकारणतावच्छेदक =कार्यतायाः कारणतायाश्चावच्छेदक सम्बन्ध । तया च पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेनानुमिति प्रति पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन परामर्शस्य कारणता। 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् भूतल घटव्याप्यसयोगविशेषवदि'ति समूहालम्बनपरामर्शे पर्वतमुद्दिश्य वह्नेर्विधानात् भूतलमुद्दिश्य च घटस्य विधानात् स पर्वतत्वाच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपित-विधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्नित्वे वर्तते भूतलत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन च घटत्वे वर्तते। 'पर्वतो घटवान् भूतल वह्निमदि'तिसमूहालम्बनानुमितिस्तु पर्वतत्वाच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन घटत्वे वर्तते भूतलत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्नित्वे वर्तते। इत्थ कार्य-कारणयोः वैयधिकरण्यान्नोपदर्शितपरामर्शात्तादृशानुमितिसम्भवः किन्तु 'पर्वतो वह्निमान् भूतल घटवदि'त्यनुमितिरेव सम्भवति तस्याः पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्नित्वे भूतलत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्धेन च घटत्वे सत्त्वात्। प्रकृतकार्यकारणभावस्वीकारे उक्तापत्तिसम्भवाभावात् परामर्शनिष्ठकारणतावच्छेदकधर्मसम्बन्धयोः अनन्तलिङ्गादिनिवेशस्यानावश्यकत्वेन अनन्तलिङ्गाद्यन्तर्भावेन हेतुत्वाकल्पनलाघवप्राच्यवात् = लिङ्गभेदप्रयुक्तकारणतानन्त्यस्याभावेनातिलाघवात्। इत्थमपि अनतिप्रसक्तलघुकार्यकारणभावसद्भावेन वैशेषिकानुयायिनामुदयनानुयायिना च लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसाधन निर्मूल =अबाधिततर्कोच्छलितप्रमाणलक्षणान्मूलान्निर्गतमिति चेत्?

प्रकरणकारः तन्निराकरोति-नेति। वह्नित्वावद्यच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धस्य तथात्वे = कारणतावच्छेदकत्वे विनिगमनाविरहात्।अय भावः लिङ्गप्रवेशप्रयुक्तलाघवानुरोधेन यदि अयवादिना निरुक्तकार्यकारणभावः कक्षीक्रियते तर्हि विनिगमकाभावेन वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेनानुमिति प्रति वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन परामर्शस्य कारणत्वमपि न प्रत्याख्यातु शक्यते व्यभिचारप्रसङ्गस्योभयत्र तुल्यत्वात्। एतेन 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् भूतल घटव्याप्यसयोगविशेषवदि'ति परामर्शात् 'पर्वतो घटवान् भूतल वह्निमदि'त्यनुमितिप्रसङ्गोऽपि प्रत्याख्यात प्रदर्शितपरामर्शस्य वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वे सत्त्वेन आपाद्यमानाया अनुमितेश्च वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन भूतलत्वे सत्त्वेन कार्यकारणयोः वैयधिकरण्यात्। एव

वल्लभा

इत्याकारक अनुमिति की आपत्ति को अवकाश रहता नहीं है, क्योंकि उक्त समूहालम्बन परामर्श पर्वत के उद्देश से वह्नि का विधान करने की वजह पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्ध से वह्नित्व में रहता है और 'पर्वतो घटवान् भूतल वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्ध से घटत्व मे रहती है, क्योंकि वह अनुमिति पर्वत के उद्देश से घट का विधान करती है। इस कार्यकारणभाव को मान्य करने का लाभ यह है कि उक्त कारणताशरीर मे अनन्त हेतु का प्रवेश नहीं होने से अनन्तलिङ्गभेदप्रयुक्त अनन्त भिन्न कारणता का गौरव अनावश्यक है एव लाघव का भी विप्लव होता नहीं है। इस तरह कार्यकारणभाव के स्वीकार से ही सब उपपन्न होने से और लिङ्ग का कार्यतावच्छेदक सम्बन्ध आदि के शरीर मे प्रवेश नहीं होने से लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान को मान्य करना निर्मूल=निर्निमित्तक है। अत लाघवसहकार से लिङ्गानुपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि होती है।

लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धि विनिगमनाविरहग्रस्त

समाधान :- न, व०। जनाव! हमने बाल धूप मे पकाये नहीं हैं। आप लाघव से लिङ्गानुपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि कर रहे है मगर विनिगमनाविरहदोष से आप मुक्त नहीं बन पाते। इसका कारण यह है कि कार्यतावच्छेदकसम्बन्धविधया एव कारणतावच्छेदकसम्बन्धविधया पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्ध का ग्रहण करना या वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्ध का ग्रहण करना? इस विषय मे कोई एकतरपक्षपाती तर्क अविद्यमान है। अर्थात् पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्ध से अनुमिति के प्रति पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतानिरूपितविधेयतावच्छेदकतासम्बन्ध से परामर्श को कारण मानना या वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से अनुमिति के प्रति वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से परामर्श को कारण करना? इस विषय मे कोई निर्णायक युक्ति नहीं है। इस कार्यकारणभाव के स्वीकार मे गौरव भी नहीं है, क्योंकि प्रकृत कार्यकारणभावशरीर मे अनन्त पक्ष का अन्तर्भाव नहीं होने से अनन्तपक्षभेदप्रयुक्त अनन्त भिन्न कारणता की कल्पना अनावश्यक है। इसलिए लाघव का विलय तो इस पक्ष मे भी अबाधित है। एव 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् भूतल घटव्याप्यसयोगविशेषवत्' इस समूहालम्बन परामर्श से 'पर्वतो घटवान् भूतल वह्निमत्' इत्याकारक अनुमिति की आपत्ति को भी अवकाश रहता नहीं है, क्योंकि वह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकता सम्बन्ध से उपर्युक्त परामर्श पर्वतत्व मे रहता है जब कि आपादित अनुमिति तादृश सम्बन्ध से भूतलत्व मे रहती है। कार्य और

क्षान्तर्भावेन हेतुत्वाकल्पनलाघवाप्रच्यवादिति।

यत्तु ''धूमपरामर्शादीना विजातीयानुमितावेव हेतुत्वान्न तत्सिद्धिरिति'' तच्चिन्त्यम् धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदकालोकपरामर्श-

◆ हेमलता ◆

प्रोक्तपरामर्शस्य घटत्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वे सत्त्वेन तयोः वैयधिकरण्यान्नोक्तपरामर्शादुपदर्शितानुमित्यापत्ति-सम्भवः। न चैव 'वह्निर्न काञ्चनमय' इतिबाधकालेऽपि 'पर्वतः काञ्चनमयवह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शादनुमित्यापत्तिरिति वाच्यम् तदानीं शुद्धवह्नित्वावच्छिन्नविधेयता- निरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वे 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितेरिष्टत्वात्। तदानी काञ्चनमयवह्नित्वेनानुमितिस्तु न सम्भवति, पर्वतत्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपकोद्देश्यतानिरूपितविधेयतानिरूपितावच्छेदकत्ववतो विधेये बाधेन पर्वतत्वावच्छिन्नोद्देश्यतायाः काञ्चनमयवह्नि-त्वानवच्छिन्नतया तादृशपरामर्शस्य काञ्चनमयवह्नित्वावच्छिन्न - विधेयतानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतया पर्वतत्वे विरहात्। एवमपि = वह्नित्वावच्छिन्नविधेय-तानिरूपितोद्देश्यतावच्छेदकतासंसर्गेणानुमितिपरामर्शयोः कार्यकारणभावस्वीकारेऽपि व्यभिचारायोगेन कारणतावच्छेदकसम्बन्धे अनन्तपक्षान्तर्भावेन हेतुत्वाकल्पनलाघवाऽप्रच्यवात्। एतत्कल्पे धूमलिङ्गकत्वादेः कार्यतावच्छेदकसम्बन्धधर्मयोरप्रवेशेन लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिविरहेऽपि गुरुचरणमतानु-सारिणा अथवादिना यदत्रोक्त तन्न घटाकोटिमटाट्यत इत्येवात्र प्रकरणकृतस्तात्पर्यमिति ध्येयम्।

यदि च पक्षसाध्ययोरुद्देश्यविधेयभावोऽनुमितावेवोपेयते न तु परामर्शे, तत्र पक्षहेत्वोरेवोद्देश्यविधेयभावस्वीकारादित्युच्यते तदा तु नितरामथवादिमतस्याऽश्रद्धेयत्वमित्यवधेयम्।

लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिनामपरेषा मत दर्शयति- यत्तु इति। तच्चिन्त्यमित्यनेनास्यान्वयः, यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्। धूमपरामर्शादीना आदिपदेनालोकपरामर्शादीना परिग्रहः। विजातीयानुमितावेव न तु पर्वतोद्देश्यकवह्निविधेयकानुमितित्वावच्छिन्ने, हेतुत्वात् = कारणत्वकल्पनात् न तत्सिद्धि = लिङ्गोपहितलैङ्गिभानसिद्धिः। धूमलिङ्गकपरामर्शजन्यतावच्छेदकाद्वैजात्यादन्यदेव वैजात्यमालोकलिङ्गकपरामर्शजन्यतावच्छेदकम्। एतेन आलोकपरामर्शजन्यदहनानुमितेर्धूमपरामर्शाद्विना धूमपरामर्शजन्यदहनानुमितेश्चालोकपरामर्शमृते जायमानत्वेन व्यतिरेकव्यभिचारप्रसक्त्या धूमपरामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्'इत्यनुमितेः आलोकपरामर्शाच्च 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितेः सिद्धान्तसिद्धत्वेन लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरिति निरस्तम् पर्वतोद्देश्यकवह्निविधेयकानुमितित्वावच्छिन्ने धूमपरामर्शस्यालोकपरामर्शस्य वा कारणत्वानुपगमात्। एतेन व्यतिरेकव्यभिचारः प्रत्युक्त सामग्र्याः कार्यतावच्छेदकावच्छिन्नस्योपधानादिति यत्तुमताशयः।

स्वास्वरसावेदनाय प्रकरणकृदत्राह-तच्चिन्त्यमिति। धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदकालोकपरामर्शजन्यतावच्छेदकजात्यो उभयपरामर्शजन्यानुमितौ =

► वल्लभा ◄

कारण परस्पर व्यधिकरण होने पर कार्य का कैसे आपादन हो सकता है? इस तरह लिङ्गोपहित लैङ्गिकभानवादी के मत मे विनिगमनाविरह दोष वज्रलेप वनता है।

► लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभान मे अन्य मत ◄

यत्तु०। यहाँ कुछ विद्वानो का यह कथन है कि—>'धूमलिङ्गक परामर्श आदि विजातीय अनुमिति मे ही कारण होने से लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि हो सकती नही है। आशय यह है कि 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इस परामर्श से जो अनुमिति होती है वह आलोकपरामर्शजन्य अनुमिति से विजातीय है और 'पर्वतो वह्निव्याप्यआलोकवान्' इस परामर्श से जो वह्निविधेयक अनुमिति होती है वह धूमपरामर्शजन्य अनुमिति से विजातीय है। भिन्न भिन्न कार्यतावच्छेदक से अवच्छिन्न=विशिष्ट का जनक होने से आलोकपरामर्शजन्य वह्निसाध्यक अनुमिति का धूमपरामर्श के विना एव धूमपरामर्शजन्य वह्निविधेयक अनुमिति का आलोकपरामर्श के विना उदय होने पर भी व्यतिरेक व्यभिचार को अवकाश रहता नही है। तब क्यो ''धूमपरामर्श से 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति होती हे एव आलोकपरामर्श से 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति होती है'' इस तथ्यहीन मान्यता का स्वीकार किया जाय? इसलिए लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान का स्वीकार नही किया जा सकता'←

■■ विजातीयअनुमितिपक्ष मे साङ्कर्य-गौरवादिदूषण ■■

तच्चि०। मगर उपर्युक्त वक्तव्य विचारणीय है न कि विना विचार के उपादेय। इसका कारण यह है कि धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदक वैजात्य आलोकपरामर्शजन्य अनुमिति मे रहता नही है एव आलोकपरामर्शजन्यतावच्छेदक वैजात्य=जातिविशेष धूमपरामर्शजन्य अनुमिति मे रहता नही है मगर परस्पर व्यधिकरण ये दो वैजात्य धूमालोकोभयलिङ्गकपरामर्शजन्य अनुमिति मे रहते है। इसलिए साकर्य दोष की आपत्ति आयेगी। परस्पर व्यधिकरण दो धर्मों का एकत्र समावेश होना ही सकरलक्षण है। यदि प्रत्येकपरामर्शजन्यतावच्छेदक वैजात्य से अतिरिक्त उभयपरामर्शजन्यतावच्छेदक जातिविशेष का स्वीकार किया जाय तव यद्यपि उपर्युक्त साकर्य दोष को अवकाश नही होगा मगर धूमालोकोभयपरामर्श होने पर उभयपरामर्शजन्य अनुमिति की भाँति धूमपरामर्शजन्य एव आलोकपरामर्शजन्य दहनानुमिति की आपत्ति

जन्यतावच्छेदकजात्योरुभयपरामर्शजन्यानुमितौ साङ्कर्यात्, उभयपरामर्शजन्यतावच्छेदकजातेरतिरेके चोभयपरामर्शसत्त्वे प्रत्येकपरामर्शजन्यानुमितिप्रसङ्गात्, तत्र किञ्चित्प्रतिबन्धकादिकल्पने च गौरवात्।

विजातीयानुमितौ विजातीयपरामर्शस्य हेतुत्वात् पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितौ तादृशपरामर्शत्वेन हेतुत्वाद्वा न तत्सिद्धिरिति युक्तः पन्थाः।

◆ हेमलता ◆

धूमालोकोभयलिङ्गकपरामर्शजन्यदहनानुमितौ साङ्कर्यात्। अयमाशयः 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इति परामर्शजन्यानुमितावालोकपरामर्शजन्यतावच्छेदक नास्ति 'पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवान्' इति परामर्शजन्यानुमितौ धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदक नास्ति। तदुभयोः 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इति परामर्शजन्यानुमितौ सत्त्वेन साङ्कर्यम्, परस्परात्यन्ताभावसमानाधिकरणयोस्तयोरेकत्र समावेशात्। न च धूमालोकोभयलिङ्गकपरामर्शजन्यतावच्छेदक वैजात्य तदुभयव्यतिरिक्तमेवेति वक्तव्यम् उभयपरामर्शजन्यतावच्छेदकजाते = धूमालोकोभयलिङ्गकपरामर्शजन्यमात्रवृत्तिवैजात्यस्य अतिरेके =धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदकालोकपरामर्शजन्यतावच्छेदकजातिद्वयव्यतिरेकोपगमे च गौरवात् उभयपरामर्शसत्त्वे = धूमालोकोभयलिङ्गकपरामर्शकाले प्रत्येकपरामर्शजन्यानुमितिप्रसङ्गात् = धूमपरामर्शजन्यतावच्छेदकाक्रान्ताया आलोकपरामर्शकार्यतावच्छेदकालिङ्गिताया‌श्चानुमितेरुत्पत्तेः, सामग्र्या स्वकार्यजनने‌ऽन्यानपेक्षणात्। ततश्च तदाऽनुमितित्रितयप्रसङ्ग इति भावः। न च प्रत्येकपरामर्शजन्यानुमितौ उभयपरामर्शजन्यस्य प्रतिबन्धकत्वान्नाय दोष इति वाच्यम् तत्र = प्रत्येकपरामर्शजानुमितौ, किञ्चित्प्रतिबन्धकादिकल्पने = उभयपरामर्शनिष्ठप्रतिबन्धकत्वतदभावनिष्ठकारणत्वकल्पनाया च गौरवात् = अप्रामाणिकगौरवात्, प्रमाणप्रवृत्तिपूर्वमेव तदुपस्थितेः। एतेन तस्य फलमुखत्वकल्पनाऽपि परास्ता।

केचित्तु धूमलिङ्गकपरामर्शमात्रजन्यानुमिति प्रति आलोकलिङ्गकपरामर्शस्यालोकलिङ्गकपरामर्शमात्रजन्यानुमिति प्रति धूमलिङ्गकपरामर्शस्य प्रतिबन्धकत्व कल्प्यत इति प्रतिबन्धकसद्भावान्न प्रत्येकलिङ्गकपरामर्शजन्यानुमितिप्रसङ्ग इति कल्पयन्ति।

विजातीयानुमितौ = अनुमितिविशेषनिष्ठवैजात्यावच्छिन्न प्रति विजातीयपरामर्शस्य हेतुत्वात् = कारणत्वस्वीकारात् न तत्सिद्धिरित्यनेनास्यान्वयः। धूमलिङ्गकपरामर्शालोकलिङ्गकपरामर्शयोरनुगतैकवैजात्य, तदवच्छिन्नस्य विजातीयानुमितिकारणत्वम्। एतेनालोकपरामर्शमृते‌ऽनलानुमितेर्धूमलिङ्गकपरामर्शादुत्पादेन धूमपरामर्शाद्विना च दहनानुमितेरालोकपरामर्शादुत्पत्तेर्व्यतिरेकव्यभिचार इत्यपि प्रत्युक्तम् तादृशानुमितेः स्वकारणतावच्छेदकावच्छिन्नादेवोत्पत्तेः। न हि कारणतावच्छेदकावच्छिन्नस्य सर्वस्यापेक्षा कार्योत्पत्तौ भवितुमर्हति। अत्र कार्यतावच्छेदककोटौ धूमलिङ्गकत्वादेरनिवेशान्न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरित्यभिप्रायः। प्रकृते वैजात्यद्वयकल्पनागौरवात् प्रकरणकार श्रीमान् कल्पान्तरमाह- पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितौ = पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वावच्छिन्न प्रति तादृशपरामर्शत्वेन = पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकपरामर्शत्वेन हेतुत्वात् = कारणत्वोपगमात् वा न तत्सिद्धि = लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिः, लिङ्गस्य कार्यतावच्छेदकादावप्रवेशात्। न चालोकपरामर्शजन्यानुमितेः धूमपरामर्शाद्विनाऽप्युत्पादेन व्यभिचार इति वक्तव्यम् पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताक-परामर्शस्योत्पन्नानलानुमितिकारणतावच्छेदकावच्छिन्नत्वात्। न च 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् भूतल घटव्याप्यसयोगविशेषवत्' इति समूहालम्बनपरामर्शात् 'पर्वतो घटवान् भूतल वह्निमत्' इत्यनुमित्युत्पत्तिप्रसङ्ग इति वाच्यम् तादृशपरामर्शीयवह्नित्वावच्छिन्नविधेयतानिरूपकोद्देश्यताया पर्वतत्वावच्छिन्नत्वेन पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितघटत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितेस्ततोऽनापाद्यत्वात्। न ह्यापादकमृते आपादन भवितुमर्हति। अतो न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरिति युक्त =युक्तिसङ्गत पन्था।

► वल्लभा ◄

आयेगी, क्योंकि उभयलिङ्गक परामर्श होने पर प्रत्येकलिङ्गक परामर्श होता ही है। यदि इस आपत्ति के निवारणार्थ यह कहा जाय कि→'प्रत्येकलिङ्गकपरामर्शजन्य अनुमिति के प्रति उभयलिङ्गक परामर्श प्रतिबन्धक होने से धूमालोकोभयलिङ्गक परामर्श की उपस्थिति में केवल धूमलिङ्गकपरामर्शजन्य या केवल आलोकलिङ्गकपरामर्शजन्य अनुमिति की आपत्ति को अवकाश नहीं है, क्योंकि प्रतिबन्धकाभावात्मक कारण तब अविद्यमान रहता है।'←तो यह भी गलत है, क्योंकि प्रत्येकलिङ्गक-परामर्शजन्य दहनानुमिति के प्रति तादृश प्रतिबन्धकादि की कल्पना करने में अप्रामाणिक महागौरव है।

विजा०। प्रकरणकार इस विषय में अपने अभिप्राय को प्रकट करने के लिए कहते हैं कि उपदर्शित प्रतिबन्धकादि की कल्पना करने की अपेक्षा समाधान का सही राह तो यह है कि विजातीयअनुमिति के प्रति विजातीय परामर्श को ही हेतु माना जाय अर्थात् धूमपरामर्श और आलोकपरामर्श में एक अनुगत वैजात्य की कल्पना कर के पर्वतविशेष्यक-वह्निविधेयकानुमिति के प्रति विजातीयपरामर्शत्वेन

एतेन विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमविशिष्टे वैशिष्ट्यज्ञान प्रत्येव वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासम्बन्धेन निश्चयत्वेन हेतुता, न तु परामर्शानुमित्योः पृथक्कार्यकारणभावः। न चैव 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो

◆ हेमलता ◆

एतेनेति। निरुक्तकार्यकारणभावस्वीकारेणेति। अस्य निरस्तमित्यनेनान्वयः। एकविशिष्टेऽपरवैशिष्ट्यमिति न्यायेन लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसाधनमावेदयति-विशेष्यतावच्छेदकसम्बन्धेनेति। स्वनिष्ठविशेष्यिताऽभिधानविषयितानिरूपितविशेष्यताख्यविषयतानिरूपितावच्छेदकत्वससर्गेणेति। अनेन कार्यतावच्छेदकसम्बन्धः प्रदर्शितः। कार्यतावच्छेदकधर्मश्च वह्निव्याप्यधूमविशिष्टत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपिताऽपरप्रकारताकज्ञानत्वम्। 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इति निश्चये वह्निव्याप्यधूमस्य प्रकारत्व पर्वतस्य च तद्विशेष्यत्वम्। पर्वते धूमस्येव पर्वतत्वस्याऽपि प्रकारत्वेनोक्तपरामर्शात्मकनिश्चयः वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासम्बन्धेन धूमे पर्वतत्वे च वर्तते। यदि च अनुमितौ धूमावगाहन स्यात्तदोक्तकार्यकारणभावबलादेव तदुपपत्तिः, तस्या वह्निव्याप्यधूमविशिष्टे पर्वते वह्निवैशिष्ट्यावगाहित्वेन निश्चयकार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात्, स्वनिरूपितविशेष्यातावच्छेदकतासम्बन्धेन पर्वतत्वे धूमे च तदुत्पत्तेर्निरपायत्वात्। एतादृशकार्यकारणभावादेवोपपत्तौ न परामर्शानुमित्यो पृथक्कार्यकारणभाव कल्प्यते। यदि चानुमितो धूमावगाहन न स्यात्तदा 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिनिष्ठप्रकारितानिरूपितप्रकारताया वह्निव्याप्यधूमविशिष्टत्वावच्छिन्नविशेष्यताऽनिरूपकत्वेन तादृशानुमितेः निरुक्तकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वेनाकस्मिकत्वापत्तिनिवारणकृते परामर्शानुमित्योः पृथक्कार्यकारणभाव' कल्पनीयस्स्यादिति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानपक्षे गौरव प्रसज्येतेत्याशयः।

न च एव = एकविशिष्टेऽपरवैशिष्ट्यमितिन्यायेनोक्तकार्यकारणभावाभ्युपगमे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति निश्चयात् 'वह्निव्याप्यधूमत्पर्वतो

► वल्लभा ◄

कारणता की कल्पना की जाय। धूमपरामर्श के विना आलोकपरामर्श से उत्पन्न दहनअनुमिति भी स्वकारणतावच्छेदकाच्छिन्न के विना उदित हुई नही है। इसलिए व्यतिरेक व्यभिचार को भी अवकाश नही रहेगा। अथवा विजातीयपरामर्श के कार्यतावच्छेदकविधया पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व का स्वीकार करने पर भी व्यभिचारनिवारण हो सकता है और धूमलिङ्गकत्व का उसमे प्रवेश नही होने से लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि को अवकाश भी नही रहेगा। लिङ्गानुपहित लैङ्गिकभान के समर्थन का यह युक्तिसगत मार्ग है।

★♦ लाघव से लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धि-पूर्वपक्ष ♦★

लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी : एतेन०। —>'विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से वह्निव्याप्यधूमविशिष्ट मे विशिष्टत्वावगाही ज्ञान के प्रति ही वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपित प्रकारता सम्बन्ध से निश्चयत्वेन रूपेण कारणता होती है। मगर परामर्श और अनुमिति के बीच स्वतत्र कार्यकारणभाव के स्वीकार की कोई आवश्यकता नही है। आशय यह हे कि 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से यदि 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का स्वीकार किया जाय तव यह अनुमिति वह्निव्याप्यधूमविशिष्ट पर्वत मे वह्निवैशिष्ट्यागाही होने की वजह निश्चयकार्यतावच्छेदकाक्रान्त होती है जो विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से वह्निव्याप्यधूम एव पर्वतत्व मे उत्पन्न होगी, क्योकि उस अनुमिति के विशेष्यतावच्छेदक वह्निव्याप्यधूम एव पर्वतत्व है। तथा 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इस परामर्श मे पर्वतात्मक विशेष्य के प्रकार पर्वतत्व एव वह्निव्याप्यधूम होने से वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्न प्रकारता से निरूपित पर्वतनिष्ठ विशेष्यता का प्रकार पर्वतत्व एव वह्निव्याप्यधूम होगा। अतएव वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासम्बन्ध से 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' यह निश्चय पर्वतत्व एव वह्निव्याप्यधूम मे रहता हे। इस तरह कार्य और कारण समान अधिकरण मे रहने से उन दोनो के बीच सामानाधिकरण्य भी उपपन्न हो सकता है। उपर्युक्त रीति से एकविशिष्ट मे अपरविशेषणवैशिष्ट्यावगाही ज्ञान के प्रति जो कारण होता है उसीको लिङ्गोपहित लेङ्गिकभान का कारण मानने से सब सगत हो जाता है तव अनुमिति ओर परामर्श के वीच क्यो स्वतन्त्र कार्यकारणभाव की कल्पना की जाय? इस तरह लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान के स्वीकार मे लाघव है। यदि लिङ्गोपहित लेङ्गिकभान का स्वीकार न किया जाय तव धूमपरामर्श से होनेवाली अनुमिति 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक होगी जो एकविशेषणविशिष्ट मे अन्यविशेषणवैशिष्ट्यावगाही न होने से उक्त सम्बन्ध से निश्चय की कारणता से निरूपित कार्यता के अवच्छेदक धर्म से आक्रान्त नही होगी। जिसकी वजह उसमे आकस्मिकता के परिहारार्थ परामर्श मे पृथक् अनुमितिकारणता की कल्पना करने का गौरव होगा।

न चैव०। यहाँ इस शका का कि—>'व्यापकवैशिष्ट्य का कार्यतावच्छेदकधर्मशरीर मे निवेश न कर के केवल अन्यविशेषणवैशिष्ट्य का ही उसमे पवेश किया जाय और तादृशकार्यतावच्छेदकावच्छिन्न के पति प्रदर्शित सम्वन्ध से निश्चय को कारण माना जाय तव

घटवानि'त्यनुमित्यापत्तिः, पक्षतादिजन्यतावच्छेदक-पर्वतपक्षक-घटानुमितित्वस्य घटव्याप्यविशिष्टपर्वतविशेष्यकत्वनियतत्वेन सामग्रीं विना कार्यानुत्पत्तेः। न च गृहीतैकसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिकस्य धूमादेरन्यसम्बन्धेन पक्षे निश्चयाद्विशिष्टबुद्धिवदनुमित्यापत्तिः,

◆ हेमलता ◆

वह्निमानि'तिवत् 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो घटवानि'त्यनुमित्यापत्ति विशेष्यतावच्छेदकतया कार्यतावच्छेदकाक्रान्ततादृशानुमित्यधिकरणीभूते वह्निव्याप्यधूमे पर्वतत्वे च वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासम्बन्धेन निश्चयस्य सत्त्वादिति वक्तव्यम्, अनुमितित्वस्य निरुक्तनिश्चय-कार्यतावच्छेदकत्वानुपगमेन तदापादनासम्भवात्, प्रदर्शितपर्वतपक्षक - घटविधेयकानुमितित्वस्य तु सिषाधयिषाविरह - विशिष्टपर्वतविशेष्यकघटप्रकारकनि-याभावलक्षणपक्षतानिष्ठकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकत्वेन घटव्याप्यप्रकारक-पर्वतविशेष्यकनिश्चयजन्यज्ञानत्वव्याप्यत्वात् पर्वतपक्षकघटानुमितिसा-मग्र्याः घटव्याप्यत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकनिश्चयव्याप्यत्वम्। इत्थञ्च पक्षतादिजन्यतावच्छेदकपर्वतपक्षक-घटानुमितित्वस्य घटव्याप्यविशिष्टपर्वतविशेष्यकत्वनियतत्वेन = घटव्याप्यविशिष्टपर्वतत्वावच्छिन्न- विशेष्यताकत्वव्याप्यत्वेन 'घटव्याप्यवान् पर्वत' इतिनिश्चयरूपा सामग्रीं विना 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत' इतिनिश्चयात् कार्यानुत्पत्ते = 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो घटवानि'त्यनुमितिलक्षणविवक्षितकार्योत्पादाऽसम्भवात्, व्यापकाभावस्यव्याप्याभावसाधकत्वात्। न हि व्यापकधर्मावच्छिन्नसामग्रीविरहिताया व्याप्यधर्मावच्छिन्नसामग्र्याः स्वकार्यार्जने सामर्थ्यं क्वापि दृष्टचरम्। यदि च 'पर्वतो घटव्याप्यसयोगविशेषवानि'ति निश्चयस्स्यात्तदा तदुत्तर 'घटव्याप्यसयोगविशेषवान् पर्वतो घटवानि'त्यनुमितिरेवोपजायेत पर्वतपक्षक-घटानुमितित्वस्य घटव्याप्यविशिष्टपर्वतविशेष्यकत्वव्याप्यत्वात्। ततो न 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटवानि'त्यनुमितेः 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवा-नि'तिनिश्चयादुत्पत्तिप्रसङ्गः।

न च गृहीतैकसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिकस्य = ज्ञातसयोगसम्बन्धावच्छिन्नव्याप्यत्वकस्य धूमादे अन्यसम्बन्धेन = कालिकादिसंसर्गेण पक्षे ह्रदादौ निश्चयात् = 'ह्रदः कालिकेन वह्निव्याप्यधूमवानि'त्यादिस्वरूपात् निश्चयात् विशिष्टबुद्धिवदनुमित्यापत्ति = वह्निव्याप्यधूमे ह्रदत्वे च विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्धेन वह्निव्याप्यधूमविशिष्टत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारताकानुमितिप्रसङ्गः, वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्र-कारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासम्बन्धेनोक्तनिश्चयस्य वह्निव्याप्यधूमे ह्रदत्वे च सत्त्वादिति वाच्यम् येन सम्बन्धेन य प्रति यस्य व्याप्यत्व

▶ वल्लभा ◀

तो 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इस परामर्श से 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटवान्' इत्याकारक अनुमिति के उदय की आपत्ति आयेगी, क्योंकि वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपित प्रकारता सम्बन्ध से वह निश्चयात्मक परामर्श पर्वतत्व एव वह्निव्याप्यधूम मे रहता है ओर आपाद्यमान अनुमिति भी विशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से उन दोनो मे ही रहेगी न कि अन्यत्र, जिसकी बदौलत कार्य और कारण मे वैयधिकरण्य प्रसक्त हो'←निराकरण इसलिए हो जाता है कि आपाद्यमान अनुमिति मे पर्वतपक्षक-घटानुमितित्व रहता है जो पक्षतादि का कार्यतावच्छेदक होता है एव घटव्याप्यविशिष्टपर्वतविशेष्यकत्व का व्याप्य होता है, क्योंकि जिस जिस ज्ञान मे पर्वतपक्षक-घटानुमितित्व रहता हे उस उस ज्ञान मे घटव्याप्यविशिष्टपर्वतविशेष्यकत्व होता ही है। प्रस्तुत मे आपाद्यमान अनुमिति घटव्याप्यविशिष्ट-पर्वतविशेष्यक नही है किन्तु वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतविशेष्यक है, क्योंकि वह 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटवान्' इत्याकारक है। मतलब कि आपाद्यमान अनुमिति मे व्यापक नहीं है। व्यापकाभाव व्याप्याभाव का साधक होने से वह अनुमिति पर्वतपक्षक होते हुए घटविधेयक (=घटसाध्यक) हो सकती नही है। व्यापकधर्मावच्छिन्न की सामग्री के विरह मे व्याप्यधर्मावच्छिन्नसामग्री से कार्य की उत्पत्ति होती नही है। इसलिए 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इस परामर्श से 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो घटवान्' इत्याकारक अनुमिति की आपत्ति को अवकाश नहीं है।

न च गृ। यहाँ इस शका का कि→'एकविशिष्ट मे अपरविशेषणवैशिष्ट्यावगाही ज्ञान के प्रति उक्त सम्बन्ध से निश्चयत्वेन रूपेण कारणता का स्वीकार करने पर व्याप्यतावच्छेदकविधया एक सम्बन्ध का ज्ञान होने पर तदन्य सम्बन्ध से पक्ष मे व्याप्य का निश्चय होने पर भी विशिष्टबुद्धिवाली अनुमिति की आपत्ति आयेगी। जैसे धूम मे सयोगसम्बन्ध से वह्निव्याप्यत्व का भान करनेवाले पुरुष को पर्वत मे कालिकविशेषणतासम्बन्ध से धूम का निश्चय होने पर भी 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति होने लगेगी, क्योंकि वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपित प्रकारता सम्बन्ध से वह निश्चय पर्वतत्व एव वह्निव्याप्यधूम मे रहता है और उत्पन्न होनेवाली 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति भी स्वीयविशेष्यतावच्छेदकतासम्बन्ध से वह्निव्याप्यधूम एव पर्वतत्व मे रहेगी'←समाधान यह हे कि जिस सम्बन्ध से जिसके (=व्यापक के) प्रति जिस सम्बन्ध से जो व्याप्य होता हे उसी सम्बन्ध (=व्याप्यतावच्छेदकसम्बन्ध) से पक्ष मे उसका (=व्याप्य का) निश्चय अनुमिति का जनक होने से प्रस्तुत मे व्याप्यतानवच्छेदकसम्बन्ध से पक्ष (=पर्वत) मे व्याप्य (=धूम) का निश्चय अनुमिति का जनक नही होने से अनुमितिसामान्य की सामग्री ही नही है तब दहनविधेयक अनुमितिविशेष का जन्म केसे हो सकता? सामान्यसामग्री के विरह मे कार्यविशेष की उत्पत्ति होती नही हे। सयोगसम्बन्ध से वह्नि के प्रति सयोग सम्बन्ध से धूम व्याप्य होने से कालिकविशेषणता सम्बन्ध से, जो वह्निनिरूपित-धूमनिष्ठव्यापिता का अनवच्छेदकसम्बन्ध है, पर्वतादि मे धूम का निश्चय दहनानुमिति का जनक हो सकता नहीं हे - यह हकिकत सुगम है। इस तरह लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान

तन्निश्चयस्यानुमित्यजनकत्वेन सामान्यसामग्रीत्वाभावात्'' इति निरस्तम्। लिङ्गविषयकत्वे बाधके लिङ्गाऽविषयकानुमितेस्त्वयाऽपि स्वीकारात्तत्र च परामर्शानुमित्योः पृथक्कार्यकारणभावावश्यकत्वात्।

लिङ्गविषयकानुमितौ मम पृथक्कारणत्वाकल्पनया लाघवमिति चेत्? न उक्तरीत्योभयत्रैकरूपेणैव हेतुत्वात्।

◆ हेमलता ◆

गृहीत तेनैव सम्बन्धेन व्याप्यवत्तानिश्चयात्मकात् परामर्शात् तेन सम्बन्धेन व्यापकानुमितेरभ्युपगमेन तन्निश्चयस्य व्याप्यतावच्छेदकतया गृहीतसम्बन्धभिन्नसम्बन्धव्याप्यनिश्चयस्य अनुमित्यजनकत्वेन सामान्यसामग्रीत्वाभावात् = अनुमितिसामान्यनिरूपितकारणतावच्छेदकानाक्रान्तत्वात् न ततोऽनुमित्यापत्तिः। प्रकृते च कालिकादिसम्बन्धेन ह्रदे धूमनिश्चयस्य अनुमित्यजनकत्वेन=सयोगसम्बन्धावच्छिन्न-धूमत्वावच्छिन्नव्याप्यतानिरूपित-सयोगसम्बन्धावच्छिन्न-वह्नित्वावच्छिन्नव्यापकताकानुमितिजनकत्वविरहेण न ततो दहनानुमित्यापत्तिः सामान्यसामग्र्या विरहे कार्यविशेषोत्पादाऽयोगात्, प्रकृते च विशेषसामग्र्या अपि विरह इति ध्येयम्। इत्थश्च विशिष्टानुयोगिकवैशिष्ट्य-बोधस्थलीयमर्यादयैव लाघवेन लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरिति पूर्वपक्षाभिप्रायः।

मूलशैथिल्यप्रदर्शनेनैतत्पूर्वपक्ष प्रकरणकारो दूषयति- लिङ्गविषयकत्वे बाधके सति=पक्षेऽलौकिकसन्निकर्षजन्यहेत्वभावनिश्चयदशाया हेत्वशे लौकिकपरामर्शात् पक्षे लिङ्गाविषयकानुमिते = लिङ्गानुपहितलैङ्गिकानुमितेः त्वया = लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिना अपि स्वीकारात् अन्यथा तदानी पक्षे हेत्वशे लौकिकपरामर्शाद् द्वितीयक्षणेऽनुमित्यनापत्तिः पूर्वमेवोक्ता। तत्र च = लैङ्गिकानुमितेः व्याप्यविशिष्टेऽपरविशेषण-वैशिष्ट्यानवगाहित्वेनाभिमतनिश्चयकार्यतावच्छेदकधर्मानाक्रान्ततया परामर्शानुमित्यो पृथक्कार्यकारणभावावश्यकत्वात् अन्यथोदर्शितलिङ्गानुपहितलैङ्गिकानु-मितेराकस्मिकत्वापातात्। तथा च सति तस्या नित्य सत्त्वमसत्त्व वा प्रसज्येत। ततो न परामर्शानुमित्योः स्वतन्त्रकार्यकारणभावाऽकल्पनालाघवेन लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानसिद्धिरिति प्रकरणकृदाकूतम्।

ननु तथापि एकविशेषणविशिष्टेऽपरविशेषणवैशिष्ट्यावगाहिबोधस्थलीयमर्यादया विशेष्यतावच्छेदकतया वह्निव्याप्यधूमविशिष्टत्वावच्छिन्नविशेष्यता-निरूपितापरप्रकारताकज्ञानत्वावच्छिन्न प्रति वह्निव्याप्यधूमत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतानिरूपितप्रकारतासम्बन्धेन निश्चयत्वेन कारणत्वस्वीकारेण लिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमितेः लिङ्गविषयकबाधासमवहिताया उपपत्तेः लिङ्गविषयकानुमितौ = लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान प्रति मम = लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान-वादिनः पृथक्कारणत्वाकल्पनया = स्वातन्त्र्येण परामर्शत्वावच्छिन्नकारणत्वकल्पनानावश्यकत्वेन लाघवमिति। न च लिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमितेरनभ्युपगमान्न मम लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिनःपृथक्कारणत्वकल्पनागौरवमिति वाच्यम् 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् लिङ्गानुपहितलैङ्गि-कभानवादिनाऽपि लिङ्गोपहितानुमितेः स्वीकारात्ता प्रति पृथक्कारणत्वकल्पनागौरवमतिरिच्यते लिङ्गानुपहितानुमितिपक्षे इति चेत्? न उक्तरीत्या

▶ वल्लभा ◀

के स्वीकार मे अनुमिति और परामर्श के बीच स्वतत्र कार्यकारणभाव की कल्पना अनावश्यक है-यह निष्कर्ष है'←

♦◇♦ अनुमिति एव परामर्श के बीच कार्यकारणभाव आवश्यक-उत्तरपक्ष ♦◇♦

लिङ्ग०। जनाव[1] हम करे सो कायदा-यह नादिरशाही यहाँ चल नही सकती। इसका कारण यह हे कि जब अनुमिति को लिङ्गावगाही मानने मे बाध होता है तव आप महाशय भी लिङ्गाऽविषयक अनुमिति का स्वीकार करते है जो व्याप्यविशिष्ट मे अपरविशेषणवैशिष्ट्य का अवगाहन नही करने की वजह आप के अभिमत निश्चयकार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त नही होने से तादृश अनुमिति मे आकस्मिकता (= विना कारण के उत्पत्ति) के निवारणार्थ परामर्श ओर अनुमिति के बीच स्वतन्त्र हेतु-हेतुमद्भाव की कल्पना करना आपके मतानुसार भी आवश्यक ही हैं। आशय यह है कि जव पक्ष मे अलोकिकसन्निकर्षजन्य हेत्वभाव का निश्चय होता है तव लोकिक हेतुपरामर्श से होनेवाली अनुमिति को लिङ्गविषयक मानी जा नही सकती, क्योकि तदभाववत्ता का निश्चय तद्वत्ताज्ञान का विरोधी होता है। अत तव लिङ्गानवगाही लिङ्गिगोचर अनुमिति का लिङ्गोपहितलेङ्गिकभानवादी भी स्वीकार करते हे। वह लिङ्गविशिष्ट मे लिङ्गिवेशिष्ट्य का अवगाहन न करने की वजह निश्चयकार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त नही है। इसलिए लिङ्गानवगाही अनुमिति के प्रति परामर्श को कारण मानना ही होगा। इस तरह लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी को भी लिङ्गविषयकत्वबाधस्थलीय अनुमिति के अनुरोध से अनुमिति ओर परामर्श के वीच कार्य-कारणभाव का स्वीकार आवश्यक ही है तव स्वतन्त्र कार्यकारणभाव की अनावश्यकता के अनुरोध से लिङ्गोपहित लेङ्गिकभान की सिद्धि कैसे हो सकती? गौरव तो दोनो पक्ष मे समान ही हे।

लिङ्गवि०। यहाँ इस शका के कि→'लिङ्गविषयकत्वबाधस्थलीय अनुमिति के प्रति भले ही परामर्श मे पृथक् कारणता की कल्पना आवश्यक हो मगर फिर भी लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी हम लाघवपक्ष मे स्थित है, क्योकि लिङ्गविषयक अनुमिति की उत्पत्ति दर्शित

यत्तु 'लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानाभ्युपगमेऽशतो बाधसत्प्रतिपक्षयोर्दोषत्वापत्ति'रिति,

◆ हेमलता ◆

पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वाभ्युपगमेन उभयत्र धूमावगाहि-तदनवगाहिदहनानुमित्योः एकरूपेणैव = पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकनिश्चयत्वेन रूपेणैव परामर्शस्य हेतुत्वात् = कारणत्वसम्भवात्। यथा नीलघटं प्रत्यनीलघटं प्रति च दण्डत्वेनैव दण्डस्य कारणत्वं कार्यतावच्छेदकयोरुभयानुगतमनतिप्रसक्तं घटत्वमेव तथैव लिङ्गोपहितानुमितिं प्रति लिङ्गानुपहितानुमितिं प्रति चैकरूपेणैव परामर्शस्य जनकत्वं कार्यतावच्छेदकञ्चोभयविधानुमित्यनुगतमनतिप्रसक्तं लिङ्गविषयकत्वविनिर्मुक्तं यथायथं विज्ञेयम्, अनुमितौ लिङ्गविषयकत्वस्यायथमाजग्रस्तत्वेन कार्यतावच्छेदककोटिप्रवेशायोगात्। अत एव लिङ्गविषयकत्वबाधाभावस्थलीनानुमितित्वावच्छिन्ने लिङ्गावगाहित्वकल्पनाऽपि प्रत्युक्ता गौरवात्, तस्या लिङ्गाऽविषयकत्वेऽप्युक्तदिशा व्यभिचाराद्योगादिति दिक्।

केचित्तु लिङ्गविषयकानुमितिं प्रति लिङ्गाविषयकानुमितिं प्रति च परामर्शस्य विजातीयपरामर्शत्वेनैकस्यैव कारणत्वं लिङ्गविषयकत्वबाधकसहकृतात्ततो लिङ्गाऽविषयकानुमितिः तदभावसहकृताच्च ततो लिङ्गविषयकानुमितिरित्यस्य सम्भवेन पृथक्कार्यकारणभावकल्पनाया अनावश्यकत्वेन न ततो लिङ्गविषयकत्वनिराकरणं युक्तं किन्तु लिङ्गविषयकानुमितिस्वीकारेऽपि दर्शितदिशा व्यभिचारप्रसङ्गादौर्गेण लिङ्गविषयकत्वकल्पनं युक्तमित्येव ज्यायः इति वदन्ति।

लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिवक्तव्यमपाकर्तुमुपन्यस्यति- यत्तु इति। तन्नेत्यनेनास्यान्वयः। लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानाभ्युपगमे अशतः = पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाधसत्प्रतिपक्षयोः = साध्याभावनिश्चय-साध्याभावव्याप्यनिश्चययोः दोषत्वापत्तिः = अनुमिति-तत्करणान्यतरप्रतिबन्धकज्ञानाऽविषयत्वप्रसङ्गः। अयमाशयग्रन्थाशयः 'मदीयघटो नीलो न वा?' 'मदीयो न नीलः' 'घटो न नील' इतिज्ञानसत्त्वेऽपि 'मदीयघटो नील'इति ज्ञानस्योपजायमानत्वेन 'मदीयघटो न नील' 'मदीयघटो नीरूप' इति निश्चयदशायाश्च तदनुपजायमानत्वेन समानाकारकस्य ग्राह्याभावावगाहिनो ग्राह्याभावव्याप्यावगाहिनश्च ज्ञानस्य ग्राहकीभूतज्ञानप्रतिबन्धकत्वात् 'पर्वतो वह्निमान्' इति परामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्युनुमितिस्वीकारे परामर्शकालीनस्य ग्राह्याभावावगाहिनः 'पर्वतो न वह्निमान्' इति बाधनिश्चयस्य ग्राह्याभावव्याप्यावगाहिनः 'पर्वतो वह्न्यभावव्याप्यजलवान्' इति सत्प्रतिपक्षनिश्चयस्य च भिन्नाकारकत्वेन तादृशलिङ्गोपहितानुमितिप्रतिबन्धकत्वं न स्यात्। न हि प्रतिबन्धकसत्त्वे हेतुसहस्रादपि फलमुत्पद्यते।

केचित्तु 'पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमितिंप्रति तु पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन बाधसत्प्रतिपक्षनिश्चययोरेव प्रतिबन्धकत्वं न तु पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाधसत्प्रतिपक्षनिश्चययोरिति न तत्राशतो बाधसत्प्रतिपक्षयोः दोषत्वं, लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमते तु अनुमितौ सर्वत्रैव विशिष्टस्यैव पक्षस्य विशेष्यतया भानं न तु शुद्धस्येति सर्वाप्यनुमितिः पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनैवेति ता प्रत्यशतो बाधसत्प्रतिपक्षनिश्चययोःप्रतिबन्धकत्वादशतो बाध-सत्प्रतिपक्षयोर्दोषत्वं न भवेदिति व्याख्यानयन्ति, तदज्ञानविलसितम् सामानाधिकरण्येन अनुमितिं प्रति सिद्धिमात्रस्यैव बाधनिश्चयमात्रस्य

▶ वल्लभा ◀

एकविशेषणविशिष्ट में अपरविशेषणवैशिष्ट्यावगाही बोध की मर्यादा के अनुसार अवश्यक्लृप्त कार्यकारणभाव से ही हो जाने की वजह लिङ्गविषयक अनुमिति के प्रति हमारे मत में परामर्श में स्वतन्त्र कारणता की कल्पना अनावश्यक है। अतः इस लाघव के सहकार से भी लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि की जा सकती है'←समाधान में लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी की ओर से यह कहा जाता है कि प्रदर्शित रीति से लिङ्गविषयक एवं लिङ्गाऽविषयक दहन अनुमिति के प्रति एकरूपेण ही परामर्श में कारणता का स्वीकार उचित है। अर्थात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' एवं 'पर्वतो वह्निमान्' इन दोनों अनुमितिओं के प्रति पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकपरामर्शत्वेन रूपेण परामर्श को हेतु माना जा सकता है। तादृश परामर्श के कार्यतावच्छेदकविधया दोनों अनुमितिओं में अनुगत पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपितवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व का स्वीकार करने से व्यभिचार, गौरव आदि दोष को भी अवकाश नहीं रहेगा। इसलिए लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी के मत में गौरव का उद्भावन करना अपनी अज्ञता का ही प्रदर्शन है। प्रत्युत लिङ्गविषयकत्वबाधाभावस्थलीय सब अनुमिति में लिङ्गावगाहिता की कल्पना करने की वजह लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मत में ही गौरव प्रसक्त होता है।

◆ लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी का परिष्कार ◆

यत्तु०। यहाँ कुछ लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिओं का लिङ्गोपहितभानपक्ष में यह आक्षेप है कि→''यदि परामर्श से उत्पन्न होनेवाली लैङ्गिकानुमिति को लिङ्गावगाही मानी जाय तब 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इस परामर्श से होनेवाली 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इस अनुमिति के प्रति 'पर्वतो न वह्निमान्' यह आंशिक = पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाधनिश्चय एवं 'पर्वतो वह्न्यभावव्याप्यजलवान्'

तन्न, लिङ्गाविषयकानुमितावेव तयोः प्रतिबन्धकत्वात्।

यदपि शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन परामर्शात्तथैव सिद्धौ लिङ्गविषयकानुमित्यापत्तिरिति ।

◆ हेमलता ◆

सत्प्रतिपक्षनिश्चयमात्रस्य च प्रतिबन्धकत्वात्। पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमितिम्प्रति पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाधनिश्चययोरप्रतिबन्धकत्वोपगमे तु पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन 'पर्वतो वह्निमानि'ति लिङ्गज्ञान प्रति पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन ग्राह्याभाव-तद्व्याप्यावगाहिनोः 'पर्वतो न वह्निमान्' 'पर्वतो वह्निविरहव्याप्यजलवानि'तिबाधसत्प्रतिपक्षनिश्चययोरप्रतिबन्धकत्वप्रसङ्गात्। पक्षैकदेशे बाधादिनिश्चयदशाया तदितरदेशावच्छेदेन तु पक्षेऽनुमितिरभिमतैव। अत एव 'पर्वते शिखरे न वह्निः' इति बाधनिश्चयेऽपि मूले पर्वते वह्निव्याप्यधूमवत्तापरामर्शात् 'मूलावच्छिन्नः पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिरप्युपपद्यते। लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिपक्षे सर्वासामप्यनुमितीना पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्यावगाहित्वकथनमपि न चारु लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनयेऽत्र वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वलक्षणपक्षतावच्छेदकावच्छेदेनैवानलानुमितिस्वीकारसम्भवेन ताम्प्रति पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनापि बाध-सत्प्रतिपक्षनिश्चययोः प्रतिबन्धकत्वोपपत्तेरिति दिक्।

प्रकृते लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी सामानाधिकरण्येन बाधसत्प्रतिपक्षयोः दोपत्वमाविष्कर्तुमुपक्रमते-तन्नेति। उपदर्शितापादनाऽयुक्तत्वमेव दर्शयति लिङ्गाविषयकानुमितौ=पक्षेऽलौकिक-हेत्वभावनिश्चयादिसमकालीनाया लिङ्गविनिर्मुक्ताया अनुमितौ एव तयो = पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन बाध-सत्प्रतिपक्षनिश्चययोः प्रतिबन्धकत्वात् = कारणीभूताभावप्रतियोगित्वाभ्युपगमात्। एतेनापसिद्धान्तोऽपि प्रत्युक्त सामानाधिकरण्येन बाधसत्प्रतिपक्षनिश्चययोः सर्वथाऽप्रतिबन्धकत्वानुपगमात्। मूले एवकारेण लिङ्गविषयकलैङ्गिकभानव्यवच्छेदः कृतः। एतेन सामानाधिकरण्येन लिङ्गोपहितानुमितेः सामानाधिकरण्येन बाधादिनिश्चयाऽप्रतिबध्यत्वमाविष्कृत लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिना।

केचित्तु तयो = अशतो बाधसत्प्रतिपक्षयोरिति व्याचक्षते तत्र निश्चीयमानयोरित्यध्याहार्यम्, अन्यथा बाधादे' स्वरूपसत एव प्रतिबन्धकत्वापत्तेः। वस्तुतस्तु बाधसत्प्रतिपक्षनिश्चययोरेव तत्प्रतिबन्धकत्वम्। तेनातीतबाधादिनिश्चयादपि तत्कालीनानुमितिप्रतिरोधोपपत्तिः। अत एवातीतकालावच्छेदेन भूतलादेः वह्निशून्यत्वेन निश्चितत्वेऽपि धूमपरामर्शादिदानीमनलानुमित्युदयोऽपि सङ्गच्छते, साम्प्रतकालावच्छेदेन बाधनिश्चयस्य विरहात्। न चैव बाधज्ञानस्य भ्रमत्वज्ञानदशायामप्यनुमित्यनापत्तिरिति वक्तव्यम् भ्रमत्वानास्कन्दितबाधादिनिश्चयस्यैव तत्प्रतिबन्धकत्वाङ्गीकारादिति दिक्।

यदपि शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन परामर्शात् = 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'त्येव यत्किञ्चित्पर्वतविशेष्यकनिश्चयमाश्रित्य, तथैव = शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनैव 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारिकाया सिद्धौ सत्यामपि लिङ्गविषयकानुमित्यापत्ति = 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान्'

► वल्लभा ◄

यह आशिक सत्प्रतिपक्षनिश्चय प्रतिबन्धक=हेत्वाभास बन नही सकेगा, क्योकि अनुमिति वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतविशेष्यक होने से एव बाधादिनिश्चय केवल (=शुद्ध) पर्वत विशेष्यक होने से दोनो परस्पर समान आकारक नही है। दो ज्ञानो के बीच प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव तब हो सकता है यदि दोनो समानाकारक हो। प्रस्तुत मे ग्राह्याभावादिज्ञान (=बाधादिनिश्चय) भिन्नाकारक होने से उसमे धूमावगाही वह्निअनुमिति की प्रतिबन्धकता नामुमकिन हो जाती है। अतएव तादृशानुमिति के प्रति आशिक (=यत्किञ्चित्पर्वतादिविषयक) बाध एव सत्प्रतिपक्ष दोष बन नही सकेगा। इसलिए लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान को मान्यता दी जा नही सकती''←

तन्न०। मगर विचार करने पर उपर्युक्त आक्षेप निराधार प्रतीत होता है, क्योकि पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन अर्थात् पक्ष के एक देश मे (=यत्किञ्चित् पर्वत आदि मे) बाध एव सत्प्रतिपक्ष को लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी दोष मानते ही नही हैं। लिङ्गावगाही अनुमिति तो तादृशबाधादिनिश्चय से अप्रतिबध्य होने से उपर्युक्त वक्तव्य इष्टापत्ति ही है। हॉ, फिर भी बाधादिनिश्चय मे प्रतिबन्धकता तो मानी जा सकती ही है मगर वह लिङ्गोपहित अनुमिति के प्रति नही मगर लिङ्गानुपहित (=लिङ्गाविषयक) अनुमिति के प्रति ही। पक्ष मे हेतुअश मे अलौकिक बाधादिनिश्चय होने पर तो लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी भी लिङ्गानुपहित लैङ्गिकभान का स्वीकार करते हैं। इसका निरूपण तो पहले [देखिये पृष्ठ ५२] हो चूका है। तब धूमपरामर्श से होनेवाली अनुमिति 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक होने से पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन अर्थात् यत्किञ्चित् पर्वत मे 'पर्वतो न वह्निमान्' इत्याकारक बाधनिश्चय एव एक पर्वत मे 'पर्वतो वह्निविरहव्याप्यवान्' इत्याकारक सत्प्रतिपक्षनिश्चय समानाकारक ग्राह्याभावावगाही एव ग्राह्याभावव्याप्यावगाही बन जाता है। अतएव तब उन दोनो के बीच प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव की सङ्गति हो सकती है। इसलिए लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के पक्ष मे अशत बाध एव सत्प्रतिपक्ष मे सर्वथा अदोषत्व की आपत्ति को अवकाश रह नही सकता।

► लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादि का आक्षेप एव उसका परिहार ◄

यदपि। लिङ्गोपहितवादी के खिलाफ लिङ्गानुपहितवादी कुछ नैयायिको का यह वक्तव्य है कि→'जब 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन परामर्श होता है और शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन= पर्वतत्वरूपेण किसी पर्वत मे सिद्धि, जो 'पर्वतो

13

तत्र परस्येष्टापत्तिः तस्यास्तत्रापि विरोधित्वे तु लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन परामर्शादपि तस्या सत्यामनुमित्यनापत्तेः।

◆ हेमलता ◆

इत्यनुमापत्ति', शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चयस्य शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्न्यनुमितिं प्रति प्रतिबन्धकत्वेन तदानीं 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितेरसम्भवात्, यत्किञ्चित्पर्वते 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिनिश्चयस्य सत्त्वात् 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितेः शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन 'पर्वतो वह्निमान्' इतिसिद्धिप्रतिबध्यताकोटिविनिर्मुक्तत्वाच्च इति केनचिल्लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिनोक्त, तन्मन्दम्, तत्र = तदानीं लिङ्गोपहितलैङ्गिकानुमित्यापादने परस्य = लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनः इष्टापत्ति सम्भवति, इत्यमपि स्वाभिलषितविषयसिद्धेः। ततश्चात्र 'येन केन प्रकारेण स्वाभीष्टमाप्नुयाज्जनः'' इति न्यायापात'। इत्थ लिङ्गानुपहितवादिनो लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिसाहाय्यकरण न युक्तमित्याशयः।

ननु शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्धेः शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानुमिताविव वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानुमितावपि प्रतिबन्धकत्वात् 'पर्वतो वह्निमानि'ति शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिन्या सिद्धे सत्त्वे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिनिश्चयान्न 'पर्वतो वह्निमानि'ति शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाह्यनुमितिप्रसङ्गो न वा वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिन्या' 'वह्निव्याप्यधू- मवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितेः प्रसङ्ग इति न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनोऽत्रेष्टापत्तिस्सम्भवतीत्याशङ्कायां प्रकरणकार' प्राह- तस्या = शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानलसिद्धे' तत्र = वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानलानुमितौ अपि विरोधित्वे = प्रतिबन्धकत्वोपगमे तु लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन परामर्शादपि = 'वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिनिश्चयमात्मस्यापि तस्या = शुद्धपर्वतत्वसामाना- धिकरण्येनानलसिद्धौ 'पर्वतो वह्निमानि'त्याकारिकाया सत्या अनुमित्यनापत्ते = 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमिते' उभयपक्षसम्मताया अपि उदयाऽसम्भवात्, तस्या' शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्धित. प्रतिबध्यत्वात्।

ननु लिङ्गोपहितलैङ्गिकभाननये शुद्धपर्वतत्वसामाधिकरण्येन सिद्धो सत्या शुद्धपर्वतत्वसमानाधिकरण्येन धूमपरामर्शात् कथ 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो

▶ वल्लभा ◀

वह्निमान्' इत्याकारक होती है, भी होती ह तब हमारे मतानुसार तो 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन अनुमिति हो सकती नहीं है, क्योंकि शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निअनुमिति के प्रति शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चय प्रतिबन्धक होता है। मगर धूमपरामर्श से 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक लिङ्गोपहित अनुमिति का स्वीकार किया जाय तब तो 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्धि=निश्चय होने पर भी 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन धूमपरामर्श से 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति की आपत्ति आयेगी, क्योंकि लिङ्गोपहित वह्निअनुमिति शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाही नहीं होने से शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाही वह्निसिद्धि की प्रतिबध्यताकोटि से बहिर्भूत हैं। इस समस्या के सबब लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान का स्वीकार किया जा नहीं सकता'←

तत्र०। मगर लिङ्गानुपहितलैङ्गिभानवादी का उपर्युक्त कथन असङ्गत है, चूँकि यहाँ प्रतिवादी है लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी, जिसको प्रदर्शित परिस्थिति में धूमपरामर्श के बल से 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति की आपत्ति अनिष्ट नहीं है किन्तु इष्ट ही है। प्रतिवादी के अभीष्ट का ही आपादन करने से वादी निगृहीत होता है। इसलिए लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी का उपर्युक्त आक्षेप नितान्त मिथ्या है। तब लिङ्गोपहित वह्निअनुमिति का स्वीकार करने पर भी लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि हो जायेगी। यदि यहाँ यह कहा जाय कि→'शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निसिद्धि जैसे शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निअनुमिति की विरोधी है ठीक वैसे ही वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाही वह्निविधेयक अनुमिति की भी विरोधी है। इसलिए शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाही धूमपरामर्श उपस्थित होने पर भी 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाही वह्निसिद्धि होने पर 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाही वह्निविधेयक अनुमिति की आपत्ति को अवकाश रहता नहीं है। प्रतिबन्धक होने पर कार्यजन्म कैसे मुमकिन होगा?' ←

तस्या०। तो लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी का यह कथन भी असङ्गत है, क्योंकि शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निसिद्धि को शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाही वह्निअनुमिति की भी विरोधी मानी जायेगी तब तो 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाही धूमपरामर्श होने पर भी 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निसिद्धि से 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निविधेयक अनुमिति प्रतिबध्य हो जाने की वजह तब 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का उदय हो नहीं सकेगा। मगर शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निसिद्धि होने पर भी वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन धूमपरामर्श से वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वसामानाधिकरण्येन 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का उदय तो लिङ्गोपहितवादी एवं लिङ्गानुपहितवादी दोनों वादियों को मान्य है। स्वसम्मत तादृश अनुमिति की उपपत्ति न होने की वजह यहाँ लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी की ओर से जो कहा गया था वह अपनी मनमानी केवल कल्पना ही

वस्तुतः शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निमत्तानिश्चयस्य पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक - वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वमेव प्रतिवध्यतावच्छेदक न तु पर्वतत्वातिरिक्त यद् वह्निव्याप्यधूमादि तदतिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताकवह्निविधेयताकानुमितित्व, महागौरवात्।

◆ हेमलता ◆

वह्निमानि'त्यनुमितिः सम्भवतीत्याशङ्काया लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवायाह वस्तुत इति। शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन = पर्वतत्वावच्छिन्नाधिकरणतावति यस्मिन् कस्मिंश्चित् वह्निमत्तानिश्चयस्य पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यता-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वमेव प्रतिवध्यतावच्छेदकम्। वह्निव्याप्यधूमस्य पर्वतत्वातिरिक्तधर्मत्वेन वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिदहनानुमितिनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतायाः पर्वतत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्नात् वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानलानुमिते' न शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहि- वह्निसिद्धिप्रतिवध्यत्वम्। ततः शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन 'पर्वतो वह्निमानि'ति सिद्धिसत्त्वेऽपि धूमपरामर्शात् वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिन्या' 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितेरनपायत्वमेव। न हि प्रतिवध्यतावच्छेदकधर्मानाक्रान्तस्य प्रतिरोध कर्तुं प्रतिवन्धकोऽपि प्रभु'।

ननु शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन दहनसिद्धेः प्रतिवध्यतावच्छेदक न पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक - वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व किन्तु पर्वतत्व - वह्निव्याप्यधूमातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक - वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वमेव। ततश्च शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानलनिश्चयदशाया धूमपरामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितिरपि न सम्भवति, वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितिनिष्ठविशेष्यितानिरूपितविशेष्यतया वह्निव्याप्यधूम-पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्वेन तादृशानुमितेः प्रतिवध्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात्। ततश्च न लिङ्गोपहितलैङ्गिकसिद्धिरित्याशङ्कामपाकर्तुं लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवायाह न तु पर्वतत्वातिरिक्तमित्यादि। अत्र 'पर्वतत्वातिरिक्त यद्वह्निव्याप्यधूमादिव्यतिरिक्त तदनवच्छिन्नविशेष्यताकवह्निविधेयताकानुमितित्व' इत्येवम्पाठो भवितुमर्हति, यथाश्रुतपाठस्तु न सङ्गच्छते। तथा सति पर्वतत्वातिरिक्त यद्वह्निव्याप्यधूमादि तदतिरिक्तधर्मः पर्वतत्वमपि, तदनवच्छिन्नविशेष्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्य शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानुमितावप्यभावादिति वदन्ति।

लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी तद्व्यवच्छेदे हेतुमाह- महागौरवादिति प्रतिवध्यतावच्छेदकधर्मशरीरकृतगौरवात्। प्रतिवध्यतावच्छेदकस्य प्रतिवन्धकतदभावनिष्ठकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकत्वेनात्र कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरगौरवापातात् कार्यकारणभावशरीरगौरवमिति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनोऽभिप्रायः।

► वल्लभा ◄

है, जो वास्तविकता की भूमिका को छूती नही है।

वस्तुत०। मगर जव तक वास्तविवकता का सवाल ह तव हम यह कह सकते हे कि शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निमत्ता के निश्चय का, जो पर्वतत्वरूप से किसी पर्वतविशेष मे अग्नि का अवगाहन करता है, प्रतिवध्यतावच्छेदक धर्म है पर्वतत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्नविशेष्यताकवह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्व। अत पर्वतत्व से भिन्न धर्म जिसका अवच्छेदक नही हे ऐसी विशेष्यता की निरूपक वह्निअनुमिति ही शुद्धपर्वतत्वगामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चय से प्रतिवध्य होगी। इसलिए शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चय होने पर 'पर्वतो वह्निमान्' यह अनुमिति हो सकती नही है, क्योकि इस अनुमिति की विशेष्यता पर्वतत्व से ही अवच्छिन्न है न कि पर्वतत्वातिरिक्त धर्म से। मगर इस परिस्थिति मे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति होने मे कोई दिक्कत नही होगी, क्योकि पर्वतत्व से भिन्न वह्निव्याप्यधूम से अवच्छिन्न विशेष्यता का अवगाहन वह अनुमिति करती हे। इसलिए लिङ्गोपहितलैङ्गिकभान की सिद्धि निरावाध होगी। यहाँ ऐसा कहा जा नही सकता कि →'शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चय का प्रतिवध्यतावच्छेदक शुद्धपर्वतत्वातिरिक्त जो वह्निव्याप्यधूमादि, उनसे अतिरिक्त द्रव्यत्वादि धर्म से अनवच्छिन्न विशेष्यता की निरूपक वह्निविधेयक अनुमिति मे रहनेवाला तादृशानुमितित्व ही है। इसलिए 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक किसी पर्वत मे वह्निनिश्चय होने पर धूमपरामर्श से 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति भी हो नही सकेगी, क्योकि उस अनुमिति की विशेष्यता का अवच्छेदक वह्निव्याप्यधूम एव पर्वतत्व को छोड कर अन्य कोई नही होने से वह वह्निविधेयताक अनुमिति पर्वतत्व-वह्निव्याप्यधूमातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यतानिरूपक ही है। प्रतिवध्यतावच्छेदकाक्रान्त तादृश अनुमिति का उदय तव प्रतिसिद्ध होने से लिङ्गोपहित लैङ्गिकभान की सिद्धि हो नही सकेगी'←क्योकि इस कल्पना मे प्रतिवध्यतावच्छेदकधर्म अति गुरुभूत होता है। शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निसिद्धि के प्रतिवध्यतावच्छेदकधर्मविधया पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक-वह्निविधेयकानुमितित्व की अपेक्षा पर्वतत्व-वह्निव्याप्यधूम-अतिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक-वह्निविधेयकानुमितित्व का स्वीकार करने पर प्रतिवध्यतावच्छेदक धर्म मे गोरव स्पष्ट ही हे। अतएव इस परिस्थिति मे प्रतिवन्धकाभाव का कार्यतावच्छेदक भी अतिगुरु हो जायेगा, क्योकि प्रतिवध्यतावच्छेदक धर्म प्रतिवन्धकाभावनिष्ठकारणता से निरूपित कार्यता का अवच्छेदक वनता है। इसलिए पर्वतत्वेन रूपेण पर्वतविशेष मे वह्नि का निश्चय होने पर भी धूमपरामर्श से 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति होने मे कोई वाधा नही होगी, क्योकि वह पर्वतत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्नविशेष्यताक है। अत इसके फलस्वरूप लिङ्गोपहित लेङ्गिकभान की सिद्धि हो जायेगी।

अत्रेद विचारणीय शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्धिसत्त्वे लिङ्गविषयकानुमित्यभ्युपगमे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इति परामर्शघटितसामग्र्याः प्रत्यक्षप्रतिबन्धकत्वे 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमानि'तिसिद्ध्यभावस्य घटकत्वे गौरवम्। किञ्च 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'ति बाधकाले 'पर्वतो वह्निमानि'तिसिद्धिमत्त्वे प्रत्यक्षस्यैवोदयात्प्रागुक्तपरामर्शघटितसामग्रीप्रतिबन्धकताया

◆ हेमलता ◆

प्रकरणकार इदानीं लिङ्गोपहितलैङ्गिकभाननिराकरणार्थमुपक्रमते-अत्र = शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिवह्निनिश्चयनिष्ठप्रतिबन्धकतानिरूपित-प्रतिबध्यतावच्छेदकधर्मविधया पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक-वह्नित्वावच्छिन्नविधेयताकानुमितित्वस्वीकारे, इद अनुपद वक्ष्यमाण विचारणीयम्। तथाहि शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्धिसत्त्वे = वह्निनिश्चयदशायां लाघवेन पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताकवह्निविधेयकानुमितित्वे तत्प्रतिबध्यतावच्छेदकत्वमङ्गीकृत्य धूमपरामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्येव लिङ्गविषयकानुमित्यभ्युपगमे = दर्शितलिङ्गोपहितलैङ्गिकभान-स्वीकारे तु 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इति परामर्शघटितसामग्र्याः प्रत्यक्षप्रतिबन्धकत्वे =विभिन्नविषयकसाक्षात्कारप्रतिबन्धकत्वशरीरे 'वह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतो वह्निमानि'तिसिद्ध्यभावस्य घटकत्वे = घटकत्वस्वीकारे गौरव = अवच्छेदकगौरवम्। अयम्भावः पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक-वह्निविधेयकानुमितित्वस्य शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहि-वह्निसिद्धिप्रतिबध्यतावच्छेदकत्वे तत्सत्त्वेऽपि धूमपरामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इति लिङ्गविषयकानुमितिर्न प्रतिरोद्धुं शक्येति तांप्रति 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'तिसिद्धेः प्रतिबन्धकत्वमवश्यकल्पनीयम्। ततश्च तादृशसिद्धिप्रतियोगिकाभावस्य लिङ्गावगाह्यनुमितिम्प्रति कारणत्व वाच्यमिति भिन्नविषयकसाक्षात्कारप्रतिबन्धकीभूतानुमितिसामग्रीशरीरे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यादिसिद्धिविरहस्य निवेशनीयत्वेन गौरवम्। लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानपक्षे तु 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इति परामर्शघटितानुमितिसामग्र्याः प्रत्यक्षप्रतिबन्धकत्वे 'पर्वतो वह्निमानि'ति सिद्धिविरहस्यैव घटकत्वमिति लाघवम्।

ननु प्रतिबन्धकतावच्छेदकस्य कारणताशरीरेऽप्रविष्टत्वेन प्रतिबन्धकतावच्छेदकगौरवस्य निर्दोषत्व तत्र तत्र प्रसिद्धमेवेत्याशङ्कायां प्रकरणकारो लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानपक्षे दोषान्तरमाविष्करोति - किञ्चेति। 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इतिबाधकाले = पर्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमाभावप्रकारकनिश्चयदशायां 'पर्वतो वह्निमानि'तिसिद्धिमत्त्वे लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमते या 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिः स्वीक्रियते सा न सम्भवति, शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन दहननिश्चयस्य प्रतिबध्यतावच्छेदकीभूतेन पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक-वह्निविधेयकानुमितित्वेन तस्या आक्रान्तत्वात्। तदानीं भिन्नविषयकस्य प्रत्यक्षस्य एव उदयात् प्रागुक्तपरामर्शघटितसामग्रीप्रतिबन्धकताया ='पर्वतो

► वल्लभा ◄

लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादसमीक्षा

अत्रेद वि०। मगर प्रकरणकार श्रीमद्जी यहाँ अपने विचारों को व्यक्त करने के लिए कहते है कि लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी का उपर्युक्त मन्तव्य विचारणीय है न कि विना विचारविमर्श के उपादेय। इसका कारण यह है कि शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चय के प्रतिबध्यतावच्छेदकधर्मविधया पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताकवह्निविधेयकानुमितित्व का स्वीकार किया जाय और पर्वतत्वरूपेण यत् किञ्चित् पर्वत मे वह्नि का निश्चय होने पर भी धूमपरामर्श मे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक लिङ्गावगाही अनुमिति का स्वीकार किया जाय तब तो लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मतानुसार गौरव प्रसक्त होगा, क्योंकि प्रत्यक्ष के प्रति अनुमितिसामग्री प्रतिबन्धक होने से 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारकपरामर्श से घटित अनुमितिसामग्री मे, जो प्रत्यक्षप्रतिबन्धक है, 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक सिद्धि के अभाव का घटकविधया निवेश करना होगा, अन्यथा धूमपरामर्श होने पर कभी भी 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इस अनुमिति का प्रतिरोध हो नहीं सकेगा। मगर यह तो लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी को भी नामंजूर है।

किञ्च०। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि जब 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक हेत्वभावनिश्चय पक्ष मे होगा और 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक सिद्धि=निश्चय की उपस्थिति होगी तब प्रत्यक्ष का ही उदय होगा, क्योंकि प्रत्यक्ष के प्रति अनुमितिसामग्री प्रतिबन्धक होती है। इसलिए 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से घटित अनुमितिसामग्री, जो प्रत्यक्षप्रतिबन्धक है, मे 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चय के अभाव का भी प्रवेश होगा। मगर जब 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक बाध=लिङ्गाभावनिश्चय होता नहीं है तब भी 'पर्वतो वह्निमान्' ऐसी शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निसिद्धि होने पर लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मतानुसार 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का ही उदय होगा न कि प्रत्यक्ष का, क्योंकि लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मतानुसार शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन दहननिश्चय का प्रतिबध्यतावच्छेदक धर्म पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक-वह्निविधेयताकअनुमितित्व होने से लिङ्गोपहित अनुमिति सिद्धिप्रतिबध्यतावच्छेदक धर्म से अनाक्रान्त है। इसलिए तब भिन्नविषयक प्रत्यक्ष के वारणार्थ भिन्नविषयकप्रत्यक्षप्रतिबन्धकसा-

शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्ध्यभावोऽपि निविशते तथाविधबाधासत्त्वेऽप्युक्तसिद्धिसत्त्वेऽनुमितेरुत्पत्तेस्तदानी भिन्नविषयकप्रत्यक्ष-वारणाय तादृशसिद्ध्यभावमनिवेश्यापि प्रतिबन्धकतान्तरकल्पनमावश्यकमिति गौरवम्।

अस्माकन्तु 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'तिबाधकालीनादपि 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् 'पर्वतो वह्निमानि'तिसिद्धिसत्त्वेऽनुमितेरनभ्युपगमात् सिद्ध्यभावानिवेशेन प्रतिबन्धकत्वकल्पने लाघवमिति।

◆ हेमलता ◆

वह्निव्याप्यधूमवानि'ति निश्चयगर्भिताया भिन्नगोचरसाक्षात्कारप्रतिबन्धकीभूतायामनुमितिसामग्र्या शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन = 'पर्वतो वह्निमान्' इतिनिश्चयप्रतियोगिकाभावः अपि निविशते, अन्यथा तादृशसिद्धिसत्त्वे पक्षे हेत्वभावनिश्चयदशाया प्रत्यक्षोदयानुपपत्तेः। तथाविधबाधाऽसत्त्वे = शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्'इति हेत्वभावनिश्चयस्य विरहदशाया अपि उक्तसिद्धिसत्त्वे = शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन 'पर्वतो वह्निमान्'इति निश्चयस्योपस्थितो लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमते पर्वतत्वातिरिक्तधर्मानवच्छिन्नविशेष्यताक-वह्निविधेयकानुमितित्वस्यैव शुद्धपर्वत-त्वसामानाकिरण्येन सिद्धिप्रतिबध्यतावच्छेदकत्वेन तद्विनिर्मुक्तायाः 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारिकाया अनुमिते एव उत्पत्ते = उदयस्वीकारात् तदानी = हेत्वभावनिश्चयाभावविशिष्टविधेयनिश्चयदशाया भिन्नविषयकप्रत्यक्षवारणाय 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शघटिते प्रतिबन्धकसामग्रीशरीरे तादृशसिद्ध्यभाव = शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन 'पर्वतो वह्निमानि'तिनिश्चयविरह अनिवेश्यापि भिन्नविषयक प्रत्यक्ष प्रति प्रतिबन्धकतान्तरकल्पन = पृथक्प्रतिबन्धकत्वकल्पन आवश्यक, अन्यथा तदानी भिन्नविषयकसाक्षात्कारोदयस्य लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनाऽनङ्गी-कृतस्य गीर्वाणगुरुणापि निवारयितुमशक्यत्वात् इति = स्वतन्त्रप्रतिबन्धकत्वकल्पनावश्यकत्वेन हेतुना भिन्नविषयकप्रत्यक्ष प्रति कारणतान्तरकल्पनावश्य-कत्वाल्लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमते गोरव दुर्निवारम्।

नन्विद गौरव तु लिङ्गानुपहितलेङ्गिकभानवादिनाऽपि स्वीकर्तव्यमिति तुल्यत्वान्न लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिपक्षे दूषणावकाशो मनागपीत्याशङ्का-यामाचष्टे - अस्माक लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिना मते तु 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवानि'तिबाधकालीनादपि किं पुनः तादृशहेत्वभावनिश्चयाभावकाली-नादित्यपिशब्दार्थः, विशेष्यमुपदर्शयति 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् 'पर्वतो वह्निमानि'तिसिद्धिसत्त्वे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारिकाया अनुमितेः अनभ्युपगमात् उक्तपरामर्शघटितसामग्र्या सिद्ध्यभावाऽनिवेशेन = 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'ति निश्चयाभावप्रवेशाना-वश्यकत्वेन भिन्नविषयकप्रत्यक्ष प्रति प्रतिबन्धकत्वकल्पने लाघव = प्रतिबन्धकतान्तराऽकल्पनेन लाघवमित्यर्थः। इदमत्राकूतम् लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभान-वादिना मते पर्वते हेत्वभावनिश्चयकाले तदभावकाले च 'पर्वतो वह्निमानि'तिनिश्चयदशाया 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिर्न भवितुमर्हति, तस्याः शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्धिप्रतिबध्यत्वात् 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'ति परामर्शात् 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिस्तु नैवोपेयते। अतो न भिन्नगोचरप्रत्यक्ष प्रति प्रतिबन्धकीभूतेऽनुमितिसामग्रीशरीरे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शघटिते 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'तिनिश्चयाभावप्रवेश' आवश्यकः। अतो लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिमते प्रतिबन्धकताद्वयाऽकल्पनेन लाघवम्। लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिपक्षे तु प्रदर्शितरीत्या प्रतिबन्धकताद्वयकल्पनावश्यकत्वेन गौरवमुक्तमेव।

अथ लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमते 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इतिद्विविधपरामर्शयोः 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'त्येकविधानुमिति प्रत्येव कारणत्व ताम्प्रति 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'तिनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्वम्।

▶ वल्लभा ◀

मग्री मे से शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्धि के अभाव का बहिर्भाव करना होगा। मतलब कि हेत्वभावनिश्चयकालीन और हेतुनिश्चयकालीन भिन्नविषयकप्रत्यक्षप्रतिबन्धकता मे द्वैविध्य प्रसक्त होने से गोरव होगा। लिङ्गोपहित-लैङ्गिकभानवादी के मतानुसार अवश्य कल्पनीय अन्य प्रतिबन्धकता लिङ्गानुपहितलेङ्गिकभानवादी के मत मे अनावश्यक होने से वैशेषिकमतानुसारी पक्ष मे गौरव स्पष्ट ही है।

अस्माक०। हमारे मतानुसार तो 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक बाध=हेत्वभावनिश्चय होने पर भी उसके समकालीन 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श से वह्निविधेयक अनुमिति ही अस्वीकृत हे, यदि तब 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक सिद्धि=निश्चय हो तो। तब विभिन्नविषयक प्रत्यक्ष का ही उदय होगा। इसलिए विभिन्नविषयक प्रत्यक्ष की प्रतिबन्धकीभूत पर्वतविशेष्यकपरामर्शादिघटित सामग्री मे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारकनिश्चय के अभाव का निवेश करने की कोई जरूरत ही नही होगी। वह आवश्यकता तब होती यदि उपर्युक्त परिस्थिति मे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का हम स्वीकार करे। मगर हम लिङ्गानुपहितलेङ्गिकभानवादी तादृश अनुमिति को मान्यता देते नही है। अतएव द्विविध प्रतिबन्धकता की कल्पना हमारे मतानुसार अनावश्यक होने से लाघव है। केवल एकविध प्रदर्शित प्रतिबन्धकता के स्वीकार से ही सब सङ्गत हो जाता है।

अथ लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन च परामर्शघटितसामग्र्योरेकरूपेणैव प्रतिबन्धकत्वान्नोक्तदोष इति चेत् ? न, लिङ्गान्तरविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन सिद्धौ सत्यां लिङ्गान्तरविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानुमित्यनुदया- पत्तिवारणाय तत्तत्सिद्ध्यभावादिघटिततत्तद्रूपेण प्रतिबन्धकत्वावश्यकत्वादिति दिग्।

◆ हेमलता ◆

ततश्च लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन च परामर्शघटितसामग्र्यो विभिन्नविषयप्रत्यक्षं प्रति एकरूपेण = लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिवह्निविधेयकानुमितिप्रयोजकसामग्रीत्वेन यद्वा लिङ्गविशिष्टपर्वतविशेष्यक-वह्निनिश्चयाभाव-विशिष्टत्वेन रूपेण एव प्रतिबन्धकत्वात् = प्रतिबन्धकत्वस्वीकारात् न उक्तदोषः = प्रतिबन्धकताद्वयकल्पनलक्षणो दोषः सम्भवति इति चेत् ?

लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी तन्निराकरोति- नेति। उक्तरीत्या भिन्नविषयकप्रत्यक्षं प्रति लिङ्गविशिष्टपर्वतविशेष्यक-वह्निनिश्चयाभावविशिष्टत्वेन रूपेण प्रतिबन्धकत्वोपगमे लिङ्गान्तरविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन = वह्निव्याप्यालोकादिविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन दहनानुमितिर्नोपजायेत, वह्निव्याप्यविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन दहननिश्चयस्य सत्त्वेन विभिन्नविषयप्रत्यक्षस्य प्रतिबध्यताकोटिबहिर्भूतत्वात्, युगपज्ज्ञानद्वयोत्पादानभ्युपगमात्। ततश्च तदानीं लिङ्गान्तरविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन अनुमित्यनुदयापत्तिवारणाय = 'वह्निव्याप्यालोकविशिष्टपर्वतो वह्निमानि'त्यनुमित्यनुदयप्रसङ्गनिराकरणकृते तत्तत्सिद्ध्यभावादिघटिततत्तद्रूपेण=वह्निव्याप्यालोकविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिनिश्चयाभावविशिष्ट-पर्वतपक्षकालोकपरामर्शत्वादिना रूपेण विभिन्नविषयकप्रत्यक्षं प्रति प्रतिबन्धकत्वावश्यकत्वात् = प्रतिबन्धकत्वकल्पनाया आवश्यकत्वेन नानाप्रतिबन्धकताकल्पनागौरवात्। 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'तिनिश्चयदशायां 'पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवानि'तिपरामर्शात् 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितेरभीष्टत्वेन वह्निव्याप्यालोकविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानुमितिं प्रति न वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चयस्य प्रतिबन्धकता स्वीकर्तुमर्हति। ततः तादृशानुमितिं प्रति वह्निव्याप्यालोकविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन वह्निनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकता वाच्या। एवं वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येनानुमितिं प्रति वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन दहननिश्चयस्य प्रतिबन्धकता वाच्या। तत्तत्सिद्धिविरहस्य तत्तदनुमितौ कारणत्वात् विभिन्नविषयकप्रत्यक्षं प्रति तत्तत्सिद्धिविरहविशिष्टतत्तत्परामर्शत्वेन नानाप्रतिबन्धकतागौरवमनिवार्यमेव लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिनये। किञ्चैवमपि 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानि'तिनिश्चयसत्त्वे 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निव्याप्यालोकवानि'ति परामर्शात् 'वह्निव्याप्यालोकवान् वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिर्न सम्भवेत्, तस्या वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहित्वेन तत्प्रतिबध्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात्। ततश्च पर्वते तदानीं तदनुत्पत्तिवारणाय तल्लिङ्गकानुमितौ तल्लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन निश्चयस्य प्रतिबन्धकता वाच्या। ततश्च भिन्नविषयकप्रत्यक्षनिरूपिताया प्रतिबन्धकताया महागौरवापत्तिः। न च फलाभिमुखत्वेन तद्दोषत्वमिति वाच्यम् तन्निश्चयपूर्वमेव गौरवोपस्थितेः फलमुखत्वकल्पनाया अयोगात्, प्रयोजनविरहेणानुमितौ लिङ्गविषयकत्वकल्पने मानाभावाच्चेत्यादिसूचनाय दिगित्युक्तं प्रकरणकृता।

▶ वल्लभा ◀

एकविध प्रतिवन्धकता की आशङ्का और परिहार

लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादीः अथ०। हमारे मतानुसार परामर्श 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक हो या 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक हो मगर अनुमिति तो 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक ही होगी जिसका प्रतिवन्धक केवल 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक निश्चय ही होता है। अतः लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन परामर्श से घटित सामग्री एवं शुद्धपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन परामर्श से घटित अनुमितिसामग्री लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिनिश्चयाभावविशिष्टत्वेन रूपेण ही विभिन्नविषयक प्रत्यक्ष के प्रति प्रतिवन्धक मानी जाती है। विभिन्नविषयकप्रत्यक्षप्रतिवन्धकतावच्छेदक धर्म एक ही होने से द्विविध प्रतिवन्धकता की कल्पना अनावश्यक बनती है। इसलिए अनेक प्रतिवन्धकता के गौरव को जिसका आपादन लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी ने अभी किया था, अवकाश नहीं है।

लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादीः- न, लि०। जनाव ! जैसे साबुन से धोने से भी कोयला उजला होता नहीं है ठीक वैसे आपका मत प्रयास करने पर भी गौरवमलमुक्त हो नहीं पाता। इसका कारण यह है कि विभिन्नविषयकप्रत्यक्ष के प्रति लिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन निश्चयाभावविशिष्टत्वेन रूपेण अनुमितिसामग्री को प्रतिवन्धक मानी जाय तब तो 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक सिद्धि होने पर आलोकपरामर्श से 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति भी हो नहीं सकेगी, क्योंकि तब वह्निव्याप्यविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्येन निश्चयाभावविशिष्ट अनुमितिसामग्री का अभाव नहीं होने की वजह प्रतिवध्यताकोटि से विनिर्मुक्त ऐसे विभिन्नविषयक प्रत्यक्ष का ही उदय हो जायेगा। दो ज्ञान तो एक साथ उत्पन्न हो नहीं सकते हैं, जिससे विभिन्नविषयक प्रत्यक्ष और अभिमत अनुमिति दोनों का एक साथ उदय हो सके। इसलिए तब आलोकलिङ्गक वह्निअनुमिति के अनुदय की आपत्ति के निवारणार्थ लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी को यही मानना होगा कि—> वह्निव्याप्यालोकविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिनिश्चयाभावविशिष्टआलोकपरा-

यत्तु ''यत्र 'वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शोऽप्रामाण्यग्रहग्रस्तस्तदुत्तरतद्वाधधीस्तदुत्तरानुमितिजनकपरामर्शेऽप्रामाण्यज्ञानाभाववैशिष्ट्यादाने लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिना मते लाघव तादृशानुमितेः बाधज्ञानप्रतिबन्धादेवानुदयादिति, तच्चिन्त्यम्, तथापि ततो

◆ हेमलता ◆

यत्तु यत्र स्थले 'वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्श अप्रामाण्यग्रहग्रस्त = 'पर्वतविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयो न प्रमाण' इति प्रामाण्याभावज्ञानास्कन्दित' तदुत्तर अवश्यमेव 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारिका तद्बाधधी = हेत्वभावनिश्चितिः उपजायते। निरुक्तहेत्वभावनिश्चयादेवानुमितेः प्रतिबन्धान्न परामर्शेऽप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्वस्य विशेषणविधया निवेशः क्रियते इति तदुत्तरानुमितिजनकपरामर्शे = हेत्वभावनिश्चयोत्तरानुमितिजनकपरामर्शे अप्रामाण्यज्ञानाभाववैशिष्ट्याऽदाने = अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्वस्याऽनिवेशेन लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिना मते लाघव = कारणतावच्छेदकधर्मशरीरलाघवम्, तादृशानुमिते = 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितेः बाधज्ञानप्रतिबन्धात् = 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इतिहेत्वभावनिश्चयेनैव प्रतिबध्यत्वात्। अनेन तादृशपरामर्शेऽप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्वनिवेशानावश्यकत्वे हेतुः प्रदर्शितः। अत एव गृहीतप्रामाण्यकपरामर्शकालेऽनुमितिवारणाय नाप्रामाण्यज्ञानाभावस्य परामर्श-विशेषणविधया निवेश आवश्यकः, दर्शितरीत्यैव तदनुदयोपपत्तेः। लिङ्गानुपहितलैङ्गिकबाभानवादिना तु तादृशपरामर्शेऽप्रामाण्यग्रहाभाववैशिष्ट्य न निवेश्यते तदा 'पर्वतो वह्निमानि'त्यनुमितिस्स्यादेव, 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इति बाधज्ञानस्य ग्राह्याभावानवगाहित्वे तद्विरोधित्वासम्भवात्। तन्निवेशे च कारणतावच्छेदकधर्मशरीरगौरवमनिवार्यमेव लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादिमत इति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादितात्पर्यम्।

प्रकरणकारोऽत्रास्वरसप्रदर्शनायाह- तच्चिन्त्यमिति । चिन्ताबीजमेवावेदयति- तथापि तत 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इति बाधज्ञानात्

▶ वल्लभा ◀

मर्शत्व, वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतविशेष्यक-वह्निसिद्धिविरहविशिष्ट-पर्वतविशेष्यक-धूमपरामर्शत्व आदि विभिन्नधर्मेण अनुमितिसामग्री भिन्नगोचर प्रत्यक्ष की प्रतिबन्धक है - ऐसा मानने पर धूमविशिष्टपर्वत मे वह्निनिश्चय होने पर भी आलोकपरामर्श से 'वह्निव्याप्यालोकवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति हो सकेगी, क्योकि तब न तो अनुमितिसामग्री मे वह्निव्याप्यालोकविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिनिश्चयविशिष्ट-पर्वतविशेष्यकालोकपरामर्शत्व है और न तो वह्निव्याप्यधूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिवह्निनिश्चयविशिष्टपर्वतपक्षक-धूमपरामर्शत्व है। इसलिए तब भिन्नविषयक प्रत्यक्ष की प्रतिबन्धकता के अवच्छेदक धर्म से विशिष्ट अनुमिति की सामग्री तब सम्पन्न होने से प्रत्यक्ष के उदय की कोई सम्भावना नही है। मगर ऐसा स्वीकार करने पर लिङ्गोपहितलेङ्गिकभानवादी के मत मे अनेकविध प्रतिबन्धकता का गौरव तो अपरिहार्य हो जायेगा। मतलब कि गौरवग्रस्त होने से लिङ्गोपहितमत त्याज्य हे। यहॉ जो कहा गया है वह तो दिग्दर्शनमात्र है। इसके मुताबिक आगे बहुत कुछ सोचा जा सकता हे-इस वस्तुस्थिति के सूचनार्थ प्रकरणकारश्री ने 'दिक्'शब्द का प्रयोग किया है।

▶ लिङ्गानुपहितपक्ष मे गौरव का आपादन एव निराकरण ◀

यत्तु०। कुछ लिङ्गोपहितलेङ्गिकभानवादी का यह कथन है कि →''जब स्थलविशेष मे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक परामर्श मे अप्रामाण्य का ज्ञान होने के पश्चात् 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' ऐसी बाध बुद्धि उत्पन्न होती हे उसके उत्तरकाल मे होनेवाली अनुमिति के जनक परामर्श मे अप्रामाण्यग्रहाभाववैशिष्ट्य का निवेश अनावश्यक होने से लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मत मे लाघव ह, क्योकि हमारे मतानुसार 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का प्रतिरोध ग्राह्याभावावगाही 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इस बाधनिश्चय से ही हो जाता है। आशय यह है कि- 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' यह परामर्श अप्रामाणिक है - ऐसा ज्ञान होने से अनायास ही 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' यह बाधबुद्धि उसके अनन्तर उत्पन्न होती है। हमारे मतानुसार लिङ्ग का अनुमिति मे भान होने से लिङ्गाभावनिश्चयात्मक प्रदर्शित बाधज्ञान उस अनुमिति का विरोधी होता है। इसलिए तब अनुमिति के वारणार्थ परामर्श मे अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्व विशेषण के निवेश की आवश्यकता न होगी। मगर अनुमिति मे लिङ्ग का भान न मानने पर तो 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक बाधनिश्चय होने पर भी 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति की आपत्ति होगी, क्योकि अनुमिति लिङ्गावगाही नही होने की वजह उपदर्शित बाधबुद्धि उसकी विरोधी नही होगी। अत तब लिङ्गानुपहितलेङ्गिकभानवादी के मतानुसार अनुमितिजनक परामर्श मे अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्व का विशेषणविधया निवेश करना आवश्यक होगा, जिसके फलस्वरूप जिसके अप्रामाण्य का ज्ञान हो गया है ऐसे परामर्श से अनुमिति के उदय की आपत्ति नही होगी, क्योकि वह परामर्श कारणतावच्छेदकीभूत गृहीताप्रामाण्यकभेद=अप्रामाण्यग्रहाभाव से विशिष्ट नही है। इसलिए लिङ्गानुपहितलेङ्गिकभानवादी नैयायिकानुयायी के मत मे कारणतावच्छेदकधर्मशरीर मे गोरव प्रसक्त होगा''←

मगर प्रकरणकार श्रीमद्जी का कहना हे कि उपर्युक्त लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी का वक्तव्य चिन्तनीय है न कि बिना विचार के ग्राह्य। इसका कारण यह है कि 'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो न वह्निमान्' इत्याकारक अनुमिति का प्रतिरोध 'पर्वतो न वह्निव्याप्यधूमवान्'

लिङ्गानुपहितानुमित्यापत्तिवारणायाऽप्रामाण्यज्ञानाभाववैशिष्ट्यदानस्यावश्यकत्वात्।

वस्तुतः सामानाधिकरण्यविशिष्टविशेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानाभाव एव परामर्शे सामान्यतो निविशते विशेष्यता चाप्रामाण्यप्रकारतानिरूपिता निरच्छिन्नोभयावृत्तिधर्मावच्छिन्ना ग्राह्या, अप्रामाण्यप्रकारतानिरूपितधूमपरामर्शत्वाद्यच्छिन्नविशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्न-

◆ हेमलता ◆

'वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमान्' इत्यनुमितिप्रतिरोधेऽपि गृहीताऽप्रामाण्यकपरामर्शात् लिङ्गानुपहितानुमित्यापत्तिवारणाय = 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याद्यनुमितिनिराकरणकृते परामर्शनिष्ठकारणतावच्छेदकधर्मशरीरे अप्रामाण्यज्ञानाभाववैशिष्ट्यदानस्य = गृहीताप्रामाण्यकभेदप्रवेशस्य लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमतेऽपि आवश्यकत्वात्, अन्यथा पक्षे हेत्वभावनिश्चयदशायां लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादिमतानुसारेण यथा लिङ्गानुपहितानुमितिर्जायते तथैवाप्रामाण्यावबोधास्कन्दितपरामर्शदशायामपि लिङ्गानुपहितलैङ्गिकानुमितिरप्रतिहतोदया स्यात्। ततश्चोभयपक्षे कारणतावच्छेदकधर्मशरीरगौरवं तुल्यमेव।

अथ हेत्वभावनिश्चयकालीनानुमितिजनकपरामर्शेऽप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितत्वस्यावश्यनिवेशनीयत्वेऽपि तदितरकालिकानुमितिजनकपरामर्शे गृहीताप्रामाण्यकविभिन्नत्वनिवेशस्यानावश्यकत्वेन नानाकारणताकल्पनापत्तिरिति चेत्? न लाघवात् अनुमितित्वावच्छेदेनैव गृहीताप्रामाण्यकभिन्नपरामर्शस्य कारणत्वमुपेयते न तु हेत्वभावनिश्चयोत्तरकालीनानुमितित्वावच्छेदेन, कार्यतावच्छेदकगौरवात्। अतो न नानाकारणताकल्पनापत्तिरित्याशयेन प्रकरणकार आह वस्तुत इति। सामानाधिकरण्यविशिष्टविशेष्यतासम्बन्धेन नाप्रामाण्यग्रहाभाव' किन्तु ज्ञानाभाव एव परामर्शे सामान्यत न तु विशेषरूपेण निविशते। सम्बन्धघटकविशेष्यता निरूपयति विशेष्यता च अप्रामाण्यप्रकारतानिरूपिता = अप्रामाण्यनिष्ठप्रकारतानिरूपिता निरवच्छिन्नोभयावृत्तिधर्मावच्छिन्ना ग्राह्येति। अयमाशयः 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इतिबुद्धिमुद्दिश्य 'इयमप्रमा' इति ज्ञानं यदा परामर्शाश्रये पुरुषे जायते तदा परामर्शेऽप्रामाण्यप्रकारकज्ञानसामानाधिकरण्यस्याऽप्रामाण्यनिष्ठप्रकारतानिरूपितायाः तद्व्यक्तित्वलक्षणेदन्त्वात्मकनिरवच्छिन्नोभयाऽवृत्तिधर्मावच्छिन्नाया विशेष्यतायाश्च सत्त्वेन स्वनिरूपितसामानाधिकरण्यविशिष्टनिरवच्छिन्नोभयावृत्तिधर्मावच्छिन्नाऽप्रामाण्यनिष्ठप्रकारता- निरूपितविशेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानस्यैव वृत्तितया तादृशविशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य ज्ञानाभावस्य विरहान्न तदानीं तस्मिन् पुरुषेऽनुमित्यापत्तिः सम्भवति। यदा च यत्र परामर्शमुद्दिश्याप्रामाण्यग्रहो नोपजायते तदा तत्र पुरुषेऽनुमितिर्निरपायैव, निरुक्तविशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य ज्ञानाभावस्य तत्पुरुषीयपरामर्शे सत्त्वात्। अत्र विशेष्यताया सामानाधिकरण्यवैशिष्ट्याऽनिवेशे चैत्रवृत्तिपरामर्शमुद्दिश्य मैत्रस्याप्रामाण्यग्रहोदयेऽपि चैत्रस्यानुमितिर्न स्यात्। अप्रामाण्यनिष्ठप्रकारतानिरूपितत्वस्य सामानाधिकरण्यग्रहोदयेऽपि सामानाधिकरण्यविशिष्टविशेष्यतायामनिवेशे समानाधिकरणपरामर्शमुद्दिश्य 'अयं प्रमात्मकः' इति निश्चयदशायामपि अनुमितिर्न स्यादिति तन्निवेशस्यावश्यकत्वम्। अतो न नानाकारणताकल्पनापत्तिर्न वा कारणतावच्छेदकधर्मगौरवप्रसङ्गः। न च →'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवानि'तिपरामर्शो न प्रमा←इत्याकारकज्ञानसत्त्वे सामानाधिकरण्यविशिष्टाऽप्रामाण्यनिष्ठप्रकारतानिरूपितपरामर्शनिष्ठविशेष्यताया धूमपरामर्शत्वावच्छिन्नत्वेन निरवच्छिन्नोभयाऽवृत्तिधर्मावच्छिन्नभिन्नत्वात् अनुमित्युदयापत्तिर्दुर्वारैवेति वक्तव्यम्, यतः अप्रामाण्यप्रकारतानिरूपितधूमपरामर्शत्वाद्यवच्छिन्नविशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाश्चाभावा परामर्शे पृथगेव = स्वातन्त्र्येणैव निवेश्या इति तादृशधर्माणा

▶ वल्लभा ◀

इस बाधबुद्धि से हो जाने पर भी गृहीताप्रामाण्यक परामर्श से 'पर्वतो वह्निमान्' इत्याकारक लिङ्गानुपहित अनुमिति की आपत्ति तो लिङ्गोपहितवादी के मत मे भी अवश्य होगी। जैसे पक्ष मे हेतु के अभाव का निश्चय होने पर लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मतानुसार लिङ्गानवगाही अनुमिति मान्य है ठीक वैसे ही अप्रामाण्यग्रहविशिष्ट परामर्श से भी लिङ्गानवगाही अनुमिति के उदय को भी मान्य करना पडेगा। मगर लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी को भी यह मान्य नहीं है। इसलिए उसके मतानुसार भी गृहीताप्रामाण्यक परामर्श मे लिङ्गविनिर्मुक्त अनुमिति के निवारणार्थ अनुमितिकारणीभूत परामर्श के विशेषणविधया अप्रामाण्यज्ञानाभाव का निवेश करना आवश्यक ही है। इस तरह अप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितत्व का परामर्शनिष्ठकारणतावच्छेदकधर्मविधया स्वीकार करना लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानवादी के मत मे भी आवश्यक है। तब लिङ्गानुपहितलैङ्गिकभानवादी के मत मे कारणतावच्छेदकगौरव की बाँग पुकारना कैसे सङ्गत होगा?

वस्तुतः०। मगर वस्तुस्थिति को जब लक्ष्य मे ली जाय तब यह कहा जा सकता है कि सामान्यत अनुमिति के प्रति कारणीभूत परामर्श मे सामानाधिकरण्यविशिष्टविशेष्यतासम्बन्ध से ज्ञानाभाव का ही निवेश किया जाता है। विशेष्यता यहाँ अप्रामाण्यनिष्ठप्रकारतानिरूपित एवं निरवच्छिन्नोभयाऽवृत्ति धर्म से अवच्छिन्न हो वह ग्राह्य है। जैसे 'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इस चैत्रसमवेत परामर्श को उद्देश्य बना कर 'अयमप्रमा'इत्याकारक ज्ञान चैत्र को उत्पन्न होता है तब उक्त सम्बन्ध से ज्ञानविशिष्ट परामर्श हो जाता है, क्योंकि एक ही चैत्र मे परामर्श एवं अप्रामाण्यग्रह उत्पन्न होने से दोनो परस्पर समानाधिकरण है तथा परामर्शनिष्ठ विशेष्यता अप्रामाण्यनिष्ठप्रकारता से निरूपित है और निरवच्छिन्न तद्व्यक्तित्वात्मक इदन्त्वलक्षण उभयाऽवृत्ति धर्म से परामर्शीयविशेष्यता अवच्छिन्न है। मतलब कि

प्रतियोगिताकाश्चाभावाः पृथगेव निवेश्या इति तादृशधर्माणामुभयवृत्तित्वेऽपि न क्षतिः। एवञ्च सामान्यत एकप्रामाण्यज्ञानाभावस्य निवेशान्नोक्तस्थले तत्तदप्रामाण्यज्ञानाभावनिवेशे गौरववार्ताऽपि। एवञ्च तत्तदनुमितित्वस्य तत्तल्लिङ्गविषयकत्वनियमोक्तावपि न क्षतिरिति॥ इति लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानरहस्यवादः ॥२॥

◆ हेमलता ◆

= धूमपरामर्शत्वव्याप्यनिश्चयत्वादिधर्माणा उभयवृत्तित्वेऽपि न क्षति उपर्युक्तस्थले परामर्शे स्वसामानाधिकरण्यविशिष्टनिरवच्छिन्नोभयावृत्तिधर्मावच्छिन्ना-प्रामाण्यनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य ज्ञानाभावस्य सत्त्वेऽपि स्वसामानाधिकरण्यविशिष्टप्रामाण्यनिष्ठप्रकारतानिरूपित-धूमपरामर्शत्वाद्यवच्छिन्नविशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य ज्ञानाभावस्य विरहेणानुमित्युदयापत्तेरसम्भवात्। न हि सामग्रीमृते फलोदयः क्वापि दृष्टः श्रुतो वा। न चानुमितित्वावच्छेदेनैव लाघवेन ज्ञानाभावविशिष्टपरामर्शत्वेन कारणत्वप्रतिपादनेऽपि वैशिष्ट्यनियामकसम्बन्धभेदेन कारणताभेदान्नानाकारणताकल्पनप्रसङ्गो दुर्वार एवेति घट्टकुट्या प्रभातमिति वाच्यम्, एवञ्च = अनुमितित्वावच्छिन्न प्रत्येव लाघवेन कारणत्वकल्पने च सामान्यत एव अप्रामाण्यज्ञानाभावस्य परामर्शे निवेशात् = प्रवेशाभ्युपगमात् नोक्तस्थले = न हेत्वभावनिश्चयादिस्थले गौरववार्ताऽपि = नानाकारणताकल्पनप्रयुक्तगौरवकथापि सम्भवति।

एवञ्च = दर्शितरीत्या अनुमितित्वावच्छेदेन कारणीभूतपरामर्शे सामान्यत एवाप्रमाण्यप्रकारकज्ञानाभावस्य निवेशे च तत्तदनुमितित्वस्य धूमविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहिपरामर्शजन्यत्वादिविशिष्टानुमितित्वस्य तत्तल्लिङ्गविषयकत्वनियमोक्तौ = धूमादिलिङ्गोपहितत्वव्याप्यत्वप्रतिपादने अपि न क्षति प्रदर्शितसामान्यकार्यकारणभावमर्यादानतिक्रमादिति हेतोः। इति = समाप्तः लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानरहस्यवाद ॥२॥

ऋषभस्वामिन नत्वाऽहमढनगरेऽधुना।
द्वितीयः खलु वादोऽय निरमायि मयाऽऽदरात् ॥

इति मुनियशोविजयविरचिताया हेमलताभिधानाया वादमालाटीकाया द्वितीयो वाद ।

► वल्लभा ◄

सामानाधिकरण्यविशिष्टनिरुक्तविशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक ज्ञानाभाव परामर्श मे नही होने से तब अनुमिति का उदय हो नही सकेगा। मगर जब चैत्र को स्वसमवेत परामर्श को उद्देश्य कर के अप्रामाण्यज्ञान नही होगा तब परामर्श निरुक्तविशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक ज्ञानाभाव से विशिष्ट होने की वजह अनुमिति का उदय निराबाध होगा। जब चैत्र को→'पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्' इत्याकारक मेरा परामर्श प्रमा नही हे←इत्याकारक ज्ञान होता है तब परामर्शनिष्ठ विशेष्यता यद्यपि निरवच्छिन्नउभयाऽवृत्ति धर्म से अवच्छिन्न बनती नही हे, क्योकि वह धूमपरामर्शत्व धर्म से अवच्छिन्न हे तथापि अनुमिति का उदय तब होगा, क्योकि अप्रामाण्यनिष्ठप्रकारतानिरूपित धूमपरामर्शत्वादिधर्मावच्छिन्नविशेष्यतासम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक ज्ञानाभाव का भी हम परामर्श मे स्वतन्त्ररूप से प्रवेश करते है, जो तब परामर्श मे अविद्यमान हे। इसलिए धूमपरामर्श आदि धर्म उभयवृत्ति हो तो भी कोई क्षति नहीं है। इस तरह जब लाघव के अनुसार विचार किया जाय तब अनुमितित्वावच्छिन्न के कारणीभूत परामर्श मे सामान्यत ही अप्रामाण्यज्ञानाभाव का निवेश होने की वजह हेत्वभावनिश्चयकालीन अनुमिति मे तत्तत्अप्रामाण्यज्ञानाभाव के निवेश से प्रयुक्त गौरव की कथा को भी अवकाश नही होगा, क्योकि तत् तत् अप्रामाण्यज्ञान का अभाव विशेषरूप से यहाँ निविष्ट नही हे। इस तरह जब कार्यकारणभाव निश्चित हो जाता हे तब तत्तत् अनुमिति को अवश्य तत्तत् लिङ्गावगाही मानी जाय अर्थात् धूमादिलिङ्गविशिष्टपर्वतत्वसामानाधिकरण्यावगाहीपरामर्शजन्यअनुमितित्व को धूमादिलिङ्गविषयकत्व का व्याप्य माना जाय तो भी कोई क्षति नही है, क्योकि दर्शित सामान्य कार्यकारणभाव का उससे अतिक्रमण होता नहीं है।

(२) लिङ्गोपहितलैङ्गिकभानरहस्यवाद का विवेचन समाप्त हुआ।



● द्रव्यविनाशहेतुत्वाभिधानः तृतीयो वादः ●

अथ द्रव्यनाशं प्रति हेतुता विचार्यते। तत्र द्रव्यनाशं प्रति निमित्तेतरकारणनाशत्वेन कारणतेति प्राञ्चः, तन्न, कपालसंयोगादेरपि किञ्चित्कार्यं प्रति निमित्तत्वात्, तत्तद्द्रव्यनिमित्तेतरत्वदानेऽननुगमाच्च।

◆ हेमलता ◆

शिर्डिपुरे प्रतिष्ठादिने नत्वाऽऽदिप्रभुं मया।
द्रव्यविनाशहेतुत्ववादोऽधुना प्रतन्यते ॥१॥

उपोद्घातसङ्गतिमाविष्करोति-अथेति। द्रव्यनाशं = द्रव्यनिष्ठप्रतियोगिताकध्वंसत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुता केन रूपेण? इति विचार्यते। तत्र = द्रव्यनाशमीमांसायां द्रव्यनाशं प्रति = द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नं न समवायिकारणनाशत्वेन हेतुता, परमाणोः नित्यत्वेन द्व्यणुकनाशानापत्तेः। नापि असमवायिकारणनाशत्वेन जनकता, समवायिकारणनाशजन्यद्रव्यनाशे व्यतिरेकव्यभिचारात्। नापि निमित्तकारणनाशत्वेन तथात्वं, निमित्तकारणस्य कार्यस्थित्यनियामकत्वेन तन्नाशस्य कार्यनाशकत्वायोगात् अन्यथा दण्डनाशादेव घटनाशापत्तेः। किन्तु निमित्तेतरकारणनाशत्वेन कारणता स्वीकर्तुमर्हति। तेन न द्व्यणुकनाशासङ्ग्रहः, तन्नाशके परमाणुसंयोगनाशे निमित्तेतरकारणनाशत्वस्याक्षतत्वात्। नापि समवायिकारणध्वंसजन्ये द्रव्यध्वंसे व्यभिचारः सावकाशः, समवायिकारणध्वंसस्य निमित्तेतरकारणनाशत्वाक्रान्तत्वात् इति प्राञ्चो नैयायिका वदन्ति।

तन्न सङ्गतिमङ्गति, कपालसंयोगादेः अपि किञ्चित् स्वसाक्षात्कारादिलक्षणं कार्यं प्रति निमित्तत्वात् = निमित्तकारणत्वात् कपालसंयोगनाशादेः घटादिनाशकत्वं न स्यात्। न हि निमित्तकारणत्वालिङ्गिते निमित्तेतरकारणत्वं सम्भवति, भेदस्य स्वप्रतियोगितावच्छेदकव्यधिकरणत्वात्। नाशप्रतियोगिनोः समवायिकारणासमवायिकारणयोर्यत्किञ्चित्कार्यं प्रति निमित्तकारणत्वेन तयोर्निमित्तेतरत्वस्यैवाऽप्रसिद्धत्वान्न निमित्तेतरकारणनाशत्वेन द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता कारणता सम्भवतीत्याशयः।

ननु तर्हि घटनाशं प्रति घटनिमित्तेतरकारणनाशत्वेन कारणत्वं पटनाशं प्रति पटनिमित्तेतरकारणनाशत्वेन कारणत्वमित्येवास्तु विशिष्य हेतु-हेतुमद्भावः कपालसंयोगादेः स्वसाक्षात्कारादिकं प्रति निमित्तकारणत्वेऽपि घटं प्रति निमित्तेतरकारणत्वेन तन्नाशे घटनिमित्तेतरकारणनाशत्वस्यानपायादित्याशङ्कायामाह- तत्तद्द्रव्यनिमित्तेतरत्वदाने तु घटनिमित्तेतरकारणनाशत्व-पटनिमित्तेतरकारणनाशत्वादीनां कारणतावच्छेदकत्वापत्त्या कारणतावच्छेदकधर्मस्य अननुगमात् यावद्द्रव्यनाशकसाधारण्यविरहात् अनन्तफल-फलवद्भावकल्पनागौरवप्रसङ्गः इति प्राचीनमतं विचार्यमाणं विशरारुतामाबिभर्ति।

▶ वल्लभा ◀

अब द्रव्यनाशात्मक कार्य के प्रति कारणता की विचारणा की जाती है। द्रव्यनाशविचार के विषय में प्राचीन नैयायिक मनीषियों का यह वक्तव्य है कि द्रव्यनाश का कारणतावच्छेदक धर्म निमित्तेतरकारणनाशत्व है। आशय यह है कि द्रव्य का नाश कभी समवायिकारणनाश से होता है तो कभी असमवायिकारण के नाश से होता है। अतः समवायिकारणत्व को द्रव्यनाश का कारणतावच्छेदक धर्म माना जाय तब द्व्यणुकनाश में व्यतिरेक व्यभिचार प्रसक्त होगा, क्योंकि वह असमवायिकारणीभूत परमाणुद्वयसंयोग के नाश से उत्पन्न होता है। यदि द्रव्यनाशकतावच्छेदकधर्मविधया असमवायिकारणनाशत्व को मान्य किया जाय तब समवायिकारणनाशजन्य द्रव्यध्वंस में व्यतिरेक व्यभिचार होगा। अतः समवायिकारण और असमवायिकारण का निमित्तेतरकारणत्व धर्म से अनुगम कर के निमित्तेतरकारणनाशत्वेन रूपेण द्रव्यनाश के प्रति कारणता का स्वीकार करना जरूरी है।

▲▲ निमित्तेतरकारणनाशत्वेन द्रव्यनाशकता नामुमकिन ▲▲

तन्न०। मगर प्राचीन नैयायिक का उपर्युक्त कथन असंगत है, क्योंकि कपालसंयोग आदि भी स्वविषयक प्रत्यक्ष आदि कार्य के प्रति निमित्त कारण होने से उसमें निमित्तेतरकारणत्व हो नहीं सकेगा। फलतः कपालसंयोगनाश में निमित्तेतरकारणनाशत्व नहीं होने से उससे घटादिनाश नहीं हो सकेगा। मतलब कि घटध्वंसस्वरूपकार्य के प्रति व्यतिरेक व्यभिचार होगा। यदि इसके निवारणार्थ प्राचीन नैयायिक की ओर से यह कहा जाय कि→'द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न के प्रति निमित्तेतरकारणनाशत्वेन रूपेण कारणता भले ही असम्भव हो मगर तत् तत् द्रव्यनाशक के प्रति तत् तत् द्रव्यनिमित्तेतरकारणनाशत्वेन कारणता तो मुमकिन है। सब घटध्वंस आदि में व्यतिरेक व्यभिचार को अवकाश नहीं रहेगा, क्योंकि कपालसंयोग स्वसाक्षात्कार का भले ही निमित्तकारण हो मगर घट का तो निमित्तकारण नहीं होने से घटनाशक कपालसंयोगनाश में घटद्रव्यनिमित्तेतरकारणनाशत्व अबाधित ही है। ऐसा माना जाय तो क्या हर्ज है?'←तो यह भी असंगत है, क्योंकि नाशकतावच्छेदकधर्मशरीर में तत्-तत् द्रव्य के निमित्तेतरकारणत्व का निवेश करने पर कारणतावच्छेदक धर्म अननुगत हो जायेगा। मतलब कि घटनाश का कारणतावच्छेदक धर्म घटनिमित्तेतरकारणनाशत्व होगा, पटध्वंस का कारणतावच्छेदक धर्म पटनिमित्तेतरकारणनाशत्व होगा। इस तरह अनन्त कार्यकारणभाव के स्वीकार का महागौरव प्रसक्त होगा। इसलिए प्राचीन नैयायिक

अथ प्रतियोगितया द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नं प्रति स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्धेन स्वप्रतियोगिनिमित्तेतरकारणप्रतियोगिकत्वसम्बन्धेन स्वविशिष्टतादृशनाशत्वेन हेतुत्वान्नाननुगमो न वा प्रत्यासत्तिभेद इति चेत्? न, निमित्तत्वस्य समवायिकारणासमवायिकारणेतरत्वगर्भत्वात्।

◆ हेमलता ◆

प्राचीननैयायिकानुयायी शङ्कते - अथेति। प्रतियोगितया = स्वप्रतियोगितया, स्वनिष्ठानुयोगितानिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धेनेति यावत्। अनेन कार्यतावच्छेदकसम्बन्धः प्रदर्शितः। द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नं प्रतीति अनेन द्रव्यनाशत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वमुक्तम्। कारणतावच्छेदकसम्बन्धमाह- स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्धेनेति। कारणतावच्छेदकघटकवैशिष्ट्यनियामकसम्बन्धमाह- स्वप्रतियोगिनिमित्तेतरकारणप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेनेति। स्वपदेन कार्यग्रहणम्। तथाहि स्वस्य = घटनाशस्य प्रतियोगी यो घटः तस्य निमित्तेतरकारणकपाल-कपालद्वयविजातीयसंयोगौ तत्प्रतियोगिकत्व कपालनाश-कपालद्वयविजातीयसंयोगनाशयोर्वर्तत इति ,स्वप्रतियोगिनिमित्तेतरकारणप्रतियोगिकत्वसम्बन्धेन घटनाशविशिष्टौ कपालनाश-कपालद्वयविजातीयसंयोगनाशौ। ध्वंसप्रतियोगिभ्यां कपाल-कपालद्वयविजातीयसंयोगाभ्यां जन्ये घटे स्वप्रतियोगिनिमित्तेतरकारणप्रतियोगिकत्वसम्बन्धेन घटनाशविशिष्टकपालनाश-कपालद्वयविजातीयसंयोगनाशयोः स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्धेन सत्त्वात् घटनाशात्मकं कार्यतावच्छेदकीभूतद्रव्यनाशत्वाक्रान्तं कार्यं स्वप्रतियोगितासम्बन्धेन घटं एव जायते। अतो न केवलं समवायिकारणनाशोत्तरमसमवायिकारणनाशोत्तरकालीनं वा द्रव्यनाशं प्रति व्यतिरेकव्यभिचारावकाशः। न च कार्यतावच्छेदकधर्मे कारणतावच्छेदकधर्मे वा अननुगमः। एतेन नानाकार्यकारणभावकल्पनागौरवमपि परिहृतम्। न वा प्रत्यासत्तिभेद =कारणतावच्छेदकसम्बन्धे कार्यतावच्छेदकसम्बन्धे वैशिष्ट्यनियामकसम्बन्धे वा नानात्वकल्पनम्। ततश्च स्वविशिष्टनिमित्तेतरकारणनाशत्वेनैव द्रव्यनाशकत्वकल्पना श्रेयसीत्यथाशयः।

समवायिकारणासमवायिकारणयोरनुगमकृते निमित्तेतरकारणत्वानुधावनेऽपि निमित्तकारणत्वस्य तदुभयघटितत्वेन विपरीतमेव गौरवमत्रापद्यत इत्याशयेनाथवादिमतं प्रकरणकारो निराकुरुते - नेति। निमित्तत्वस्य = निमित्तकारणत्वपदप्रतिपाद्यस्य समवायिकारणासमवायिकारणेतरकारणत्वात्मकत्वेन समवायिकारणासमवायिकारणेतरत्वगर्भत्वात् = समवायिकारणाऽसमवायिकारणभेदघटितत्वात् स्वविशिष्ट-समवायिकारणासमवायिकारणभिन्नकारण-

▶ वल्लभा ◀

का वक्तव्य नामुनासिब है।

पूर्वपक्षः- अथ० । उक्त रीति से भले ही नाश्यनाशकभाव अनुपपन्न हो मगर हम जिस नाश्य-नाशकभाव का प्रतिपादन करते हैं वह सुसगत होगा। वह इस तरह→स्वप्रतियोगितासम्बन्ध से द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न के प्रति स्वप्रतियोगिनिमित्तेतरकारणप्रतियोगिकत्वसम्बन्ध से स्वविशिष्टतादृशनाश स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्ध से कारण होता है। यहाँ कार्यतावच्छेदक सम्बन्ध है स्वप्रतियोगिता, कारणतावच्छेदक सम्बन्ध है स्वप्रतियोगिजन्यत्व, कार्यतावच्छेदक धर्म है द्रव्यनाशत्व, कारणतावच्छेदकधर्म है स्वविशिष्टनिमित्तेतरकारणनाशत्व और वैशिष्ट्यनियामकसम्बन्ध है स्वप्रतियोगिनिमित्तेतरकारणप्रतियोगिकत्व। दृष्टान्त से यह स्पष्ट हो जायेगा। देखिये घटनाशात्मक कार्य मे द्रव्यनाशत्व रहता है जो कार्यतावच्छेदक धर्म है। स्व = घटनाश की प्रतियोगिता घट मे होने की वजह स्वप्रतियोगितासम्बन्ध से घटध्वस घट मे उत्पन्न होगा। जहाँ कार्य रहता हो वहाँ कारणतावच्छेदकसम्बन्ध से कारण अवश्य रहना चाहिए। घटनाश का कारण है घटनाशविशिष्टकपालनाश आदि। स्व=घटनाश के प्रतियोगी = घट के निमित्तेतरकारण कपाल आदि होने की वजह स्वप्रतियोगिनिमित्तेतरकारणप्रतियोगिकत्वसम्बन्ध से घटनाशविशिष्ट कपालनाश होगा । स्व=कपालनाश के प्रतियोगी=कपाल से घट जन्य होने की वजह घटध्वसविशिष्टकपालनाश भी स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्ध से घट मे रहेगा। इस तरह कार्य और कारण मे सामानाधिकरण्य भी उपपन्न हो जायेगा। इस कार्यकारणभाव को मान्यता देने पर न तो कारणतावच्छेदक धर्म आदि मे अननुगम होगा और न तो कारणतावच्छेदकसम्बन्ध आदि भिन्न होगा। एकविध दर्शित जन्यजनकभाव से ही सब सगत हो जायेगा।

♦★ निमित्तकारणताशरीर गौरवग्रस्त ♦★

उत्तरपक्ष :- न, नि । उस्ताद' हमने धूप मे बाल पकाये नही है' आप स्वविशिष्टनिमित्तेरकारणनाशत्व का कारणतावच्छेदकधर्मविधया स्वीकार करते हैं मगर निमित्तकारणता का स्वरूप क्या है? यह सोचते नही है। निमित्तकारणता का अर्थ है समवायिकारणासमयिकारणेतरकारणता। आप समवायिकारण और असमवायिकारण का निमित्तेतरकारणत्वेन अनुगम करना चाहते है मगर निमित्तकारणता समवायिकारणासमवायिकारणेतरकारणत्वस्वरूप होने की वजह द्रव्यनाशकतावच्छेदकधर्म होगा स्वप्रतियोगिनिमित्तेतरकारणप्रतियोगिकत्वससर्ग से स्वविशिष्ट-समवायिकारणासमवायिकारणभिन्नकारणभिन्नकारणनाशत्व । इसका स्वीकार करने पर तो कारणतावच्छेदकधर्मशरीर मे महागौरव प्रसक्त होगा। अतएव इस पक्ष को मान्य किया जा नही सकता।

नव्यास्तु असमवायिकारणनाशादेव सर्वत्र द्रव्यनाशो द्व्यणुकादिनाश प्रति परमाणुद्वयसयोगनाशादीना विशेषान्वयव्यतिरेकाभ्या सामान्यत एव द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न प्रति विजातीयसयोगनाशत्वेन हेतुत्वकल्पनात्, असमवायिकारणत्वञ्च जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकतया

◆ हेमलता ◆

भिन्नकारणनाशत्वस्य द्रव्यनाशत्वावच्छिन्ननिरूपितकारणतावच्छेदकत्वकल्पनाया महागौरवप्रसङ्गः। न चाखण्डाभावत्वेन कारणत्वोपगमान्न गौरवमिति वक्तव्यम् एव सति सामान्यतोऽन्वयव्यतिरेकाभ्या कार्यकारणभावकल्पनोच्छेदप्रसङ्गात्, तृणारणिमणिन्यायेन वैजात्यकल्पनोच्छेदापत्तेश्च।

केचित्तु समवायिकारणासमवायिकारणयोर्निमित्तेतरकारणत्वेनानुगमन तत्र निमित्तकारणत्वमपि समवायिकारणासमवायिकारणेतरकारणत्वमित्यन्योन्याश्रयात्रेत्थमनुगमन युक्तमिति व्याचक्षते। तदसत्, उत्पत्तौ स्थितौ वा परस्पराश्रयत्वस्यात्रासम्भवात्, ज्ञप्तावितरेतराश्रयत्वस्य चात्रादोषत्वात् द्रव्यसमवायिकारणासमवायिकारणनिमित्तकारणाना पूर्वमेव निर्णीतत्वेन प्रसिद्धत्वात्।

नव्यास्त्विति। आहुरित्यनेनास्यान्वयः। समवायिकारणनाशादपि द्रव्यनाशाङ्गीकारेण समवायिकारणासमवायिकारणानुगतनिमित्तेतरकारणत्वाच्छिन्नप्रतियोगिताकनाशत्वेन द्रव्यनाशकत्वाभ्युपगमः प्राचा न सङ्गतः समवायिकारणनाशस्य द्रव्यानाशकत्वात्। तर्हि कस्मात् द्रव्यनाशः? उच्यते, असमवायिकारणनाशादेव सर्वत्र = समवायिकारणनाशसमवधाने तदसमवधाने च द्रव्यनाश = द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नः सर्वो द्रव्यनाश इति भावः। कुतोऽवसितमेतत्? उच्यते, द्व्यणुकसमवायिकारणीभूतपरमाणूना द्व्यणुकादिनाश प्रति परमाणुद्वयसयोगनाशादीना विशेषान्वयव्यतिरेकाभ्या सामान्यत एव द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न प्रति विजातीयसयोगनाशत्वेन हेतुत्वकल्पनात्। अयमभिसन्धिः नव्यानां—द्व्यणुकसमवायिकारणस्य परमाणोः नित्यत्वेन समवायिकारणनाशान्न द्व्यणुकनाश सम्भवति किन्तु परमाणुद्वयविजातीयसयोगनाश एव तत्राशः स्वीकर्तुमर्हति, परमाणुद्वयविजातीयसयोगनाशे सति द्व्यणुकस्य नाशात् तदसत्त्वे च द्व्यणुकस्याऽनाशात्। एव सत्स्वपि तन्तुषु नानातन्तुविजातीयसयोगनाशदशाया पटनाशः तदविनाशकाले च पटस्याऽप्यविनाश इत्यपि प्रसिद्धम्। इत्थ विशिष्टान्वयव्यतिरेकाभ्या द्व्यणुकनाश प्रति परमाणुद्वयविजातीयसयोगनाशत्वेन कारणत्व तन्तुस्थितिकालीन पटनाश प्रति नानातन्तुविजातीयसयोगनाशत्वेन हेतुत्वमिति विशेषत कार्यकारणभावस्यावश्यकत्वात् 'यद्विशेषयो कार्यकारणभावः स तत्सामान्ययोरपी'तिन्यायेन द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न प्रति विजातीयसयोगनाशत्वेन जनकताऽनुमीयते। एतेन मुद्गरपातात्कपालनाशे घटनाशस्योपलम्भात् घटनाशस्य कपालनाशजन्यत्वमपि प्रत्युक्तम्, तत्रापि कपालद्वयसयोगनाशानन्तरमेव घटनाशोपगमात्, समवायिकारणमृते क्षणमेकमिव क्षणद्वय तिष्ठतो घटस्यानपलपनीयत्वात्। युक्तञ्चैतत् अन्यथा समवायिकारणनाशादेव द्रव्यनाशोपगमे तु घटादि द्रव्य नित्यमापद्येत, घटस्य कपालनाशनाश्यत्ववत् कपालस्यापि द्रव्यत्वेन कपालिकानाशनाश्यत्वे कपालिकाया अपि द्रव्यत्वेन प्रकपालिकानाशनाश्यत्वेऽनन्तो गत्वा त्र्यणुकस्य द्रव्यत्वेन द्व्यणुकनाशनाश्यत्वे द्व्यणुकस्यापि द्रव्यत्वेन परमाणुनाशनाश्यत्वात् परमाणोर्नित्यत्वेन ध्वसाऽप्रतियोगिकत्वात्। द्व्यणुकस्य परमाणुद्वयविजातीयसयोगनाशनाश्यत्वेऽपि द्व्यणुकेतरद्रव्य प्रति समवायिकारणनाशस्य नाशकत्वाभ्युपगमे सर्वदैव आपरमाणन्त द्रव्यभङ्गप्रसङ्गात्। किञ्च द्व्यणुकनाशानुरोधेन समवायिकारणनाशस्य कारणत्वावश्यकत्वे सुत समवायिकारणनाशत्वेनापि द्रव्यनाशकारणत्वकल्पनाया पश्चमान्यथासिद्धत्वात्।

केचित्तु कपालादिनाशे कपालादिसयोगनाशस्यावश्यकतया तत एव घटादिनाशसम्भवादिति विजृम्भन्ति तन्न चारु, कपालादिनाशे कपालिकादिसयोगनाशस्यैवावश्यकत्वात्, कपालिकासयोगादिनाशाद् घटनाशस्य नवीनैरप्यनभ्युपगमादिति यत्किञ्चिदेतत्।

ननु द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न प्रति विजातीयसयोगनाशत्वेन कारणत्वे 'असमवायिकारणनाशादेव सर्वत्र द्रव्यनाश' इत्युक्त प्लवत इत्याशङ्काया नव्या वदन्ति- असमवायिकारणत्वञ्च जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकतया = जन्यद्रव्यत्वावच्छिन्ना यद्वा जन्यद्रव्यमात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्ना या कार्यता

▶ वल्लभा ◀

➔ द्रव्य असमवायिकारणनाशनाश्य- नव्यमत ⟵

नव्या०। यहाँ नवीन नैयायिक मनीषियो का यह मन्तव्य ह कि सर्वत्र द्रव्यनाश असमवायिकारणनाश से ही होता है, न कि समवायिकारणनाश से भी या निमित्तेतरकारणनाश से। इसका कारण यह है कि द्व्यणुक का कारण परमाणु नित्य होने की वजह समवायिकारणनाश से द्व्यणुकनाश नामुमकिन है। मगर जब परमाणुद्वयसयोग का नाश होता है तब द्व्यणुकनाश होता है एव जब परमाणुद्वयविजातीयसयोगनाश होता नहीं है तब द्व्यणुकनाश होता नहीं ह। इस तरह विशेषत अन्वय-व्यतिरेक दृष्ट होने से असमवायिकारणनाश मे द्व्यणुकनाशादि के अनुरोध से कारणता आवश्यक ही है तब तो अच्छा यही है कि सामान्यत ही द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न के प्रति विजातीयसयोगनाशत्वेन रूपेण कारणता को मान्य की जाय। इस पक्ष मे लाघव भी है, क्योकि न तो अनेकविध कार्यकारणभाव की यहाँ कल्पना आवश्यक है और न तो कारणतावच्छेदकधर्म आदि मे भी अननुगम या गौरव है। इस बात पर भी यहाँ ध्यान देना आवश्यक है कि असमवायिकारणत्व भी दूसरा कुछ नहीं ह किन्तु सयोगनिष्ठ जातिविशेष ही है जिसकी सिद्धि जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकधर्मविधया होती है। सकल जन्य द्रव्य का कोई अनुगत कारणतावच्छेदक होना ही चाहिए जिससे जन्यद्रव्यनिरूपित कारणता अवच्छिन्न=नियन्त्रित

सिद्धः सयोगनिष्ठो जातिविशेषः।

न च सयोगकर्मजन्यतावच्छेदकजातिभ्यामभिघातत्व-नोदनत्वाभ्याञ्च परापरभावानुपपत्तेस्तत्र मानाभावः, तासामेतद्व्याप्यत्वो-

◆ हेमलता ◆

तन्निरूपितायाः कारणताया अवच्छेदकधर्मविधया सिद्ध = अनुमानप्रमाणसिद्धः सयोगनिष्ठ जातिविशेष । तथाहि समवायसम्बन्धावच्छिन्न-जन्यद्रव्यमात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नकार्यतानिरूपता समवायसम्बन्धावच्छिन्ना संयोगनिष्ठा कारणता किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात् घटकारणतावदित्य-नुमानेन तादृशकारणतावच्छेदकधर्मरूपेणान्यूनानतिप्रसक्तत्वादसमवायिकारणत्वस्य सिद्धिः। 'सिद्धो धर्म एको नित्यश्चेत्तदा लाघवमि'ति न्यायेन तस्य जातित्वम्। द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नकारणीभूतनाशप्रतियोगितावच्छेदकीभूत सयोगनिष्ठ वैजात्यमसमवायिकारणत्वमेव। इदमेवाभिप्रेत्य पूर्वं 'असमवायिकारणनाशा-देव सर्वत्र द्रव्यनाश' इत्युक्तम्। अत एव नातिरिक्तजातिकल्पनानिमित्तकगौरवावकाशोऽपीत्यवधेयम्।

प्रकृतकल्पे स्वप्रतियोगित्व कार्यतावच्छेदकसम्बन्धः, कार्यतावच्छेदकधर्मः द्रव्यनाशत्व, कारणतावच्छेदकधर्मः असमवायिकारणत्वावच्छिन्नप्रति-योगिकनाशत्व कारणतावच्छेदकसम्बन्धश्च स्वप्रतियोगिजन्यत्वम्। तेन न कारणतावच्छेदकाद्यननुगमो न वा कारणताद्यवच्छेदकप्रत्यासत्तिभेदः। अत एव न व्यभिचारादिः लब्धावकाशः न वा गौरवप्रसङ्गः। एतेन निमित्तेतरकारणनाशत्वस्य स्वविशिष्टनाशत्वस्य वा कारणतावच्छेदकत्वमपाकृतम्। अथ सयोगः क्वचित् कर्मणः जायते यथा हस्ततरुसयोगः क्वचिच्च सयोगाज्जायते यथा करतरुसयोगात्तनुतरुसयोगः। ततो न सयोगत्वावच्छिन्न प्रति कर्मणः कारणत्व कल्पयितुमर्हति सयोगजसयोगे व्यतिरेकव्यभिचारात् न वा सयोगस्य तथात्व वक्तुमर्हति कर्मजसयोगे व्यभिचारात्। अतः विजातीयसयोग प्रति कर्मणः विजातीयसयोग प्रति च सयोगग्य कारणत्व कल्पनीयम्। असमवायिकारणत्वजातिशून्ये करतरुसयोगे कर्मजन्यतावच्छेदकीभूत वैजात्यमस्ति पर असमवायिकारणत्वजातिर्नास्ति सयोगजसयोगविशेषेऽसमवायिकारणत्वजातिर्विद्यते किन्तु कर्मजन्यतावच्छेद-कवैजात्य नास्ति कर्मजेऽसमवायिकारणीभूतसयोगे च तदुभयमिति कर्मजन्यतावच्छेदकवैजात्येन सहासमवायिकारणत्वजातेः साङ्कर्यम्। एव सयोगजन्यतावच्छेदकवैजात्येन साकमपि तस्य साङ्कर्यमापादनीयम्। ततोऽसमवायिकारणत्वस्य जातित्व न कल्पनामर्हतीत्याशङ्कामपाकर्तुमुपक्षिपन्ति - न चेति मानाभाव इत्यनेनास्यान्वयः। परापरभावानुपपत्ते = व्याप्यव्यापकभावानुपपत्तेः, समानाधिकरणजात्योः व्याप्यव्यापकभावनियमः द्रव्यत्वपृथिवीत्वादिस्थले दृष्टः। असमवायिकारणत्वस्य कर्मजन्यतावच्छेदकजात्यादिसमानाधिकरणत्वेन परस्पर व्याप्यव्यापकभाव आवश्यकः। पर दर्शितरीत्या साङ्कर्यान्न ताभिः सहासमवायिकारणत्वस्य परापरभावः सम्भवतीति तत्र = असमवायिकारणत्वस्य जातित्वे मानाभाव । अत्राभिघातत्वेन

► वल्लभा ◄

हो सके। तत् तत् अवयवो का विलक्षणसयोग होने पर ही घटादि जन्य द्रव्य की उत्पत्ति होती है एव उसके विरह मे जन्य द्रव्य की निष्पत्ति होती नही है। जन्यद्रव्यकारणीभूत सयोग मे रहनेवाला वैजात्य=जातिविशेष जन्यद्रव्यकारणतावच्छेदकविधया सिद्ध होता है जिसको असमावयिकारणत्व कह सकते है। अत असमवायिकारणतावच्छिन्नप्रतियोगिताकनाशत्व ही यावद् द्रव्यनाश का कारणतावच्छेदक धर्म होगा, जिसके स्वीकार मे अतिरिक्त वैजात्य की कल्पना की जाती नही है। अतएव गोरव को भी अवकाश नही है।

▲▲ जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति मे साङ्कर्य का परिहार ▲▲

न च स०। यहाँ इस शका का कि→'कर्मजन्यतावच्छेदक जातिविशेष, सयोगजन्यतावच्छेदकजातिविशेष, अभिघातत्व एव नोदनत्वजाति के साथ जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति का परापरभाव-व्याप्यव्यापकभाव नही होने से जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकीभूत सयोगनिष्ठ जाति की सिद्धि मे कोई प्रमाण नही है। आशय यह है कि सयोग की निष्पत्ति क्रिया(=कर्म) एव सयोग से होती है। कर्मजन्यतावच्छेदकीभूत जाति एव सयोगजन्यतावच्छेदकीभूत जाति भिन्न हे एव सयोगनिष्ठ है। इनके साथ परापरभाव नही होने का मतलव है साङ्कर्य होना। वह इस तरह क्रियाजन्य कर-वृक्षसयोग मे कर्मजन्यतावच्छेदक जाति रहती हे मगर जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति रहती नही है। सयोगजन्य सयोगविशेष मे जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति रहती है, मगर कर्मजन्यतावच्छेदकजाति रहती नही हे। जव कि कर्मजन्य द्रव्यारम्भक सयोग मे उभय जाति रहती है। इसलिए जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति का कर्मजन्यतावच्छेदक जाति के साथ साकर्य होता है, क्योकि परस्परव्यधिकरण धर्मो का एकत्र समावेश होना ही सकर का लक्षण है। इस तरह सयोगजन्यतावच्छेदक जाति आदि के साथे भी जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति का साङ्कर्य होता है। जो जातियॉ एक अधिकरण मे कहॉ भी रहती हो उनके वीच अवश्य परापर=व्याप्यव्यापकभाव होता हे। जैसे द्रव्यत्व और पृथ्वीत्व परस्पर समानाधिकरण होने की वजह अल्पदेशवृत्ति पृथ्वीत्व व्याप्य है, और द्रव्यत्व व्यापक है। मगर प्रस्तुत मे स्थलविशेष मे पररपर व्यधिकरण वनने की वजह जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति का कर्मजन्यतावच्छेदक आदि जाति के साथ व्याप्य-व्यापकभाव वन सकता नही हे। अतएव जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति के स्वीकार मे कोई प्रमाण नही है। अत असमवायिकारणता को जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति, जो सयोग मे रहती है, नही मानी जा सकती'←

पगमात् । न च विनिगमकाभावः, द्रव्यजनकतावच्छेदकजातेर्नोदनत्वादिव्याप्यत्वे तदाश्रयजन्यद्रव्ये हि जातिविशेषो वाच्यः ।

◆ हेमलता ◆

सम नासमवायिकारणत्वस्य साङ्कर्यसम्भव. शब्दजनकतावच्छेदकजातिविषया सिद्धाया अभिघातत्वजातेराश्रयस्य शब्दासमवायिकारणत्वनियमस्य दण्डमृदङ्गसंयोगादौ दृष्टत्वात् तथापि वेगजन्यतावच्छेदकविषयाऽभिघातत्वजाते सिद्धिमभ्युपगच्छता मतेऽभिघातत्वस्य पच्यमानपरमाण्वादिसंयोगेऽसमवायिकारणत्वव्यधिकरणस्याभिघातत्वशून्ये तन्तुद्वयसंयोगादौ वर्तमानेनासमवायिकारणत्वेन सम कपमृदङ्गसंयोगादौ साङ्कर्यं सम्भवति । एवं कपतुलादिसंयोगेऽसमवायिकारणत्वशून्ये वर्तमानस्य नोदनत्वस्य नोदनत्वशून्ये दण्डभेरीसंयोगादौ वर्तमानेन असमवायिकारणत्वेन सम तन्तुद्वयसंयोगादौ सङ्करः। ततो नासमवायिकारणत्वस्य जातित्वमिति शङ्काग्रन्थाशयः।

वस्तुतस्तु प्रकृते न सकलासमवायिकारणानुगताऽसमवायिकारणत्वजातिरभिप्रेता नव्याना किन्तु जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकीभूता संयोगनिष्ठैवाऽसमवायिकारणत्वजातिः । जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकीभूता जातिर्दण्डभेरीसंयोगे नास्ति अभिघातत्वमस्ति तन्तुद्वयसंयोगविशेषे जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदिका जातिर्विद्यते परमभिघातत्व न विद्यते तदुभयञ्च द्रव्यारम्भकेऽभिघातसंयोगे वर्तत इति जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातेरभिघातत्वेन सार्धं साङ्कर्यमनपायं सम्प्रदायानुसारेणापि। एवं पूर्वमुक्तत्रापि साङ्कर्यमभ्यूह्यम्। ततश्च तत्र = जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातौ मानाभाव इति शङ्काग्रन्थतात्पर्यम्।

नव्यास्तन्निराकुर्वन्ति - तासां कर्मजसंयोगनिष्ठजन्यतावच्छेदकसंयोगजन्यतावच्छेदक-नोदनत्वाभिघातत्वजातीना एतद्व्याप्यत्वोपगमात् = *जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातिव्याप्यत्वाङ्गीकारात्। संयोगत्वव्याप्य जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातिविषया सिद्धसमवायिकारणत्व तद्व्याप्याश्च कर्मजन्य*-तावच्छेदक-संयोगजन्यतावच्छेदकनोदनत्वाभिघातत्वजातयः तासां जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकवैजात्याभावसामानाधिकरण्यशून्यत्वात्। ततश्च न सङ्करः सावकाशः। तथाहि कर्मजन्यतावच्छेदकवैजात्य द्विविध जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातिव्याप्य तदव्याप्यञ्च। एवं संयोगजन्यतावच्छेदकजाति-नोदनत्वाभिघातत्वान्यपि द्विविधानि जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकवैजात्यव्याप्यानि तदव्याप्यानि च। कर्मजन्यतावच्छेदकजात्यादीना जन्यद्रव्य-जनकतावच्छेदकजाति विहाय वर्तमानाना जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकव्याप्य-कर्मजन्यतावच्छेदक जात्यादिभ्यो व्यतिरिक्तत्वेन न ताभिस्सह जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातेर्व्यभिचारप्रसङ्ग इति नव्याना समाधानाशयः।

न च कर्मजन्यतावच्छेदकजात्यादीना जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातिव्याप्यत्वमुदन्वित् जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकवैजात्यस्य कर्मजन्यतावच्छेदक-जात्यादिव्याप्यत्व ? इत्यत्र विनिगमकाभाव = एकतरपक्षपातियुक्तिविरह इति साङ्कर्यपरिहारकृते शक्यते एवमपि वक्तु यदुत कर्मजन्यतावच्छेदकजातिव्याप्य तद् जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकवैजात्य ततो भिन्नान्येव संयोगजन्यतावच्छेदकजातिनोदनत्वाभिघातत्वव्याप्यानि जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकवैजात्यानीति वक्तव्यम्, द्रव्यजनकतावच्छेदकजाते नोदनत्वादिव्याप्यत्वे हि तदाश्रयजन्यद्रव्ये = नोदनत्वादिव्याप्यजात्याश्रयसंयोगजन्यद्रव्ये नोदनत्वादिव्याप्यवैजात्याव-च्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकतया जातिविशेष वाच्य अन्यथा नोदनत्वव्याप्यवैजात्यावच्छिन्नविरहदशायामपि अभिघातत्वव्या-

▶ वल्लभा ◀

तासा०। समाधान यह है कि कर्मजन्यतावच्छेदक जाति, संयोगजन्यतावच्छेदक जाति, नोदनत्व जाति एव अभिघातत्व जाति ही जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति की व्याप्य है। आशय यह है कि हम नव्य नैयायिक कर्मजन्यतावच्छेदक जाति आदि को द्विविध मानते हैं। एक प्रकार है जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति की व्याप्य और दूसरा प्रकार है जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति की अव्याप्य। मतलब कि द्रव्यारम्भक कर्मजन्य संयोग में जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति के साथ वृत्ति जो कर्मजन्यतावच्छेदक जाति है वह द्रव्यारम्भक कर्मजन्य संयोग में वृत्ति कर्मजन्यतावच्छेदक जाति से भिन्न ही है । एवं द्रव्यारम्भक संयोगजन्य संयोग में जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति के साथ वृत्ति संयोगजन्यतावच्छेदक जाति से भिन्न संयोगजन्यतावच्छेदक जाति द्रव्यानारम्भक संयोगजन्य देहवृक्षसंयोग आदि में रहती है। इसलिए परस्पर व्यधिकरण जाति का एकत्र समावेश होता नहीं है और जिन जातिओं का एकत्र समावेश होता है, वे परस्पर व्याप्य-व्यापक ही हैं। अब सङ्कर को अवकाश कहाँ? साँच को आँच कहाँ? झूठ को पाँव कहाँ?

नव्यमत में विनिगमनाविरहपरिहार

न च वि०। यहाँ यह शङ्का कि→'साङ्कर्य के परिहारार्थ नव्यनैयायिक ने जैसे जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक, अभिघातत्व और नोदनत्व जाति का स्वीकार किया उसके स्थान में कर्मजन्यतावच्छेदक जाति की व्याप्य जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति से भिन्न भिन्न ३ जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति का स्वीकार क्यों न किया जाय, जो क्रमशः संयोगजन्यतावच्छेदक जाति, नोदनत्व जाति एवं अभिघातत्व जाति की व्याप्य हो? अतिरिक्त चार जाति की कल्पना तो उभयत्र तुल्य है और सङ्करदोष का परिहार भी दोनों पक्ष में समान ही है' ← इसलिए निराधार है कि अतिरिक्त कर्मजन्यतावच्छेदक आदि चार जातियों को जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति की व्याप्य मानने की अपेक्षा कर्मजन्यतावच्छेदक आदि चार जातियों को भिन्न भिन्न जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक चार जातिओं की व्यापक मानने पर अतिरिक्त अनन्त कार्यकारणभाव की कल्पना का गौरव मुँह फाडे खड़ा रहता है। वह इस तरह→जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजाति को नोदनत्वादि जाति

सोऽपि विशेषो घटत्वपटत्वादिना सङ्करभिया तद्व्याप्यः स्वीकार्य इत्यनन्तकार्यकारणभावापत्तेरभिघातत्वादीना नानात्वे च कर्मादिनिष्ठतज्जनकतावच्छेदकजातिचतुष्टयमात्रस्यैव कल्पनादित्याहु ।

◆ हेमलता ◆

प्यवैजात्यावच्छिन्नसयोगजन्यद्रव्ये व्यतिरेकव्यभिचारेण जन्यद्रव्यत्वस्य तज्जन्यतावच्छेदकत्वाऽयोगात्। न चास्तु जन्यद्रव्येपु तत्तज्जन्यतावच्छेदकजातिचतुष्ककल्पना, व्यभिचारवारकत्वेन तन्निबन्धनकार्यकारणभावचतुष्टयकल्पनागौरवस्य फलमुखत्वादिति वाच्यम् यत॰ तत्तज्जात्यवच्छिन्नजन्यतावच्छेदकविषयाऽङ्गीकृतः जन्यद्रव्यसमवेतः सोऽपि जातिविशेषः घटत्व-पटत्वादिना सङ्करभिया तद्व्याप्य = घटत्वादिव्याप्यः स्वीकार्य । सङ्करभावना चैवम्—>अभिघातत्वव्याप्यवैजात्यावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकवैजात्यवति घटे घटत्वमस्ति नोदनत्वव्याप्यवैजात्यावच्छिन्ननिरूपितजन्यतावच्छेदकीभूत वैजात्य नास्ति। नोदनत्वव्याप्यवैजात्यविशिष्टसयोगजन्ये पटे नोदनत्वव्याप्यवैजात्यावच्छिन्नजनकतानिरूपितजन्यतावच्छेदकवैजात्यमस्ति परन्तु घटत्व नास्ति। नोदनत्वव्याप्यजातिविशिष्टसयोगजे घटे तूभयमिति परस्परव्यधिकरणजात्योरेकत्र समावेशात्सङ्करप्राप्तिः। तन्निराकरणकृते च नोदनत्वादिव्याप्यवैजात्यावच्छिन्नजन्यतावच्छेदकजातीनामपि घटत्वादिव्याप्यत्वमङ्गीकर्तव्य स्यात्। ततश्च अनन्तकार्यकारणभावापत्ते दुर्वारत्वम्। एतादृशगौरवस्य प्रथममेवोपस्थितेर्नतादृशगौरवस्य फलमुखत्वम्। परन्तु अभिघातत्वादीना नानात्वे स्वीक्रियमाणे च केवल कर्मसयोगनिष्ठ-नोदनादिजनकतावच्छेदकवैजात्यचतुष्कस्यैव कल्पनात् = कल्पनावश्यकत्वात् कार्यकारणभावचतुष्टयेनैव सर्वसङ्गतिः। एतल्लाघवस्यैव विनिगमकत्वान्न जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातिव्याप्यत्वे स्वीक्रियमागे व्यभिचारवारणाय द्रव्यजनकसयोगनिष्ठमभिघातत्व यत् कर्मजन्यतावच्छेदक ततोऽन्यदेवाभिघातत्व द्रव्याऽजनकसयोगवृत्ति कर्मजन्यतावच्छेदकम्। एवमेव द्रव्यजनकसयोगवृत्ति यन्नोदनत्व कर्मजन्यताच्छेदक ततोऽन्यदेव द्रव्याजनकसयोगनिष्ठ कर्मजन्यतावच्छेदकम्। इत्थञ्च कर्मजन्यतावच्छेदकवैजात्यचतुष्कवत् तदवच्छिन्नजन्यतानिरूपितजनकतावच्छेदकताना कर्मनिष्ठजातिविशेषाणामपि चतुर्विधत्वात्कार्यकारणभावचतुष्ककल्पनैवास्मन्मते आवश्यकी । एव सयोगजनकसयोगनिष्ठकारणतानिरूपितसयोगनिष्ठकार्यतावच्छेदकजातीनामपि चातुर्विध्य कल्पनीयम्। तथाहि सयोगजन्यतावच्छेदक द्रव्यजनकसयोगनिष्ठ यदभिघातत्व ततोऽन्यदेवाभिघातत्व द्रव्याजनकसयोगवृत्ति सयोगकार्यतावच्छेदकम् । तथा सयोगजन्यतावच्छेदक द्रव्यजनकसयोगनिष्ठ यन्नोदनत्व ततोऽन्यदेव नोदनत्व द्रव्याजनकसयोगवृत्ति सयोगकार्यतावच्छेदकमिति नानन्तकार्यकारणभावकल्पनागौरवमस्मन्मत इत्याहु ।

▶ वल्लभा ◀

व्याप्य मानी जाय अर्थात् नोदनत्वादि की व्याप्य पृथक् पृथक् जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति का स्वीकार किया जाय तब नोदनत्वव्याप्य जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति के आश्रय सयोग से जन्य द्रव्य मे एक जातिविशेष का स्वीकार करना होगा, अन्यथा नोदनत्वव्याप्य जाति से विशिष्ट सयोग का अभाव होने पर भी अभिघातत्वव्याप्य जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजाति से विशिष्ट सयोग से जन्यद्रव्य की उत्पत्ति होने से व्यतिरेक व्यभिचार होगा। सयोग मे नोदनत्वव्याप्य जन्यद्रव्यारम्भकतावच्छेदकजाति नहीं होने पर भी अभिघातत्वव्याप्य जन्यद्रव्यारम्भकतावच्छेदक जाति रहने पर उस सयोग से द्रव्योत्पत्ति का अपलाप कैसे किया जा सकता? मगर जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक सकल जाति के आश्रय के विरह मे होनेवाली कार्यनिष्पत्ति व्यतिरेक व्यभिचार की बाँग पुकारती है। इसलिए नोदनत्वव्याप्य जाति के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले द्रव्य मे जातिविशेष का स्वीकार करना होगा जो अभिघात्व आदि व्याप्य जाति के आश्रय सयोग से उत्पन्न होनेवाले कार्य मे नही होगा एव अभिघातत्व आदि की व्याप्य जाति के आश्रय से जन्य द्रव्य मे भी अन्य जातिविशेष का स्वीकार करना होगा जो नोदनत्व आदि की व्याप्य जति के अधिकरण सयोग से जन्य द्रव्य मे नही रहेगा। तब यद्यपि व्यतिरेक व्यभिचार का अवकाश नही होगा मगर घटत्व, पटत्व आदि जाति के सौथ साङ्कर्य समस्या मुँह फाडे खडी रहेगी। ऊँट को निकालने पर आँगन मे साँप तो घूस ही गया। साङ्कर्यभावना इस तरह की जा सकती है—>जो घट अभिघातत्वजातिव्याप्यजातिविशिष्ट सयोग से जन्य हे उसमे घटत्व हे किन्तु नोदनत्वजातिव्याप्यजातिअवच्छिन्नकार्यतावच्छेदकीभूत वैजात्य नहीं है। एव जो पट नोदनत्वव्याप्यजातिविशिष्ट सयोग से जन्य है उसमे नोदनत्वव्याप्यजातिअवच्छिन्नकार्यतावच्छेदक जातिविशेष हे किन्तु घटत्व नहीं है। मगर नोदनत्वव्याप्यजातिविशिष्ट सयोग से जन्य घट मे वे दोनो रहेंगे। इस तरह परस्पर व्यधिकराण जाति का एकत्र समावेश हो जाने से साङ्कर्य प्रसक्त होता है। ठीक ऐसे ही पटत्व आदि जाति के साथ भी उसका साङ्कर्य स्वय ज्ञेय है। इस साङ्कर्य के निराकरणार्थ यह कल्पना करनी पडेगी नोदनत्वव्याप्यजातिविशेषावच्छिन्नजन्यतावच्छेदक जाति भी एक नहीं हे किन्तु घटत्वादिव्याप्य अनेक हैं। तब उपदर्शित सकर दोष को अवकाश नही रहेगा, क्योंकि घट एव पट मे रहनेवाली नोदनत्वव्याप्यजातिविशेषावच्छिन्नकार्यतावच्छेदक जाति अलग अलग होने से दोनो का एकत्र समावेश होता नहीं है। मगर इस तरह घटत्वादि की व्याप्य तादृशजन्यतावच्छेदक जाति की कल्पना करने पर अनन्त कार्यकारणभाव की कल्पना करनी पडेगी, क्योंकि घट, पट, मठ आदि जन्य द्रव्य अनन्त होने से घटत्व-पटत्वादि अनन्त जाति की व्याप्य तादृश अनन्त कार्यतावच्छेदक जाति का स्वीकार इस पक्ष मे अनिवार्य होगा। मगर अभिघातत्वादि जाति को अनेक

यत्तु 'कर्मज एव संयोगो द्रव्यहेतुः, परमाणौ त्रसरेणौ वा संयोगजसंयोगासम्भवस्य विनिगमकत्वात्' इति, तच्चिन्त्यम्, तथापि तज्जातेरभिघातत्वादिना साङ्कर्यावारणात्।

असमवायिकारणत्वमखण्डमेवेति पुनरविचारित वचः, असमवायिकारणनाशत्वस्य समवायिकारणासमवायिकारणनाशयोर्जनकतावच्छेदकस्यैव वाऽखण्डत्वौचित्यात्।

◆ हेमलता ◆

यत्त्विति। तच्चिन्त्यमित्यनेनास्यान्वयः। क्लृप्तत्वात् कर्मज एव संयोगः द्रव्यहेतुः न तु संयोगजन्यसंयोगः। न च संयोगजसंयोगस्यैव द्रव्यत्वावच्छिन्नजनकत्वमस्त्विति वाच्यम् अवयवधारायाः परमाणौ विश्रामे स्वीक्रियमाणे परमाणुसमवेतद्रव्यस्योत्पत्तौ व्यतिरेकव्यभिचारप्रसङ्गात् शिरोमणिमतानुरोधेन त्रुटावेव वाऽवयवविश्रामे त्रसरेणुसमवेतद्रव्योत्पत्तौ व्यभिचारापातादित्याशयेनाहुः- परमाणाविति। तन्निरवयवत्वेन तत्रावयवसंयोगजन्यसंयोगस्यासम्भवः। विनिगमकत्वात् = क्रियाजन्यसंयोगे द्रव्यत्वावच्छिन्नहेतुतानिश्चायकत्वात्। एतेन द्रव्यत्वावच्छिन्नं प्रति कर्मजसंयोगस्य हेतुत्वं संयोगजसंयोगस्य वा? इत्यत्राविनिगमेनोभयोरेव हेतुतेति निरस्तम्, निरवयवद्रव्यजन्यद्रव्योत्पादानुरोधेन लाघवात् कर्मजसंयोग एव तद्धेतुताकल्पनात्। एतेन कर्मनिष्ठनोदनादिजनकतावच्छेदकजातिचतुष्टय-संयोगनिष्ठनोदनादिजनकतावच्छेदकजातिचतुष्टयकल्पनाप्रयुक्ताष्टविधकार्यकारणभावकल्पनाऽपि प्रत्युक्ता महागौरवात्। ततश्च द्रव्यजनककर्मजन्यसंयोगमात्रवृत्तिजातेर्जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकत्वमिति फलितम्।

तच्चिन्त्यम् तथापि = कर्मजसंयोगस्यैव जन्यद्रव्यमात्रवृत्तिजात्यवच्छिन्नकारणत्वस्वीकारेऽपि, तज्जातेः = सकलकार्यद्रव्यकारणकर्मजसंयोगमात्रवृत्तिजातिविशेषस्य अभिघातत्वादिना साङ्कर्यावारणात्। तथाहि - द्रव्यजनकनोदनेऽभिघातत्वं नास्ति जन्यद्रव्यजनककर्मसंयोगमात्रवृत्तिजातिरस्ति द्रव्याऽजनकाभिघातेऽभिघातत्वमस्ति जन्यद्रव्यजनककर्मजसंयोगमात्रवृत्तिजातिर्नास्ति, द्रव्यजनकाभिघाते तूभयमिति साङ्कर्यम्। एवं नोदनत्वेन साङ्कर्यमपि तत्साङ्कर्यमूहनीयम्। न चाभिघातत्वादिव्याप्यत्वमेव जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदकजातेरस्तिति न साङ्कर्यावकाश इति वाच्यम् तथा सति नानाकार्यकारणभावगौरवस्य दुर्वारत्वेन निन्दामि च पिबामि चेति न्यायापातात्। ततश्च कर्मजसंयोगमात्रस्य न जन्यद्रव्यजनकत्वकल्पनमिति भावः।

नन्वसमवायिकारणत्वस्य जातित्वाङ्गीकारे प्रदर्शितमीमांसा फलवती। किन्तु न तत् जातिस्वरूपं किन्तु जात्यतिरिक्ताखण्डोपाधिरूपमेव तदिति वन्ध्यास्तनन्धयपरिणयनविमर्शतुल्यैवोक्तप्ररूपणेत्याशयवता मतमपाकर्तुमुपन्यस्यति, असमवायिकारणत्वं अखण्ड = जात्यतिरिक्ताखण्डोपाधिस्वरूप एवेति पुनः केषाञ्चित् अविचारितं वचः।

तदयुक्तत्वमावेदयति- असमवायिकारणनाशत्वस्य समवायिकारणासमवायिकारणनाशयोः जन्यतावच्छेदकस्यैव वाऽखण्डत्वौचित्यात्। अयमभिप्रायः

► वल्लभा ◄

मानने में कर्मादिनिष्ठ अभिघातादिजनकतावच्छेदक केवल चार जाति की ही कल्पना करनी होगी। वह इस तरह→कर्मजन्य नोदन संयोग द्विविध होता है, द्रव्यजनक और द्रव्याऽजनक तथा कर्मजन्य अभिघात संयोग भी द्विविध होता है, द्रव्यजनक और द्रव्याऽजनक। अतः व्यभिचार के परिहारार्थ नोदनगत कर्मजन्यतावच्छेदक जाति दो होगी और अभिघातगत कर्मजन्यतावच्छेदकजाति भी दो होगी। इस तरह चतुर्विध कार्यकारणभाव की ही कल्पना आवश्यक होगी। तथा संयोग भी संयोग का जनक होता है। संयोगजन्य नोदन संयोग भी पूर्वोक्त द्विविध होता है, द्रव्यजनक और द्रव्याऽजनक। अतः व्यतिरेक व्यभिचार के निराकरणार्थ नोदनगत संयोगजन्यतावच्छेदक जाति दो होगी और अभिघातगत संयोगजन्यतावच्छेदक जाति भी दो होगी। तदनुरोधेन केवल अन्य चार कार्यकारणभाव को मान्यता देनी होगी। इस तरह इस पक्ष में केवल अष्टविध हेतुहेतुमद्भाव की ही कल्पना आवश्यक बनेगी। यह गौरव-लाघव ही सिद्ध करता है कि नोदनत्व-अभिघातत्व जाति ही जन्यद्रव्यजनकतावच्छेदक जाति की व्याप्य है।

► कर्मजन्यसंयोग ही द्रव्यजनक- मतविशेष ◄

यत्तु॰। यहाँ अन्य विद्वानो का यह अभिप्राय है कि द्रव्यजनक संयोग कर्मजन्य ही होता है न कि संयोगजन्य। संयोगजन्य संयोग में द्रव्यहेतुता के अनङ्गीकार का तात्पर्य यह है कि जिन विद्वानो के मत में अवयवी के अवयवो की धारा की विश्रान्ति परमाणु में होती है उनके मतानुसार तो परमाणु निरवयव होने से अवयवसंयोगजन्य अवयवीसंयोग परमाणु में नामुमकिन होगा। एवं जिन विद्वानो के मत में त्रसरेणु में अवयवधारा का पर्यवसान होता है उनके मतानुसार त्रुटि निरवयव होने से अवयवसंयोगजन्य संयोग त्रसरेणु में असम्भव होगा। फिर भी परमाणु का या त्रसरेणु का कर्मजन्य संयोग द्रव्यारम्भक होता ही है। यहाँ क्रियाजन्य संयोग में ही द्रव्यहेतुता की कल्पना आवश्यक है, संयोगजन्य संयोग में नहीं। अतः यहाँ यह शंका भी कि → 'संयोगजन्य संयोग को द्रव्यकारण मानना या क्रियाजन्य संयोग को? इस विषय में कोई विनिगमक नहीं है'←निरस्त हो जाती है, क्योंकि केवल संयोगजन्य संयोग को द्रव्यजनक मानने पर परमाणुवृत्ति या त्रसरेणुवृत्ति संयोग से उत्पन्न होनेवाले द्रव्य में व्यतिरेक व्यभिचार प्रसक्त

अत्र स्वतन्त्रा द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नं प्रति समवायिकारणाऽसमवायिकारणनाशयोरेवैकशक्तिमत्त्वेन हेतुत्वम्। एकावयवनाशोत्पत्तिसमये यत्रावयवान्तरे द्रव्यान्तरसंयोगविभागोत्पत्तिः तत्र तदधीननानावयविसंयोगादिकल्पनामपेक्ष्यैकस्याः शक्तेः कल्पनाया

◆ हेमलता ◆

यद्यसमवायिकारणत्वस्याखण्डत्वमभ्युपगम्यते तर्हि जन्यद्रव्यनाशकतावच्छेदकविधया लाघवेन असमवायिकारणनाशत्वस्यैवाखण्डोपाधित्वमङ्गीकर्तव्यम् न तु अखण्डोपाधिलक्षणसमवायिकारणत्वविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वस्य, गौरवात्। यदि च द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नं प्रति नासमवायिकारणनाशस्य हेतुताऽभ्युपगम्यते किन्तु कदाचित् समवायिकारणनाशस्य कदाचिच्चासमवायिकारणनाशस्य तथापि समवायिकारणनाशाऽसमवायिकारणनाशानुगतधर्मविशेषस्यैवाऽखण्डत्वमङ्गीकृत्य द्रव्यनाशजनकतावच्छेदकत्वकल्पना युक्ता।

अत्र = द्रव्यनाशकतामीमांसाया शक्तिप्रतिक्षेप्तृन्यायतन्त्रबाह्याः स्वतन्त्रा द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नं = जन्यद्रव्यमात्रतियोगिकनाशत्वावच्छिन्नं प्रति समवायिकारणाऽसमवायिकारणनाशयो एकशक्तिमत्त्वेन = जन्यद्रव्यनाशानुकूलैकशक्तिमत्त्वेन रूपेण एव हेतुत्वम्। एतेन असमवायिकारणनाशस्यैव जन्यद्रव्यनाशकत्वकल्पना प्रत्युक्ता समवायिकारणनाशस्थले क्षणद्वय निराश्रयद्रव्यव्यवस्थितिस्वीकारापत्तेः समवायिकारणनाशस्यापि तद्धेतुत्वाप्रच्यवात्। किञ्च असमवायिकारणनाशस्यैव कार्यद्रव्यनाशकत्वे यत्र अवयविनि एकावयवनाशोत्पत्तिसमये एव अवयवान्तरे द्रव्यान्तरसंयोगविभागोत्पत्ति = द्रव्यान्तरेण केनचित्सह संयोगस्य केनचिच्च सह विभागस्योत्पादः तत्र अवयविनि तदनन्तरमारम्भकसंयोगनाशक्षणे तदधीननानावयविसंयोगादिककल्पना =विद्यमानावयविनि द्रव्यान्तरेण सहावयवसंयोगजन्यसंयोगस्यावयवविभागजन्यविभागस्य च कल्पना अपेक्ष्य एकस्या शक्ते द्रव्यनाशकतावच्छेदकविधया कल्पनाया एव समुचितत्वात् यतः समवायिकारणनाशस्याऽपि असमवायिकारणनाशानुगतैकशक्तिमत्त्वेन कार्यद्रव्यनाशकत्वाभ्युपगमे एकावयवनाशोत्पादानन्तरसमये द्रव्यस्यैव विनाशेनाऽवयविना सममवयवसंयोगजन्यसंयोगावयवान्तरविभागजन्यविभागयोरसम्भवान्न तत्कल्पनावश्यकी । अतोऽतिरिक्तशक्तिकल्पनाया न्याय्यत्वमित्याहुः।

▶ वल्लभा ◀

होता है। अत केवल कर्मजन्य संयोग ही द्रव्यजनक है- यह फलित होता है।

तच्चिन्त्यम्। मगर प्रकरणकार श्रीमद्जी कहते है कि उपर्युक्त मत विचारणीय है न कि विना विचार के स्वीकार्य। इसका कारण यह है कि केवल क्रियाजन्य संयोग को ही जन्यद्रव्य का कारण माना जाय तब तो अभिघातत्वजाति के साथ द्रव्यजनक-कर्मजसंयोगवृत्ति जाति का साङ्कर्य प्रसक्त होगा। वह इस तरह →द्रव्यजनक नोदन संयोग मे द्रव्यजनककर्मसंयोगजनकताअवच्छेदकजाति है मगर अभिघातत्व नही है। द्रव्याऽजनक अभिघात संयोग मे अभिघातत्व है मगर द्रव्यजनककर्मजसंयोगजनकतावच्छेदक जाति नही है। जब कि द्रव्यजनक अभिघात संयोग मे अभिघातत्व और द्रव्यजनककर्मजसंयोगजनकतावच्छेदक जाति भी रहती हे। इसलिए कर्मजन्य संयोग को सकल द्रव्य का कारण कहा जा नही सकता।

★★ असमवायिकारणता अखण्डोपाधि नही है ★★

असम०। कुछ विद्वानो का यह मन्तव्य है कि असमवायिकारणता जातिस्वरूप नही है किन्तु अखण्डोपाधिस्वरूप ही है। इसलिए साङ्कर्य आपादन निरर्थक है। मगर यह वचन अविचारित मतलब कि बिना विचार के यह कहा गया है। इसका कारण यह है कि असमवायिकारणता को अखण्ड मानना और अखण्डउपाधिस्वरूप असमवायिकारणता के आश्रय के नाश को द्रव्यनाशक मानना इसकी अपेक्षा द्रव्यनाशकतावच्छेदकधर्मविधया असमवायिकारणनाशत्व को ही अखण्डोपाधिस्वरूप मानना चाहिए। इसमे लाघव हैं। यदि क्वचित् समवायिकारणनाश को और कभी असमवायिकारणनाश को द्रव्यनाशक मानना हो तो समवायिकारणनाश और असमवायिकारणनाश दोनो मे अनुगत धर्मविशेष को अखण्डउपाधिस्वरूप मान कर उसीको द्रव्यनाशजनकतावच्छेदक धर्म मानना उचित है, क्योकि तब अत्यन्त लाघव होता है। इसलिए असमवायिकारणत्व को अखण्डोपाधिस्वरूप मानना असगत ही है।

▲▲ एकशक्तिमत्त्वेन द्रव्यनाशकता - स्वतन्त्रमत ▲▲

अत्र स्व०। यहाँ स्वतन्त्र विद्वानो का कथन यह है कि द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न = सकल जन्यद्रव्यनाश के प्रति समवायिकारणनाश और असमवायिकारणनाश हेतु हैं। केवल समवायिकारणनाश से या केवल असमवायिकारणनाश से होनेवाले द्रव्यनाश मे व्यतिरेक व्यभिचार का अवकाश नही है, क्योकि कारणतावच्छेदक धर्म दोनो मे अनुगत एक शक्ति हे। समवायिकारणनाश-असमवायिकारणनाशअनुगत एकशक्तिमत्त्वेन जन्य द्रव्य नाशमात्र के प्रति कारणता के स्वीकार मे लाघव भी हैं। इसका कारण यह हे कि अवयवी के एक अवयव का नाश होता है ओर उसी समय मे अन्य द्रव्य के साथ विवक्षित अवयवी के अवयव का संयोग ओर एक द्रव्य से विवक्षित अवयवी के अवयव का विभाग उत्पन्न होता है उसके अनन्तर समय मे अवयवी के अवयवसंयोगात्मक असमवायिकारण का नाश हाने पर
15 मूल अवयवी द्रव्य अविनष्ट होने से उसमे अवयवसंयोगजन्य संयोग एव अवयवविभागजन्य विभाग की उत्पत्ति की कल्पना करनी होगी।

एव समुचितत्वात् इत्याहु, तच्चिन्त्यम्, उक्तगौरवस्य फलमुखत्वेनाऽदोषत्वात्, अन्यथा नाशत्वावच्छिन्न प्रत्येवैकशक्तिमत्त्वेन हेतुत्वप्रसङ्गात्। अपि च प्रसिद्धरूपेण हेतुत्वपरित्यागे सर्वत्रैवान्यतमत्वादिना तत्त्वप्रसङ्गः।

गुरुचरणास्तु विजातीयसयोगनाशस्य द्रव्यनाशत्व जन्यतावच्छेदक मूर्त्तनाशत्वादिक वेति विनिगमनाविरहात् स्वाश्रयसमवेतत्व-

◆ हेमलता ◆

स्वतन्त्रमतमपाकरोति-तच्चिन्त्यम्, उक्तगौरवस्य =प्रदर्शितरीत्याऽवयवसयोगजसयोगायवान्तरविभागजन्यविभागकल्पनागौरवस्य फलमुखत्वेन = असमवायिकारणनाशस्यैव द्व्यणुकनाशान्वयव्यतिरेकाभ्या जन्यद्रव्यनाशकत्वसिद्ध्या तादृशकार्यकारणभावनिश्चयलक्षणफलाधीनत्वेन तदुत्तरकालीन-सयोगविभागकल्पनागौरवस्य अदोषत्वात् प्रमाणसिद्ध्यसिद्धिभ्या व्याघातात्। विपक्षबाधमाह - अन्यथा = एकावयवनाशाव्यवहितोत्तरक्षणकालीनावयवि-सयोगविभागकल्पनामपास्य लाघवेनैकशक्तेरभ्युपगमे नाशत्वावच्छिन्न प्रति एव न तु जन्यद्रव्यनाशत्वावच्छिन्न प्रति एकशक्तिमत्त्वेन हेतुत्वप्रसङ्गात्, जन्यद्रव्यनाशत्वापेक्षया नाशत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वे लाघवात्।

नन्वस्तु नाशत्वावच्छिन्ने एवैकशक्तिमत्त्वेन कारणत्वम्। एवमपि न स्वतन्त्राणामस्माक काचित् क्षतिः अवयविरूपादिनाशेऽवयविरूपाद्यसमवायिका-रणीभूतस्यावयवरूपादेर्नाशेऽपि तादृशशक्तेरभ्युपगमात्। न च योग्यविभुविशेषगुणनाशेऽव्याप्तिः तदसमवायिकारणनाशस्य तदजनकत्वादिति वाच्यम् समवायिकारणाऽसमवायिकारणनाशयोरिव योग्यविभुविशेषगुणेष्वपि तादृशशक्तेरनुगतायाः स्वीकारादिति स्वतन्त्राशङ्काया प्रकरणकृदाह- अपि च एव अन्वय-व्यतिरेकाभ्या प्रसिद्धरूपेण हेतुत्वपरित्यागे सर्वत्रैव अन्यतमत्वादिना तत्त्वप्रसङ्ग = कारणत्वकल्पनापत्तिः। तृणारणिमणिस्थलेऽपि शक्यते ह्येव वक्तु यदुत वह्नित्वावच्छिन्न प्रति तृणारणिमण्यन्यतमत्वेन कारणत्वम्। तथा सति तत्र वैजात्यकल्पनाऽप्युच्छिद्येतेत्येकशक्तिमत्त्वेन कारणताकल्पनमयुक्तम्।

गुरुचरणास्त्विति आहुरित्यनेनान्वेति। कारणीभूतस्य विजातीयसयोगनाशस्य द्रव्यनाशत्व जन्यतावच्छेदक मूर्त्तनाशत्वादिक वा? इत्यत्र

► वल्लभा ◄

असमवायिकारणनाश से ही अवयविद्रव्यनाश को मान्यता देनेवाले विद्वानो के मत मे उपर्युक्त दोष अनिवार्य है। मगर समवायिकारण और असमवायिकारण मे एक अनुगत शक्ति का स्वीकार कर के कार्यद्रव्यनाशमात्र के कारणतावच्छेदकविधया एकशक्तिमत्त्व को मान्य करने पर उक्त गौरव को अवकाश नही है, क्योकि अवयवी के एक अवयव का नाश होने के अनन्तर समय मे ही अवयवी द्रव्य का नाश हो जाता है तब अवयविनाशाऽव्यवहितपूर्वसमयोत्पन्न सयोग, विभाग के अधीन अन्य सयोग और विभाग की उत्पत्ति को अवकाश ही कैसे रहेगा? अवयवी न होने पर उसमे सयोगादि की उत्पत्ति कैसे हो सकती? न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी!

▼▼स्वतन्त्रमतनिरास ▼▼

तच्चिन्त्यम्०। मगर स्वतन्त्रमत के खिलाफ प्रकरणकार श्रीमद्जी का कथन यह है कि उपदर्शित मत विचारणीय है, क्योकि इसमे जिस गौरव का आपादन किया गया है वह फलमुख होने की वजह दोषात्मक नही है। आशय यह है कि द्व्यणुक का नाश समवायिकारण के नाश से हो सकता नही है। अत असमवायिकारणनाश मे द्रव्यनाशकता अवश्य अङ्गीकर्तव्य है और उसीसे अन्यत्र कार्यद्रव्यनाश की उपपत्ति हो जाने से असमवायिकारणनाश मे यावद् जन्यद्रव्य की नाशकता प्रमाणसिद्ध हो चूकी है। यहाँ जिस गौरव का आपादन किया गया है वह तादृश कार्यकारणभाव के निश्चय के अनन्तर उपस्थित है। प्रमाणसिद्ध कार्यकारणभाव के अधीन (=फलमुख) होने की वजह अवयवनाशोत्पादसमकालीनद्रव्यान्तरसयोगविभाग के अव्यवहित उत्तर समय मे अवयवी मे सयोगजन्यसयोग एव विभागजन्यविभाग की उत्पत्ति की कल्पना का गौरव निर्दोष है। इसलिए जन्यद्रव्यनाशत्वावच्छिन्न के प्रति समवायिकारणनाश एव असमवायिकारणनाश को एकशक्तिमत्त्वेन कारण मानना नामुनासिब है। फिर भी लाघव अनुरोध से स्वतन्त्र विद्वानो को एकशक्तिमत्त्वेन कारणता की कल्पना करनी हो तब तो नाशत्वावच्छिन्न के प्रति ही तादृशएकशक्तिमत्त्वेन हेतुता की आपत्ति आयेगी। जन्यद्रव्यनाशत्व को कार्यतावच्छेदक मानने की अपेक्षा नाशत्व को ही कार्यतावच्छेदक धर्म मानने मे लाघव है। सकल ध्वस के नाशको मे एक अनुगत शक्ति की कल्पना करने मे स्वतन्त्र विद्वानो का क्या बिगडेगा? दूसरी बात यह भी ध्यातव्य है कि इस तरह सिर्फ लाघव को ही लक्ष्य मे लेकर प्रसिद्धरूप से कारणता का परित्याग किया जाय तब तो सर्वत्र अन्यतमत्वेन ही कारणता की कल्पना करनी पडेगी। जैसे कि अग्नि के प्रति तृण-अरणि-मणि अन्यतमत्वेन कारणता का स्वीकार किया जा सकेगा। तब तो तार्ण वह्नि के प्रति तृण कारण है, आरणेय अग्नि के प्रति अरणि जनक है और माणेय अनल के प्रति मणि हेतु है - इत्यादि व्यवहार का विच्छेद हो जायेगा। इसलिए स्वतन्त्रमत अश्रद्धेय है।

सकल जन्यद्रव्य असमवायिकारणनाशनाश्य नही है - गुरुचरणमत

गुरु०। यहाँ गुरुचरणमत यह है कि→विजातीयसयोगनाश का कार्यतावच्छेदक धर्म द्रव्यनाशत्व है या मूर्त्तनाशत्व है? इस विषय

कालिकोभयसम्बन्धेन स्वविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वमेव तथेति न जन्यद्रव्यमात्रस्याऽसमवायिकारणनाशनाश्यत्वम्। न चैव समवायिकारणनाशस्य हेतुत्वान्तरकल्पने गौरवम्, प्रतियोगितया स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकोभयसम्बन्धेन नाशवन्नाशत्वावच्छिन्न

◆ हेमलता ◆

विनिगमनाविरहात्। न च मूर्तत्वस्य सावच्छिन्नपरिमाणवत्त्वरूपतया सखण्डत्वादखण्डस्य द्रव्यत्वस्यैव कार्यतावच्छेदकघटकत्वे लाघवमिति वक्तव्यम् कार्यसमवायिकारणतावच्छेदकतया सिध्यतो द्रव्यत्वस्येव कर्मसमवायिकारणतावच्छेदकतया सिध्यतो मूर्तत्वस्यापि जातित्वेनाखण्डत्वात्। ततः किमित्याह- स्वाश्रयसमवेतत्व-कालिकोभयसम्बन्धेन स्वविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वमेव तथा = विजातीयसयोगनाशकार्यतावच्छेदम्। कार्यतावच्छेदकसम्बन्धःस्वप्रतियोगित्व कार्यतावच्छेदकताघटकवैशिष्ट्यनियामकसम्बन्धः स्वाश्रयसमवेतत्व-कालिकोभय, कारणतावच्छेदकसम्बन्धः स्वप्रतियोगिसमवायिसमवेतत्व कारणतावच्छेदकधर्मो नाशत्वम्। तथाहि कपालद्वयविजातीयसयोगनाशजन्यघटनाशस्थले कार्यतावच्छेदकधर्मघटकस्वपदेन कपालद्वयविजातीयसयोगनाशस्य ग्रहणम्। तदाश्रये कपाले घटस्य समवेतत्वात् कपालद्वयविजातीयसयोगनाशक्षणे विद्यमानत्वाच्च स्वाश्रयसमवेतत्व-कालिकोभयसम्बन्धेन कपालद्वयविजातीयसयोगनाशक्षणे विद्यमानत्वाच्च स्वाश्रयसमवेतत्व-कालिकोभयसम्ब्न्धेन कपालद्वयविजातीयसयोगनाशविशिष्टत्वमनपायम्। स्वाश्रयसमवेतत्वकालिकोभयसम्बन्धेन कपालद्वयविजातीय-सयोगनाशविशिष्टघटप्रतियोगिको नाशः स्वप्रतियोगितासम्बन्धेन घटे वर्तते तत्र च स्वप्रतियोगिसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन कपालद्वयविजातीयसयोगनाशोऽपि वर्तत एव घटस्य कपालद्वयविजातीयसयोगनाशप्रतियोगिकपालद्वयविजातीयसयोगसमवायिनि कपाले समवेतत्वात्। इत्थञ्च कार्यकारणसामानाधिकरण्यनिर्वहिन तदुपपत्तिः। यदि च कार्यतावच्छेदकताघटकवैशिष्ट्यनियामकसम्बन्धविधया कालिकस्योपादान न स्यात् तर्हि विजातीयकपालद्वयसयोगनाशात् कपालत्वादिनाशोऽपि प्रसज्यते कपालत्वस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन कपालद्वयविजातीयसयोगनाशविशिष्टत्वात् कपालत्वस्य निरुक्तनाशाश्रयकपाले समवेतत्वादिति तन्निवेश आवश्यकः। किन्त्वेव सति समवायिकारणनाशनाश्यद्रव्यस्य नाशो नासमवायिकारणनाशाद्भवितुमर्हति असमवायिकारणनाशकार्यतावच्छेदकधर्मविरहात्, समवायिकारणनाशनाश्यस्य तस्य द्रव्यस्याऽसमवायिकारणनाशसमये नाशेनाऽविद्यमानत्वात् कालिकेनासमवायिकारणनाशस्याऽवर्तमानत्वात्। न च तस्मिन् द्रव्ये स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन विजातीयसयोगनाशस्य सत्त्वेऽपि कालिकेनाऽसत्त्व कथमिति वाच्यम्, अविद्यमानस्य कालोपाधित्वायोगेन स्वसमानकालिकविशेषणतासम्बन्धेन तत्र कस्याऽप्यवृत्तित्वात्। ततश्च निरुक्तोभयसम्बन्धेन समवायिकारणनाशनाश्य द्रव्य न स्वपदोपादेयविजातीयसयोगनाशविशिष्ट भवति। अत एव न तत्प्रतियोगिकनाशस्य निरुक्तोभयसम्बन्धेन स्वविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वलक्षणकार्यतावच्छेदकधर्माक्रान्तत्वम्। अतो न जन्यद्रव्यनाशत्वावच्छिन्नस्य विजातीयसयोगनाशजन्यतावच्छेदकत्व सम्भवतीत्याह इति हेतोः न जन्यद्रव्यमात्रस्य = यावत्कार्यद्रव्यस्य असमवायिकारणनाशनाश्यत्वम् = विजातीयसयोगनाशजन्यनाशप्रतियोगित्वम्। न चेव दर्शितकार्यकारणभावस्वीकारदशाया विजातीयसयोगनाशाऽनाश्यकार्यद्रव्यनाश प्रति समवायिकारणनाशस्य हेतुत्वान्तरकल्पने गौरवमिति वाच्यम् प्रतियोगितया = स्वनिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धेन, अनेन कार्यतावच्छेदकसम्बन्धप्रदर्शन कृतम्। कार्यतावच्छेदकताघटकनियामकसम्बन्धमाह - स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकोभयसम्बन्धेनेति। कार्यतावच्छेदकधर्मो नाशवन्नाशत्वम्। कारणतावच्छेदकसम्बन्धमाहुः स्वप्रतियोगिसमवेतत्वेनेति। कारणता-

▶ वल्लभा ◀

मे कोई विनिगमक नही है, क्योकि द्रव्यत्व की भाँति मूर्तत्व जाति होने की वजह कार्यतावच्छेदकधर्मकुक्षि मे द्रव्यत्व को हटा कर मूर्तत्व का निवेश करने मे गौरव नही है। इस विनिगमनाविरह को हटाने के लिए इस तरह कार्यकारणभाव का स्वीकार करना होगा कि विजातीयसयोगनाश का कार्यतावच्छेदक धर्म स्वविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्व ही है। स्ववैशिष्ट्य स्वाश्रयसमवेतत्व-कालिकविशेषणतोभय सम्बन्ध से ग्राह्य है। स्वपदार्थ है विजातीयसयोगनाश। जैसे कपालद्वयविजातीयसयोगनाश से होने वाले घटनाश स्थल मे स्व=कपालद्वयविजातीयसयोगनाश के आश्रय=कपाल मे घट समवायसम्बन्ध से कपालद्वयविजातीयसयोगनाशक्षण मे विद्यमान होने की वजह वह घट स्वाश्रयसमवेतत्व-कालिकविशेषणताउभय सम्बन्ध से विजातीयसयोगनाशविशिष्ट बनता है। घटनाशात्मक कार्य मे स्वविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वस्वरूप कार्यतावच्छेदक धर्म रहता है और कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध = स्वप्रतियोगिताससर्ग से घटनाश घट मे रहता है तथा उसी घट मे स्वप्रतियोगिसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध=कारणतावच्छेदकसम्बन्ध से कपालद्वयविजातीयसयोगनाशलक्षण कारण भी रहता हे, क्योकि स्व = नाश के प्रतियोगी = विजातीयसयोग के समवायी = कपाल मे घट समवेत होता हे। इस तरह कार्य-कारण के वीच सामानाधिकरण्य भी सङ्गत होता है। अत यह जन्यजनकभाव मान्य करना होगा। मगर इसको मान्यता देने पर कपालनाशनाश्य घट आदि के नाश के प्रति कपालद्वयविजातीयसयोगनाश आदि कारण वन नही सकते। इसका कारण यह है कि कपालनाश के अनन्तर क्षण मे कपालद्वयविजातीयसयोग का नाश एव घट का नाश उत्पन्न होने की वजह कपालद्वयविजातीयसयोगनाश, जो स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से कपालद्वयविजातीयसयोगनाशविशिष्ट है, कालिकविशेषणतासम्बन्ध से घट मे रह सकता नही है। अविद्यमान वस्तु कालोपाधि नहीं वनने की वजह कालिकविशेषणतासम्बन्ध से उसमे तव कोई भी चीज रह सकती नही है। मतलव कि कपालनाशनाश्य घट स्वाश्रयसमवेतत्व-कालिकविशेषणता उभयसम्बन्ध से स्वविशिष्ट=कपालद्वयविजातीयसयोगनाशविशिष्ट नही वनने की वजह घटनाश मे स्वविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वात्मक कार्यतावच्छेदक धर्म रहता नही है। इसलिये सकल जन्यद्रव्य असमवायिकारणनाश से नाश्य नही हो सकता - यह फलित होता है।

प्रति स्वप्रतियोगिसमवेतत्वेन नाशत्वेन हेतुतायाः क्लृप्तत्वात्, तयैव समवायिकारणनाशस्य द्रव्यनाशकत्वनिर्वाहात्' इत्याहु, तच्चिन्त्यम् द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगितया नाशत्वावच्छिन्नं प्रत्येव तद्धेतुत्वात्। द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगिताया एव च मूर्त्तत्वविशिष्टत्वान्न विनिगमनाविरहः।

◆ हेमलता ◆

वच्छेदकधर्ममाहुः- नाशत्वेनेति। क्लृप्तत्वात् = घटनाशजन्यरूपनाशादौ प्रमाणसिद्धत्वात्। तथाहि घटनाशक्षणावच्छेदेन विद्यमानस्य घटनाशप्रतियोगिघटसमवेतस्य घटीयरूपस्य स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकविशेषणतोभयसम्बन्धेन घटनाशविशिष्टत्वम्। स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकोभयसम्बन्धेन घटनाशविशिष्टरूपनाशः स्वनिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धेन घटनाशविशिष्टरूपे वर्तते तत्रैव च स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धेन घटनाशोऽपि वर्तते, घटीयरूपस्य घटनाशप्रतियोगिघटसमवेतत्वात्। अत्रावश्यक्लृप्तकार्यकारणभावेनैवाऽसमवायिकारणनाशाऽनाश्यस्याऽपि नाशः सम्भवतीति न गौरवमीत्याहु' तया =स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकोभयसम्बन्धावच्छिन्न-नाशनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदक-नाशत्वावच्छिन्न-स्वप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपितस्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्न-नाशत्वावच्छिन्नहेतुतया एव समवायिकारणनाशस्य द्रव्यनाशकत्वनिर्वाहात् = असमवायिकारणनाशाऽनाश्यद्रव्यप्रतियोगिकनाशजनकत्वोपपत्तेः। तथाहि कारणतावच्छेदकीभूतनाशत्वविशिष्टस्य कपालनाशादेः स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धेन घटादौ सत्त्वात् स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकविशेषणतोभयसम्बन्धेन कपालनाशविशिष्टघटनाशादेः स्वप्रतियोगितासम्बन्धेन तत्रैव घटादौ सत्त्वात् कार्य-कारणसामानाधिकरण्यसङ्गतिः। ततो न समवायिकारणनाशेऽतिरिक्तहेतुताकल्पनप्रसङ्गः। न चात्र कार्यतावच्छेदकताघटकनियामकसम्बन्धगौरवमिति वक्तव्यम् सम्बन्धगौरवस्यादोषत्वात्, अत्रापि कालिकसम्बन्धानुपादाने घटनाशात् घटत्व-द्रव्यत्वादिनाशापत्तिरिति तदुपादानमावश्यकम्। एतेन समवायिकारणनाशस्यैव जन्यद्रव्यनाशत्वावच्छिन्ने हेतुतेति नव्यमतमपि व्युदस्तम् क्षणद्वय समवायिकारणमृते द्रव्यस्थितिकल्पनाया अन्याय्यत्वाच्च इत्याहु ।

प्रकरणकृद् गुरुचरणमतेऽस्वरसमाविष्करोति - तच्चिन्त्यमिति। चिन्ताबीजमेवाविष्करोति- द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगितया नाशत्वावच्छिन्नं प्रत्येव तद्धेतुत्वात् = असमवायिकारणनाशस्य स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धेन नाशत्वेन कारणत्वात्। अयमभिसन्धिरत्र प्रतियोगितया द्रव्यनाशत्व यदि विजातीयसयोगनाशजन्यतावच्छेदक स्यात् स्यादेव तर्हि द्रव्यनाशत्व मूर्तनाशत्व वा तथा? इति विनिगमनाविरहः। पर तदेवानभ्युपगतम्। सामानाधिकरण्येन द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगितासम्बन्धेन नाशत्वस्यैव तत्कार्यतावच्छेदकत्वात्। सामानाधिकरण्यञ्च समवायघटितमुपादेयमिति नातिप्रसङ्ग'। न च द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगितया नाशत्व तत्कार्यतावच्छेदकमाहोस्वित् मूर्तत्वविशिष्टप्रतियोगितासम्बन्धेनेत्यत्र तद्दोषतादवस्थ्यमिति वक्तव्यम्, यत' सामानाधिकरण्येन द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगिताया एव च मूर्त्तत्वविशिष्टप्रतियोगितात्मकत्वेन मूर्त्तत्वविशिष्टत्वान्न कार्यतावच्छेदकसम्बन्धे विनिगमनाविरह

► वल्लभा ◄

यहाँ यह शका कि→उपर्युक्त कार्यकारणभाव को मान्यता देने पर असमवायिकारणनाशजन्यनाश के अप्रतियोगी के नाश के प्रति समवायिकारणनाश मे अन्य कारणता की कल्पना करने का गौरव होगा←इसलिए निराधार है कि घटनाशजन्य घटरूपनाश आदि मे प्रमाणसिद्ध हेतुता से ही समवायिकारणनाश मे असमवायिकारणनाशाऽनाश्य द्रव्य के नाश की हेतुता प्राप्त होती है, अतिरिक्त कारणता की उसमे कल्पना करनी जरूरी नही है। घटनाशजन्य-घटीयरूपनाशस्थल मे यह कहा जाता हे कि स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकोभयसम्बन्ध से नाशविशिष्टनाश के प्रति स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्ध से नाशत्वेन कारणता हे। कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध है स्वनिरूपितप्रतियोगिता। जेसे घटनाश के प्रतियोगी घट मे घटनाशक्षणावच्छेदेन घटीयरूप समवायसम्बन्ध से वर्तमान होने से स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकविशेषणताउभयसम्बन्ध से घटनाशविशिष्टघटीयरूपनाश स्वप्रतियोगितासम्बन्ध से घटीयरूप मे रहता है और स्वप्रतियोगिसमवेतत्व सम्बन्ध से घटनाश भी उसीमे रहता है। कार्य और कारण इस तरह सामानाधिकरण्य की सङ्गति होती है। यहाँ अवश्यक्लृप्त कारणता से ही समवायिकारणनाश मे भी असमवायिकारणनाशाऽनाश्यद्रव्यनाशकत्व का निर्वाह हो जाता है, क्योकि कपालनाश के प्रतियोगी कपाल मे कपालनाशक्षण मे घट समवायसम्बन्ध से रहने की वजह स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-कालिकविशेषणउभयसम्बन्ध से कपालनाशविशिष्टघट होता है। अत घटनाश म नाशविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वात्मक कार्यतावच्छेदकधर्म रहता है। एव स्वप्रतियोगितासम्बन्ध से कार्यस्वरूप नाश घट मे रहता है जहाँ स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्ध से कपालनाश नाशत्वेन रूपेण रहता है। इस तरह घटनाशजन्य घटीयरूपनाशादि मे प्रसिद्ध हेतुता से ही समवायिकारणनाश मे द्रव्यनाशकत्व सिद्ध होने से अन्य कारणता की कल्पना का गौरव अप्रसक्त है। यह गुरुचरणमत है।

तच्चिन्त्यम्। मगर यह गुरुचरणमत चिन्ताविषय है, न कि विना मीमासा के स्वीकार्य। यह कहने के पीछे प्रकरणकार श्रीमद्जी का तात्पर्य यह हे कि प्रतियोगितासम्बन्ध से द्रव्यनाशत्व को विजातीयसयोगनाश का कार्यतावच्छेदक माना जाय तब कार्यतावच्छेदक धर्म मे विनिगमनाविरह प्रसक्त होता था कि जन्यतावच्छेदक द्रव्यनाशत्व को माना जाय या मूर्तनाशत्व को? मगर इसको अवकाश नही ह, क्योकि विजातीयसयोगनाश का कार्यतावच्छेदक द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगितासम्बन्ध से नाशत्व ही है। जैसे घट द्रव्य है एव घटनाश

अथ परमाण्वादिपु पूर्वपूर्वाऽसमवायिकारणनाशसत्त्वात् द्व्यणुकादेः क्षणिकत्वापत्तिवारणाय तत्तद्द्रव्यनाश प्रति तत्तत्सयोगनाशत्वेनैव हेतुत्वात्सामान्यतो हेतुत्वे मानाभाव इति चेत् ? न यत्र विभक्तावयवकघटादिनाशस्थले नासमवायिकारणनाशान्तर तत्र सामान्यतो हेतुतयैवोपपत्तौ विशिप्य हेत्वन्तराकल्पनात् । कार्यकारणभावान्तरकल्पनापेक्षया कपालादिनाशोत्तर कलशादिनाशे

◆ हेमलता ◆

द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगितात्वेन मूर्तत्वविशिष्टप्रतियोगितताया अपि सङ्ग्रहान्न तामुपादायाऽविनिगम इति भावः। नाशत्वविशिष्टो घटनाशो द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगितासम्बन्धेन घटे वर्तते तत्रैव च स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन कपालद्वयविजातीयसयोगनाशोऽपीति कार्यकारणभावसामानाधिकरण्योपपत्तिः। न च कथ द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगिता मूर्तत्वविशिष्टप्रतियोगितात्मिका ? इति वाच्यम् समनियतत्वेन तयोरैक्यादिति गृहाण।

वस्तुतस्तु प्रकृते जन्यद्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगितासम्बन्धस्यैव विजातीयसयोगनाशकार्यतावच्छेदकसम्बन्धत्वमित्यवधेयम्।

शङ्कते - अथेति। परमाण्वादिपु = परमाणु-तन्त्वादिपु पूर्व-पूर्वासमवायिकारणनाशसत्त्वात् = पूर्विलद्व्यणुक-पटाद्यसमवायिकारणनाशस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन वृत्तित्वात् द्व्यणुकादे = द्व्यणुक-पटादेः कार्यस्य क्षणिकत्वमापद्येत। नूतनद्व्यणुकासमवायिकारण-परमाणुद्वयसयोगसत्त्वेऽपि विनष्टद्व्यणुकासमवायिकारणपरमाणुद्वयसयोगनाशस्याभिनवद्व्यणुकोत्पादसमयेऽपि परमाणौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन सत्त्वादुत्पत्त्यनन्तरमेव द्व्यणुकस्य विनाशात् क्षणिकत्वापत्ति एव विभक्तावयवकपटादिनाशस्थलेऽपि नवीनपटाद्यसमवायिकारण-तन्तुसयोगसत्त्वेऽपि विनष्टपटासमवायिकारणतन्तुविजातीयसयोगनाशस्याद्यतनपटाद्युत्पादसमयेऽपि स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन सत्त्वादुत्पादानन्तरमेव पटादिविनाशात् क्षणिकत्वापत्तिस्सामान्यतो दर्शितकार्यकारणभावस्वीकारे स्यादिति भावः। द्व्यणुकादे क्षणिकत्वापत्तिवारणाय तत्तद्द्रव्यनाश = तत्तद्द्व्यणुकादिद्रव्यनाश प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन तत्तत्सयोगनाशत्वेन = तत्तत्परमाणुद्वयसयोगादिनाशत्वेन एव विशिप्य हेतुत्वात् = हेतुत्वस्वीकारावश्यकत्वात् सामान्यत = जन्यद्रव्यनाशत्वविजातीयसयोगनाशत्वादिसामान्यधर्ममाश्रित्य हेतुत्वे कार्यकारणभावे मानाभाव इति चेत् ?

उत्तरपक्षयति- न, यत्र विभक्तावयवकघटादिनाशस्थले कपालनाशाऽजन्य-विजातीयसयोगनाशनाश्यघटादिप्रतियोगिकनाशस्थले न असमवायिकारणनाशान्तर तत्र स्थले सामान्यतो हेतुतयैवोपपत्तौ विशिष्टहेत्वन्तराऽकल्पनात्। अयमभिप्रायः येपु परमाणु-तन्त्वादिपु अवयवेपु अविनष्टेपु सयोग-विभागादिना पौनःपुन्येन द्व्यणुक-पटादयो जायन्ते विनश्यन्ति च तत्राऽसमवायिकारणनाशान्तर विजातीयसयोगसत्त्वदशायामपि वर्तत एवेति मास्तु तत्र सामान्यतो हेतु-हेतुमद्भावावकाशः किन्तु येपु कपालादिपु अवयवेपु अविनष्टेपु सयोग-विभागादिना न पौनःपुन्येन घटादय उत्पद्यन्ते नश्यन्ति च तत्र तु असमवायिकारणनाशत्वेनैवाऽन्वय-व्यतिरेकाभ्या हेतुत्वग्रहान्न विशेपरूपेण कारणान्तरकल्पनावश्यकी। न चासमवायिकारणनाशत्वेन हेतुत्वेऽपि समवायिकारणनाशत्वेन हेतुत्वमवश्यमभ्युपगन्तव्यमेव, अन्यथा समवायिकारणनाशानन्तरमसमवायिकारणनाशमुपकल्प्य तदनन्तर द्रव्यनाशकल्पने क्षणद्वय कार्यद्रव्यस्य समवायिकारणमृतेऽवस्थान कल्पनीय स्यादिति वाच्यम् कार्यकारणभावान्तरकल्पनापेक्षया कपालादिनाशोत्तर कलशादिनाशे

▶ वल्लभा ◀

का प्रतियोगी है। अतएव सामानाधिकरण्यसम्बन्ध से द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगिता घट मे रहती हैं, जो कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध हैं और कपालद्वयविजातीयसयोगनाश भी स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से घट मे रहता है। अत कार्य और कारण के सामानाधिकरण्य की उपपत्ति हो सकती है। यहाँ इस शका को कि⟶'विजातीयसयोगनाश का कार्यतावच्छेदक सम्बन्ध द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगिता कहा जाय या मूर्तत्वविशिष्टप्रतियोगिता कहा जाय ? इस विषय मे तो विनिगमनाविरह तदवस्थ ही रहेगा'⟵अवकाश नही है, क्योकि द्रव्यत्वविशिष्टप्रतियोगिता ही मूर्तत्वविशिष्टप्रतियोगितात्मक है। समनियत होने की वजह दोनो एक है, अभिन्न है। तव विनिगमनविरह को अवकाश कैसे ?

●○ सामान्य कार्यकारणभाव प्रामाणिक ●○

अथ०। यहाँ इस शका का कि ⟶'प्रतियोगिता सम्बन्ध से द्रव्यनाश के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से असमवायिकारणनाश को कारण मानने पर तो द्व्यणुक आदि क्षणिक वन जायेगे। इसका कारण यह हे कि परमाणु नित्य होने से उसमे कालभेद से अनेक द्व्यणुक के उत्पाद और विनाश हो चूके हैं। पूर्व पूर्व असमवायिकारणनाश उसमे सर्वदा होने से वे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से नूतन द्व्यणुक की उत्पत्ति क्षण मे भी द्व्यणुक मे रहता है। अत उत्पत्ति के अनन्तर क्षण मे ही द्व्यणुक का नाश हो जायेगा। मतलब कि द्व्यणुक क्षणिक बन जायेगा। एव पटादि भी क्षणिक वन जायेगे। इसके निराकरणार्थ यही मानना होगा कि तत् तत् द्रव्यनाश के प्रति तत् तत् विजातीयसयोगनाश कारण है। इस तरह विशेषत कार्यकारणभाव का स्वीकार आवश्यक होने से सामान्यत कार्यकारणभाव मे कोई प्रमाण नही है⟵

न० समाधान यह है कि जिस घट आदि के कपाल विभक्त हो चूके है अर्थात् कपालद्वयविजातीयसयोग का नाश हो चूका

क्षणविलम्बकल्पनाया एव समुचितत्वात् ।

वस्तुतस्तु प्रतियोगितया द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नं प्रति स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्धेनैव विजातीयसंयोगनाशस्य हेतुत्वान्न द्व्यणुकादेः क्षणिकत्वापत्तिरिति दिग् । इति द्रव्यनाशहेतुताविचारः ।

◆ हेमलता ◆

क्षणविलम्बकल्पनाया एव समुचितत्वात् ।

ननु तथापि द्व्यणुकादेः क्षणिकत्वापत्तिस्तु दुर्वारेत्याशङ्कायामत्र प्रकरणकृदाचष्टे वस्तुतस्त्विति । प्रतियोगितया = स्वनिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धेन द्रव्यनाशत्वावच्छिन्नं प्रति न स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन किन्तु स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्धेनैव नाशत्वेन विजातीयसंयोगनाशस्य हेतुत्वात् = कारणत्वकल्पनात् न पूर्वविलासमवायिकारणनाशमादाय द्व्यणुकादे क्षणिकत्वापत्ति अधुनातनद्व्यणुकादेः पूर्वपूर्वपरमाणुद्वयविजातीयसंयोगाद्यजन्यत्वेन स्वप्रतियोगिजन्यत्व-सम्बन्धेन परमाणुद्वयविजातीयसंयोगादिनाशस्य द्व्यणुकादिष्वसत्त्वान्नाऽविनष्टासमवायिकारणकस्य द्व्यणुकादेः क्षणिकत्वप्रसङ्गः । विवक्षितद्व्यणुकाऽसमवा-यिकारणीभूतस्य विजातीयसंयोगस्य नाशे तु स स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्धेन द्व्यणुकादौ वर्तत इति तत्र स्वप्रतियोगितया द्व्यणुकनाशोऽप्युप-जायत एव । कार्यतावच्छेदकश्चात्र जन्यद्रव्यनाशत्वमेव ।

नव्यप्राचीनयुक्तीन् द्रव्यनाशकत्वगोचरान् ।
प्रदर्श्यैव तृतीयो वादः व्याख्यातो मयाऽधुना ॥ १ ॥

इति मुनियशोविजयविरचितायां हेमलताभिधानायां वादमालाटीकायां तृतीयो वादः ।

► वल्लभा ◄

है उस घट आदि के नाश के प्रति विजातीयसंयोगनाशत्वेन कारणता का स्वीकार करना ही होगा, क्योंकि विजातीयसंयोगनाशत्वेन नाश कारणता का स्वीकार करने पर उस ध्वंस की संगति हो जाती है। इसलिए गौरवग्रस्त विशेषरूप से कारणता की हम कल्पना करते नहीं है। यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि जहाँ प्रथम समवायिकारण का विनाश होता है उसके अनन्तर क्षण में द्रव्यध्वंस होता नहीं है किन्तु असमवायिकारणध्वंस होता है और उसके अनन्तर में क्षण में ही कार्यद्रव्य का ध्वंस होता है, क्योंकि विजातीयसंयोगनाश ही जन्यद्रव्यनाशक होता है। वहाँ कार्यद्रव्यनाश में एक क्षण का विलम्ब होता है -यही मानना समुचित है न कि समवायिकारणनाश में नाशकारणतान्तर की कल्पना। मतलब कि समवायिकारण के विरह में कार्यद्रव्य प्राचीनमतानुसार एक क्षण रहता है जब कि नव्यमतानुसार दो क्षण रहता है - इतना ही फर्क है।

■□ द्व्यणुकादि में क्षणिकत्वापत्ति का निराकरण ■□

वस्तुत०। यहाँ इस वास्तविकता पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि प्रतियोगितासम्बन्ध से द्रव्यनाशत्वावच्छिन्न के प्रति विजातीयसंयोगनाश स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्ध से ही कारण है न कि स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से। इसलिए द्व्यणुक आदि में क्षणिकत्व की आपत्ति को अवकाश नहीं है। आशय यह है कि परमाणु नित्य होने से उसमें पूर्व पूर्व द्व्यणुक के असमवायिकारण के अनेक ध्वंस रहते हैं, जो स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से अभिनव द्व्यणुक में जिसके असमवायिकारण का ध्वंस हुआ नहीं है, रहते हैं। मगर स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्ध से वे नूतन द्व्यणुक में रहते नहीं है, क्योंकि प्राचीन विजातीयसंयोगनाश के प्रतियोगी विनष्ट परमाणुद्वयसंयोग से वह जन्य नहीं है। अभिनव द्व्यणुक का नाश तो तब हो सकता है यदि उसके जनक परमाणुद्वयविजातीयसंयोग का विनाश हो, क्योंकि उसके प्रतियोगी परमाणुद्वयविजातीयसंयोग से आधुनिक द्व्यणुक जन्य होने के सबब स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्ध से नाशकतावच्छेदकसम्बन्ध मानने पर द्व्यणुक आदि में क्षणिकत्वप्रसङ्ग को अवकाश रहता नहीं है। यहाँ जो कुछ कहा गया है वह तो दिग्दर्शनमात्र है। इसके अनुसार आगे भी बहुत कुछ विचार किया जा सकता है - इस तथ्य की सूचना देने के लिए प्रकरणकार श्रीमद्जी ने दिक् शब्द का यहाँ प्रयोग किया है। इस तरह द्रव्यनाशहेतुतावाद नामक तृतीय वाद का विवेचन पूर्ण हुआ।



◆ ४-सुवर्णतैजसत्ववादः ◆

सुवर्णं तैजसमिति नैयायिकाः, नेत्यन्ये। तत्र 'सुवर्णं तैजसं न वा?' इति विप्रतिपत्तौ सामानाधिकरण्येन विधिकोटिः, अवच्छेदकावच्छेदेन च निषेधकोटिरिति न बाधसिद्धसाधने।

◆ हेमलता ◆

शान्तिजिनं प्रणम्याद्यं तपोवनविभूषणम्।
सुवर्णतैजसत्वाख्यो वादोऽधुना प्रतन्यते ॥१॥

चतुर्थं वादमारभते - सुवर्णं तैजसमिति नैयायिका इति विधिपक्षपातिनः। नेति अन्ये निषेधकोटिवादिनः स्याद्वादिप्रभृतयः। तत्र 'सुवर्णं तैजसं न वा?' इति विप्रतिपत्तौ=विरुद्धमान्यतायां तैजसस्योद्देश्यत्वं न सुवर्णस्येति तेजस्त्वस्योद्देश्यतावच्छेदकत्वम्। न चोद्देश्यतावच्छेदकतेजस्त्वावच्छेदेन सुवर्णत्वस्य विधेयत्वेऽनलादौ सुवर्णत्वस्य विरहात् बाधः तेजस्त्वसामानाधिकरण्येन च सुवर्णत्वस्य निषेध्यत्वे तत एव नैयायिकस्य सिद्धसाधनमिति वाच्यम् यतस्तत्र सामानाधिकरण्येन = उद्देश्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन विधिकोटिः अवच्छेदकावच्छेदेन = उद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन च निषेधकोटिः अभिमता इति न बाधसिद्धसाधने सम्भवतः।

एतेन सर्वस्य सुवर्णस्य तैजसत्वं नैयायिकास्स्वीकुर्वन्त्येवेति न बाधोऽवच्छेदकावच्छेदेन विधिकोटावपि, सामानाधिकरण्येन निषेधसाधनेऽपि न नैयायिकस्य सिद्धसाधनम्। परमवच्छेदकावच्छेदेन विधिसाधने स्वरूपासिद्धिरेव सामानाधिकरण्येन विधिकोटेरुररीकारे तत्र सामानाधिकरण्येन निषेधोऽपि न विरोधीति तत्साधनं न विधिवादिनः क्षतिमावहतीत्यतोऽवच्छेदकावच्छेदेन निषेधकोटिरिति निरस्तम् सुवर्णत्वं विहाय तेजस्त्वस्यैवोद्देश्यतावच्छेदकत्वविवक्षणे उक्तदोषविरहात्।

केचित्तु सुवर्णे पार्थिवभागोऽपि वर्तते तैजसभागोऽपि च, उभयत्र च सुवर्णत्वं वर्तते। तथा च सुवर्णत्वावच्छेदेन तैजसत्वसाधने पार्थिवरूपसुवर्णे तैजसत्वाभावाद् बाधः स्यात्, सुवर्णत्वसामानाधिकरण्येन तैजसत्वनिषेधसाधने च पार्थिवात्मकसुवर्णे तैजसत्वनिषेधस्य नैयायिकैरप्यनुमतत्वात् सिद्धसाधनं स्यादिति सामानाधिकरण्येन विधिकोटिरवच्छेदकावच्छेदेन निषेधकोटिरिति व्याचक्षते, तदसत् पार्थिवभागे सुवर्णत्वस्य नैयायिकानामसम्मतत्वात्, अन्यथा पृथ्वीत्वेन समं साङ्कर्यापातेन सुवर्णत्वस्य जातित्वाऽयोगात्। किञ्चैवं सुवर्णत्वस्य तेजस्त्वव्याप्यत्वमपि कथं सङ्गच्छेत? इति दिक्।

केचित्तु तेजस्त्वं नाद्रवरूपवन्मात्रवृत्ति रूपवद्वृत्तिद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातित्वात् पृथिवीत्ववत्। यद्वा तेजस्त्वं द्रुतवृत्ति रूपवद्वृत्तिद्रवत्वसाक्षाद्व्याप्यजातित्वात् जलत्ववत्। न च रसवद्वृत्तित्वमुपाधिः, रसवत्त्वं द्रवत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि अद्रुतवृत्तिद्रव्यत्वव्याप्यधर्मत्वात् पटत्ववदिति तेजःसिद्धौ साध्याव्यापकत्वादिति सामान्यतो दृष्टेन तेजसि द्रवत्वं प्रसाध्य विवादाध्यासितं द्रुतं तैजसं अत्यन्ताग्निसंयोगेनानुच्छिद्यमानानित्यद्रवत्वाधिकर-

▶ वल्लभा ◀

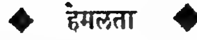
अब सुवर्णतैजसत्ववाद का प्रारम्भ किया जाता है। नैयायिक मनीषियों का यह वक्तव्य है कि सुवर्ण तैजस द्रव्य है। इसके प्रतिवाद में अन्य जैन आदि विद्वानों का यह कथन है कि सुवर्ण तैजस नहीं है। विप्रतिपत्ति=विवाद का आकार यह है कि 'सुवर्ण तैजस है या नहीं?' यहाँ उद्देश्य है तैजस और विधेय है सुवर्णत्व और निषेध्य भी है सुवर्णत्व। उद्देश्यतावच्छेदक है तेजस्त्व। विधिकोटि यदि उद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन मान्य की जाय तब नैयायिकमत में ही बाध दोष प्रसक्त होगा, क्योंकि नैयायिकमतानुसार अग्नि भी तैजस द्रव्य है फिर भी उसमें सुवर्णत्व जाति रहती नहीं है। मगर विधिकोटि को उद्देश्यतावच्छेदकीभूततैजसत्वसामानाधिकरण्येन ही मान्य करने पर उक्त दोष को अवकाश नहीं है, क्योंकि तब अर्थ यह प्राप्त होता है कि तेजस्त्वाश्रय यत् किञ्चित् द्रव्य सुवर्ण है। यह अर्थ तो अबाधित ही है, क्योंकि विधिकोटिवादी नैयायिक के मतानुसार अग्नि, स्फटिक, आलोक, धातु वगैरह तैजस द्रव्य है, और धातुविशेष में सुवर्णत्व जाति रहती है। इस तरह निषेधकोटि उद्देश्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन मान्य हो तब तो नैयायिक को विवाद का अवकाश ही नहीं है, क्योंकि उद्देश्यतावच्छेदक तेजसत्व के आश्रय अग्नि, आलोक आदि में सुवर्णत्व का निषेध नैयायिक को मान्य ही है। इस अवस्था में सिद्धसाधन दोष प्रसक्त है, क्योंकि तब प्रतिवादी=नैयायिक को सिद्ध = मान्य तेजस्त्वाश्रयानलादिअनुयोगिक सुवर्णत्वाभाव को ही साधने के लिए वादी प्रयत्न कर रहा है। इसके निरासार्थ यहाँ उद्देश्यतावच्छेदकीभूत-तैजसत्वाच्छेदेन ही निषेधकोटि विवक्षित है। तब सिद्धसाधन दोष का सम्भव नहीं है, क्योंकि तेजस्त्वावच्छेदेन = सकल तैजसद्रव्य में सुवर्णत्वाभाव नैयायिकमत में सिद्ध नहीं है। तैजस द्रव्य धातुविशेष में सुवर्णत्व भी नैयायिक को मान्य है। इस परिस्थिति में सिद्ध = प्रतिवादिसम्मत के साधनार्थ वादी का प्रयत्न नहीं होने से सिद्धसाधन दोष को अवकाश कहाँ? साँच को आँच कहाँ? झूठ को पाँव कहाँ?

☛ अन्य विप्रतिपत्ति प्रदर्शन ☚

केचित्तु०। यहाँ कुछ विद्वानों का यह कथन है कि विप्रतिपत्ति 'नैमित्तिकद्रवत्वं पृथिव्यतिरिक्तवृत्ति न वा?' इत्याकारक है। आशय

केचित्तु 'नैमित्तिकद्रवत्व पृथिव्यतिरिक्तवृत्ति न वा?' इत्यादिविप्रतिपत्तिमाहुः।

अत्र नैयायिका तैजस सुवर्ण अत्यन्तानलसयोगे सति अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात्। न चाशतो बाधः,



णत्वात् न यदेव न तदेव यथा जलमिति नैमित्तिकद्रवत्व पृथिव्यतिरिक्तवृत्ति न वा? इत्यादिविप्रतिपत्तिमाहु । अत्र उद्देश्यतावच्छेदक नैमित्तिकद्रवत्वत्वम्। विधिकोटिरुद्देश्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन निषेधकोटिश्चावच्छेदकावच्छेदेनेति न बाधसिद्धसाधने। आदिपदेन 'तैजसत्व अद्रवत्वपरत्वाश्रवृत्ति न वा?' 'तैजसत्व द्रुतवृत्ति न वा?' इत्यादिविप्रतिपत्तिग्रहणम्।

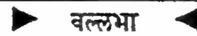
आहुरित्यनेनाऽस्वरस' प्रदर्शितः। तद्बीजञ्चैवम्—>विपक्षबाधकेन बलवत्त्वे तैजसत्वमेव साध्यमास्ता किमसाधारण्यपरिहारार्थकेनायासेन, तदनपेक्षाया तेजोमात्राऽवृत्तित्वोपाधिविरहेणैव सत्प्रतिपक्षत्वमस्तु असाधारणरूप' सत्प्रतिपक्षोऽस्तु अन्यथा तेत्यत्राऽविशेषादिति तत्त्वचिन्तामण्यालोककृत् ।

अत्र विप्रतिपत्तौ सत्या विधिकोटिवादिनो नैयायिका सुवर्णे तैजसत्वमनुमानेन साधयन्ति। तथाहि तैजस सुवर्ण अत्यन्तानलसयोगे = समवायसम्बन्धेन विजातीयानलसयोगे, सतीति। सतिसप्तम्या' एककालावच्छेदेनसामानाधिकरण्यमर्थः। तस्यानुच्छिद्यमानपदार्थैकदेशनाशेऽन्वयः। अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात्= नाशाप्रतियोगिद्रवत्ववत्त्वात्, अधिकरणत्वस्य न हेतुशरीरे प्रवेशः व्यर्थत्वात्। किन्तु तादृशद्रवत्वस्य समवायेन लाभायाधिकरणत्वपदम्। ततश्चैककालावच्छेदेनात्यन्तानलसयोगसमानाधिकरणनाशाऽप्रतियोगिद्रवत्ववत्त्वस्य हेतुत्वमिति फलितम्। यन्नैव तन्नैव यथा जलमिति व्यतिरेकि। अग्निसयोगासमानाधिकरणद्रवत्ववति घृतादौ व्यभिचारवारणाय 'अत्यन्तानलसयोगे सती'त्युक्तम्, तादृशद्रवत्वस्य स्वसमानाधिकरणात्यन्तानलसयोगाऽसमानकालीनत्वान्न व्यभिचार'।

यत्तु अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वादित्यस्योच्छिद्यमानद्रवत्वानधिकरणत्वादित्यर्थ इति तन्न गगनादौ व्यभिचारात्, द्रवत्वाधिकरणत्वे सत्युच्छिद्यमानद्रवत्वानधिकरणत्वादिति विवक्षणे च महागौरवात्।

अयमत्र नैयायिकाशयोऽत्यन्तानलसयोगे सति घृतादौ द्रवत्वनाशदर्शनेन जलमध्यस्थघृतादौ तन्नाशाऽदर्शनेन चासति प्रतिबन्धके पार्थिवद्रवत्वनाशाग्निसयोगयो. कार्यकारणभावावधारणेन सुवर्णस्यात्यन्तानलसयोगे सत्यनुच्छिद्यमानद्रवत्ववत्त्वेन पार्थिवत्वानुपपत्ते' पीतद्रव्यद्रवत्वनाशप्रतिबन्धकतया द्रवद्रव्यान्तरसिद्धौ नैमित्तिकद्रवत्वाधिकरणतया जलत्वानुपपत्ते' रूपवत्तया वाय्वादिष्वनन्तर्भावात्तैजसत्वसिद्धिरिति। न च जलपरमाणौ व्यभिचार उद्भावनीयः द्रवत्वपदेन जन्यद्रवत्वस्य विवक्षणात्।

ननु सुवर्णत्व द्विविध तेजोभागनिष्ठमेकमपरञ्च पीतिमगुरुत्वाश्रयनिष्ठ, उभयत्र सुवर्णपदप्रयोगात्। उभयसाधारणञ्च नैक सुवर्णत्व पृथ्वीत्व-तैजसत्वाभ्या सङ्करात्। तथा चात्र तेजोभागनिष्ठस्य सुवर्णत्वस्य पक्षतावच्छेदकत्वे आश्रयासिद्धि', पार्थिवभागोपष्टब्धस्य तेजोरूपस्य सुवर्णस्यानुमानात् पूर्वमसिद्धे'। द्वितीयस्य पक्षतावच्छेदकत्वे च बाध'। उभयसाधारणस्याखण्डोपाधिरूपस्य सुवर्णत्वस्य पक्षतावच्छेदकत्वस्वीकारे चाशतो बाध इत्याशङ्कामपाकर्तुमुपक्षिपति न च अशत = पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन = पक्षतावच्छेदकाश्रयीभूते पीतिमगुरुत्वाश्रयात्मके



है कि नैयायिक मतानुसार द्रवत्व के दो भेद है (१) नैमित्तिक द्रवत्व और (२) सासिद्धिक द्रवत्व। जल मे सासिद्धिक द्रवत्व रहता है पृथ्वी मे नैमित्तिक द्रवत्व रहता है। नैयायिक मतानुसार सुवर्ण तैजस है और नैमित्तिक द्रवत्व का आश्रय है। मतलब कि पृथिवीअतिरिक्त सुवर्णात्मक तैजस द्रव्य मे नैमित्तिकद्रवत्व नैयायिक मतानुसार रहता है। जब कि स्याद्वादी आदि के मतानुसार सुवर्ण पृथिवीआत्मक ही होने से नैमित्तिक द्रवत्व पृथ्वीभिन्नवृत्ति नही है। इस तरह यहाँ विधिकोटि नैयायिक की और निषेधकोटि स्याद्वादी आदि की सगत हो सकती है।

●● सुवर्ण तैजस है - नैयायिक ●●

अत्र नै०। विधिकोटिवादी नैयायिक सुवर्ण को तैजस सिद्ध करने के लिए अनुमानप्रयोग का आश्रय करते है। वह इस तरह—>सुवर्ण तैजस है, क्योंकि अत्यन्त अग्निसयोग होने पर भी अनुच्छिद्यमानद्रवत्व का अधिकरण है। जो तैजस द्रव्य होता नही है वह अत्यन्त अग्निसयोग होने पर भी अनुच्छिद्यमान = नाशाऽप्रतियोगी द्रवत्व का अधिकरण भी होता नही है जैसे कि पृथ्वी। यद्यपि अनुच्छिद्यमान द्रवत्व तो घी, तैल आदि पार्थिव द्रव्य मे रहता है किन्तु उसमे तैजसत्व रहता नही है तथापि व्यभिचार को अवकाश नही है, क्योंकि अत्यन्त=प्रबल अग्निसयोग होने पर तो उसके द्रवत्व का नाश होने से वह प्रदर्शित हेतु से विशिष्ट होता नही है। जब कि प्रबल अग्निसयोग होने पर भी सुवर्ण के द्रवत्व का उच्छेद होता नही है। अत वह तैजस द्रव्य ही होना चाहिए। यहाँ यह शका कि—>"सुवर्ण मे जो पीत भाग है उसमे तो सुवर्णत्व जाति रहती नही है किन्तु पृथ्वीत्व जाति रहती है। अत पक्ष के एक अश मे साध्य नही होने से अशत = पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन = पक्षतावच्छेदक के आश्रय यत् किञ्चित् व्यक्ति मे बाध

पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येनानुमितौ तस्याप्रतिबन्धकत्वात्। न च पीतभागे व्यभिचारः, तस्याऽद्रुतत्वात्। 'पीत द्रुतमि'ति प्रतीतेर्जलमध्यस्थमपीक्षोदादेरिव परम्परया द्रवत्वविषयत्वात्, अन्यथा तद्द्रवत्वस्यात्यन्तानलसयोगेनोच्छेदप्रसङ्गात्, अत्यन्तानलसयोगस्य पार्थिवद्रवत्वोच्छेदकत्वनियमात्।

◆ हेमलता ◆

सुवर्णे बाध इति वाच्यम् पक्षतावच्छेदकसामानाधिरण्येन **विवक्षिताया** अनुमितो तस्य = **पक्षतावच्छेदकाश्रयैकदेशे** बाधस्य अप्रतिबन्धकत्वात् = अविरोधित्वात्। पक्षतावच्छेदकावच्छेदन साध्यसिद्धेरुद्देश्यतायामेवाशतो बाधस्य प्रतिबन्धकत्वमुररीक्रियते मनीपिभिः।

पट्टाभिरामस्त्वाह - सुवर्णपदवाच्यत्वस्यैव पक्षतावच्छेदकत्वम्। यत्तु धर्मशास्त्रे पीतद्रव्ये सुवर्णपदप्रयोगेण तस्यापि सुवर्णपदवाच्यतया सुवर्णपदवाच्यत्वस्य पक्षतावच्छेदकत्वेऽपि बाधतादवस्थ्यमिति नीलकण्ठेनोक्त तदयुक्तम् सुवर्णपदवाच्यत्वसामानाधिकरण्यमात्रेण साध्यसिद्धेरुद्देश्यतामात्रेणे-ष्टसिद्ध्याऽशतो बाधस्याऽदोषत्वात्।

नृसिंहस्तु **प्रतिबन्धकासमवधानकालिकात्यन्ताग्निसयोगसमानकालीनानुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वमेव पक्षतावच्छेदकम्। पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वेन पक्षतावच्छेदकहेत्वोरैक्येऽपि सामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धेरदोषत्वात्। वस्तुतस्तु तादृशद्रवत्ववत्त्वेन प्रमित यद्वस्तु तस्य तद्व्यक्तित्वेन पक्षत्वस्वीकारे तद्व्यक्तित्वस्यैव पक्षतावच्छेदकत्वेन पक्षतावच्छेदकहेत्वोरभेदाऽप्रसक्त्या न सिद्धसाधनप्रसङ्ग** इति व्याचष्टे।

न च पीतभागे **पीतिमगुरुत्वाश्रये पार्थिवभागे एककालावच्छिन्नसामानाधिकरण्यसम्बन्धेनात्यन्तानलसयोगविशिष्टनाशाऽप्रतियोगिद्रवत्वसत्त्वेऽपि तेजस्त्वविरहेण** व्यभिचार इति शङ्कनीयम् तदानीमपि तस्य = **पीतांशस्य** अद्रुतत्वात्, = **द्रवत्वशून्यत्वात्। तत्र हेतुरेव नास्तीति साध्यविरहेऽपि न व्यभिचारसम्भवः।**

ननु सुवर्णस्य द्रुतत्वे सति पीतभागस्याऽप्यवश्य द्रुतत्वेन भाव्यम्। इत्थमेव तदानीं 'पीत द्रुत' इतिप्रतीतेरुपपत्तेरिति व्यभिचारस्य दुर्वारत्वमेवेत्याशङ्कायामाह- 'पीत द्रुतमि'ति प्रतीते जलमध्यस्थमपीक्षोदादेरिव परम्परया = **स्वसमवायिसयोगसम्बन्धेन द्रवत्वविषयत्वात्। अयमत्राभिसन्धिर्यथा मपीक्षोदादेः जलमध्यस्थत्वेऽपि न द्रुतत्वम् तथापि 'मपी-क्षोदादिः द्रुतः' इतिप्रतीते' स्वसमवायिसयोगसम्बन्धेन द्रवत्वावगाहित्वम्, स्वस्य= द्रवत्वस्य समवायिना=जलेन सह सयुक्तत्वान्मपीक्षोदादेः तथा उपष्टम्भकपीतभागस्याऽद्रुतत्वेऽपि स्वस्य=द्रवत्वस्य समवायिना = सुवर्णतेजोभागेन सह पीतपार्थिवांशस्य सयुक्तत्वात् स्वसमवायिसयोगसम्बन्धेन 'पीत द्रुतमि'तिप्रतीतेरपि सुवर्णद्रवत्वावगाहित्वम्। एतेन पीतभागे व्यभिचारोऽपि प्रत्युक्त तत्र हेतोरेव विरहात्। विपक्षबाधमाह** अन्यथा 'पीत द्रुतमि'ति प्रतीतेः समवायेन द्रवत्वविषयत्वोपगमे, तद्द्रवत्वस्य = **पीतभागसमवेतद्रवत्वस्य** अत्यन्तानलसयोगेन उच्छेदप्रसङ्गात् = **नाशापत्तेः। कुतः ?** इत्याह - अत्यन्तानलसयोगस्य पार्थिवद्रवत्वोच्छेदकत्वनियमात् = **पृथिवीसमवेतद्रवत्वनाशकत्व-**

▶ वल्लभा ◀

दोष प्रसक्त होता है''←इसलिए निराधार हो जाती है कि यहाँ साध्यसिद्धि पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन = यावत् पक्षतावच्छेदकविशिष्ट मे अभिमत नही है किन्तु पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन = पक्षतावच्छेदक के आश्रय यत् किञ्चित् व्यक्ति मे विवक्षित है। अंशतो बाध तव साध्यसिद्धि का प्रतिबन्धक होता यदि उसे पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन मानी जाय। पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन साध्यसिद्धि के प्रति अंशत बाध प्रतिबन्धक होता नही है, क्योकि तदितर पक्षतावच्छेदकाश्रय मे तव भी अनुमिति का उदय अनुभवसिद्ध है। यहाँ इस शङ्का का कि → 'सुवर्ण के पीत भाग मे अत्यन्तानलसयोग एव अनुच्छिद्यमान द्रवत्व होने पर भी उसमे तेजस्त्व रहता नही है। इसलिए प्रदर्शित हेतु व्यभिचारी है। अतएव उसके वल से सुवर्ण मे तेजस्त्व की अनुमिति हो सकती नही है'←समाधान यह है कि अत्यन्त अग्निसयोग होने पर भी सुवर्ण का पीत अंश द्रुत=द्रवत्ववाला होता नही है। मतलव कि सुवर्णत्वेन व्यवह्रियमाण पीत भाग मे हेतु ही रहता नही है तव उसमे पृथ्वीत्व रहे और सुवर्णत्व न रहे तो भी कोई दोष नही है।

➤➤ सुवर्ण का पीतभाग अद्रुत है - नैयायिक ◄◄

पीत०। यहाँ इस शका का कि→''जव अग्नि के प्रवल सयोग से सुवर्ण पीघलता है तव लोगो को प्रतीति यही होती है कि 'पीत द्रुतम्'। पीतभाग मे द्रवत्व का प्रत्यक्ष होने से सुवर्ण के पीत भाग को तव भी द्रवत्वशून्य कहना केसे सङ्गत होगा?''← समाधान यह है कि प्रवल अग्निसयोग से सुवर्ण द्रव वनने पर लोगो को जो प्रतीति होती है वह वास्तव मे सुवर्ण के तैजस अंश मे रही हुई द्रवता को ही परम्परासम्वन्ध से पीतभाग मे विषय वनाती है न कि साक्षात् = समवायसम्बन्ध से। यह ठीक उसी तरह सगत हो सकता है जैसे कि मषीचूर्ण स्वय द्रुत न होने पर भी द्रुत पानी मे फेल जाने की वजह 'श्याही द्रुत है' इत्याकारक प्रतीति परम्परासम्वन्ध = स्वसमवायिसयोगसम्वन्ध से जलस्थ द्रवत्व को अपना विषय वनाती है। स्व = द्रवत्व के समवायी =

16

अथात्यन्तत्वस्यान्यस्य दुर्वचत्वेन विजातीयाग्निसंयोगस्यैव द्रवत्वोच्छेदकत्वात् तदभावादेव नोपष्टम्भकद्रवत्वोच्छेद इति चेत्? न एकयैव क्रियया द्रुतपीत-तदन्तर्न्यस्तघृतयोर्द्रवत्वोच्छेदकविजातीयसंयोगजनने तत्रैकक्रियाजन्यतावच्छेदाय तत्सत्त्वाभ्युपगमस्यावश्यकत्वात्।

◆ हेमलता ◆

सिद्धान्तात्। पीतरूपस्य पृथिवीमात्रवृत्तित्वेनोपष्टम्भरूपीतभागस्य पार्थिवत्वेन तस्य द्रुतत्वोपगमेऽत्यन्ताग्निसंयोगजन्यनाशप्रतियोगित्वप्रसङ्गः। एतेनाऽप्रयोजकत्वशङ्काऽपि परिहृता, सुवर्णस्य पार्थिवत्वे तद्द्रवत्वस्यात्यन्तानलसंयोगनाश्यत्वापत्तेः। एतेनोपष्टम्भके पीतिमगुरुत्वाश्रये पार्थिवेऽत्यन्ताग्निसंयोगेनानुच्छिद्यमानद्रवत्वाधारत्वमनैकान्तिकम्। न हि तेजोद्रवत्वदशायान्तद्द्रवमेवास्ते, 'पीतं द्रुतमि'ति प्रतीतिरपि निरस्ता, तत्र द्रवत्वाभावात्, पार्थिवद्रवत्वस्यात्यन्तानलसंयोगेनोच्छित्त्यापत्त्या बाधकेन द्रुतप्रतीतेर्भ्रमत्वात्। न चैवं तदा पीतं कठिनमेवोपलभ्येतेति वाच्यम् जलमध्यस्थमपीक्षोदादेरिव तदवयवाना द्रवद्रव्यसम्बन्धेन प्रशिथिलसंयोगाश्रयत्वात्, न तु तेषामेव द्रवत्वम्। न चैवं घृतादावपि तथा, द्रवत्वं तत्र बाधकाभावादिति तत्त्वचिन्तामणिकारः।

शङ्कते- अथ अत्यन्तत्वस्य अन्यस्य कस्यचित् दुर्वचत्वेन वैजात्यात्मकमेवात्यन्तत्वमभ्युपेयम्। ततश्च विजातीयाग्निसंयोगस्य एव द्रवत्वोच्छेदकत्वात् = द्रवत्वनाशकत्वात्, तदभावादेव = द्रवत्वनाशकतावच्छेदकवैजात्यविरहादेव तादृशानलसंयोगात् नोपष्टम्भकद्रवत्वोच्छेदः सम्भवति। ततश्च सुवर्णस्य द्रुतत्वे पीतभागस्यापि द्रुतत्वमेवाभ्युपगन्तुमर्हति। ततश्च पीतभागे व्यभिचारस्य दुर्वारत्वम्, तत्र हेतोस्सत्त्वेऽपि साध्यस्य विरहादिति चेत्? न सुवर्णमध्यस्थघृतादिदशाया एकया एव क्रियया द्रुतपीत-तदन्तर्न्यस्तघृतयोः द्रवत्वोच्छेदकविजातीयसंयोगजनने तत्र = वह्निसंयोगे एकक्रियाजन्यतावच्छेदाय तत्सत्त्वाभ्युपगमस्य = पार्थिवद्रवत्वनाशकतावच्छेदकस्य तत्कर्मजन्यतावच्छेदकस्य वैजात्यस्य विद्यमानताया अङ्गीकारस्य आवश्यकत्वात्। अयमभिप्रायः यदानलोपरि सुवर्णमध्यस्थघृतादिकं प्रक्षिप्यते तदैकयैवानलक्रिययाऽग्नेः पीतभागेन तद्गतघृतेन च साकं संयोगो जायते। स च प्रबलः सन् घृतद्रवत्वनाशको भवतीति तादृशानलसंयोगे पार्थिवद्रवत्वनाशकतावच्छेदकवैजात्यमभ्युपेयमेव यदेकक्रियाजन्यतावच्छेदकमपि भवेत्। ततश्च पार्थिवद्रवत्वना-

► वल्लभा ◄

जल का संयोग स्याही-चूर्ण मे होने से जलसमवेत द्रवत्व उपर्युक्त परम्परासम्बन्ध से स्याही-चूर्ण मे ज्ञात होता है। ठीक इसी तरह स्व = द्रवत्व के समवायी = सुवर्ण का संयोग पीतभाग मे होने से सुवर्णसमवेत द्रवत्व स्वसमवायिसंयोगसम्बन्ध से उपष्टम्भक पीतभाग मे ज्ञात होता है। यदि इस वास्तविकता का स्वीकार न किया जाय और पीतभाग मे समवायसम्बन्ध से ही द्रवत्व को मान्य किया जाय तब तो उस द्रवत्व के उच्छेद की आपत्ति आयेगी, क्योंकि सुवर्ण मे उपष्टम्भक पीत भाग पार्थिव द्रव्य है और प्रबल अग्निसंयोग पार्थिवद्रव्य के द्रवत्व = नैमित्तिक द्रवत्व का उच्छेदक = नाशक होता है - यह एक त्रिकाल अबाधित नियम है। इसलिए प्रबल अग्नि का संयोग होने पर सुवर्ण द्रुत होने पर भी उपष्टम्भक पीत भाग अद्रुत ही रहता है- यही मान्य करना होगा।

शङ्का- अथा०। द्रवत्वनाशक अत्यन्त अग्निसंयोग मे रहा हुआ अत्यन्तत्व क्या है? इसका अन्यविध निरूपण तो मुश्किल है। इसलिए उसे जातिस्वरूप ही मानना होगा। अतः अत्यन्त अग्निसंयोग का मतलब होगा विजातीय अग्निसंयोग। जब सुवर्ण द्रुत होता है तब उपष्टम्भक पीत पार्थिवांश भी द्रुत होता ही है फिर भी उसके नाश की आपत्ति नहीं होगी, क्योंकि तब जो अग्निसंयोग विद्यमान होता है वह विजातीय नहीं है। वह अग्निसंयोग द्रवत्वनाशकतावच्छेदकशून्य होने की वजह उससे सुवर्ण पीतभाग के नाश की आपत्ति को अवकाश नहीं है। अतः नैयायिकप्रदर्शित सुवर्णत्वसाधक हेतु पीतभाग मे व्यभिचारी हो जायेगा। इस स्थिति मे सुवर्ण को तैजस कहना कैसे सङ्गत होगा?

समाधान०। न ए०। उस्ताद! आपकी यह शङ्का अनुचित है, क्योंकि जब सुवर्ण और घृत दोनो संयुक्त होते है और एक ही अग्निक्रिया से द्रुत पीतभाग एवं तद्गत घृत के साथ अग्निसंयोग उत्पन्न होता है उसमे तो द्रवत्वनाशकतावच्छेदक वैजात्य अवश्य स्वीकार्य होगा। इसका कारण यह है कि उस अग्निसंयोग मे घृत के द्रवत्व का नाश होता है। यदि वह विजातीय अग्निसंयोग न होता तब तो उससे घृत के द्रवत्व का भी उच्छेद हो नहीं सकता। एक ही अग्निक्रिया से उत्पन्न होने की वजह एक क्रिया की जन्यता के नियमनार्थ उस अग्निसंयोग मे द्रवत्वनाशकतावच्छेदक वैजात्य का स्वीकार आवश्यक ही है तब तो उस विजातीय अग्निसंयोग मे घृत के द्रवत्व की भाँति पीतभाग के द्रवत्व का भी उच्छेद हो जायेगा, क्योंकि वे दोनो पृथ्वीद्रव्यसमवेत होने से विजातीय अग्निसंयोग से नाश्य है। मगर तब भी पीतभाग के द्रवत्व का उच्छेद होता नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि सुवर्ण द्रुत होने पर भी पीतभाग अद्रुत ही है। तब तो सुवर्णत्वसाधक अनुमान मे व्यभिचार को अवकाश ही नहीं होगा, क्योंकि उपष्टम्भक पीत भाग मे हेतु ही रहता नहीं है। इसलिए सुवर्ण मे तैजसत्व की सिद्धि निराबाध है।

अथ विजातीयद्रवत्वमेव तन्नाश्यम्, न तु पार्थिवद्रवत्वमिति चेत्? न, पृथिवीजन्यतावच्छेदिकाया एव जातेस्तन्नाश्यतावच्छेदकत्वात्, जात्यन्तरकल्पने गौरवात्।

◆ हेमलता ◆

शकारणतावच्छेदकवैजात्यविशिष्टाग्निसयोगेन यथा पार्थिवघृतद्रवत्व नश्यति तथैव द्रुतपीतभागसमवेतद्रवत्वमपि विनश्येदेव। न च तन्नश्यति तदानीमपि। ततश्चैतादृशकार्यकारणभावादेव निश्चीयते यदुत द्रवत्व न पीतभागसमवेत किन्तु तेजोभागसमवेतमेव। 'पीत द्रुतमि'ति प्रतीतेस्तु भ्रमत्वमेवेति न पीतिमगुरुत्वाश्रये व्यभिचारः तत्र हेतोरेवासत्त्वात्।

अथ विजातीयद्रवत्वमेव तन्नाश्य = विजातीयानलसयोगनिष्ठकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदकधर्माक्रान्त, न तु पार्थिवद्रवत्वम्। उपष्टम्भकद्रुतपीतभागसमवेतद्रवत्वस्य विजातीयानलसयोगनाश्यतावच्छेदकवैजात्यशून्यत्वान्न ततः तन्नाशप्रसङ्ग इति चेत्? न लाघवेन पृथिवीजन्यतावच्छेदिकाया एव जाते तन्नाश्यतावच्छेदकत्वात् = विजातीयानलसयोगजन्यनाशवृत्तिकार्यतावच्छेदकत्वात्। अय भाव· नैमित्तिक द्रवत्व द्विविधमेक पृथ्वीसमवेतमपरञ्च तेजोविशेषसमवेतम्। तत्र पृथ्वीजन्यतावच्छेदकीभूतस्य द्रवत्वसमवेतवैजात्यस्यैव विजातीयानलसयोगनाश्यतावच्छेदकत्वम्। तच्चोपष्टम्भकद्रुतपीतभागेऽप्यस्तीति पीतभागसमवेतद्रवत्वस्यापि नाशस्स्यादेव, सामग्र्याः स्वकार्यार्जनेऽन्यानपेक्षत्वात्। अतो न पीत द्रुत किन्तु तेजोभाग एव द्रुत इत्यभ्युपगम्यम्। न च विजातीयानलसयोगनाश्यतावच्छेदकतया पार्थिवद्रवत्वत्वावान्तरजातिः कल्प्यते या पीतभागे नास्तीति न तद्द्रवत्वोच्छेदप्रसक्तिरिति वाच्यम् जात्यन्तरकल्पनेपृथिवीजन्यतावच्छेदकपार्थिवद्रवत्वत्वातिरिक्तजातेः विजातीयाग्निसयोगनाश्यतावच्छेदकत्वकल्पने गौरवात्। अतः पीतभागस्याऽद्रुतत्वमेवोपगन्तव्यमिति नोक्तानुमाने व्यभिचारापत्तिरिति नैयायिकाशयः।

अत्र मञ्जूषाकारस्तु अत्यन्तानलसयोगो नाम यावत्परिमाणविशिष्टे पार्थिवभागे यावत्परिमाणविशिष्टस्य वह्नेः यावत्सङ्ख्याकावयवावच्छेदेन सयोगे द्रवत्वनाशः तावत्परिमाणविशिष्टे सुवर्णे तावत्परिमाणविशिष्टस्य वह्नेः तावत्सङ्ख्याकावयवावच्छेदेन सयोगः। अत्रावयवा इत्यनेन वह्न्यवयवा द्रवत्वाश्रयव्यक्त्यवयवाश्च ग्राह्याः। तथा च स्वसमानाधिकरणपरिमाणसजातियपरिमाणविशिष्टपार्थिवभागसमवेतद्रवत्वनाशजनको योऽग्निसयोगः स्वावच्छेदकवह्न्यवयवपर्याप्तसङ्ख्यासजातीयसङ्ख्यापर्याप्त्यधिकरण- वह्न्यवयवावच्छिन्नत्व- स्वावच्छेदकपार्थिवभागावयवपर्याप्त - सङ्ख्यासजातीयसङ्ख्यापर्याप्त्यधिकरणवह्नीतरद्रव्यावयवावच्छिन्नत्वैतदुभयसम्बन्धेन तादृशाग्निसयोगविशिष्टो योऽग्निसयोगः तत्समवधानकालीनत्व द्रवत्वविशेषण पर्यवसन्न, प्रथमस्वपद द्रवत्वपर द्वितीयस्वपद तृतीयस्वपदञ्चाग्निसयोगपरम्। एवञ्च यथाकथञ्चिदग्निसयोगसमवधानकालीनद्रवत्ववति घृततुल्यादौ एतादृशाग्निसयोगविरहान्न व्यभिचारः। अथवा तत्तत्परिमाणविशेषविशिष्टसुवर्णत्वेन पक्षता, तत्तत्सङ्ख्याविशेषविशिष्टस्वावयवावच्छिन्नतत्तत्सङ्ख्याविशेषविशिष्टवह्न्यवयवावच्छिन्नवह्निसयोगसमवधानकालीनद्रवत्वाधिकरणत्व हेतुः। यादृशपरिमाणविशेषविशिष्टेषु पार्थिवभागेषु यादृशसङ्ख्याविशेषविशिष्टाव-

▶ वल्लभा ◀

विजातीयद्रवत्व अग्निसयोगनाश्य नही है

अथ०। यदि निषेधकोटिवादी की ओर से यह कहा जाय कि→'विजातीय अग्निसयोग से विजातीय द्रवत्व ही नाश्य है न कि पार्थिवद्रवत्व। सुवर्ण ओर घृत सयुक्त होने की अवस्था मे विजातीय अग्निसयोग से घृत के द्रवत्व का उच्छेद हो सकता हे, क्योकि वह विजातीयद्रवत्व हे यानी विजातीयानलसयोगनाश्यतावच्छेदक वेजात्य से युक्त है। मगर द्रुत पीतभाग के द्रवत्व का विनाश तव हो सकता नही है, क्योकि वह विजातीय द्रवत्व नही हे अर्थात् विजातीयअनलसयोगनाश्यतावच्छेदक वैजात्य से सम्पन्न नही है। पीतद्रवत्व नाश्यतावच्छेदकानाक्रान्त होने की वजह उसका नाश केसे हो सकता हे? तव तो पुन व्यभिचार आ ही जायेगा, क्योकि द्रुत पीतभाग अत्यन्तानलसयोगविशिष्ट अनुच्छिद्यमान द्रवत्व का अधिकरण होते हुए भी सुवर्णत्वविशिष्ट नही हे←तो इसके समाधानार्थ विधिकोटिवादी नेयायिक की ओर से यह समाधान दिया जा सकता है कि विजातीय अनलसयोग की नाश्यतावच्छेदक जाति वह है जो पृथिवीजन्यतावच्छेदक जाति है। आशय है कि नैमित्तिकद्रवत्व द्विविध है पृथ्वीगत और तैजसद्रव्यगत । पृथ्वीसमवेत नेमित्तिकद्रवत्व रहती है और सकल पार्थिवद्रवत्व विजातीयाग्निसयोगनाश्य होने की वजह विजातीय अग्निसयोग की नाश्यतावच्छेदक जाति भी वही होगी जो पृथ्वीजन्यतावच्छेदक है। अत घृतसमवेत द्रवत्व की भाँति उपष्टम्भक पीतभाग मे समवेत नैमित्तिक द्रवत्व भी विजातीय अग्निसयोग से नाश्य ही होगा, उसकी नाश्यतावच्छेदक जाति से आक्रान्त ही होगा। यहाँ यह तो कहा जा नही सकता कि→'विजातीयसयोगनाश्यतावच्छेदक जाति पृथ्वीजन्यतावच्छेदकीभूतद्रवत्वत्व जाति नही हे किन्तु उसकी व्याप्य अन्य जातिविशेष है, जो घृतद्रवत्व मे रहती है और उपष्टम्भक पीतभागसमवेत द्रवत्व मे रहती नही है। इसलिए पीतभाग द्रुत होने पर भी उसके नाश की आपत्ति नही आयेगी' ← क्योकि पृथ्वीजन्यतावच्छेदक जाति की व्याप्य अन्य जाति की कल्पना करने मे गौरव हे। अत द्रुत पीतभाग के द्रवत्व के उच्छेद की आपत्ति ज्यो कि त्यो वनी रहेगी। इसलिए विजातीय अनलसयोग से सुवर्ण द्रुत होने पर भी पीत भाग को तो अद्रुत ही मानना चाहिए। अव तेजस्त्वसाधक अनुमान मे व्यभिचार कैसे प्रसक्त होगा? अत सुवर्ण मे तेजस्त्व की सिद्धि निरावाध है। यह नेयायिक मनीषियो का वक्तव्य है।

वस्तुतस्तु पार्थिवद्रवत्वोच्छेद प्रति सयोगविशेषत्वेन विरोधिताऽपि । कथमन्यथा न क्वथ्यमानजलस्थघृतद्रवत्वोच्छेदः ? इत्यसति विरोधिसम्बन्धे इतिविशेषणावश्यकत्वात् तत्र द्रवत्वसत्त्वेऽपि न व्यभिचारः । एवञ्च 'पीत द्रुतमि'ति प्रतीतेः साक्षात्सम्बन्धेनाऽपि प्रमात्व समर्थितम्।

तत्र विरोधिसम्बन्धसत्त्वे किं प्रमाणमिति चेत् ? 'द्रवत्वाधिकरण पीत द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धककिञ्चित्सयोगवत्, अत्यन्ताग्निसयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधारपार्थिवत्वात्, क्वाथ्यमानजलमध्यस्थितघृतवदि'त्यनुमानमित्यवेहि।

◆ हेमलता ◆

यदवच्छिन्नात् वह्निसयोगात् द्रवत्वनाशो दृष्टः तादृशपरिमाणविशेषविशिष्टसुवर्णपक्षकस्थले तादृशतादृशमदृष्टमेव धर्तव्येति न दोषः। न तु अत्यन्तत्व अनलसयोगगतो जातिविशेष इति वक्तु युक्तम्। तादृशजातिविशेषस्य फलबलेनकल्प्यत्वे सुवर्णाग्निसयोगे तादृशजातिविशेषकल्पकाभावेन स्वरूपासिद्धिप्रसङ्गात्। यदि च प्रत्यक्षादिप्रमाणान्तरगम्य तदा यावताऽग्निसयोगेन चुलकपरिमिते घृतादौ द्रवत्वनाशः तावताग्निसयोगेन प्रस्थपरिमितघृतादापि द्रवत्वनाशापत्तिःचुलकपरिमितघृतादिसमवेतद्रवत्वनाशकाग्निसयोगगतवैजात्यस्य तत्र दुर्वारत्वात्। यदि च तत्तदग्निसयोगगतानि वैजात्यानि भिन्नानि भिन्नानि प्रत्यक्षसिद्धानि तत्तत्परिमाणविशेषविशिष्टपार्थिवभागद्रवत्वनाशगतावच्छेदकान्युपेयन्ते। तत्तत्परिमाणविशेषविशिष्टसुवर्णपक्षकस्थले च तत्तद्वैजात्यावच्छिन्नाग्निसयोगसमवधानकालीनद्रवत्वाधिकरणत्वमेव हेतुरिति नोक्तव्यभिचारावकाश इत्युच्यते तदा न विवदामः [सु म पृ ३४३] इत्याचष्टे।

एतादृशक्लिष्टकल्पनाऽपेक्षया तत्र द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकद्रव्यसयोग एव स्वीकर्तुमुचित इत्याशयेनाचष्टे - वस्तुतस्त्विति। पार्थिवद्रवत्वोच्छेद प्रति सयोगविशेषत्वेन विरोधिता = प्रतिबन्धकता अपि अङ्गीकर्तव्यैव। विपक्षबाधमाह-कथ अन्यथा = प्रतियोगितया पृथिवीसमवेतद्रवत्वविनाश प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन सयोगविशेषत्वेन प्रतिबन्धकत्वानङ्गीकारे, न क्वथ्यमानजलस्थघृतद्रवत्वोच्छेद ? स्यादेव तन्नाशः इति काक्वा ध्वन्यते। इति हेतोः असति विरोधिसम्बन्धे = द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकसयोगे इति विशेषणावश्यकत्वात्। ततश्च परिष्कृतप्रयोग एव सुवर्ण तैजस असति द्रवत्वोच्छेदविरोधिसयोगेऽत्यन्तानलसयोगे सत्यप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वादिति। अत एव तत्र = उपष्टम्भरूपीतभागे समवायेन द्रवत्वसत्त्वेऽपि न सुवर्णतैजस्त्वसाधकानुमाने व्यभिचार तत्र विरोधिसयोगस्य सत्त्वेन निरुक्तहेतोरसत्त्वात्। एवञ्च = पार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकसयोगस्वीकारेण च 'पीत द्रुत' इति प्रतीते साक्षात्सम्बन्धेन = समवायसम्बन्धेन प्रमात्व अपि समर्थितम् , साक्षात्सम्बन्धसत्त्वे परम्परया तत्कल्पने मानाभावात् स्वरससवाहिसार्वलौकिकानुभवस्य दुरपह्नवत्वात्।

ननु तत्र = सुवर्णोपष्टम्भकपीतिमगुरुत्वाश्रये विरोधिसम्बन्धसत्त्वे= पार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकसयोगस्य समवायेन वृत्तित्वे किं प्रमाणम् ? इति चेत् ? उच्यते तत्र प्रमाण-द्रवत्वाधिकरण पीत द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धककिञ्चित्सयोगवत् अत्यन्ताग्निसयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधारपार्थिवत्वात् क्वाथ्यमानजलमध्यस्थितघृतवदित्यनुमानमित्यवेहि। द्रवत्वाधिकरणत्वस्यैव पक्षतावच्छेदकत्वे हेतोर्भागासिद्धिप्रसङ्गः द्रुते तेजोभागे हेतोर्विरहात्। अतः

► वल्लभा ◄

वस्तु०। वस्तुस्थिति तो यह है कि पार्थिवद्रवत्वोच्छेदक के प्रति सयोगविशेषत्वरूप से विरोधिता भी है। यदि ऐसा न माना जाय तब उबलते हुए पानी के मध्य में रहे हुए घृत के द्रवत्व का उच्छेद क्यों होता नहीं है? इस समस्या का कोई समाधान मिल नहीं सकेगा। जब सयोगविशेष को पार्थिवद्रवत्व के उच्छेद का प्रतिबन्धक माना जाय तब उबलते हुए पानी के मध्य में रहे हुए घृत के द्रवत्व का उच्छेद हो नहीं सकेगा, क्योंकि जल का सयोग उसके नाश का प्रतिबन्धक है। इसलिए तैजसत्वसाध्यक अनुमान में 'असति विरोधिसम्बन्धे' इस विशेषण का निवेश आवश्यक होगा। तब अनुमानप्रयोग इस तरह होगा→सुवर्ण तैजस है, क्योंकि वह विरोधिसम्बन्ध न होने पर अत्यन्त अग्निसयोग से विशिष्ट होते हुए भी अनुच्छिद्यमान द्रवत्व का अधिकरण है। ऐसा होने पर सुवर्ण के उपष्टम्भक पीत भाग में द्रवत्व हो तो भी उसके उच्छेद की आपत्ति नहीं आयेगी, क्योंकि वह द्रवत्वनाशविरोधी द्रव्य से सयुक्त होने की वजह विरोधिसम्बन्धशून्य नहीं है। तथा व्यभिचार को भी अवकाश नहीं होगा, क्योंकि पीत भाग में विरोधिसम्बन्ध होने की वजह हेतु ही रहता नहीं है तब उसमें तैजसत्व न हो तो भी क्या? इस तरह 'पीत द्रुत' इस प्रतीति में साक्षात् सम्बन्ध=समवाय सम्बन्ध से द्रवत्वावगाहिता मानने पर भी प्रमात्व का समर्थन किया जा सकता है, क्योंकि सुवर्ण के उपष्टम्भक पीतभाग में समवाय सम्बन्ध से द्रवत्व मानने पर भी न तो उसके उच्छेद की आपत्ति आ सकती है और न तो तैजसत्वसाधक अनुमान में व्यभिचार भी प्रसक्त हो सकता है।

◆ पीतभाग विरोधिद्रव्यसयुक्त - नैयायिक ◆

तत्र वि०। यहाँ इस प्रश्न के कि→उपष्टम्भक पीत भाग में विरोधिद्रव्य का सम्बन्ध = सयोग है, इसमें प्रमाण क्या है?←समाधान

न चैव तद्द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकसयोगशालितया जलमेवास्तु तत्, सासिद्धिकद्रवत्वाभावात्। नापि पृथिवी, तद्द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकस्यापि गवेषणीयत्वापत्तेः।

◆ हेमलता ◆

पीतमित्युक्तम्। वस्तुतः सुवर्णोपष्टम्भकद्रुतपीतत्वस्यैव पक्षतावच्छेदकत्वम्। अत एव द्रुते पीते गोघृते हेतोरसत्त्वेऽपि न भागासिद्धिप्रसङ्गः तस्य पक्षतावच्छेदकानाक्रान्तत्वात्। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धो हेतुत्वावच्छेदकसम्बन्धश्च समवाय एव। अतितप्तसलिलसङ्गिघृतद्रवत्वस्यानुच्छेदे सलिलसयोगस्यैव प्रयोजकत्वम्। तद्वदेवोपष्टम्भकपीतभागद्रवत्वानुच्छेदे किञ्चिद्द्रव्यसयोगविशेषस्य प्रयोजकत्व सिध्यति। अतः पार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकविधया सिद्धस्य सयोगविशेषस्याश्रयविधया तेजोद्रव्यमेव सेत्स्यतीत्याशयः।

न च एव = पार्थिवोच्छेदप्रतिबन्धकसयोगविशेषाधारद्रव्यसाधने, तद्द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकसयोगशालितया = पार्थिवद्रवत्वोच्छेदकविरोधिसयोगाश्रयविधया जलमेवास्तु तत् = तादृशसयोगविशेषाश्रयद्रव्य इति वक्तव्यम् सासिद्धिकद्रवत्वाभावात्, जले सासिद्धिकद्रवत्वमेव वर्तते न तु नैमित्तिकद्रवत्वम्। उपष्टम्भकपीतभागे द्रुते सासिद्धिकद्रवत्व नास्तीति न तज्जलम्।

नापि पार्थिवद्रवत्वोच्छेदकप्रतिबन्धकसयोगविशेषाश्रय द्रव्य पृथिवी, लाघवादिति वक्तव्यम् अत्यन्तानलसयोगेन तद्द्रवत्वस्याप्युच्छेदापत्तेः। न च तत् तदोच्छिद्यते। अत तस्य पार्थिवत्वे तद्द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकस्यापि गवेषणीयत्वापत्ते। तस्यापि पृथिवीत्वे स्वीक्रियमाणे तद्द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकस्यापि गवेषणीयत्वापत्तेः। तस्यापि पृथिवीत्वे स्वीक्रियमाणे तद्द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकस्यापि मार्गणीयत्वमित्यनवस्था प्रसज्येत। अतः तत्तैजसमेवाभ्युपेयम्।

तदुक्त तत्त्वचिन्तामणौ→' पीत द्रवत्वाधिकरण द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकद्रवद्रव्यसयुक्त अत्यन्ताग्निसयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधारपार्थिवत्वात् क्वथ्यमानजलमध्यस्थितघृतवत्। न चाऽप्रयोजकत्व, अत्यन्ताग्निसयोगेन विरोधिद्रवद्रव्यसम्बन्धासम्बन्धे पार्थिवद्रवत्वोच्छेदानुच्छेददर्शनात्। अथवा रूपवत्त्वे जलान्यत्वे च सति तैजसत्व-पार्थिवत्वसन्देहे विवादाध्यासित द्रवत्वाधिकरण तैजस असति द्रवद्रव्यसयोगे अत्यन्ताग्निसयोगेऽप्यनुच्छिन्नानित्यद्रवत्वाधारत्वात्, यन्नैव तन्नैव यथा जल घृत वेति व्यतिरेकी। न चासाधारण्य अगृह्यमाणविशेषदशाया तस्य दोषत्वात्। तथाहि यथा साध्याभाववद्व्यावृत्तत्वेन पक्षे तस्य साध्यसाधकत्वम् तथा साध्यवद्व्यावृत्तत्वेन साध्याभावसाधकताऽपि स्यादिति सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया तस्य दोषत्वम्। न हि साध्याभावसाधकस्य पृथिवीत्वसिद्धिपर्यवसायिनस्तुल्यबलत्वम्, अनुकूलतर्काभावेन हीनबलत्वात्। यदीद पार्थिव स्यादसति विरोधिद्रवद्रव्यसम्बन्धेऽत्यन्ताग्निसयोगेनोच्छिद्यमान- द्रवत्वाधिकरण स्यात् तैलवदिति प्रतिकूलतर्केण हीनबलत्वात्। यदीद जलान्यरूपवत्त्वे सति

► वल्लभा ◄

मे नैयायिक की ओर से यह प्रमाण बताया जा सकता है→ द्रवत्वअधिकरण पीतभाग द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धककिञ्चित्सयोगवाला है, क्योकि वह अत्यन्त अग्निसयोग होने पर भी अनुच्छिद्यमान द्रवत्व का आधारभूत पार्थिव द्रव्य हे। जो प्रबल अनलसयोग से विशिष्ट होते हुए भी अनुच्छिद्यमान द्रवत्व का आधारभूत पार्थिव द्रव्य होता है वह द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धक किसी सयोग से विशिष्ट होता है जेसे उबलते हुए पानी के मध्य मे रहा हुआ घृत। उबलते हुए पानी मे रहा हुआ घृत पार्थिव द्रव्य है जो अत्यन्त अग्निसयोग होने पर भी अनुच्छिद्यमान द्रवत्व का आधार हे और द्रवत्वोच्छेद के प्रतिबन्धक जलद्रव्यसयोग का आश्रय भी हे। पानीसयोग घृत के द्रवत्व का नाश होने नही देता। ठीक इसी तरह उपष्टम्भक पीतभाग भी अत्यन्त अग्निसयोग के होने पर भी अनुच्छिद्यमान द्रवत्व का आधारभूत पार्थिव द्रव्य हे। अतएव वह भी द्रवत्वोच्छेद के प्रतिबन्धक किञ्चित्सयोग से विशिष्ट होना चाहिए। इस तरह व्याप्य-व्यापकभाव के बल से अनुमान प्रमाण पीत भाग मे द्रवत्वनाशविरोधिसयोग को सिद्ध करता हे।

●● पीतभागद्रवत्वोच्छेदविरोधी द्रव्य क्या है? ●●

न चैव०। यहाँ इस शङ्का का हि→'इस तरह पार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धक सयोगविशेष की सिद्धि करने पर उस द्रवत्व के उच्छेद के प्रति प्रतिबन्धक सयोगविशेष के आश्रयविधया सिद्ध होनेवाला वह द्रव्य जल ही होगा, क्योकि अतिरिक्त द्रव्य की कल्पना करने मे गोरव हे'←समाधान यह है कि पार्थिवद्रवत्वोच्छेद के प्रतिबन्धकीभूत सयोग का आश्रय द्रव्य जल हो नही सकता, क्योकि उसमे नेमित्तिक द्रवत्व रहता हे न कि सासिद्धिक द्रवत्व। जो जल द्रव्य होता हे उसमे सासिद्धिक द्रवत्व रहता हे। इसलिए उसे जल नही कहा जा सकता। उसे पृथ्वी भी कह नही सकते, क्योकि वह स्वय भी द्रुत हे और उसके द्रवत्व का अत्यन्त अनलसयोग से उच्छेद नही होने से उसके नाश के प्रति प्रतिबन्धकविधया अन्य की कल्पना करने की आपत्ति आयेगी। इसलिए उसे तैजस द्रव्य मानना ही युक्त हे।

अथ मिथ एवास्तु तत्प्रतिबन्धकत्वमभिभूतरूपानुद्भूतस्पर्शतेजोऽन्तरकल्पने गौरवात्। न चापार्थिवद्रवत्वेनैव तत्प्रतिबन्धकत्वान्नैवमिति वाच्यम्, एवं सति द्रुतसुवर्णसंयोगेन घृतद्रवत्वोच्छेदानापत्तेः, संयोगविशेषेणापार्थिवद्रवस्य तथात्वे तु तस्यैव तत्त्वौचित्यात्।

◆ हेमलता ◆

तैजसं न स्यात् पार्थिवं स्यात् यदि न पार्थिवं स्यादत्यन्ताग्निसंयोगेनोच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणं स्यादित्यनुकूलतर्कसद्भावेन प्रतिकूलतर्काभावेन च तैजसत्वसाधकस्याधिकबलवत्त्वादिति [त. चि. प्र. ख. प्रत्यक्षकारणवाद पृ. ७०६]

निषेधकोटिवादी शङ्कते अथेति। द्वितीयचेत्पदपर्यन्तमयमवान्तरपूर्वपक्षघटिता दीर्घपक्षः। तत्प्रतिविधानञ्चाग्रे 'अत्र ब्रूमः' [पृ ११८] इत्यादिनेति चेतसि निधेयम्। मिथ एव अस्तु उपष्टम्भकपीतभागस्य पार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकसंयोगाश्रयस्य पार्थिवांशस्य च तत्प्रतिबन्धकत्वं = द्रवत्वोच्छेदविरोधित्वम्। अत एव तादृशसंयोगाश्रयस्य पार्थिवत्वेऽपि न क्षतिर्न वाऽनवस्था। एतेन तस्य पृथिवीत्वे तद्द्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकस्यापि गवेषणीयत्वं स्यात्तदपि पृथिव्यात्मकं द्रवद्रव्यं वाच्यमित्यनवस्थानं स्यादिति प्रत्याख्यानम्। यदि च तस्य तैजसत्वं स्यात्तदा तद्रूपस्पर्शयो: चाक्षुषस्पार्शनत्वापत्तिर्दुर्वारा न च तत्तेजसि भास्वररूपमुष्णस्पर्शो वोपलभ्यते। न च तस्य रूपमुपष्टम्भकपीतपार्थिवरूपेणाभिभूतं स्पर्शश्चानुद्भूत इति नोपलभ्यत इति वाच्यम् अभिभूतरूपानुद्भूतस्पर्शतेजोऽन्तरकल्पने गौरवात्। उष्णस्पर्शभास्वरशुक्लरूपोपलम्भाभावेन तस्य तैजसत्वमनुपपन्नमित्याशय:। न च अपार्थिवद्रवत्वेन = अपार्थिवं यद् द्रवं द्रव्यं तत्त्वेन, एव तत्प्रतिबन्धकत्वात् = पार्थिवद्रवत्वोच्छेदविरोधित्वात् न एवं = मिथ एव तयो: प्रतिबन्धकत्वम् इति वाच्यम्, एवं सति =अपार्थिवद्रवद्रव्यस्य पार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकत्वे स्वीक्रियमाणे सति द्रुतसुवर्णसंयोगेन घृतद्रवत्वोच्छेदानापत्तेः = घृतसमवेतद्रवत्वनाशासम्भवापत्तेः सुवर्णस्य नैयायिकमतेऽपार्थिवत्वेन स्वसंयुक्तसमवेतत्वसम्बन्धेन द्रुतसुवर्णस्य प्रतियोगितया घृतद्रवत्वनाशं प्रति प्रतिबन्धकत्वाभ्युपगमात्। न च स्वसंयोगविशेषवत्समवेतत्वसम्बन्धेनापार्थिवद्रवद्रव्यस्य पार्थिवद्रवत्वोच्छेदं प्रति प्रतिबन्धकत्वान्न द्रुतसुवर्णमध्यस्थघृतद्रवत्वोच्छेदप्रसङ्गः द्रुतसुवर्णस्य घृतेन साकं संयोगविशेषविरहेण स्वसंयोगविशेषवत्समवेतत्वसम्बन्धेन घृतद्रवत्वे विरहान्न तदुच्छेदासम्भव इति वाच्यम् संयोगविशेषेण = स्वसंयोगविशेषवत्समवेतत्वसम्बन्धेन अपार्थिवद्रवस्य तथात्वे = प्रतियोगितया पार्थिवद्रवत्वनाशं प्रति प्रतिबन्धकत्वे तु तस्य = संयोगविशेषस्य एव स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन तत्त्वौचित्यात् = पार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकत्वकल्पनाया न्याय्यत्वात्। तादृशसंयोगाश्रयस्य तु पार्थिवत्वमेव, तस्य एव पार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकत्वान्न निरुक्तानवस्थाप्रसङ्गः। अतो न सुवर्णस्य तैजसत्वं सङ्गतिमङ्गतीत्ययमाशयः।

किञ्च सुवर्णं तैजसं असति विरोधिसम्बन्धे सत्यत्यन्तानलसंयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वादित्यनुमानमपि न सुवर्णस्य तैजसत्वसाधनायालं,

▶ वल्लभा ◀

अतिरिक्तप्रतिबन्धककल्पना गौरवग्रस्त - पूर्वपक्ष

पूर्वपक्ष:- अथ मि०। उपष्टम्भक पीतभाग के द्रवत्व के उच्छेद के प्रतिबन्धक संयोग के आश्रयविधया अनुद्भूतस्पर्शवाले एवं अभिभूतरूपवाले अन्य तेजोद्रव्य की कल्पना करने में गौरव है, अन्यथा उसके स्पार्शन प्रत्यक्ष एवं चाक्षुष प्रत्यक्ष की आपत्ति आयेगी। इसकी अपेक्षा उचित तो यही है कि पीतपार्थिवद्रवत्वोच्छेदप्रतिबन्धकसंयोगाश्रय को पार्थिव माना जाय तथा उपष्टम्भक पीत भाग और प्रतिबन्धकसंयोगाश्रय पार्थिव द्रव्य को ही परस्पर के द्रवत्व के उच्छेद के प्रति प्रतिबन्धक मान लिया जाय। इसलिए अनवस्था दोष का अवकाश उसे पार्थिव मानने पर भी नहीं होगा। यहाँ इस समस्या का कि→पार्थिवद्रवत्व के उच्छेद के प्रति अपार्थिवद्रवद्रव्य ही प्रतिबन्धक होता है न कि पार्थिव द्रवद्रव्य। जैसे कि उबलते पानी के मध्य भाग में स्थित घृत के द्रवत्व के विनाश के प्रति अपार्थिव जल द्रव्य ही प्रतिबन्धक होता है। अतः यदि उसे पार्थिव द्रव्य माना जाय तब तो उसका संयोग होने पर भी पीतभाग के द्रवत्व का उच्छेद अवश्य हो जायेगा जब अत्यन्त अनलसंयोग होगा। इसलिए उसे अपार्थिव=तैजस मानना हि युक्त है←समाधान यह है कि अपार्थिव द्रवद्रव्य को ही पार्थिवद्रवत्व के उच्छेद का प्रतिबन्धक माना जाय तब तो द्रुतसुवर्ण से संयुक्त घृत के द्रवत्व का विनाश हो नहीं सकेगा, क्योंकि द्रुतसुवर्ण अपार्थिव द्रुत द्रव्य होने से पार्थिव द्रुत घृत के द्रवत्व के उच्छेद के प्रति प्रतिबन्धक होगा। यदि ऐसा कहा जाय कि→'पार्थिवद्रवत्वोच्छेद के प्रति अपार्थिव द्रुत द्रव्य संयोगसामान्य सम्बन्ध से प्रतिबन्धक नहीं है किन्तु संयोगविशेष सम्बन्ध से प्रतिबन्धक है। द्रुत सुवर्ण का घृत के साथ विवक्षित संयोगविशेष होता नहीं है। इसलिए द्रुत सुवर्ण घृत के द्रवत्व के उच्छेद के प्रति प्रतिबन्धक नहीं हो सकता। अतएव तब अत्यन्त अनलसंयोग से द्रुतसुवर्णमध्यस्थ घृत के द्रवत्व का उच्छेद हो सकता है' ← तो यह अनुचित है, क्योंकि पार्थिवद्रवत्वोच्छेद के प्रति संयोगविशेष सम्बन्ध से अपार्थिव द्रवद्रव्य को प्रतिबन्धक मानने की अपेक्षा संयोगविशेष को ही समवाय सम्बन्ध से तत्प्रतिबन्धक मानना मुनासिब है।

सुवर्णद्रवत्व विनाशी है- पूर्वपक्ष

किञ्च०। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि अत्यन्त अग्निसंयोगसमवहित सुवर्ण में भी द्रुतत्व, द्रुततरत्व आदि प्रतीति

किञ्च, द्रुत-द्रुततरादिप्रतीतेः सुवर्णेऽपकृष्टद्रवत्वनाशे उत्कृष्टद्रवत्वस्वीकारात् द्रवत्वानुच्छेदोऽप्यसिद्धः। अपकृष्टोत्कृष्टत्वे च न जाती येन चरमप्रथमावर्तिन्योस्तयोरान्तरालिकवृत्तित्वेन साङ्कर्यमाशङ्क्येत, उत्कर्षापकर्षयोर्वा विजातीयाऽग्निसयोगजन्यतावच्छेदकत्व न विनिगन्तु शक्येत, किन्तु स्वाव्यवहितोत्तरत्व-स्वसामानाधिकरण्योभयसम्बन्धेन द्रवत्वविशिष्ट द्रवत्वमुत्कृष्ट, अन्यच्चापकृष्टमिति।

◆ हेमलता ◆

हेतोरेव स्वरूपासिद्धत्वग्रस्तत्वात्, सुवर्णद्रवत्वस्योच्छेदात्। न च सुवर्णद्रवत्वनाशस्याऽसिद्धत्वमिति शङ्कनीयम्, द्रुत-द्रुततरादिप्रतीतेः सुवर्णे अपकृष्टद्रवत्वनाशे एव उत्कृष्टद्रवत्वस्वीकारात्। उत्तरकालीनत्वमत्र सप्तम्यर्थः। ततोऽपकृष्टद्रवत्वनाशोत्तरकालीनोत्कृष्टद्रवत्वोत्पादाभ्युपगमादित्यर्थः। ततः किम्? इत्याह द्रवत्वानुच्छेदोऽप्यसिद्ध = स्वरूपासिद्ध एव। न च द्रवत्वप्रागभावासमानाधिकरण-द्रवत्वध्वंसस्वरूप उच्छेदो न सुवर्णे, द्रवत्वनाशेऽप्यग्रिमद्रवत्वेनोत्पादात् घृते च तथेति वाच्यम् सुवर्णे द्रवत्वनाशे सति विनष्टाश्रये द्रवत्वान्तरस्यानुत्पादेन द्रवत्वप्रागभावासमानाधिकरणद्रवत्वध्वंसस्य सत्त्वात्।

ननु विजातीयानलसयोगादपकृष्टद्रवत्वमुत्पद्यते विजातीयानलसयोगान्तराच्चोत्कृष्टद्रवत्वमुपजायत इत्यपकृष्टत्वोत्कृष्टत्वे विजातीयाग्निसयोगकार्यता-वच्छेदकतया जातिस्वरूपे एव स्वीकर्तव्ये। किन्त्वेव सति अपकृष्टत्वस्योत्कृष्टत्वेन सम साङ्कर्यापातः इत्याशङ्कायामथवाद्याह-अपकृष्टोत्कृष्टत्वे = अपकृष्टत्वमुत्कृष्टत्व च न जाती येन कारणेन चरमप्रथमावर्तिन्यो तयो = अपकृष्टत्वोत्कृष्टत्वयोः आन्तरालिकवृत्तित्वेन = मध्यमद्रवत्ववृत्तित्वेन साङ्कर्यमाशङ्क्येत। उभयोः वैयधिकरण्यबोधनाय चरमप्रथमावर्तिन्योरित्यकृष्टत्वोत्कृष्टत्वविशेषणत्वम्। सङ्करभावना चैवम्-सुवर्णे अत्यन्तानलसयोगात्प्रथम यद् द्रवत्वमुत्पद्यते तत्रापकृष्टत्व वर्तते उत्कृष्टत्वञ्च नास्ति। चरमे द्रवत्वे तूत्कृष्टत्व वर्ततेऽपकृष्टत्वञ्च न विद्यते। परस्परव्यधिकरणयोः तयोः मध्यमद्रवत्वे समवेशात्साङ्कर्यम्। पूर्विलापेक्षयोत्कृष्टाना सता मध्यमाना द्रवत्वानामुत्तरद्रवत्वापेक्षयाऽपकृष्टत्व हि सार्वजनीनप्रतीतिरिसद्ध नापहस्तयितु शक्य बृहस्पतिनाऽपि। अत एव तयोर्न जात्यात्मकतोररीक्रियते। अतो न साङ्कर्यशङ्कासङ्कुलचेतस्कता कर्तव्या।

ननूत्कृष्टत्वमेव द्रवत्वजनकविजातीयानलसयोगजन्यतावच्छेदकविधया जातिस्वरूपमस्तु, अपकृष्टत्वन्तु तदभावात्मकमिति न साङ्कर्यप्रचार इति चेत्? न, विनिमनाविरहेण अपकृष्टत्वमेवास्तु द्रवत्वजनकविजातीयाग्निसयोगजन्यतावच्छेदकविधया जातिस्वरूपम्, उत्कृष्टत्वन्तु तदभावलक्षणमित्यस्यापि सुवचत्वादित्याशयेनाथवादी प्राह→उत्कर्षापकर्षयो = उत्कृष्टत्वापकृष्टत्वयोः वा विजातीयाऽग्निसयोगजन्यतावच्छेदकत्व न विनिगन्तु शक्येत।

अथवादी तत्स्वरूपमाचष्टे - किन्त्विति। तयोस्सखण्डोपाधित्वमावेदयति-स्वेति। प्रथम सुवर्णस्य द्रुतत्वे तदनन्तरमत्यन्तानलसयोगापगमानन्तर तस्य घनीभवने पुनर्विजातीयसयोगे द्रुतावस्थाया तद्द्रवत्वस्योत्कृष्टत्ववारणाय स्वाव्यवहितोत्तरत्वनिवेशः। अन्यद्रव्यसमवेतद्रवत्वस्यैतद्द्रव्यद्रवत्वोत्तरकालीन-स्यैतद्द्रव्यद्रवत्वापेक्षयोत्कृष्टत्ववारणाय स्वसामानाधिकरण्यनिवेशः। द्वितीयद्रवत्वस्य प्रथमद्रवत्वाव्यवहितोत्तरत्वात् प्रथमद्रवत्वसमानाधिकरणत्वाच्च निरुक्तोभयसम्बन्धेन प्रथमद्रवत्वविशिष्ट द्वितीयद्रवत्व भवति। अतः प्रथमद्रवत्वापेक्षया द्वितीयद्रवत्वमुत्कृष्टमुच्यते प्रथमञ्च द्रवत्व निरुक्तोभयसम्बन्धेन द्रवत्वविशिष्ट न भवति, तस्य द्वितीयद्रवत्वसमानाधिकरणत्वेऽपि तदव्यवहितोत्तरत्वविरहात्। अतो द्वितीयद्रवत्वापेक्षयाऽपकृष्टत्वमपि बोध्यम्।

► वल्लभा ◄

होती हे। इससे यह सिद्ध होता हे कि सुवर्ण के अपकृष्ट द्रवत्व का नाश होने पर उसमे उत्कृष्ट द्रवत्व उत्पन्न होता है। इसलिए सुवर्ण के द्रवत्व का अनुच्छेद भी असिद्ध हे। अतएव 'असति विरोधिसम्बन्धे, सति अत्यन्तानलसयोगे अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणता' स्वरूप हेतु भी असिद्ध ही हे। जब हेतु ही स्वरूपासिद्ध हे तब उसके बल से पक्षीभूत सुवर्ण मे तेजस्त्व की सिद्धि कैसे हो सकेगी?

यहाँ यह शका कि→'अपकृष्टत्व ओर उत्कृष्टत्व का अन्तरालवर्ती अनपकृष्ट-अनुत्कृष्ट द्रवत्व मे साङ्कर्य प्रसक्त होगा। जैसे कि अग्निसयोग से सर्वप्रथम द्रुत होनेवाले सुवर्ण के द्रवत्व मे अपकृष्टत्व जाति रहेगी मगर उत्कृष्टत्व जाति नही रहेगी। चरम द्रुत सुवर्ण के द्रवत्व गुण मे उत्कृष्टत्व जाति रहेगी किन्तु अपकृष्टत्व जाति नही रहेगी। जब कि मध्यम द्रवत्व अपने पूर्ववर्ती द्रवत्व की अपेक्षा उत्कृष्ट है और परवर्ती द्रवत्व की अपेक्षा अपकृष्ट हे। अतएव उसमे अपकृष्टत्व ओर उत्कृष्ट जाति रहेगी। परस्पर व्यधिकरण दो जातिया का एक अधिकरण मे समावेश होने की वजह साङ्कर्य दोष प्रसक्त होता हे←इसलिए निराधार है कि वास्तव मे उत्कृष्टत्व और अपकृष्टत्व जातिस्वरूप नही है। अतएव साङ्कर्य को यहाँ अवकाश रहता नही हे। वस्तुस्थिति तो यह है कि उत्कृष्टत्व या आपकर्ष विजातीय अग्निसयोग की जन्यतावच्छेदक जाति नही है, क्योकि उत्कृष्टत्व को ही उसकी कार्यतावच्छेदक जाति मानी जाय या अपकृष्टत्व को? इस विषय मे कोई विनिगमना नही हे। इसलिए न तो जातिविधया उत्कृष्टत्व का स्वीकार हो सकता है और न तो अपकृष्टत्व का।

यहाँ इस प्रश्न का कि→'उत्कृष्टत्व और अपकृष्टत्व जातिस्वरूप नहीं है, तो फिर उसका स्वरूप क्या है ?←प्रत्युत्तर यह हे कि स्वाव्यवहितोत्तरत्व और स्वसामानाधिकरण्य उभय सम्बन्ध से द्रवत्वविशिष्ट द्रवत्व ही उत्कृष्ट है और उससे अन्य द्रवत्व अपकृष्ट हे। जेसे सुवर्ण के द्वितीयद्रवत्व मे प्रथमद्रवत्वाऽव्यवहितोत्तरत्व एव प्रथमद्रवत्वसामानाधिकरणत्व होने [illegible] ←स्वसामानाधिकरण्य उभय सम्बन्ध से प्रथमद्रवत्वविशिष्ट द्वितीय द्रवत्व होता है। अतएव द्वितीय द्रवत्व प्रथम [illegible] अपेक्षा उत्कृष्ट कहा जाता

न च विजातीयाग्निसंयोगनाश्यतावच्छेदकत्वेनापकर्षजातिरावश्यकी, अनपकृष्टस्यापि तन्नाश्यत्वात्, स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्नस्वाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसम्बन्धेन विजातीयाग्निसंयोगस्य प्रतियोगितया विजातीयद्रवत्वनाशहेतुत्वान्न द्वितीयादिद्रवत्वानां क्षणिकत्वापत्तिः।

◆ हेमलता ◆

ननु विजातीयानलसंयोगकार्यतावच्छेदकविधया मास्तु जातिस्वरूपस्याऽपकृष्टत्वस्योत्कृष्टत्वस्य वा सिद्धिः विनिगमनाविरहेणोभयोस्तथात्वे साङ्कर्यात् किन्तु विजातीयानलसंयोगनाश्यतावच्छेदकविधया सिध्यतोऽपकृष्टत्वस्य जातित्वमनपलपनीयम्। उत्कृष्टद्रवत्वं तु न नश्यतीति सुवर्णादौ दृष्टम्। अतो नोत्कृष्टत्वस्य विजातीयाग्निसंयोगनाश्यतावच्छेदकत्वं न सम्भवतीति न विनिगमनाविरहो न वा साङ्कर्यमित्याशङ्कामपाकर्तुमुपन्यस्यति न च विजातीयाग्निसंयोगनाश्यतावच्छेदकत्वेन = विजातीयानलसंयोगनिष्ठनाशकतानिरूपितपार्थिवद्रवत्वनिष्ठनाश्यतावच्छेदकधर्मविधया अवकल्पनाति = अपकृष्टत्वजातिः आवश्यकी, गन्धसमवायिकारणतावच्छेदकविधया पृथ्वीत्ववदिति वाच्यम् अनपकृष्टस्य = द्वितीयोत्कृष्टाद्यचरमोत्कृष्टपर्यन्तस्य द्रवत्वस्य अपि तन्नाश्यत्वात् = विजातीयाग्निसंयोगजन्यनाशप्रतियोगित्वात् तन्नाश्यतावच्छेदकविधयाऽनपकृष्टस्यापि जातित्वमावश्यकम्। एकतरस्य जातित्वे विनिगमनाविरहः, उभयोस्तयोर्जातित्वे तु साङ्कर्यापातः, प्रथमद्रवत्वेऽनपकृष्टत्वं विहाय वर्तमानस्य अपकृष्टत्वस्य चरमद्रवत्वाऽवृत्तिमध्यकालिकद्रवत्वेऽनपकृष्टत्वालिङ्गिते वर्तमानत्वात्। न च द्वितीयादिद्रवत्वोत्पत्तिक्षणेऽपि प्रथमद्रवत्वोच्छेदकविजातीयानलसंयोगस्य स्वसामानाधिकरण्यसम्बन्धेन प्रथमद्रवत्ववद् द्वितीयद्रवत्वेऽपि सत्त्वात् स्वोत्पत्त्यनन्तरमेव द्वितीयादिद्रवत्वानामुच्छेदापत्तिरिति तेषां क्षणिकत्वमिति वाच्यम् स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्नस्वाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसम्बन्धेन विजातीयाग्निसंयोगस्य प्रतियोगितया = स्वनिरूपितप्रतियोगितया विजातीयद्रवत्वनाशहेतुत्वात् न द्वितीयादिद्रवत्वानां क्षणिकत्वापत्तिः। प्रथमद्रवत्वोच्छेदकविजातीयानलसंयोगः स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्न-स्वाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसम्बन्धेन प्रथमद्रवत्वे एव वर्तते न तु द्वितीयादिद्रवत्वेषु।

► वल्लभा ◄

प्रथम द्रवत्व में स्वाव्यवहितोत्तरत्व सम्बन्ध से कोई समानाधिकरण द्रवत्व रहता नहीं है, क्योंकि वह किसी समानाधिकरण द्रवत्व के उत्तर नहीं है। अतः वह द्रवत्वविशिष्टद्रवत्वभिन्न होता है। अतएव वह अनपकृष्ट कहा जाता है।

★★ अपकृष्टत्व जाति नहीं है - पूर्वपक्ष जारी ★★

न च वि०। यहाँ इस शङ्का का कि→'विजातीयाग्निसंयोगकार्यतावच्छेदकविधया अपकृष्टत्व जाति की सिद्धि न हो तो क्या? मगर विजातीयाग्निसंयोगनाश्यतावच्छेदकधर्मविधया तो अपकृष्टत्व का जातिस्वरूप से स्वीकार करना आवश्यक है, क्योंकि वह विजातीयाग्निसंयोगनाश्य सकल द्रवत्व में अनुगत धर्म है'←समाधान यह है कि विजातीय अग्निसंयोग के नाश्यतावच्छेदकविधया अपकृष्टत्व का जातिरूप से स्वीकार किया जाय या अनपकृष्टत्व का? इस विषय में कोई विनिगमना नहीं है, क्योंकि अपकृष्ट द्रवत्व की भाँति अनपकृष्ट = द्वितीयादि अचरमपर्यन्त द्रवत्व भी विजातीय अग्निसंयोग से नाश्य है ही। अनपकृष्टत्व को भी यदि जातिस्वरूप माना जाय तब तो पुनः मध्यम द्रवत्व में अपकृष्टत्व के साथ अनपकृष्टत्व का साङ्कर्य प्रसक्त होगा। किसी एक को जातिस्वरूप मानने में विनिगमनाविरह दोष है। अतः अपकृष्टत्व और उत्कृष्टत्व को उपर्युक्त सखण्ड उपाधिस्वरूप मानना ही युक्तिसङ्गत है - यह फलित होता है।

●● द्वितीयादिद्रवत्व में क्षणिकत्वापत्ति का निरास ●●

स्वसा०। यहाँ इस शङ्का के कि → विजातीय अग्निसंयोग से द्वितीयादि द्रवत्व की उत्पत्ति क्षण में भी प्रथमद्रवत्वनाशक विजातीय अग्निसंयोग सामानाधिकरण्यसम्बन्ध से द्वितीयादि द्रवत्व में रहता ही है। नाशक विजातीय अग्निसंयोग उपस्थित होने की वजह द्वितीयादि द्रवत्व का स्वोत्पत्ति के अव्यवहित उत्तर क्षण में नाश हो जायेगा। मतलब कि द्वितीयादि द्रवत्व क्षणिक हो जायेंगे'←समाधानार्थ यह कहा जा सकता है कि विजातीय अग्निसंयोग केवल सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से पार्थिवद्रवत्व का नाशक नहीं होता है किन्तु स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्नस्वाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसम्बन्ध से ही वह उसका नाशक होता है। कार्यकारणभाव का निरूपण इस तरह हो सकता है कि स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्न स्वाव्यवहितपूर्ववृत्तित्व सम्बन्ध से विजातीय अग्निसंयोग प्रतियोगितासम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले विजातीयद्रवत्वनाश का हेतु होता है। द्वितीयादि द्रवत्व उत्पन्न होता है उसी क्षण में जो विजातीय अग्निसंयोग सामानाधिकरण्यसम्बन्ध से रहता वह तदव्यवहितपूर्ववृत्ति नहीं है। अतएव स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्न-स्वाऽव्यवहितपूर्ववृत्तित्व सम्बन्ध से प्रथमद्रवत्वोच्छेदक विजातीय अग्निसंयोग द्वितीयादि द्रवत्व में नहीं रहेगा किन्तु प्रथम द्रवत्व में ही रहेगा, क्योंकि प्रथम द्रवत्व ही तादृश विजातीय अग्निसंयोग के अव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन विजातीयअनलसंयोगाश्रय में वृत्ति है। अतः अपनी उत्पत्ति के द्वितीय क्षण में ही द्वितीयादि पार्थिवद्रवत्व के उच्छेद की कोई आपत्ति नहीं है। प्रथमद्रवत्वविनाश प्रतियोगितासम्बन्ध से प्रथम द्रवत्व में रहता है और वह विजातीय अग्निसंयोग का समानाधिकरण एवं अव्यवहितपूर्ववृत्ति

केचित्तु निमित्तनाशनाश्यत्वमेव नैमित्तिकद्रव्यत्वस्येति प्रतियोगितया विजातीयद्रव्यत्वनाशे स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्धेन विजातीयसयोगनाश एव हेतुः। उत्पत्तिसम्बन्धेन विजातीयाग्निसयोगस्य तज्जनकत्वाच्च न विनश्यदवस्थग्निसयोगजन्यस्य तस्य क्षणिकत्वापत्तिः इत्याहुः, तच्चिन्त्यम्।

◆ हेमलता ◆

अतः प्रतियोगितासम्बन्धेन नाशोऽपि प्रथमद्रव्यत्वे जायते न तु द्वितीयादिद्रव्यत्वेषु। द्वितीयादिद्रव्यत्वाना प्रथमद्रव्यत्वोच्छेदकसयोगसमानाधिकरणत्वेऽपि तदव्यवहितपूर्ववृत्तित्वविरहात् न स्वोत्पादानन्तरमेव द्वितीयादिद्रव्यत्वाना नाशापत्तिर्येन तेषा क्षणिकत्वमापद्यते। एतदर्थमेव कारणतावच्छेदकसम्बन्धकोटौ स्वाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वनिवेशः कृतः। तृतीयद्रव्यत्वजनकविजातीयानलसयोगस्योत्पादे तदनन्तरोत्तरक्षणेऽवश्य द्वितीयद्रव्यत्वनाशो भवति तस्य सयोगस्य स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्न-स्वाव्यवहितपूर्ववृत्तित्वसम्बन्धेन द्वितीयद्रव्यत्वे सत्त्वात्, स्वनिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धेन द्वितीयद्रव्यत्वनाशस्यापि तत्रैवोत्पादात्। इत्थश्च सुवर्णद्रव्यत्वस्याप्युच्छिद्यमानत्वेन 'असति विरोधिसम्बन्धे एककालावच्छिन्नसामानाधिकरण्यसम्बन्धेन विजातीयानलसयोगविशिष्ट-नाशाऽप्रतियोगिद्रव्यत्ववत्त्वात्' इति हेतोः स्वरूपासिद्धिग्रस्तत्वान्न सुवर्णस्य तेजस्त्वसिद्धिरित्यथवादितात्पर्यमवधेयम्।

केचित्तु इति। अस्याग्रे आहुत्यनेनान्वयः। निमित्तनाशनाश्यत्वमेव = स्वनिमित्तकारणीभूतेन विजातीयानलसयोगेनैव नाश्यत्व नैमित्तिकद्रव्यत्वस्य, न तु यत्किञ्चिदनलसयोगनाशनाश्यत्वमिति एवकारार्थः। केचित्तु आधुनिकाः 'निमित्तनाशनाश्यत्वमेवेत्येवकारेण विजातीयाग्निसयोगनाशनाश्यत्वव्यव-च्छेदः कृत इति व्याचक्षते तत्र विजातीयाग्निसयोगनाशनाश्यत्वव्यवच्छेद इत्यस्य स्वाऽजनकविजातीयाग्निसयोगनाशनाश्यत्वव्यवच्छेद इत्यर्थः, तेन नासम्भवः न वोपक्रमविरोधः। इति हेतोः प्रतियोगितया = स्वनिरूपितप्रतियोगितासम्बन्धेन, विजातीयद्रव्यत्वनाशे स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्धेन विजातीयसयोगनाश = विजातीयानलसयोगनाश एव हेतु । तथाहि प्रथमद्रव्यत्वजनकविजातीयाग्निसयोगनाशस्य स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्धेन प्रथमद्रव्यत्वे वर्तमानत्वात् नाशोऽपि स्वप्रतियोगित्वसम्बन्धेन प्रथमद्रव्यत्वे एवोत्पद्यते। तादृशसयोगनाशानन्तर प्रथमद्रव्यत्वमपि विनश्यतीत्यर्थः। एतेन द्वितीयद्रव्यत्वादीना क्षणिकत्वापत्तिः प्रत्युक्ता, द्वितीयादिद्रव्यत्वोत्पत्तिक्षणे तेषु स्वप्रतियोगिजन्यतासम्बन्धेन विजातीयसयोगनाशस्यैव विरहात्, तादृशनाशप्रतियोगिना प्रथमद्रव्यत्वस्यैवोत्पादात्। प्रथमद्रव्यत्वजनकसयोगस्य द्वितीयादिद्रव्यत्वाऽजनकत्वान्न तन्नाशाद् द्वितीयादिद्रव्यत्वोच्छेद इति भावः। न च तथापि विनश्यदवस्थानलसयोगजन्यद्रव्यत्वस्य क्षणिकत्वापत्तिर्दुर्वारैव, तस्य स्वोत्पत्तिक्षणे एव स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्धेन विजातीयानलसयोगनाशविशिष्टत्वादिति वाच्यम् उत्पत्तिसम्बन्धेन विजातीयाग्निसयोगस्य तज्जनकत्वात् नैमित्तिकद्रव्यत्वोत्पादकत्वात्। न च विनश्यदवस्थाग्निसयोगजन्यस्य तस्य = नैमित्तिद्रव्यत्वस्य क्षणिकत्वापत्ति । आद्यक्षणसम्बन्ध उत्पत्तिरित्येके। कार्यस्याद्यक्षणसत्तासम्बन्ध उत्पत्तिरितीतरे। स्वाधिकरणसमयध्वसानधिकरणसमयसम्बन्ध उत्पत्तिरि-त्यन्ये। स्वाधिकरणक्षणाऽवृत्तिप्रागभावप्रतियोगिक्षणसम्बन्ध उत्पत्तिरिरित्यपरे। स्वोत्पत्तिविरहदशाया द्वितीयादिक्षणावच्छेदेन विजातीयाग्निस- योगस्य नैमित्तिकद्रव्यत्वाऽजनकत्वान्न तज्जन्यविजातीयद्रव्यत्वस्य क्षणिकत्वप्रसङ्गः, उद्देश्यविरहे आपादनाऽयोगात्। न हि वन्ध्यापुत्रस्य तक्षकशिरोरत्नानयने शतवर्षजीवित्व स्यादित्यापादन दृष्टमिष्ट वा। ततश्च स्वनिमित्तकारणनाशजन्यनाशप्रतियोगित्वमेव विजातीयद्रव्यत्वे कल्पयितुमर्हतीति केचित्तुमततात्पर्यम्।

► वल्लभा ◄

होने की वजह स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्नस्वाव्यवहितपूर्वत्वसम्बन्ध से विजातीय अनलसयोग भी प्रथम द्रव्यत्व मे रहता है। अतएव वहाँ प्रथमद्रव्यत्वनाश प्रतियोगिता सम्बन्ध से उत्पन्न हो सकता है। द्वितीयादि द्रव्यत्व मे प्रथमद्रव्यत्वोच्छेदक विजातीयानलसयोग की पूर्ववृत्तिता नही होने से वह नाशक विशिष्ट बनता नही है। अतएव उसकी द्वितीयादि क्षण मे उच्छित्ति प्रसक्त नही होगी। इसलिए द्वितीय आदि द्रव्यत्व मे क्षणिकत्व की आपत्ति नही हे। इस तरह पूर्वोक्त रीति से हेतु स्वरूपासिद्ध होने से सुवर्ण को तेजस माना जा नही सकता - यह फलितार्थ ध्यातव्य है। [पूर्वपक्ष चालु]

नैमित्तिकद्रव्यत्व निमित्तनाशनाश्य

केचि०। यहाँ कुछ विद्वानो का यह मन्तव्य हे कि—>'नेमित्तिक द्रव्यत्व निमित्तनाश से ही नाश्य होता हे। मतलव कि विवक्षित नमित्तिकद्रव्यत्व के निमित्त=जनक विजातीयाग्निसयोग के नाश से ही तादृशसयोगजन्य नेमित्तिक द्रव्यत्व का नाश होता है। नव्यन्याय की परिभापा मे इस तरह कहा जा सकता है कि स्वप्रतियोगितासम्बन्ध से विजातीयद्रव्यत्वनाश के प्रति स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्ध से विजातीयसयोगनाश हेतु होता है। जैसे कि जहाँ विजातीय अग्निसयोग से प्रथम द्रव्यत्व उत्पन्न होता है वहाँ उस सयोग के नाश से प्रथम द्रव्यत्व का नाश होगा, क्योकि प्रथम द्रव्यत्व मे स्वप्रतियोगितासम्बन्ध से प्रथमद्रव्यत्वनाश रहता ह और स्व=नाश के प्रतियोगी = विजातीय अग्निसयोग से प्रथमद्रव्यत्व जन्य होने के सवव स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्ध से विजातीयसयोगनाश भी वहाँ रहता हे। इस प्रकार के कार्यकारणभाव के स्वीकार से द्वितीयादि द्रव्यत्व मे क्षणिकत्व की आपत्ति भी निरवकाश हे, क्योकि द्वितीयादि द्रव्यत्व की उत्पत्तिक्षण मे द्वितीयादिद्रव्यत्वजनक निमित्तकारणीभूत विजातीय अग्निसयोग का नाश होता नही हैं ओर जिस विजातीय अग्निसयोग

17

अथ द्रवत्वोच्छेदकाग्निसंयोगस्य द्रवत्वान्तरोत्पत्तिप्रतिबन्धकत्वादाश्रयनाशादेव स्वर्णद्रवत्वनाशः। अत एव तीव्रानलसंयोगाद-पकृष्टस्वर्णनाशादुत्कृष्टस्वर्णस्यैवोत्पत्तिरिति द्रुत-द्रुततरादिप्रतीतेः नानास्वर्णविषयत्वम्। न च नानाश्रयाणां नाशकताकल्पने गौरवम्,

◆ हेमलता ◆

सुवर्णतैजसत्वप्रतिक्षेपी अथवादी अत्र स्वास्वरसमावेदयति- तच्चिन्त्यमिति। तद्बीजञ्चेदम् विनश्यदवस्थानलसंयोगस्य विजातीयद्रवत्वाजननस्य शपथमात्रनिर्णेयत्वात्। नैमित्तिकद्रवत्वस्य स्वनिमित्तनाशेनेव स्वसमवायिकारणनाशेनाऽपि नाश्यत्वेन व्यतिरेकव्यभिचारात्, स्वनिमित्तकारणविजातीयानल-संयोगनाशक्षणावच्छेदेन तादृशविजातीयानलसंयोगान्तरोत्पादे पूर्वतननैमित्तिकद्रवत्वानाशेनान्वयव्यभिचारश्चेति।

केचित्तु येनाग्निसंयोगेन यद्द्रवत्वं जनितं तस्याग्निसंयोगस्य सद्भावेऽपि द्वितीयाग्निसंयोगविशेषेण तन्नाशस्यानुभूयमानत्वेनोक्तमतं न युक्तमित्याशयेनाह-तच्चिन्त्यमिति व्याचक्षते, तन्न चारु, जटिलज्वालानलकलापस्य प्रतिक्षणं विपरिवर्तमानत्वेन स्थायित्वानभ्युपगमादिति मुक्तावलीमञ्जूषादौ व्यक्तत्वात्।

अथेति। चेदित्यनेनास्यान्वयः। द्रवत्वोच्छेदकाग्निसंयोगस्य = नैमित्तिकद्रवत्वनाशकस्य विजातीयाग्निसंयोगस्य द्रवत्वान्तरोत्पत्तिप्रतिबन्धकत्वात्, आश्रयनाशादेव = नैमित्तिकद्रवत्वसमवायिद्रव्यविनाशादेव स्वर्णद्रवत्वनाशः न त्वग्निसंयोगात्तन्नाशः। यदि चाग्निसंयोगात् सुवर्णद्रवत्वं विनश्येत् तदा घृतवन्न द्रवत्वान्तरमुत्पद्येत द्रवत्वोच्छेदकानलसंयोगस्य द्रवत्वान्तरप्रतिबन्धकत्वात्। अत एव = नैमित्तिकद्रवत्वस्य स्वाश्रयनाशनाश्यत्वादेव तीव्रानलसंयोगात् अपकृष्टस्वर्णनाशात् = अपकृष्टद्रवत्वशालि-सुवर्णनाशानन्तरं उत्कृष्टस्वर्णस्य = उत्कृष्टद्रवत्वशालिस्वर्णस्य एवोत्पत्तिः, न तु अवस्थितकाञ्चनापकृष्टद्रवत्वनाशात् पूर्वतनसुवर्णे उत्कृष्टद्रवत्वस्योत्पादः। इति हेतोः द्रुत-द्रुततरादिप्रतीतेः नानास्वर्णविषयत्वम्। द्रुतसुवर्णमन्यत् तन्नाशाच्च जातं द्रुततरं सुवर्णमपि तदन्यदेवेत्येकस्मिन् सुवर्णे न द्रुतत्व-द्रुततरत्वादिकं कालभेदेन सम्भवति येन विजातीयाग्निसंयोगेन द्रवत्वोच्छेदस्तत्र भवेत्। इत्थमनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणतायाः सुवर्णेऽनपायात्तस्य तैजसत्वं निराबाधमित्यवान्तरार्थवादिनोऽभिप्रायः। न च एवं नानाश्रयाणां ध्वंसानां

▶ वल्लभा ◀

का नाश होता है उससे द्वितीयादि द्रवत्व उत्पन्न होते नहीं हैं। इसलिए द्वितीय आदि द्रवत्व का स्वोत्पत्तिअव्यवहित उत्तर क्षण मे नाश होने की आपत्ति को भी अवकाश नहीं है। यहाँ इस समस्या का कि→''विनश्यदवस्थावाले विजातीय अग्निसंयोग से जन्य द्रवत्व मे तो क्षणिकत्व की आपत्ति इस मत मे भी अपरिहार्य होगी, क्योंकि जिस क्षण मे विजातीय अग्निसंयोग का नाश होता है उसी क्षण मे जन्य द्रवत्व स्वउत्पत्ति क्षण मे स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्ध से विजातीयसंयोगनाशविशिष्ट है। अतएव स्वोत्पत्ति के द्वितीयक्षण मे उसका नाश हो ही जायेगा। इस तरह वह क्षणिक बन जायेगा''←समाधान यह है कि विजातीय अग्निसंयोग अन्य द्रवत्व का जनक नहीं है किन्तु स्वोत्पत्तिसम्बन्ध से विजातीय द्रवत्व का जनक होता है। मतलब कि अपनी उत्पत्ति के क्षण मे वह विजातीयद्रवत्वहेतु होगा न कि अन्य किसी समय मे या विनश्यदवस्था मे। इस तरह विनश्यदवस्था मे विजातीय अग्निसंयोग से विजातीय द्रवत्व की उत्पत्ति ही होती नहीं है तब उसमे क्षणिकत्व का आपादन ही कैसे हो सकता? अप्रसिद्ध को उद्देश कर के कोई आपादन नहीं किया जाता है। अतः नैमित्तिकद्रवत्व को स्वनिमित्तकारणनाश से ही नाश्य मानना उचित है'←

तच्चि०। मगर अथवादी पूर्वपक्षी (सुवर्णपार्थिववादी) उपर्युक्त केचित्तु मत को चिन्तनीय कहते हैं अर्थात् वह बिना सोचे समझे आँखे मूँद कर ग्राह्य नहीं है किन्तु विचार करने योग्य है। विचार का एक पहलु हमे यह महसूस होता है कि विनश्यदवस्थावाले विजातीय अनलसंयोग से नैमित्तिक द्रवत्व उत्पन्न ही होता नहीं है - इस विषय मे कोई प्रमाण नहीं है। दूसरी बात यह है कि द्रवत्व के आश्रय के नाश से भी नैमित्तिक द्रवत्व का उच्छेद होने की वजह 'स्वनिमित्तकारणनाश से ही नैमित्तिक द्रवत्व नाश्य है' यह कथन भी अप्रामाणिक मालूम पडता है। दूसरा भी बहुत कुछ यहाँ सोचा जा सकता है। यह सुवर्णपार्थिववादी पूर्वपक्षी का तात्पर्य है।

सुवर्णतैजसत्वसाधक अनुमानान्तर

अथ द्र०। यहाँ अन्य विद्वानो की यह राय है कि→ द्रवत्वोच्छेदक जो अग्निसंयोग होता है वह अन्य द्रवत्व की उत्पत्ति मे प्रतिबन्धक है - यह घृतादिस्थल मे देखा गया है। घृत के द्रवत्व का उच्छेदक विजातीय अग्निसंयोग घृत मे अन्य द्रवत्व को उत्पन्न होने देता नही है। इसलिए अवस्थित सुवर्ण मे प्रथम द्रवत्व आदि का नाश मान कर द्वितीय आदि द्रवत्व की उत्पत्ति की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि प्रथमद्रवत्वनाशक विजातीय अग्निसंयोग द्वितीय द्रवत्व आदि की उत्पत्ति मे पतिबन्धक है। मगर द्रुत-द्रुततर आदि प्रतीति तो अतितप्त सुवर्ण मे अनुभवसिद्ध है। इसलिए उसकी उपपत्ति के लिए यही मानना उचित है कि द्रवत्व के आश्रय सुवर्ण के नाश से ही सुवर्णद्रवत्व का नाश होता है। आश्रयनाश से सुवर्णद्रवत्व के नाश का स्वीकार करने से

स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वोभयसम्बन्धेन नाशवन्नाशत्वावच्छिन्नं प्रति नाशत्वेन सामान्यत एव हेतुतायाः क्लृप्तत्वात्।

हेमलता

नाशकताकल्पने = नैमित्तिकद्रवत्वोच्छेदकत्वकल्पने गोरव इति वाच्यम्, स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वोभयसम्बन्धेन नाशवन्नाशत्वावच्छिन्न = नाशविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वावच्छिन्न प्रति स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धेन नाशत्वेन रूपेण सामान्यत एव स्वप्रतियोगिसमवायिकारणनाशस्य हेतुताया क्लृप्तत्वात् = प्रमाणसिद्धत्वात्। प्रकृते कारणतावच्छेदकसम्बन्धः स्वप्रतियोगिसमवेतत्व कारणतावच्छेदकधर्मो नाशत्व, कार्यतावच्छेदकससर्गः स्वनिरूपितप्रतियोगित्व कार्यतावच्छेदकधर्मश्च नाशविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्वम् । वैशिष्ट्यञ्च स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वोभयसम्बन्धेन वोध्यम्। अय कार्यकारणभावोऽन्यत्र क्लृप्त एव। तथाहि घटनाशनाश्यघटरूपादिनाशस्थले वैशिष्ट्यघटकीभूतस्वपदेन नाशप्रतियोगिघटीयरूपादिसमवायिकारण-नाशस्य घटनाशात्मकस्य ग्रहणम्। तत्प्रतियोगिनि घटे घटीयरूपादेः समवेतत्वात् घटीयरूपादौ घटविनाशप्रतियोगिघटसमवेतत्व वर्तते। स्वाधिकरणत्वश्चात्र कालिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन बोध्यम्। घटीयरूपादेः जन्यत्वेन कालोपाधित्वम्। अत एव कालिकविशेषणतासम्बन्धेन घटनाशाधिकरणत्व घटरूपादौ सुघटम्। ततश्च स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वोभयसम्बन्धेन घटनाशविशिष्ट घटरूपादि भवति। घटनाशविशिष्टघटरूपादिनाशलक्षणस्य कार्यस्य प्रतियोगितासम्बन्धेनाधिकरणीभूते उभयसम्बन्धेन घटनाशविशिष्टघटरूपादौ स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धेन घटनाशलक्षण कारण वर्तते स्वस्य = घटनाशस्य प्रतियोगिनि घटे निरुक्तोभयसम्बन्धेन घटनाशविशिष्टघटरूपादेः समवेतत्वात्। नैयायिकमते घटरूपादिनाशस्य घटनाशोत्तर जायमानत्वेन घटरूपादेर्घटनाशसमकालीनत्वेन घटनाशाधिकरणत्व कालिकविशेषणताविशेषसम्बन्धेन घटरूपादौ निराबाधम्। तेनाऽविद्यमानस्य कालिकेनाधिकरण-त्वायोग इत्युक्तावपि न क्षतिः घटसमवेतघटत्वपृथिवीत्व-द्रव्यत्वादेर्नाशातिप्रसङ्गवारणाय कालिकेन स्वाधिकरणत्व वैशिष्ट्यनियामकसम्बन्धमध्ये विवक्षितम्। 'नित्येषु कालिकायोगादि'तिवचनात् घटत्वादेः कालिकविशेपणतया घटनाशाधिकरणत्वाभावान्न घटत्वादेः घटनाशनाश्यत्वप्रसङ्गः । प्रकृते वैशिष्ट्यघटकप्रथमस्वपदेन सुवर्णनाशग्रहणम्। तत्प्रतियोगिनि सुवर्णे सुवर्णद्रवत्वस्य समवेतत्वात् सुवर्णद्रवत्वे स्वसमवायिकारणसुवर्णनाशप्रतियोगिसुवर्णस-मवेतत्व वर्तते। सुवर्णद्रवत्वस्य जन्यत्वेन कालिकविशेषणतासम्बन्धेन सुवर्णनाशाधिकरणत्व सुवर्णद्रवत्वेऽनपायम्। एवञ्च सुवर्णद्रवत्व स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वोभयसम्बन्धेन सुवर्णनाशविशिष्ट भवति स्वप्रतियोगितासम्बन्धेन कार्याधिकरणीभूते उभयसम्बन्धेन सुवर्णनाशविशिष्ट- सुवर्णद्रवत्वे कारणतावच्छेदकीभूतेन स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्धेन सुवर्णनाशलक्षण कारणमपि वर्तते, स्वस्य= सुवर्णनाशस्य प्रतियोगिनि सुवर्णे निरुक्तोभयसम्बन्धेन सुवर्णनाशविशिष्टसुवर्णद्रवत्वस्य समवेतत्वात्। इत्थ कार्यकारणयोः सामानाधिकरण्योपपत्तेः विजातीयानलसयोगजन्यात् सुवर्णनाशात् सुवर्णद्रवत्वना-

वल्लभा

ही तीव्र अग्निसयोग से अपकृष्ट सुवर्ण का नाश और अपकृष्टसुवर्णनाश से ही उत्कृष्ट द्रुत सुवर्ण की उत्पत्ति भी सङ्गत हो सकेगी। अत सुवर्ण मे जो द्रुत-द्रुततर आदि प्रतीति होती है वह एक ही अवस्थित सुवर्ण मे अपकृष्ट द्रवत्व के नाश और उत्कृष्ट द्रवत्व की उत्पत्ति को अपना विषय बनाती नही हे किन्तु अपकृष्टद्रुतसुवर्णद्रव्यनाश ओर उत्कृष्टद्रुत सुवर्ण द्रव्य की उत्पत्ति को विषय करती हे मतलब कि एक ही सुवर्ण उक्त प्रतीति का गोचर नही है किन्तु अनेक सुवर्ण ही उसके विषय हे। यहाँ यह नही कहा जा सकता कि—›'अनेक द्रवत्वाश्रय सुवर्ण द्रव्य के नाश मे द्रवत्वनाशजनकता की कल्पना करने मे गोरव है। इसकी अपेक्षा विजातीय अग्निसयोग मे ही उसकी कल्पना लाघव से सङ्गत है'←— यह कथन अप्रामाणिक होने का कारण यह हे कि स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वउभयसम्बन्ध से नाशविशिष्टप्रतियोगिकनाश के प्रति स्वप्रतियोगिसमवेतत्वसम्बन्ध से नाशत्वेन रूपेण कारणता सामान्यत आवश्यक ही है। इस कार्यकारणभाव के वल से ही यहाँ अनेक आश्रयनाश = द्रवत्वाश्रयसुवर्णनाश मे द्रवत्वनाशकता सिद्ध हो जाती है। तदर्थ नवीन कार्यकारणभाव आदि की कल्पना करनी आवश्यक नही हे। यहाँ कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध स्वप्रतियोगिता है, कार्यतावच्छेदक धर्म नाशविशिष्टप्रतियोगिकनाशत्व हे, वेशिष्ट्यनियामक स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वोभयसम्बन्ध हे कारणतावच्छेदक धर्म है नाशत्व और कारणतावच्छेदक सम्बन्ध है स्वप्रतियोगिसमवेतत्व। वैशिष्ट्यनियामक सम्बन्ध के प्रथम स्वपद से यहाँ सुवर्णनाश ग्राह्य है जिसके प्रतियोगी = सुवर्ण मे समवेत हे द्रवत्व, जो कालिकसम्बन्ध से सुवर्णनाश का अधिकरण होता है। अत स्वप्रतियोगिसमवेतत्व-स्वाधिकरणत्वउभयसम्बन्ध से सुवर्णनाशविशिष्ट सुवर्णद्रवत्व होता हे। सुवर्णनाशविशिष्ट द्रवत्वनाशात्मक कार्य कार्यतावच्छेदकीभूत स्वप्रतियोगितासम्बन्ध से सुवर्णनाशविशिष्ट द्रवत्व मे रहता है ओर कारणतावच्छेदकीभूत स्वप्रतियोगिसमवेतत्व सम्बन्ध से सुवर्णनाश भी उसी विशिष्ट द्रवत्व मे रहता हे, क्योकि स्व=सुवर्णनाश के प्रतियोगी = सुवर्ण मे सुवर्णनाशविशिष्ट द्रवत्व समवेत हे। इस तरह कार्य ओर कारण के सामानाधिकरण्य की उपपत्ति हो जाती हे। घटनाशजन्य घटीयरूपादिनाश स्थल मे उपर्युक्त कार्यकारणभाव ही कामयाव बनता है। अत उपर्युक्त कार्यकारणभाव प्रमाणसिद्ध ही हे, कल्पनीय नही है। इसलिए प्रस्तुत मे अनुमानप्रयोग इस तरह होगा कि - सुवर्णद्रवत्व स्वाश्रयनाशनाश्य हे, क्योकि वह अग्निसयोगी होते हुए भी अग्निसयोगनाशनिमित्तकनाश का अप्रतियोगी हे। तथा-सुवर्ण तैजस है, क्योकि वह अत्यन्ताग्निसयोग होने पर भी अग्निसयोगनाशजन्यनाशाऽप्रतियोगि द्रवत्व का अधिकरण हे। इस अनुमान से सुवर्ण मे तेजस्त्व की सिद्धि होती है।

तथा चाग्निसंयोगित्वे सति तद्धेतुकनाशाऽप्रतियोगित्वादिति हेत्वर्थ इति चेत् ? न हैय्यङ्गवीनस्यापि द्रुत-द्रुततरादिप्रतीत्या तथात्वेन तथापि व्यभिचारात्। तस्मात् नानाश्रयध्वंसोत्पत्तिकल्पनागौरवात् पार्थिवत्वाऽविशेषेऽपि स्वर्णतदितरद्रवपार्थिवयोरुत्तरोत्तरद्रवत्वसामग्री-समवधानाऽसमवधानाभ्यामेव तदुच्छेदानुच्छेदावित्युचितमिति चेत् ?

अत्र ब्रूमः उपष्टम्भकपीतेतररूपप्रतिबन्धकसंयोगशालित्वादेव तस्य तैजसत्वम्। विजातीयतेजःसंयोगत्वेन शक्तिविशेषवत्तेजः

◆ हेमलता ◆

शोत्पत्तेः व्याप्यत्वात् नानाश्रयध्वंसाना न द्रवत्वनाशकारणताकल्पनागौरवम्। तथा च = नैमित्तिकद्रवत्वस्य स्वाश्रय-नाशनाश्यत्वसिद्धौ च 'सुवर्णद्रवत्व स्वाश्रयनाशनाश्य अग्निसंयोगित्वे सति तद्धेतुकनाशाप्रतियोगित्वात् = अनलसंयोगनिमित्तकनाशाप्रतियोगित्वात् इति हेत्वर्थः। ततश्च पर्यवसितमनुमानमित्थ-मवबोध्यम्→सुवर्णं तैजसं अग्निसंयोगित्वे सति अग्निसंयोगजन्यनाशाप्रतियोगिद्रवत्वाधिकरणत्वात्, यन्नैवं तन्नैवं यथा घृतमिति। अत्र नैमित्तिकत्व द्रवत्वे विशेषणं बोध्यम्। तेन न जलपरमाणौ व्यभिचारः। असति विरोधिद्रव्यसम्बन्धे इति विशेषणान्न जलमध्यस्थघृते व्यभिचार इति चेत् ?

सुवर्णपार्थिवत्वाङ्गीकर्ता अथवादी प्रकृतायमतमपाकरोति - नेति। हैय्यङ्गवीनस्य = घृतस्य अपि द्रुत-द्रुततरादिप्रतीत्या तथात्वेन = अग्निसंयोगित्वे सति तद्धेतुकनाशाऽप्रतियोगिद्रवत्वाधिकरणत्वेन तथापि = उक्तहेतोः तैजसत्वसाधकत्वेनोपन्यासेऽपि व्यभिचारात्, घृते हेतो सत्त्वेऽपि साध्यस्य विरहात्। यथा सुवर्णे द्रुत-द्रुततरत्वादिप्रतीतेः तत्र नैमित्तिकद्रवत्वस्य स्वाश्रयनाशनाश्यत्वमभ्युपेयते तथैव घृतेऽपि द्रुत-द्रुततरादिप्रतीतेः तत्र द्रवत्वस्य स्वाश्रयनाशादेव नाश्यत्वम्। अत एव विजातीयानलसंयोगादपकृष्टद्रवत्वशालिघृतनाशादुत्कृष्टद्रवत्वाश्रयघृतस्यैवोत्पत्तिरिति द्रुत-द्रुततरादिप्रतीतेः नानाघृतविषयकत्वम्। प्रयोगस्त्वेवं घृतद्रवत्वं स्वाश्रयनाशजन्यनाशप्रतियोगि, अग्निसंयोगित्वे सति तद्धेतुकनाशाऽप्रतियोगित्वात्। अग्निसंयोगित्वे सति तद्धेतुकनाशप्रतियोगिद्रवत्वाधिकरणतायाः सुवर्णे इव घृते सत्त्वेऽपि न तस्य तैजसत्वमित्युक्तो हेतुर्व्यभिचारीत्यर्थः। उपसंहरति- तस्मात् नानाश्रयध्वंसोत्पत्तिकल्पनागौरवात् = नानाद्रवत्वाश्रयाणां ध्वंसस्योत्पत्तेः प्रागभावस्य च कल्पनायाः अप्रामाणिकगौरवात् सुवर्णस्य पार्थिवत्वमेव। पार्थिवत्वाविशेषेऽपि स्वर्णतदितरद्रवपार्थिवयोः = सुवर्ण-घृतयोः उत्तरोत्तरद्रवत्वसामग्रीसमवधानासमवधानाभ्यां एव तदुच्छेदानुच्छेदौ = घृतद्रवत्वोच्छेद-सुवर्णद्रवत्वानुच्छेदौ। उत्तरद्रवत्वजनकसामग्रीसन्निधानात् सुवर्णादौ पूर्वद्रवत्वनाशः। ततः उत्तरद्रवत्वोत्पादेऽवस्थितसुवर्णस्य द्रुत-द्रुततरादिप्रतीतिविषयत्वम्। ततश्च सत्यत्यन्तानलसंयोगेऽसति विरोधिद्रव्यसम्बन्धेऽनुच्छिद्यमाननैमित्तिकद्रवत्वाधिकरणत्वेऽपि सुवर्णस्य पार्थिवत्वमेव उचितमिति चेत् ?

नैयायिकाः प्राहुः अत्र ब्रूम इति। उपष्टम्भकपीतेतररूपप्रतिबन्धकसंयोगशालित्वादेव तस्य = सुवर्णस्य तैजसत्वम्। न च विजातीयरूपप्रतिबन्धकसंयोग एव स्वरूपासिद्ध इति वक्तव्यम् अत्यन्ताग्निसंयोगी पीतिमाश्रय उपष्टम्भकपीतेतररूपप्रतिबन्धकद्रव्यसंयुक्त अत्यन्ताग्निसंयोगे सत्यपि

▶ वल्लभा ◀

■■ अग्निसंयोगनाशनाश्यद्रवत्वाधिकरणताहेतु व्यभिचारी - पूर्वपक्षी ■■

न० हे०। मगर मूल पूर्वपक्षी बने हुए सुवर्णपार्थिवत्ववादी का उक्त मत के खिलाफ यह कथन है कि अग्निसंयोगानाश्यद्रवत्ववत्त्व को तेजस्त्वव्याप्य माना जा नहीं सकता, क्योंकि घृत में भी सुवर्ण की भाँति द्रुत-द्रुततर आदि प्रतीति होने से विजातीय अग्निसंयोग से घृत के द्रवत्व का नाश नहीं होता किन्तु द्रुतघृतद्रव्य का ही नाश होता है और द्रुतघृतद्रव्यनाश से द्रुततर घृत की उत्पत्ति होती है न कि अवस्थित घृत में अपकृष्ट द्रवत्व का नाश और उत्कृष्ट द्रवत्व की उत्पत्ति। घृत में अग्निसंयोग होते हुए अग्निसंयोगनाशाऽनाश्यद्रवत्वाधिकरणता होने पर भी तैजसत्व (साध्य) रहता नहीं है। अतः तैजसत्वसाधक हेतु व्यभिचारी सिद्ध होता है। इसलिए 'अग्निसंयोगित्वे सति तद्धेतुकनाशाऽप्रतियोगिद्रवत्वअधिकरणत्व' को हेतु बनाने पर भी व्यभिचार तदवस्थ ही रहेगा। इसलिए अनेक द्रवत्वाश्रय सुवर्णादि द्रव्यों के नाश और उत्पत्ति की कल्पना भी अप्रामाणिकगौरवग्रस्त होती। उचित तो यही है कि घृत और पार्थिव में पार्थिवत्व समान होने पर भी स्वर्णात्मक पृथिवीद्रव्य में उत्तरद्रवत्वसामग्री का समवधान=सन्निधान होने से उसका उच्छेद होता नहीं है और घृतात्मक पृथ्वी द्रव्य में उत्तरद्रवत्वसामग्री का असमवधान = असन्निधान होने से उसकाउच्छेद होता है। इसलिए सुवर्ण को पार्थिव मानना ही सगत है। यह मूल अथवादी का मन्तव्य है [पृ. ११२ से प्रारब्ध पूर्वपक्ष समाप्त हुआ]

●● रूपपरावृत्तिप्रतिबन्धकसंयोगाश्रयत्वेन सुवर्ण तैजस - उत्तरपक्ष ●●

उत्तरपक्षः :- अत्र ब्रूमः। सुवर्ण उक्त हेतु से भले ही तैजस सिद्ध न हो किन्तु उपष्टम्भकपीतेतररूपप्रतिबन्धकसंयोगाश्रयत्व हेतु से सुवर्ण में तैजसत्वसिद्धि निराबाध है। अनुमानप्रयोग इस तरह किया जा सकता है - सुवर्ण तैजस है, क्योंकि वह उपष्टम्भकपीतेतररूपप्रतिबन्धकसंयोग का अधिकरण है। हेतु की सिद्धि के लिए अनुमानप्रयोग इस तरह बताया जा सकता है कि अत्यन्तअग्निसंयोगी पीतिमाश्रय

सयोगत्वेन वा पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वात् पीतादौ विजातीयाग्निसयोगहेतुत्व (?।) कल्पनया लाघवात्। एतेन द्रवद्द्रव(?त्व)त्वेन पीतेतररूपविरोधित्वे द्रुतसुवर्णमध्यवर्तिपीतपटरूपपरावृत्त्यनुपपत्तिः उपष्टम्भकाख्यसयोगेन तथात्वे जलाद्यसाधारण्य, घृतादौ

◆ हेमलता ◆

पूर्वरूपविजातीयरूपानधिकरणत्वात्, जलमध्यस्थपीतपटवदित्यनुमानेनैव तत्सिद्धेः। ततः तादृशसयागाश्रयद्रव्य तैजस जलपृथिवीभ्यामन्यत्वे सति रूपवत्त्वात्, वह्निवदित्यनुमानादेव सुवर्णस्य तेजस्त्वसिद्धिर्निराकुला। न चासिद्धिः प्रत्यक्षद्रव्यत्वाधिकरणत्वेन तस्य रूपित्वात्। न च तज्जल सासिद्धिकद्रवत्वविरहात् नैमित्तिकद्रवत्वाधारत्वात्, स्नेहशून्यत्वाद्वा लाक्षावत्। स्नेहे सति स्नेह-द्रवत्वाधीनसङ्ग्रहप्रसङ्गात्। नापि पार्थिव, अत्यन्ताग्नि सयोगेऽप्यनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणत्वात् जलपरमाणुवत्। असति विरोधिद्रवद्रव्यसम्बन्धे इति विशेषण, तेन न क्वथ्यमानजलमध्यस्थघृतेन व्यभिचारः। न चाप्रयोजकत्व अत्यन्तानलसयोगेन लाक्षादि-घृतादि-पृथिवीद्रवत्वोच्छेदे पृथिवीद्रवत्वत्वमेव प्रयोजकम्, असति बाधकेऽनुगतस्य प्रयोजकत्वे सम्भवति त्यागायोगात्। तदेवाह योगनयेन विजातीयतेज सयोगत्वेन मीमासकमतानुरोधेन शक्तिविशेषवत्तेज सयोगत्वेन वा पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वात् = विजातीयरूपोत्पादविरोधित्वात्। पीतिमाश्रयस्यात्यन्ताग्निसयोगेऽपि पूर्वरूपपरावृत्त्यदर्शनात् उक्तरूपेण प्रतिबन्धकता आवश्यक्येव। न च पीतादिक प्रति विजातीयानलसयोगादेरेव हेतुता तद्विजातीयानलसयोगस्य च नीलादिक प्रति, सुवर्णे तु पीतेतररूपजनकविजातीयाग्निसयोगविरहादेव न पीतेतररूपोत्पत्तिरिति वाच्यम्, विजातीयतेजःसयोगत्वेन पीतेतररूपप्रतिबन्धकताया एकस्या एव कल्पने पीतादो विजातीयाग्निसयोगहेतुत्वाऽकल्पनया लाघवात् = कार्यकारणभावलाघवात्। तत एव सुवर्णरूपपरावृत्त्यभावोपपत्तेः। यदि च पीतरूप प्रति विजातीयानलसयोगस्य, नील प्रति विजातीयानलसयोगस्य, रक्त प्रति तदन्यविजातीयानलसयोगस्य, शुक्लादिक प्रति च तद्भिन्नविजातीयानलसयोगस्य हेतुतेति स्वीकारे कार्यकारणभावबाहुल्यम्। विजातीयरूपपरावृत्तिप्रतिबन्धककल्पने च न नानाकार्यकारणभावकल्पनागौरवम्। अतः सुवर्णस्य तेजस्त्वमनपायम्।

एतेनेति विजातीयतेजःसयोगत्वेन पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वनियमेन, प्रत्याख्यातमित्यनेनास्यान्वयः। द्रवद्द्रवत्वेनेति। अत्र द्रवद्द्रवत्वत्वेनेति पाठः समीचीन' द्रवद् द्रवत्व यस्मिन् द्रव्ये तत् द्रवद्द्रवत्व, तद्भावस्तत्त्व तेन द्रवद्द्रवत्वत्वेनेत्यर्थः। यद्वा द्रवद्द्रव्यत्वेनेति पाठो युक्तः। पीतेतररूपविरोधित्वे = पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वे स्वीक्रियमाणे तु द्रुतस्वर्णमध्यवर्तिपीतपटरूपपरावृत्त्यनुपपत्ति = अतितप्तद्रुतसुवर्णमध्यस्थितपीतपटरूपपरावृत्तेः प्रसिद्धाया असङ्गतिः, द्रवद्द्रवत्वस्य सुवर्णस्य पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकस्य तत्र सत्त्वात्। न च उपष्टम्भकाख्यसयोगेन पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वा- न्नेयमनुपपत्तिः, द्रुतसुवर्णस्य पीतपटेन सह सयुक्तत्वेऽपि उपष्टम्भकसयोगेन द्रवद्द्रवत्वस्य सुवर्णस्य पीतपटे विरहादिति वाच्यम्, उपष्टम्भकाख्यसयोगेन द्रवद्द्रवत्वस्य तथात्वे = पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वे जलाद्यसाधारण्यम् = जलादावव्यापकत्वम्,

► वल्लभा ◄

उपष्टम्भकपीतेतररूपप्रतिबन्धकसयोग्याश्रय हे, क्योकि वह अत्यन्त अग्निसयोग होते हुए भी पूर्वरूपविजातीयरूप का अनधिकरण है। जैसे जलमध्यस्थ पीतपट मे अग्निसयोग होने पर भी रूपपरावृत्ति होती नही हे, क्योकि वह रूपपरावृत्तिप्रतिबन्धक द्रव जलद्रव्य का सयोगी ह। ठीक वैसे ही अतितप्त पीतरूप की परावृत्ति होती नही हे। इसलिए वह रूपपरावृत्तिप्रतिबन्धक द्रवद्रव्य का सयोगी होना चाहिए। उस सयोग का आश्रय द्रव्य विजातीय तेजोद्रव्य ही हो सकता हे, क्योकि पाकज पीतेतररूप के प्रति विजातीय-तेज सयोगत्वेन या शक्तिविशेषवत्तेज सयोगत्वेन प्रतिबन्धकता होती हे। प्रतिबन्धकतावच्छेदक धर्म दोनो मे से कोई भी हो किन्तु तादृश सयोग के आश्रय मे तेजस्त्व अबाधित ही है। यहाँ यह कहना कि—›'पीत रूप का कारण' जो विजातीय तेज सयोग होता है उससे विजातीय अग्निसयोग पीतेतररूप का जनक होता हे। सुवर्णोपष्टम्भक पीत भाग मे पीतेतररूपजनक विजातीय अग्निसयोग ही नही है। इसलिए उसमे पीतेतर रूप की उत्पत्ति को अवकाश ही नही है। इसलिए तदर्थ किसी प्रतिबन्धक की कल्पना अनावश्यक हे। तब सुवर्ण मे तेजस्त्वसिद्धि केसे होगी?''←—इसलिए असगत है कि पीत रूप के प्रति विजातीय तेज सयोग मे कारणता, नील रूप के प्रति अन्य विजातीय अग्निसयोग मे कारणता इत्यादि कल्पना करने मे गोरव है। इसकी अपेक्षा पीतेतररूपप्रतिबन्धक सयोगविशेष की कल्पना करने मे लाघव हे, क्योकि तब पीतादि के प्रति विजातीय अग्निसयोग मे हेतुता की कल्पना अनावश्यक हे। इसलिए प्रतिबन्धकताकल्पना ही युक्तिसगत हे। जब यह सिद्ध हो गया तब तो प्रतिबन्धक सयोग के आश्रय द्रव्य मे तेजस्त्व अबाधित ही है। इसलिए सुवर्ण तैजस हे - यह सिद्ध होता हे। यह नेयायिक विद्वानो का अभिप्राय हे।

एतेन द्र०। यहाँ कुछ विद्वानो का यह कथन हे कि —›''यदि द्रुत द्रव्य को द्रवद्द्रवत्वत्वेन पीतेतररूपप्रतिबन्धकता मान्य की जाय तब द्रुत सुवर्ण के मध्य मे रहे हुए पीत पट के रूप की परावृत्ति हो न सकेगी, क्योकि पीत पट के साथ द्रुत द्रव्य सुवर्ण का सयोग हे ही। मगर वस्तुस्थिति यह है कि द्रुतसुवर्णमध्यस्थ पीत पट के रूप का परिवर्तन होता ही है।

यहाँ यह कहना कि 'द्रुतद्रव्य उपष्टम्भकनामक सयोग से पीतेतररूपप्रतिबन्धक है। पीत पट के साथ द्रुतसुवर्ण का उपष्टम्भक

जलादेरनुपष्टम्भकत्वात्, रजतादौ शुक्लादिरूपानुपपत्तिश्च। तैजसस्वर्णत्वादिनैव पृथग्विरोधित्वे तु पार्थिवस्वर्णत्वादिनैव तथात्वमुचितम् इति प्रत्याख्यातम्।

यदि तु विजातीयःसयोगत्वेन शक्तिविशेषवत्सयोगत्वेनैव वा तथात्वमस्तु उपष्टम्भकगगनसयोगस्यैव पीतेतररूपप्रतिबन्धक-

◆ हेमलता ◆

घृतादा जलादेरनुपष्टम्भकत्वात् उपष्टम्भकत्वाग्व्यसयोगेन जलादे' गोघृतादौ विरहात् गोघृतादौ पाकजपीतेतररूपापत्तिः दुर्वार। न हि प्रतिबन्धकविरहदशाया क्लृप्तकारणकलापात् कार्यं न प्रभवति। न तत्र रूपपरावृत्तिर्भवतीति उपष्टम्भकाग्व्यसयोगेन द्रवद्रव्यस्य द्रव्यस्य पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वे जलादौ प्रतिबन्धकत्वानुपपत्तिरिति भाव'। रजतादौ विजातीयानलसयोगेन शुक्लादिरूपानुपपत्तिश्च तत्रोपष्टम्भकसयोगेन द्रुतद्रव्यस्य रूपपरावृत्तिप्रतिबन्धकस्य सत्त्वात्। प्रबलाग्निसयोगान्उज्ज्वल- रूपोत्कर्षस्तु तत्र भवत्येवेति न द्रुतद्रव्यस्य पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वम्। अतो न सुवर्णस्य तैजसत्व सम्भवतीत्यभिप्राय'। न च तैजससुवर्णत्वेन तत्त्वमिति वाच्यम् तैजसस्वर्णत्वादिनैव पृथग्विरोधित्वे = स्वातन्त्र्येण प्रतिबन्धकत्वे तु पार्थिवस्वर्णत्वादिनैव तथात्व = स्वतन्त्रप्रतिबन्धकत्वकल्पन उचितम्, पीतरूपादे' तत्र साक्षात्सम्बन्धेनैव सत्त्वे लाघवात्, उपष्टम्भकद्रव्यान्तरकल्पनाबाधेति पार्थिवसुवर्णवादितात्पर्यम्।

इदञ्च विजातीयतेजःसयोगत्वेन शक्तिविशेषवत्तेज'सयोगत्वेन वा पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वाभ्युपगमेनैव प्रत्याख्यात भवति। द्रुतसुवर्णमध्यव-र्तिपीतपटे विजातीयस्य शक्तिविशेषवतो वा तेज'सयोगस्य विरहादेव रूपपरावृत्त्युपपत्ति । उपष्टम्भकसयोगेन द्रुतद्रव्यशून्येऽपि तप्तजलमध्यस्थितघृतादौ विजातीयस्य शक्तिविशेषवतो वा तेजःसयोगस्य सत्त्वान्न रूपपरावृत्त्यनुपपत्तिप्रसङ्ग'। रजतादौ विजातीयस्य शक्तिविशेषवतो वा विजातीयसयोगस्य विरहात् न शुक्लादिरूपानुपपत्ति । तैजसस्वर्णत्वादिना तु तथात्वानभ्युपगमादेव न पार्थिवस्वर्णत्वादिना तथात्वकल्पनाया न्याय्यत्वावकाश'। तत' सुवर्णस्य तेजस्त्वमनपायमेवेति नैयायिकाभिप्रायः।

यदि तु विजातीयतेजःसयोगत्वेन शक्तिविशेषवत्तेज'सयोगत्वेन वा पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वे गौरवात् विजातीयसयोगत्वेन शक्तिविशेषवत्सय-योगत्वेन एव वा तथात्व = पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकत्व अस्तु लाघवात्। अन्ततो गत्वा उपष्टम्भकगगनसयोगस्य = उपष्टम्भकपीतभागगगनयो सयोगस्य

► वल्लभा ◄

सयोग नहीं होने की वजह उसके रूप के परिवर्तन मे द्रुत सुवर्ण प्रतिबन्धक नहीं हो सकता'=भी अनुचित है, क्योंकि तब तप्तजलमध्यस्थपीतघृतरूपापरावृत्ति सगत हो नहीं सकेगी, क्योंकि द्रुतजल का घृत के साथ उपष्टम्भक सयोग होता नहीं है। जलादि घृतादि का उपष्टम्भक नहीं होने से जल उपष्टम्भकसयोग से घृत मे कैसे रह सकेगा? तीसरा दोष यह है कि रजतादि मे उपष्टम्भक सयोग से द्रुत द्रव्य रहता है। मगर अति अग्निसयोग से रूपपरावृत्ति तो रजत आदि मे प्रसिद्ध ही है। अत उपष्टम्भक सयोग से द्रुत द्रव्य को पीतेतररूपप्रतिबन्धक कहा जा नहीं सकता। यदि तैजससुवर्णत्वेन ही पीतेतररूप के प्रति पृथक् प्रतिबन्धकता कही जाय तो इसकी अपेक्षा पार्थिवसुवर्णत्वेन ही पाकजपीतेतररूपप्रतिबन्धकता की कल्पना करनी उचित है, क्योंकि तब उपष्टम्भक पीत भाग की सुवर्ण मे कल्पना करना, सुवर्ण मे प्रतीयमान पीतरूप के परम्परासम्बन्ध की कल्पना करना इत्यादि गौरव अनावश्यक है। इसलिए सुवर्ण को पार्थिव कहना ही सुसगत है।'←

विजातीयतेजःसयोगत्वेन प्रतिबन्धकता - नैयायिक

मगर उपर्युक्त मत का खण्डन तो हम नैयायिक जो पहले कह गए कि → 'विजातीयतेज सयोगत्वेन या शक्तिविशेषवत्तेज सयोगत्वेन पीतेतररूपप्रतिबन्धकता है'←उसीसे हो जाता है। देखिये द्रुतसुवर्णमध्यस्थ पीतपट मे विजातीय या शक्तिविशेषवाला तेज सयोग नहीं होता है। अत उसके रूप की परावृत्ति होती सकती है। तप्तजलमध्यस्थ घृत मे विजातीय तेज सयोग होने की वजह घृतरूपपरावृत्ति होती नहीं है। रजतादि मे विवक्षित सयोग नहीं है। अत उसमे शुक्ल रूप की असगति नहीं है।

सुवर्ण पार्थिव है - स्याद्वादी

यदि०। यदि नैयायिक की ओर से ऐसा सोचा जाय कि→प्रतिबन्धकतावच्छेदकधर्मशरीर मे तेज निवेश गौरवापादक होने से विजातीयसयोगत्वेन या शक्तिविशेषवत्सयोगत्वेन पीतेतररूपप्रतिबन्धकता उचित है। अन्ततो गत्वा प्रतिबन्धकतावच्छेदक धर्म का आश्रयीभूत सयोग दूसरा कुछ न हो कर उपष्टम्भक और गगन का सयोग हो सकता है। एव लाघव से नैमित्तिकद्रवत्वत्वावच्छिन्न सकल नैमित्तिकद्रवत्व के प्रति पृथ्वीत्वेन रूपेण ही कारणता है, क्योंकि विजातीयद्रवत्वावच्छिन्न के प्रति पृथ्वीत्वेन कारणता और अन्य विजातीयद्रवत्व के प्रति तेजस्त्वेन

त्वादिति विभाव्यते विभाव्यते च नैमित्तिकद्रवत्वत्वावच्छिन्नं प्रति पृथिवीत्वेनैव हेतुता, विजातीयद्रवत्वत्वावच्छिन्नं प्रति पृथिवीत्वेन विजातीयद्रवत्वत्वावच्छिन्नं प्रति च तेजस्त्वेन हेतुताद्वयकल्पने गौरवात्, तदाऽस्तु पार्थिवमेव स्वर्णमिति दिक्। इति सुवर्णतैजसत्ववाद ॥४॥

◆ हेमलता ◆

एव पीतेतररूपप्रतिबन्धकत्वात् = पाकजपीतेतररूपविरोधित्वात्, न तु द्रवद्रव्यसयोगस्येति विभाव्यते, विभाव्यते च नैमित्तिकद्रवत्वत्वावच्छिन्न = यावन्नैमित्तिकद्रवत्व प्रति पृथिवीत्वेनैव हेतुता। कुतः? इत्याह - विजातीयद्रवत्वत्वावच्छिन्न = पार्थिवद्रवत्वमात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्न प्रति पृथिवीत्वेन विजातीयद्रवत्वत्वावच्छिन्न = तेजोमात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्न प्रति च तेजस्त्वेन इति हेतुताद्वयकल्पने गौरवात् = कार्यकारणभावबाहुल्यात्, तदास्तु पार्थिवमेव सुवर्ण न तु तैजसम्, अन्यथा तत्र नैमित्तिकद्रवत्वानुपपत्तेः। युक्तञ्चैतत् उपष्टम्भककल्पनानावश्यकत्वात्, साक्षात्सम्बन्धेनैव द्रुते सुवर्णे पीतरूपकल्पनादित्यादिसूचनार्थ दिगित्युक्तम्।

यत्तु मणिकृता प्रत्यक्षकारणवादे 'सुवर्णद्रवत्व ह्याश्रयविनाशाद्विनश्यति न त्वग्निसयोगात्। यदि चाग्निसयोगाद्विनश्येत्, तदा घृतवन्न द्रवत्वान्तरमुत्पद्येत द्रवत्वोच्छेदकाग्निसयोगस्य द्रवत्वान्तरप्रतिबन्धकत्वात्। तथा चाग्निसयोगित्वे सति तद्धेतुकनाशाऽप्रतियोगिकद्रवत्वाधिकरणत्वादिति हेत्वर्थः [त चि प्र ख प्र का. पृ ७५९] इत्युक्त तत्तु द्रवत्वनाशानन्तर क्वचिद् द्रवत्वान्तरोत्पत्तिः क्वचिन्नेति आश्रयवैजात्यकृतमेव वैलक्षण्यमुचित न तूच्छेदकृतम्। तथा च सुवर्णद्रवत्वमप्यग्निसयोगनाश्यमेव। द्रुत-द्रुततरादिप्रतीतिश्चैकसुवर्णविषयैव द्रवत्वोच्छेदकाग्निसयोगस्य द्रवत्वान्तरोत्पत्तिप्रतिबन्धकत्व घृतादावेव कल्प्यते। वस्तुतः स्वर्णादावुत्तरोत्तरद्रवत्वजनकविजातीयतेजःसयोगानुवृत्तेः तत्रापकृष्टद्रवत्वनाशे उत्कृष्टद्रवत्वोत्पत्ति' घृतादौ तु तदननुवृत्तेरेव न द्रवत्वान्तरोत्पत्तिरिति फलबलेन कल्प्यते। पार्थिव एव तृणाद्यारम्भदशापन्नपरमाणौ न तेजःसयोगाद् द्रवत्व किन्तु घृताद्यारम्भदशापन्नपरमाणावित्यत्र त्वयापि फलबलेनैव स्वभावभेदकल्पनादिति स्वरूपासिद्धो हेतुरित्यादिना रुचिदत्तमिश्र-जयदेवमिश्रप्रभृतिभिरेव दूषितम्।

यदपि गङ्गेशेन 'अथवा घृते द्रवत्वोच्छेदसमये समानाधिकरणद्रवत्वसामग्रीसमवधान नास्ति सुवर्णे त्वस्ति। एवञ्च समानाधिकरणद्रवत्वसामग्रीसमवहिताग्निसयोगजन्यध्वसप्रतियोग्यवृत्तिद्रवत्वान्तरसामान्यवद्द्रवत्व हेत्वर्थः' [त चि प्र ख प्र का पृ ७५९] इत्युक्त तन्न चारुतामञ्चति, अतैजसत्वेऽपि द्रवत्वसामग्रीसहितद्रवत्ववत्त्वे बाधकाभाव इत्यप्रयोजको हेतुः। न च द्रवत्वसामग्र्यसमवहिताग्निसयोगजन्यध्वसप्रतियोग्यवृत्तित्वोपलक्षितद्रवत्वान्तरजात्यवच्छिन्न प्रति तेजस्त्वेन समवायिकारणत्वान्नाऽप्रयोजकत्वमिति वाच्यम्, नैमित्तिकद्रवत्वे इव तदवान्तरजात्यवच्छिन्नेऽपि समवायिकारणविशेषाभावात् तेजःसयोगविशेषस्यैव तद्विशेषे हेतुत्वात्।

किञ्च घृते द्रुत-द्रुततरत्वादिप्रतीतिः नानाघृतविषया सुवर्णे चैकविषयेत्यत्र कि विनिगमक? इति द्रवत्वविशेषः सुवर्णे न सिद्ध'। तेन तैजसत्वसाधनेऽसिद्धमसिद्धेन साधयतो महानैयायिकत्वप्रसङ्गः।

आलोककृतस्तु 'यदा तु न पिठरेषु पाकाद् द्रवत्वनाशः किन्तु आश्रयनाशादेव तदा स्वरूपाऽसिद्धोऽय हेतु'' इत्याहु ।

यत्तु तत्त्वचिन्तामणौ 'यद्वा घृतपरमावावग्निसयोगदशाया द्रवत्वनाशे सति द्रवत्वान्तर नोत्पद्यते तदारब्धभस्मनि द्रवत्वाभावात्। एव सुवर्णपरमाणुद्रवत्व अग्निसयोगाच्च यदि विनश्येत् तदा तदारब्धसुवर्णमद्रव स्यात्। तथा सुवर्णारम्भकाः परमाणवो न पार्थिवाः अत्यन्ताग्निसयोगेनानुच्छिद्यमान-द्रवत्वाधिकरणत्वात् जलपरमाणुवत्। तैजसा वा तत एव। यन्नैव तन्नैव यथा घृतपरमाणुरिति व्यतिरेकी। एवमपार्थिवारब्ध तैजसारब्ध वा सुवर्णमपार्थिव तैजस वा अत्यन्तानलसयोगेऽपि अनुच्छिद्यमानद्रवत्वाधिकरणपरमाण्वारब्धत्वादित्यन्वयिव्यतिरेकी चेति [त चि प्र ख प्र का पृ ७६०] इत्युक्त, तदसदत्, घृतादिद्रवत्वे इव सुवर्णद्रवत्वेऽपि भस्मप्राक्काले द्रवत्वोच्छेदस्य द्रवत्व-सामग्र्यसमवहितत्वेन हेतोरसिद्धत्वात्। एवमत्यन्ताग्निसयोगेऽपि भस्मानारम्भकत्वादित्यपि घटादौ व्यभिचारेण परमाणुत्वविशेषणे चासिद्ध्या परार्कतव्यम्। अपि च 'पीत सुवर्णं द्रुतमि'ति साक्षात्सम्बन्धेन पीतत्व-द्रवत्वप्रतीतेर्बाधक विना भ्रमत्वायोगात् द्रुत पार्थिवमेव सुवर्णम्। अपि च सुवर्णस्य तेजस्त्वस्वीकारे स्वर्णदानत्वादिना

► वल्लभा ◄

कारणता की कल्पना करने मे कार्यकारणभावबाहुल्य हे - ऐसा भी सोचा जाय तब तो सुवर्ण पार्थिव द्रव्य ही होगा, क्योंकि सुवर्ण मे नैमित्तिकद्रवत्व तो उत्पन्न होता ही हे। अत सुवर्णसमवेतद्रवत्वकारणतावच्छेदक पृथ्वीत्व धर्म की सिद्धि सुवर्ण मे अनिवार्य हे। यह जो कहा गया है वह तो एक दिग्दर्शनमात्र हे। इसके आगे भी बहुत कुछ विचार हो सकता है - इस बात की इत्तिला देने के लिए महोपाध्यायश्री ने मूल मे दिक् शब्द का निवेश किया है। स्याद्वादी की ओर से सुवर्ण मे पृथ्वीत्व की सिद्धि कर के चतुर्थ सुवर्ण तेजस्त्ववाद को श्रीमद्जी ने पूर्ण किया हे।

◆ हेमलता ◆

पुण्यविशेषजनकतायाः स्वर्णत्वद्वयमवच्छेदकं वाच्यम्। न च तत्रोपष्टम्भकवृत्तिस्वर्णत्वमेव तथा तदाश्रयन्यूनाधिकत्वाभ्यामेव पुण्यन्यूनताधिकत्वोपपत्तेरिति वाच्यम्, तथा सति पृथिवीत्वव्याप्यमेव स्वर्णत्वं स्वर्णव्यवहारविषयतावच्छेदकं लाघवादिति तैजसस्वर्णकल्पनानौचित्यात्।

यच्च द्रवत्वाधिकरणं न तत् तेजः पीतत्वात्। न चासिद्धिः, 'पीतं द्रुतमि'ति प्रतीतेः। अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यमिति श्रुतिप्रवादस्तु न सुवर्णस्य तैजसत्वसाधकः किन्त्वग्न्युत्तीर्णानामिष्टकादीनामपि पार्थिवद्रव्याणां पूर्वभावप्रज्ञापनया पार्थिवत्वेऽपि प्रत्युत्पन्नभावप्रज्ञापनया तेजःपरिणामवत्त्वमिति सिद्धान्तप्रवादायाततया तस्य तेजःपरिणामशालितासाधकं एवेति स्मर्तव्यम्।

एतेन अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यमित्याद्यागमान्यथानुपपत्तेरप्यनुकूलतर्कत्वादिति महादेवभट्टवचनं निरस्तम्।

एकदेशिनस्तु द्रवत्वाधिकरणं न तेजः पीतत्वात्। न चासिद्धिः, पीतं द्रुतमिति प्रतीतेः। पीतत्वे पार्थिवत्वापत्त्या बाधकेन पीतप्रतीतिर्भ्रम इति चेत्? न, शुक्लत्वेऽप्यपार्थिवत्ववत् पीतत्वेऽप्यपार्थिवत्वे बाधकाभावात्। यथा नैमित्तिकद्रवत्वे पृथिवीत्वं न तन्त्रम्, अतिप्रसङ्गात् तथा पीतत्वेऽपि गन्धनियतत्वमपि नैमित्तिकद्रवत्ववदेव। पृथिवी-जलान्यत्वे सति रूपित्वेन तेज इति चेत्? न, अप्रयोजकत्वात्, अन्यथा जलतेजोऽन्यत्वे सति स्पर्शवत्त्वेन वायोरपि पृथिवीत्वापत्तेः। अथ रूप-रस-गन्धानामभावान्न तथात्वं तेषामनुद्भवे च पृथिवी उद्भूतरूप-रसगन्धाद्यन्यतमवती-त्यादिबहुविधव्याप्तिविरोध इति चेत्? न, तेजोऽद्रव्यमेव प्रत्यक्षं तेजः प्रत्यक्षरूप-स्पर्शाद्यन्यतमवदेव स्वपरप्रकाशमेवेत्यादिव्याप्तिविरोधस्य तेजस्यपि सत्त्वात्। अतो नैमित्तिकद्रवत्वाधिकरणं पीतं सुवर्णं द्रव्यान्तरमेवेति वदन्ति, तद्गत धर्मिकल्पनातो धर्मकल्पना लघीयसीतिन्यायेन क्लृप्ते धर्मिण्येव सुवर्णत्वधर्मकल्पनाया न्याय्यत्वात्। न चैवमिच्छादिकमपि नात्मादिकं साधर्म्यादिति वाच्यम् इच्छादेः क्लृप्तद्रव्यवृत्तित्वस्य प्रमाणबाधितत्वादिति प्रकाशकृत।

नवीनास्तु सुवर्णं पार्थिवमेव 'पीतं सुवर्णं द्रुतमि'ति प्रतीतेः साक्षात्सम्बन्धेन भ्रमत्वायोगात्। 'द्रुतं द्रुततरमि'ति प्रतीतेर्द्रवत्वस्याप्यत्यन्तमुच्छेदात् पृथिवीत्वस्य पीतरूपसमवायिकारणतावच्छेदकत्वात्, रूपनाशे तादात्म्यसम्बन्धेन सुवर्णस्य विरोधित्वाच्च न पीतनाश इति वदन्ति।

तन्न, आश्रयनाशाऽजन्यरूपनाशं प्रति स्वानुयोगिसमवेतत्वसम्बन्धेन तेजःसंयोगस्य हेतुतया सुवर्णसमवेतरूपे तादृशसम्बन्धेन तादृशरूपनाशं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन तेजःसमवेतरूपस्य दैशिकविशेषणतासम्बन्धेन तादृशरूपनाशं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन तेजःसमवेतरूपस्य दैशिकविशेषणतासम्बन्धेन तादृशरूपनाशं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन सुवर्णस्य समवायसम्बन्धेन सुवर्णत्व-सुवर्णगतकत्वादीनां वा प्रतिबन्धकत्वमित्यत्र विनिगमनाविरहेण बहूनां प्रतिबन्धकत्वकल्पनापत्तेः। 'पीतं सुवर्णं द्रुतमि'त्यादिप्रतीतेः रक्तो वह्निरितिवत् साक्षात्सम्बन्धेनावगाहित्वे मानाभावेन तत्प्रतीतेः भ्रमत्वात्, क्षालितशुभ्रवस्त्रस्य मालिन्यनिवृत्त्या इदानीं शुभ्रतरमिति,प्रतीतिवत् तेजस्संयोगातिशयेन सुवर्णेऽपीदानीं द्रुततरमिति प्रतीत्युपपत्तेः द्रवत्वनाशे मानाभावात्, पूर्वोक्तश्रुतिविरोधापत्तेश्च [मु. प्र. पृ. ३५०] इति मुक्तावलीप्रभाकारः नृसिंहशास्त्री।

तदसत् सुवर्णे विजातीयतेजःसंयोगानुवृत्त्या द्रवत्वान्तरोत्पादेन स्वसामानाधिकरण्यावच्छिन्नस्वोत्तरत्वसम्बन्धेन द्रवत्ववद्द्रवत्वादिनैव द्रुततरत्वादिप्र-तीत्युपपत्तेस्तत्र द्रवत्वान्तरोत्पत्तौ मानाभावात्। द्रवत्ववद्द्रवत्वादिकआर्यसमाजसिद्धमिति न तत्र नियामकापेक्षा। आश्रयनाशाऽजन्यरूपनाशं प्रति च वज्र-सुवर्णादिसाधारणवजात्येन रूपेणैव प्रतिबन्धकतेति न तत्र विनिगमनाविरहवैयग्र्यम्। श्रुतेस्तु पार्थिवसुवर्णे तेजोभागोपष्टम्भकतयाप्युपपत्तेः।

तदुक्तं सामान्यलक्षणाकाशिकानदिकृताऽपि 'नीलपीतादिरूपस्य तेजसि विरहात् सुवर्णमपि पृथिव्येवेति नवीनसिद्धान्तः, तेजस्त्वप्रवादस्य तेजोभागोपष्टम्भकतयाऽप्युपपत्तेरिति [सा. ल. का. पृ. १२२] इति।

पञ्चीकरणप्रक्रियास्वीकारे तु पार्थिवसुवर्णेऽपि तेजोऽंशस्याबाधेन श्रुतेरप्युपग्रहः सम्भवति।

मृत्तिकादिवत् पृथिव्युत्पन्नत्वेन छेदेऽपि सदृशाङ्कुरोद्भेदेन च पृथिवीकायविशेषरूपत्वं स्वर्णस्येति त्वस्मत्सिद्धान्तः कनकादिधातुश्रेण्याः पृथिवीकायमध्ये परिगणनादित्यादि व्यक्तं प्रमेयमालायामिति।

किञ्च सुवर्णस्य पीतिमा न परोपधानात्, अनुपहितस्य स्वाभाविकरूपान्तरशालिनः सुवर्णस्य कदाचिदपि अनुपलब्धेः।न चैवमत्यन्तानलसंयोगेन तद्रूपपरावृत्तिप्रसङ्ग इति वाच्यम् वज्रवत् स्वर्णस्यापि रूपाऽपरावृत्तावपि पृथिवीत्वप्रतिक्षेपाऽयोगात्, तस्य तैजसत्वे तु कदाचिद् भास्वरशुक्लरूपोपलम्भप्रसङ्गादिति व्यक्तमेव मत्कृतजयलतायामिति शम्।

तेजस्त्वं तु सुवर्णस्य गीयते न्यायदर्शने।
परं तस्य पृथिवीत्वं स्याद्वादे हि व्यवस्थितम् ॥१॥

इति मुनियशोविजयविरचितायां हेमलताभिधानायां वादमालाटीकायां चतुर्थो वादः।



★ पञ्चमः तमोवादः ★

अन्धकारो भाव इति तौतातिताः, नेति नैयायिकादयः। तत्र परेषामयमाशयः, तमो द्रव्य रूपवत्त्वात्, घटवत्। न च हेत्वसिद्धिः, 'तमो नीलमि'ति प्रतीतेः सार्वजनीनत्वात्। न चासौ भ्रमः बाधकाभावात्। न चोद्भूतरूपवत्त्वमुद्भूतस्पर्शव्याप्य

◆ हेमलता ◆

सुरजमण्डन नत्वाऽथ सुरतविभूषणम्।
दीक्षादिने पुनःप्राप्ते तमोवाद तनोम्यहम् ॥१॥

अत्र 'तमो भावो न वा?' इति विप्रतिपत्तिः। अन्धकारो = अन्धकारपदवाच्यः भाव एव इति तौतातिता = भट्टानुगामिन', बाल्यकाले तुताततिपदेनाभिधीयमानस्य मीमासकधुर्यस्य कुमारिलभट्टस्यानुयायिनः तौताततितपदेनोच्यन्ते। अन्धकारपदवाच्यो भावो नेति नयायिकादय । कश्चित्तु 'भावत्व तमोवृत्ति न वा?' इति विप्रतिपत्तिः। विधिकोटिः अवच्छेदकसामानाधिकरण्येनेति न बाध इत्याचष्टे।

अन्ये तु 'अभावत्व तमोव्यावृत्त न वा?' इति विप्रतिपत्तिरिति वदन्ति।

'द्रव्य तमो न वा?' इति विप्रतिपत्तिः। विधिकोटिः उद्देश्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन निषेधकोटिश्चावच्छेकावच्छेदन, तेन न बाधःसिद्धसाधन वेत्येके।

तत्र विप्रतिपत्तौ परेषा अन्धकारभाववादिना तौताततिताना अयमाशयः→तम तमःपदवाच्य द्रव्य रूपवत्त्वात्, घटवत्। यद्रूपवत्तत् द्रव्य यथा घटः यन्न द्रव्य तन्न रूपवत् यथा गुणः इत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्या रूपवत्त्व-द्रव्यत्वयोः व्याप्य-व्यापकभावग्रहणेन रूपवत्त्वात्तमसो द्रव्यत्वसिद्धि'। न च तमसि रूपवत्ताया विरहेण हेत्वसिद्धि = हेतुः स्वरूपासिद्ध इति वाच्यम् 'तमो नीलमि'ति प्रतीते सार्वजनीनत्वात्। इदञ्चोपलक्षण 'तमश्चलती'त्यादिप्रतीतेः। तदुक्त 'तमः खलु चल नील परापरविभागवत्। प्रसिद्धद्रव्यवैधर्म्यात् नवभ्यो भेत्तुमर्हति॥ [ ] इति। न च असो = 'तमो नीलमि'त्यादिप्रतीति भ्रम तदभाववति तत्प्रकारकत्वावगाहित्वात् 'नील नभ'' इत्यादिप्रतीतिवदिति वाच्यम्, बाधकाभावात्। 'इद रजतमि'ति प्रतीत्यनन्तर 'नेद रजत' इति बाधनिश्चयादेव पूर्वतनप्रतीतेर्भ्रमत्व कल्प्यते न तूत्तरकाले बाधनिश्चयाऽभावे, अन्यथा घटादिविषयकप्रतीतीनामपि भ्रमत्वापातेन शून्यवादप्रवेशप्रसङ्गात्। प्रकृते च 'तमो 'नीलमि'तिप्रतीतेरुत्तरकाले 'तमो न नीलमि'ति बाधनिश्चयाभावान्नैत-त्प्रतीतेर्भ्रमत्वकल्पन न्याय्यमिति मीमासकाभिसन्धिः।

परकीयबाधाशङ्कामपहस्तयितुमुपदर्शयति - न चेति। वाच्यमित्यनेनास्यान्वयः। उद्भूतरूपवत्त्व उद्भूतस्पर्शव्याप्यमिति। अयमत्र नैयायिकायाशय'

▶ वल्लभा ◀

◆◆ अन्धकारवाद ◆◆

अब अन्धकारवाद का प्रारम्भ होता है। तोताति‍त = कुमारिलभट्टअनुयायी मीमासको का यह कथन है कि अन्धकार भावपदार्थ है। मगर इसके खिलाफ नैयायिको की यह मान्यता है कि अन्धकार भावपदार्थ नही है। इस प्रकार मीमासक और नैयायिक के बीच विप्रतिपत्ति = विवाद है।

▶ रूपवत्त्वहेतु से भावात्मक अन्धकार - मीमासक ◀

तत्र०। अन्धकारविषयक विवाद उपस्थित होने पर अन्धकार को भावात्मक माननेवाले का यह कथन है कि - अन्धकार द्रव्य ही होता है, क्योकि वह रूपवान् है। जो जो रूपवान् होता है वह द्रव्यात्मक ही होता है, जैसे घट। जो द्रव्य होता नही है वह रूपवाला भी होता नही है, जैसे गुण आदि । अन्धकार मे रूपवत्त्व हेतु, जो द्रव्यत्वव्याप्य है, असिद्ध नही है, क्योकि 'तमो नील' ऐसी सब लोगो को स्वाभाविक प्रतीति होती है। 'अन्धकार नीलरूपवाला है' इस सार्वजनिक प्रतीति से अन्धकार मे रूपवत्त्व हेतु सिद्ध होता है, जिसके बल से अन्धकार मे द्रव्यत्व की सिद्धि होगी, क्योकि व्याप्य कभी भी व्यापक को छोड कर रहता नही है। यहाँ व्याप्य है रूपवत्त्व और व्यापक है द्रव्यत्व। 'अन्धकार नीलरूपवाला है' इस प्रतीति को भ्रमात्मक कहना तो नामुनासिब होगा, क्योकि 'तमो न नील' इत्यादिआकारक अन्यविध प्रतीति से उसका बाध होता नही है। बिना बाध के स्वारसिक सार्वलौकिक प्रत्यक्ष को भ्रम कहना- यह दुःसाहस नही तो क्या है?

▼▼ उद्भूतरूपव्यापक उद्भूतस्पर्श की अन्धकार मे आपत्ति ▼▼

नैयायिकः- न चो०। उस्ताद! आप 'तमो नील' इस प्रतीति को भ्रम इसलिए मानते नही है कि आपको बाधक का भान नही है। मगर बाध क्या है? यह हम बतायेगे। देखिये, उद्भूत रूप जैसे द्रव्यत्व का व्याप्य है ठीक वैसे ही उद्भूत स्पर्श का भी

इन्द्रनीलप्रभासहचरितनीलभागस्तु स्मर्यमाणारोपेणैव तत्प्रभाया नीलधीनिर्वाहाद् गौरवादेव न कल्प्यत इति न तत्र व्यभिचारः कुङ्कुमादिपूरितस्फटिकभाण्डे बहिरारोप्यमाणपीताश्रयेऽपि न व्यभिचारः तत्राऽपि स्मर्यमाणारोपेणैव पीतधीनिर्वाहाद् बहिष्पीतद्रव्याक-

◆ हेमलता ◆

पृथिव्यादौ उद्भूत-रूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्यत्व विनिश्चितम्। ततश्च यदि 'तमो नीलमि'तिप्रतीत्या तमस्युद्भूतरूपमङ्गीक्रियेत तर्हि तत्र तद्व्यापक उद्भूतः स्पर्शोऽपि स्यात्। न चोद्भूतस्पर्शस्पार्शनप्रत्यक्षमनुभूयते। तथा च व्यापकीभूतोद्भूतस्पर्शविरहादेव तत्रोद्भूतरूपाभाव' सिध्यति। अनुद्भूतरूपञ्च नोपगन्तुमर्हति, प्रमाणविरहात्। विशेषाभावकूटस्य सामान्याभावसाधकत्वात्तत्र रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावसिद्धि'। अत एव 'तमो नीलमि'ति प्रतीतः 'नील नभ' इतिप्रतीतिवद् भ्रमत्वमेवेति सिद्धम्।

ननूद्भूतरूप नोद्भूतस्पर्शव्याप्यम्, इन्द्रनीलमणे' तैजसत्वेन तत्प्रभायाः स्वाभावत' शुभ्रत्वात्, तत्र नीलिमाप्रतीत्युपपत्तये उद्भूतस्पर्शशून्यनीलभागानुस्यूत्या आवश्यकत्वात्, तत्रैवोद्भूतरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वात्। अत' तमस्युद्भूतरूपसत्त्वेऽपि नोद्भूतस्पर्शापादनसम्भव आपादकविरहादिति शङ्कामपाकर्तुमाह-इन्द्रनीलप्रभासहचरितनीलभागस्त्विति। अस्याग्रे न कल्प्यत इत्यनेनान्वय'। तदकल्पने हेतुमाह - स्मर्यमाणारोपेणेति। दूरस्थनीलद्रव्यसमवेतस्य स्मर्यमाणस्य नीलरूपस्य आरोपेण। एवकारेण तत्सहचरितनीलांशव्यवच्छेद' कृतः। तत्प्रभाया = इन्द्रनीलमणिप्रभाया, नीलधीनिर्वाहात् = नीलिमप्रतीत्युपपत्तिसम्भवात्। ततः किमित्याह-गौरवादिति। इन्द्रनीलप्रभाया तत्सहचरितनीलभागाऽकल्पनेऽपि गत्यन्तरेण तत्प्रतीतिसम्भवे सहचरितनीलभागकल्पनाया गौरवग्रस्तत्वादित्यर्थः। इति = इन्द्रनीलमणिप्रभासहचरितनीलभागाऽकल्पनाहेतोः न तत्र = नीलभागे उद्भूतरूपस्य व्यभिचार = उद्भूतस्पर्शव्यभिचारः। ततो नान्धकारस्योद्भूतरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शसत्त्वाभावस्य बाधकत्वमनिराकार्यमिति भावः।

नन्वेवमपि नोद्भूतरूपमुद्भूतस्पर्शाभाववद्वृत्ति स्फटिकभाण्डस्य तैजसत्वेन स्वभावत. शुक्लत्वेऽपि तदन्त'कुङ्कुमादिपूरणदशाया तद्बहिःपीतिमोपलब्ध्यन्यथानुपपत्तिभिया तद्बहि'पीतिमाश्रयानुद्भूतस्पर्शद्रव्यभागान्तरकल्पनाया अवश्याश्रयणीयत्वेऽनुद्भूतस्पर्शाश्रयतादृशपीतद्रव्ये उद्भूतरूपस्य व्यभिचारित्वात्। न च तादृशपीतद्रव्यस्योद्भूतस्पर्शवत्त्वादेव न व्यभिचार इत्याशङ्कनीयम्, तत्स्पर्शास्पार्शनान्यथानुपपत्तेरित्याशङ्कामपनोदयितुमाह- कुङ्कुमादिपूरितस्फटिकभाण्डे केशरादिनिभृतस्वच्छस्फटिकपात्रे, बहिरारोप्यमाणपीताश्रये =बहिर्भागे आरोप्यमाणस्य पीतरूपस्याधिकरणे अपि उद्भूतरूपस्य न व्यभिचार = उद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वम्। नैयायिकस्तत्र हेतुमाह-तत्रापि = बहिरारोप्यमाणपीतत्वाधिकरणे अपि किमुत इन्द्रनीलप्रभासहचरितनीलभागे इत्यपिशब्दार्थ'। स्मर्यमाणारोपेणैव =स्मर्यमाणस्य दूरस्थपीतद्रव्यसमवेतोद्भूतरूपस्यारोपेणैव, बहिष्पीतद्रव्याऽकल्पनात् = तादृशस्फटिकभाण्डबहिर्भागेऽनुद्भूतरूपाश्रयपीतद्रव्याऽकल्पनात्, स्मर्यमाणपीतरूपाश्रयीभूतदूरस्थद्रव्ये तूद्भूतस्पर्शस्याबाधात् नोद्भूतरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वमित्यन्धकारे उद्भूतरूपोपगमे उद्भूतस्पर्शप्र-

▶ वल्लभा ◀

व्याप्य ह। इसलिए अन्धकार मे उद्भूत नील रूप मानने पर तो उसमे उद्भूत स्पर्श भी अवश्य रहेगा। मगर अन्धकार मे उद्भूत स्पर्श नही होता है - यह सर्वजन प्रसिद्ध हे। इस तरह अन्धकार मे उद्भूत रूप को मानने पर उद्भूत स्पर्श की आपत्ति आयेगी। यह आपत्ति ही अन्धकार के नीलरूपवान् होने मे बाधक है। अतएव 'नील तम' इस प्रतीति को भ्रमात्मक मानना आवश्यक है। इस स्थिति मे अन्धकार मे द्रव्यत्व की सिद्धि नही होगी, क्योकि तब रूपवत्त्वात्मक हेतु स्वरूपाऽसिद्ध होता है। अत लाघव तर्क के सहकार से अन्धकार को तेजोऽभावस्वरूप मानना ही मुनासिब है।

इन्द्र०। यहाँ इस शङ्का का कि—›'इन्द्रनील मणि की प्रभा तैजस द्रव्य होने की वजह स्वभावत शुभ्र है किन्तु उसमे नीलिमा की प्रतीति होती है। उसके अनुरोध से उस प्रभा मे उद्भूत स्पर्श से शून्य किसी नील द्रव्य की अनुस्यूति को मानना आवश्यक है। उस नील द्रव्य मे उद्भूत रूप उद्भूत स्पर्श का व्यभिचारी है, क्योकि उस द्रव्य के उद्भूत स्पर्श का भान होता नही है और उद्भूत नीलरूप का भान होता है। अतएव उद्भूत रूप को उद्भूत स्पर्श का व्याप्य माना जा नही सकता'‹—समाधान यह हे कि दूरस्थ उद्भूतस्पर्शवाले नीलद्रव्य के नील रूप का स्मरण मान कर उसके आरोप से भी इन्द्रनील मणि की प्रभा मे नीलिमा की प्रतीति का निर्वाह किया जा सकता है। अत प्रभा मे उद्भूतस्पर्शशून्य नील द्रव्य की अनुस्यूति की कल्पना गौरवग्रस्त होने से त्याज्य है।

कुङ्कु०। यहाँ यह शङ्का कि—›'स्फटिक मणि से निर्मित शुक्ल भाण्ड मे केशर भर देने पर भाण्ड के बाह्य भाग मे पीत वर्ण की प्रतीति होती है। उसकी उपपत्ति के लिए स्फटिक भाण्ड के उपरी भाग मे किसी ऐसे पीत द्रव्य का अस्तित्व मानना आवश्यक है, जिसमे उद्भूत स्पर्श न हो और जिसके सन्निधान से शुभ्र स्फटिकभाण्ड के बाहरी भाग मे पीतिमा की प्रतीति हो सके। उस पीत द्रव्य मे उद्भूत रूप उद्भूत स्पर्श का व्यभिचारी है, क्योकि उसके उत्कट स्पर्श का साक्षात्कार होता नही है। केवल स्फटिक के स्पर्श का ही भान होता है। अत अन्धकार मे उत्कट रूप के सबब उत्कट स्पर्श की आपत्ति दी जा नही सकती'‹—भी निराधार है, क्योकि स्फटिक भाण्ड कुङ्कुम = केशर से पूरित होने की दशा मे भाण्ड के बाहर जो पीतिमा प्रतीत

ल्पनात्, बहिर्गन्धोपलब्धेस्तु वाय्वाकृष्टानुद्भूतभागान्तरेणैवोपपत्तेरिति वाच्यम्, तादृशव्याप्तौ मानाभावात्, प्रभाया व्यभिचाराच्च।

◆ हेमलता ◆

सङ्गस्तत्र वज्रलेपायित एवेति नैयायिकाकूतम्।

ननु भवतु स्मर्यमाणारोपेणैव स्फटिकभाण्डे पीतरूपवत्ताधीः पर तत्र गन्धोपलम्भो न स्मर्यमाणगन्धारोपेण भवितुमर्हति। अतो गन्धाश्रयद्रव्यसन्निधानेनावश्य कुङ्कुमादिपूरितस्फटिकभाण्डे भवितव्यम्। प्रतीयमानगन्धाश्रयसन्निधानस्य तत्रावश्यक्लृप्तत्वे तूपलभ्यमानपीतरूपाश्रयत्वेनाऽपि लाघवात् गन्धाश्रयेणैव भाव्यम्, सति सम्भवेऽसति वाधके त्यागानौचित्यात्, अन्यथा गौरवात्। न च तस्य फलमुखत्वेनाऽदोषत्वमिति शङ्कनीयम् प्रमाणप्रवृत्तिसमये एव तदुपस्थितेः, लघुगत्यन्तरस्य सत्त्वात्। अतो नोद्भूतरूपश्रोत्रियस्य व्यभिचारचाण्डालस्पर्शकलङ्कितत्व क्षालयितु शक्य परैः। अत एवान्धकारे उद्भूतरूपाङ्गीकारेऽपि नोद्भूतस्पर्शस्यापादनमर्हति। न ह्यनापादकवलादापादन भवितुमर्हति। अतः सिद्धमन्धकारस्य द्रव्यत्वमित्याशङ्कायां नैयायिकाद्याह-वहिर्गन्धोपलब्धे = कुङ्कुमादिपूरितस्फटिकभाण्डवहिर्भागे गन्धगोचरघ्राणजसाक्षात्कारस्य तुर्विशेषणे। तदेवाह- वाय्वाकृष्टानुद्भूतरूपभागान्तरेणैव = वायूपनीतानुत्कटरूपशालिद्रव्यांशविशेषेणैव उपपत्ते । एवकारेण स्फटिकभाण्डवहिर्भागेऽनुद्भूतस्पर्शाश्रयद्रव्यांशव्यवच्छेदः कृतः। अयमत्र नैयायिकाद्यभिसन्धिः स्फटिकभाण्डवहिर्भागे यो गन्ध उपलभ्यते तन्निर्वाहार्थं नेदमावश्यक यदुत स्फटिकभाण्डवहिर्देशावच्छेदेन गन्धाश्रयद्रव्यांशेन भवितव्यम्, तत्र भागान्तर-तत्सम्बन्धादिकल्पनागौरवात्, लघुगत्यन्तरस्य सत्त्वात्। तथाहि शक्यते इद कल्पयितु यद् वायूपनीत-गन्धाश्रयद्रव्यांशेनैवोपाधिना तत्र गन्धोपलब्धिः। न चैव गन्धाश्रयसमवेतरूपोपलब्धिप्रसङ्गस्य दुर्निवारत्व स्यादिति वाच्यम् तस्यानुद्भूतरूपाश्रयत्वेनाऽपि तद्वारणसम्भवात् दृष्टानुसारितयैव कल्पनाया न्याय्यत्वात्। अत एव प्रतीयमानपीतरूपस्यारोप्यमाणत्वमपि घटाकोटिसण्टङ्कमाटीकते। अनेनोद्भूतरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वमपि प्रत्युक्तम्, स्फटिकभाण्डस्य पीतभागाऽसवलितत्वात्, स्मर्यमाणदूरस्थद्रव्यवृत्तिपीतरूपस्योद्भूतस्पर्शाश्रयवृत्तित्वात्। इत्थञ्चोद्भूतरूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्यत्वात्तमस उद्भूतरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभाव एव वाधकः। अत एव तमो नीलमिति प्रतीतेरपि भ्रमत्वमित्यावेदितम्। एवञ्च रूपवत्त्वहेतोः स्वरूपासिद्धिकलङ्कितत्वेन न ततस्तमसो द्रव्यत्वसिद्धिरिति तमोऽभाववादिनैयायिकतात्पर्यम्।

तमोभाववादी दर्शितदीर्घशङ्कामपहस्तयति-तादृशव्याप्तौ = उद्भूतरूपनिष्ठायामुद्भूतस्पर्शाभाववदवृत्तित्वलक्षणाया मानाभावात् विपक्षवाधकतर्कविरहात्। 'अस्तु तमस्युद्भूतरूप मास्तूद्भूतस्पर्श' इत्यत्र वाधकयुक्तिविरहान्नोदर्शितव्याप्तिः स्वीकर्तुमर्हति, 'मानाधीना मेयसिद्धिरि'ति वचनात् अन्यथा वह्नेरपि धूमव्याप्यत्व स्यात्।

ननु वह्नेर्धूमाभाववदयोगोलकवृत्तित्वेन तद्व्यभिचारित्वादस्तु वह्नेर्धूमव्याप्यत्वे मानाभावः किन्तु प्रकृते तूद्भूतरूपस्य नोद्भूतस्पर्शाभाववद्वृत्तित्व क्वापि दृष्टम्। अतः तादृशव्याप्तौ बाधाभाव एव मानम्। किं मानान्तरगवेषणगौरवेण? इत्याशङ्काया हेत्वन्तरमाह प्रभाया व्यभिचाराच्चेति। प्रभाया उद्भूतरूपवत्त्वेऽपि उद्भूतस्पर्शविरहेण हेतोर्व्यभिचारित्वादित्यर्थः। एतेनोद्भूतरूपमुद्भूतस्पर्शव्याप्य तस्योद्भूतस्पर्शाभाववदवृत्तित्वस्य क्वाप्यदृष्टत्वात्

▶ वल्लभा ◀

होती हे, उसका निर्वाह भी किसी दूरस्थ उद्भूतस्पर्शयुक्त पीतद्रव्य मे समवेत पीत रूप का स्मरण मान कर उसके आरोपद्वारा सम्पन्न हो सकता है। अत स्फटिक भाण्ड के वाहरी भाग मे किसी पीत द्रव्य के सन्निधान की कल्पना अनावश्यक है। अत उद्भूत रूप मे उत्कट स्पर्श की व्याप्ति (=व्याप्तता) ज्यो की त्यो बनी रहती है, जिसके बल पर अन्धकार मे उत्कट नील रूप का अङ्गीकार करने पर उद्भूत स्पर्श की आपत्ति वज्रलेप होती है।

बहि०। यहाँ इस शङ्का के कि → 'स्फटिक भाण्ड के वाहर पीतिमा के साथ गन्ध की भी उपलब्धि होती है। पीतिमा की प्रतीति का निर्वाह तो दूरस्थ द्रव्य के साथ स्मर्यमाण पीत रूप के आरोप से किया जा सकता है, मगर गन्ध की प्रतीति तो गन्धवाले द्रव्य के सन्निधान के विना हो नही सकती। गन्धवुद्धि की अन्यथानुपपत्ति से गन्धवान् द्रव्य सन्निहित मानना आवश्यक हे। जव गन्धाश्रय द्रव्य की कल्पना आवश्यक ही है तव तो प्रतीयमान पीतरूप भी लाघव से उसका रूप माना जायेगा, क्योकि जहाँ अनारोपित का भान हो सके वहाँ भी आरोप की कल्पना गौरवग्रस्त है। अतएव उद्भूतरूप मे उत्कटस्पर्श का व्यभिचार अपरिहार्य हे, क्योकि अन्धकार मे स्फटिक भाण्ड की भाँति दूरस्थ द्रव्य के स्मर्यमाण रूप का आरोप किया जा नही सकता। अतएव अन्धकार मे उद्भूत नील रूप होने पर भी उत्कट स्पर्श का आपादन किया जा सकता नही हे'←समाधानार्थ यह कहा जा सकता है कि कुङ्कुमपूरित स्फटिकभाण्ड मे गन्ध की उपलब्धि वायुद्वारा आकृष्ट अनुद्भूतरूपवान् द्रव्य की गन्ध से भी सम्भव होने से उक्त रीति से व्यभिचार की शङ्का अनुत्थानपराहत है। मतलव कि जिस द्रव्य की गन्ध उपलब्ध होती हे, वह द्रव्य उत्कटरूप से शून्य होने की वजह प्रतीयमान रूप को आरोपित मानना आवश्यक हे। फलत उद्भूत रूप मे उत्कट स्पर्श की व्याप्ति निर्वाध होने के सवव अन्धकार मे उद्भूत स्पर्श की आपत्ति उसके उद्भूतनीलरूपवान् होने मे वाधक हो सकती है। अत 'नील तम' यह प्रतीति भ्रमात्मक सिद्ध हो सकती हे। इस तरह अन्धकार मे रूपवत्त्वहेतु स्वरूपासिद्ध होने से अन्धकार को द्रव्यान्तरात्मक माना जा नही सकता

न चोद्भूतनीलरूपवत्त्वमेवोद्भूतस्पर्शव्याप्यम्, न च धूमे व्यभिचारः, तत्राप्युद्भूतस्पर्शवत्त्वात्, अत एव तत्सम्बन्धाच्चक्षुषो जलनिपात

◆ हेमलता ◆

इति निरस्तम्। अत एव 'नील तम' इति प्रतीतेर्भ्रमत्वमपि प्रत्याख्यातम्। इत्यतः साधूक्तं तमो द्रव्यं रूपवत्त्वादिति।

यत्तु 'इन्द्रनीलप्रभासहचरितनीलभागस्तु स्पर्यमाणारोपेणैव तत्प्रभाया नीलधीनिर्वाहाद् गौरवादेव न कल्प्यते' [दृश्यतां १२४ तमे पृष्ठे] इत्युक्तम् तदप्यसत्, अनुभवाननुसारित्वात्। न हि तत्र दूरस्थनीलद्रव्यरूपस्मरणाऽऽरोपानुभवोऽस्ति, इन्द्रनीलप्रभाया दर्शनविषयत्वे गत्यैवाऽऽबालाङ्गनानां नीलत्वप्रतीतेरुदयात्। एतेन कुङ्कुमादिपूरितभाण्डे स्पर्यमाणारोपेणैव बहिःपीतधीनिर्वाहादि [दृश्यतां १२५ तमे पृष्ठे]ति निरस्तम् मानाभावात्। यदपि बहिर्गन्धोपलब्धेस्तु वाय्वाकृष्टानुद्भूतरूपभागान्तर्गमेणैवोपपत्तेरिति [दृश्यतां १२० तमे पत्रे] गदितम् तदपि न चारु, गन्धद्रव्यस्य वाय्वाकृष्टत्वानुद्भूतरूपवत्त्वकल्पनाया मानाभावात्, गौरवाच्च। स्थिते चैवमुद्भूतरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वे न तमस उद्भूतरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावस्य बाधकत्वमिति सिद्धं तमसो द्रव्यत्वमिति समाधानाभिप्रायः।

वस्तुतस्तु इन्द्रनीलमण्यादेः पृथिवीत्वमेव न तु तैजसत्वम्, 'फलिहमणिरयण' [जी रि प्रे ३] इति वचनात्। अत एव स्याद्वादिमते न तत्रारोपितनीलादिभागकल्पनाया आवश्यकत्वमिति तु ध्येयम्।

ननु प्रभाया व्यभिचारस्मात्तूद्भूतरूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्यत्वम्, उद्भूतनीलरूपस्य तु तत्त्वमबाधितमेव। अतस्तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावस्य बाधकत्वमव्याहतम्। अत एव 'नील तम' इति प्रतीतेः भ्रमत्वमनपायम्, व्यापकाभावेन व्याप्याभावनिश्चयादिति न तमसो द्रव्यत्वमिति नैयायिकाशङ्कामपाकर्तुमाविष्करोति - न चेति। वाच्यमित्यनेनास्यान्वयः। उद्भूतनीलरूपवत्त्वमेवेति। एवकारेणोद्भूतरूपवत्त्वं व्यवच्छिन्नम्। प्रयोगश्चैवम्→तमो नीलरूपवन्न उद्भूतस्पर्शशून्यत्वात्, गुणवत्,। अत एव 'नील तम' इति प्रतीतिर्भ्रमात्मिका तदभाववति तत्प्रकारकत्वात्, 'पीतः शङ्ख' इति प्रतीतिवत्। न च 'पीत शङ्ख' इति प्रतीतेः पीतत्वांशे इव 'नील तम' इति प्रतीतेः नीलत्वांशे भ्रमात्मकत्वेऽपि रूपत्वांशेऽभ्रमत्वात् रूपवत्त्वहेतोस्तमसि द्रव्यत्वमबाधितमिति वाच्यम् नीलरूपस्याऽसत्त्वेन नीलेतररूपस्य च तत्राऽसम्भवेन यावद्रूपविशेषाभावकूटस्य रूपसामान्याभावसाधकत्वात्। अतस्तमो न द्रव्यमिति शङ्काकृदाकूतम्।

ननूद्भूतरूपवदुद्भूतनीलरूपमपि नोद्भूतस्पर्शव्याप्यम्, उद्भूतस्पर्शशून्यधूमवृत्तित्वात्। अतो नान्धकारस्योद्भूतनीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावस्य बाधकत्वमित्याशङ्कामपाकर्तुं यौग आह - न च धूमे व्यभिचार इति वक्तव्यमिति शेषः। नैयायिकस्तन्निरासे हेतुमाह - तत्र धूमे अपि उद्भूतस्पर्शवत्त्वात्,। धूमस्योद्भूतस्पर्शाश्रयत्वेनोद्भूतनीलरूपस्य नोद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वम्। कुत इदमवगतम् इत्याशङ्कायां नैयायिक आह - अत एवेति धूमस्योद्भूतस्पर्शवत्त्वादेवेति। तत्सम्बन्धात् = धूमसंयोगात् चक्षुषः जलनिपात = अश्रुपतनं अपि सङ्गच्छते। यदि धूम उद्भूतस्पर्शवान्

▶ वल्लभा ◀

बल्कि उसे आलोकाभावात्मक ही मानना उचित है। इसके फलरूप मे अन्धकारवादी नैयायिक आदि का जय और अन्धकाराभाववादी मीमासक आदि का पराजय सिद्ध हो जायेगा।

☛ उद्भूतरूप उद्भूतस्पर्श का अव्याप्य - मीमांसक ☚

अन्धकारभाववादी :- 'ननाव' आप दूर की सोचते नही है। वस्तुस्थिति यह है कि उद्भूत रूप मे उद्भूत स्पर्श की व्याप्ति का ग्राहक कोई प्रमाण नही है, प्रत्युत उक्त व्याप्ति को विघटित करनेवाला प्रभाद्रव्य के उद्भूतरूप मे उद्भूत स्पर्श का व्यभिचार विद्यमान है। प्रदीप, मणि आदि की प्रभा मे, जो नैयायिक मतानुसार तैजस द्रव्य है, उत्कट रूप होने पर भी उत्कट स्पर्श होता नही है, दूरस्थ द्रव्य के स्मर्यमाण रूप के आरोप की कल्पना गौरवग्रस्त एव अप्रामाणिक होने से त्याज्य है। अत अन्धकार मे उद्भूत रूप की वजह उद्भूत स्पर्श का आपादन नहीं किया जा नहीं सकता, क्योकि उद्भूत रूप मे उद्भूत स्पर्श की आपादकता नहीं है। अतएव 'नील तम' यह प्रतीति भ्रमात्मक सिद्ध की जा नहीं सकती। इसलिए रूपवत्त्व हेतु से अन्धकार मे द्रव्यत्व की सिद्धि निराबाध है।

★☆ उत्कटनीलरूप भी उत्कटस्पर्श का अव्याप्य - मीमांसक ☆★

न चो०। यहाँ नैयायिक की ओर से यह कहा जाय कि→"प्रभा मे व्यभिचार होने से यदि उद्भूत रूप में उद्भूत स्पर्श की व्याप्ति नहीं है, तो मत हो, मगर उत्कट नीलरूप मे तो उत्कट स्पर्श की व्याप्ति निर्बाध ही है। अत तम मे उद्भूत नील रूप होने की वजह उद्भूत स्पर्श की आपत्ति तो अपरिहार्य है। इसके खिलाफ मीमांसक की ओर से यह कहना कि—'धूम मे उद्भूत नील रूप होने पर भी उद्भूत स्पर्श की उपलब्धि नहीं होने से उत्कट स्पर्श का अभाव सिद्ध होता है। उत्कटस्पर्शशून्य धूम मे उत्कट नील रूप रहने से उद्भूत नीलरूप उद्भूत स्पर्श का व्यभिचारी सिद्ध होता है, जिससे तादृश व्याप्ति बाधित होती है।

इति वाच्यम्, चक्षुर्धूमसयोगत्वेनैवाश्रुपातजनकत्वाद्धूमे उद्भूतस्पर्शासिद्धेः, नीलत्रसरेणौ व्यभिचाराच्च। न च पाटितपटसूक्ष्मावयव

◆ हेमलता ◆

न स्यात् न स्यात्तदा तत्सयोगाच्चक्षुषो नीरनिःसरणम्, अन्यथा अनुद्भूतस्पर्शवत्परमाणुसयोगादपि चक्षुषो वारिवर्षण स्यात्। न चैवमस्तीत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यामुद्भूतस्पर्शस्य तद्धेतुत्वसिद्धेः धूमस्योद्भूतस्पर्शवत्त्वम्। अतो नोद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वमिति तमसो नीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावस्यैव वाधकत्वमिति नैयायिकाशयः।

तमोभाववादी नैयायिकशङ्कामपाकरोति - चक्षुर्धूमसयोगत्वेनेव अश्रुपातजनकत्वादिति। अश्रुनिपातनिष्ठकार्यतानिरूपितायाः कारणतायाः चक्षुर्धूमसयोगत्वावच्छिन्नत्वादित्यर्थः। एवकारेण चक्षुरुद्भूतस्पर्शाश्रयसयोगत्वस्य जलनिपातकारणतावच्छेदकत्वामपाकृतम्। अयमन्धकारभाववादिनोऽभिप्रायः चक्षुर्धूमसयोगो न चक्षुरुद्भूतस्पर्शवद्द्रव्यसयोगत्वेनाश्रुपातजनकः, कारणतावच्छेदकधर्मगोरवात्, नयनोद्भूतस्पर्शवत्परमाणुसयोगादपि चक्षुषो नीरनिपातप्रसङ्गाच्च। अतो चक्षुर्धूमसयोगत्वेनैवाश्रुपातजनकतोररीकर्तव्या। न च चक्षुरनुयोगिक-धूमप्रतियोगिकसमवायसम्बन्धेनेव चक्षुरुद्भूतस्पर्शवत्सयोगत्वेनाश्रुपातजनकतास्वीकारान्न कारणतावच्छेदकधर्मगोरव न वाऽतिप्रसङ्गः, सम्बन्धगौरवस्याऽदोषत्वादिति वक्तव्यम्, तथापि तेन सम्बन्धेन चक्षुर्धूमसयोगत्वेन सयोगत्वेनैव वा तत्त्वौचित्यम्, ततोऽपि कारणतावच्छेदकधर्मलाघवात्। इत्यश्च चक्षुर्जलनिपातकारणतावच्छेदकधर्मकुक्षावुद्भूतस्पर्शस्यानिवेशान्न धूमे नयननीरनिपातजनकतावच्छेदकघटकविधयोद्भूतस्पर्शसिद्धिः। अनेन तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे ऊद्भूतस्पर्शाभाव एव वाधक इत्यपि पराकृतम् धूमे उद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वात्। तमोभाववादी अन्यत्रापि व्यभिचारमुपदर्शयति - नीलत्रसरेणा व्यभिचाराच्चेति। नीलरूपाश्रये द्व्यणुकत्रितयजन्ये पटावयवे त्रुटिपदार्थे उद्भूतनीलरूपस्य सत्त्वेऽपि उद्भूतस्पर्शस्य विरहात्तत्रोद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वम्। न च तत्रोद्भूतनीलरूपमेव नास्तीति न व्यभिचार इति वाच्यम् तथा सति तच्चाक्षुषानुपपत्तिप्रसङ्गात्। अतः तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावस्य वाधकत्वमिति तमोभाववादितात्पर्यम्।

ननु नीलत्रसरेणावप्युद्भूतस्पर्शोऽस्त्येव, अन्यथा तज्जन्यचतुरणुकादावुद्भूतस्पर्शानुत्पत्तिप्रसङ्गान्न कदापि नीलद्रव्यस्य स्पार्शनत्व घटाकोटिमश्चेतेति नैयायिकायाशङ्कामपाकर्तुमुपदर्शयति न च पाटितपटसूक्ष्मावयवव इव तत्राऽप्युद्भूतस्पर्शवत्त्वानुमानमिति वाच्यमति शेषः। प्रयोगस्तु एवम् - नीलत्रसरेणुः

▶ वल्लभा ◀

अत अन्धकार मे उद्भूत नील रूप से उत्कट स्पर्श का आपादन किया जा नही सकता'—व्यर्थ हे, क्योकि चक्षु के साथ धूम का सम्बन्ध होने पर चक्षु से अश्रुपात होने के कारण धूम मे उद्भूत स्पर्श का होना आवश्यक हे, जिससे उद्भूत नीलरूप मे उत्कट स्पर्श का व्यभिचार निरस्त हो जाता हे। इस प्रकार उद्भूत नीलरूप मे उत्कटस्पर्शव्याप्यता निर्वाध होने के सवव यदि अन्धकार मे उत्कटनीलरूप माना जायेगा तो उसमे उत्कट स्पर्श की आपत्ति होगी। अत उसमे उद्भूत नील रूप माना जा नही सकता और नीलेतर रूप उसमे प्रमाण के अभाव से मान्य किया जा नही सकता। इस तरह रूपविशेपाभावकूट से अन्धकार मे रूपसामान्याभाव की सिद्धि होती है। अव अन्धकार मे द्रव्यत्वसिद्धि कैसे होगी? क्योकि द्रव्यत्वव्याप्यरूप का उसमे अभाव रहता है। फलत अन्धकार को आलोकाभावस्वरूप ही मानता सङ्गत हे''←तो यह नामुनासिव हे, क्योकि चक्षुधूमसयोगत्वेन अश्रुपातकारणता का स्वीकार करने से धूम मे उद्भूत स्पर्श मानना आवश्यक नही हे। मतलव कि चक्षुधूमसयोगत्वेन रूपेण अश्रुपात की जनकता लाघवसहकार से मान्य की जा सकती हे, न कि नयन-उद्भूतरूपविशिष्टसयोगत्वेन, क्योकि तव कारणतावच्छेदकधर्म गोरवग्रस्त होता हे। अत धूम मे अश्रुपातजनकता के वल से उद्भूत स्पर्श की सिद्धि ही हो सकती नही हे। अतएव धूम के उद्भूत नील रूप मे उत्कटस्पर्श का व्यभिचार दुर्निवार हे। इस तरह उद्भूत नील रूप मे उत्कट स्पर्श की व्याप्ति न होने से अन्धकार मे उत्कट नील रूप के होने से उत्कट स्पर्श की आपत्ति का कोई भय नही हे। एव वाधकनिराकरण से अन्धकार मे उद्भूत नील रूप के साक्षात्कार को भ्रमात्मक कहा जा नही सकता। अत रूपवत्त्व हेतु से अन्धकार मे द्रव्यत्व की सिद्धि हो सकती हे। दूसरी वात यह हे कि नीली द्रव्य के त्रसरेणु के उद्भूतनील रूप मे भी उत्कट स्पर्श का व्यभिचार अपरिहार्य है, क्योकि नील त्रुटि मे उत्कट नीलरूप होने पर भी उद्भूत स्पर्श उपलब्ध होता नही हे। अत उद्भूत नीलरूप मे उद्भूत स्पर्श की व्याप्ति अप्रामाणिक हे।

●● नीलत्रुटि मे व्यभिचारपरिहार का प्रयास ●●

न च पा०। यहाँ नैयायिक के इस कथन के कि—›'किसी पट को फाडने पर उसके जो सूक्ष्म अवयव निकलते है, उनका स्पर्श उत्कट होता हे, क्योकि यदि वह स्पर्श उत्कट न होगा तो उससे पट मे उत्कट स्पर्श की उत्पत्ति न होगी और न उसके सम्वन्ध से अश्रुपात होगा। इस परिस्थिति मे पट के उन सूक्ष्म अवयवो के दृष्टान्त से नीली द्रव्य के त्रसरेणु मे भी उद्भूत स्पर्श का अनुमान हो जायेगा। अत नील द्रव्य के त्रसरेणु मे भी उत्कट नील रूप मे उत्कट स्पर्श का व्यभिचार हो नही सकता'←खिलाफ

इव तत्राप्युद्भूतस्पर्शवत्त्वानुमानम्, अनुद्भूतस्योद्भूतरूपजनकताया इवानुद्भूतस्पर्शस्यापि निमित्तभेदससर्गेणोद्भूतस्पर्शजनकतासम्भवात् दृष्टान्ताऽसम्प्रतिपत्तेः, अपि च त्रसरेणोरुद्भूतस्पर्शवत्त्वे तत्स्पर्शस्पार्शनप्रसङ्गः।

◆ हेमलता ◆

उद्भूतस्पर्शवान् स्वसमवेतद्रव्यसमवेतोद्भूतस्पर्शजनकत्वात्, पाटितपटसूक्ष्मावयववत् यद्वा नीलत्रसरेणुस्पर्श' उद्भूतः स्वसमवायिसमवेतद्रव्यसमवेतोद्भूतस्पर्शाऽसमवायिकारणत्वात्, पाटितपटसूक्ष्मावयवस्पर्शवत्। हेतुतावच्छेदकश्च द्वितीये उद्भूतस्पर्शासमवायिकारणत्वमेव। अनुद्भूतस्पर्शस्योद्भूतस्पर्शाऽसमवायिकारणत्वाऽसम्भवात्, चतुरणुकसमवेतोद्भूतस्पर्शाऽसमवायिकारणीभूतस्य नीलत्रुटिस्पर्शस्योद्भूतत्वमेवेति नीलत्रसरेणौ नोद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वमिति तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभाव एव व्यापकाभावत्वेन रूपेण बाधक'। अतो 'नील तम' इति प्रतीतेर्भ्रमत्वान्न रूपवत्त्वहेतोः तमसि द्रव्यत्वसिद्धिरिति नैयायिकाशयः।

तमोद्रव्यवादी तन्निराकरणे हेतुमाह - अनुद्भूतरूपस्य = नैयायिकमतानुसारेणातितप्ततैलस्थानामनलावयवानामनुत्कटरूपस्य, उद्भूतरूपजनकताया = दहनोद्भूतरूपासमवायिकारणताया इव अनुद्भूतस्पर्शस्यापि = नीलत्रसरेणुसमवेतानुत्कटस्पर्शस्यापि निमित्तभेदससर्गेण = अदृष्टादिनिमित्तविशेषसम्बन्धवशेन उद्भूतस्पर्शजनकतासम्भवात् = चतुरणुकसमवेतोद्भूतस्पर्शासमवायिकारणत्वसम्भवात्, दृष्टान्तासम्प्रतिपत्ते = पाटितपटसूक्ष्मावयवोदाहरणविप्रतिपत्ते'। प्रयोगस्त्वेवम् - नीलत्रसरेण्वनुद्भूतस्पर्शासमवायिकारणक' स्पर्शः उद्भूत' अदृष्टादिनिमित्तविशेषसमवहितत्वात्, अतितप्ततैलस्थदहनावयवानुद्भूतरूपासमवायिकारणरूपविशेषवत्। न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाशे वर्धमानोपाध्यायेनाऽपि—› 'अदृष्टविशेषादनुद्भूतरूपादप्युद्भूतरूप जायत इत्यभ्युपेयम्। न चावयविरूपवृत्तिजातिः सा परमाणुरूपवृत्तिरिति व्याप्ति', चित्रत्वजातौ व्यभिचारादि'त्युक्तम्। शालिकनाथप्रभृतिभिरपि नेत्रानुद्भूतरश्मिबाह्यालोकसवलनेनोद्भूतरूपवता नेत्ररश्मीनामुत्पाद' स्वीकृतः। तदुक्त भासर्वज्ञेनापि न्यायभूषणे 'आलोकसहितेभ्यः तदवयवेभ्य उद्भूतरूपा एव नायनरश्मय उत्पद्यन्ते' [न्या भू पृ ९५] इति।

एतेन यदि तमो द्रव्य, रूपवद्द्रव्यस्य स्पर्शाव्यभिचारित्वात्, स्पर्शवद्द्रव्यस्य महत. प्रतिघातधर्मत्वात् तमसि मध्यगत. प्रतिबन्धः स्यात्, महान्धकारे च भूगोलकस्येव तदवयवभूतानि खण्डावयविद्रव्याणि प्रतीयेरन्निति प्रत्युक्तम् यथा प्रदीपान्निर्गतैरवयवैरदृष्टवशादनुद्भूतस्पर्शमतिनिविडावयवमप्रतीयमानखण्डावयविद्रव्यप्रविभागमप्रतिघातिप्रभामण्डलमारभ्यते तद्वदेव तम'परमाणुभिरपि तादृशतमोद्रव्यारम्भसम्भवात्। इत्यमुद्भूतनीलरूपस्याप्युद्भूतस्पर्शव्यभिचारित्वान्नोद्भूतनीलरूपवत्त्वे तमस उद्भूतस्पर्शवत्त्वप्रसङ्गः बाधकः। अतो रूपवत्त्वाद्धेतोस्तमसो द्रव्यत्वमनपायमेवेति तमोभाववादितात्पर्यम्।

ननु जन्यानुद्भूतरूप प्रति अनुद्भूतेतररूपाभावस्य कारणत्वपक्षे तप्ततैलस्थादनुद्भूतरूपादनलादुद्भूतरूपभागान्तरापर्णेनैवोद्भूतरूपोत्पत्तिस्वीकारादत्र दृष्टान्ताऽसम्प्रतिपत्तिरित्याशङ्कायां तमोद्रव्यवाद्याह- अपि चेति। नीलचतुरणुकसमवायिकारणीभूतस्य त्रसरेणो उद्भूतस्पर्शवत्त्वे तत्स्पर्शस्पार्शनप्रसङ्ग

► वल्लभा ◄

मीमासक की ओर से यह कहा जा सकता है कि फाडे हुए नील पट के सूक्ष्म अवयवो मे भी उत्कट स्पर्श के होने मे कोई प्रमाण नही होने से दृष्टान्त सम्प्रतिपन्न = स्वीकृत नहीं है। यदि इसके बचाव मे नैयायिक की ओर से यह कहा जाय कि—›'पट के सूक्ष्म अवयवो मे उद्भूत स्पर्श न मानने पर पट = अवयवी मे उद्भूत स्पर्श ही हो नहीं सकेगा'‹—तो यह केवल अज्ञान की निपज है, क्योकि उत्कट रूप की उत्पत्ति जैसे कभी कभी अनुद्भूत रूप से होती है ठीक वैसे ही अनुद्भूत स्पर्श से भी अदृष्ट आदि निमित्तविशेष के सहयोग से उद्भूत स्पर्श की उत्पत्ति हो सकती है। पट के सूक्ष्म अवयवो के सम्बन्ध से चक्षु मे अश्रुपात की सङ्गति भी अश्रुनिपात के प्रति चक्षु और फाडे हुए पट के सूक्ष्म अवयव के सयोग को कारण मान लेने से हो सकती है। अत पट के सूक्ष्म अवयवो मे उद्भूत स्पर्श की कल्पना अप्रामाणिक एव गौरवग्रस्त होने से त्याज्य है। इस प्रकार पट के सूक्ष्म नील अवयवो मे भी उद्भूत नील रूप उत्कट स्पर्श का व्यभिचारी सिद्ध होता है।

अथवा 'न च पाटि ' से 'दृष्टान्तासम्प्रतिपत्ते' पर्यन्त ग्रन्थ की व्याख्या इस तरह की जा सकती है कि — पट के सूक्ष्म अवयवो का दृष्टान्त नील द्रव्य के त्रसरेणु मे उद्भूत स्पर्श की अनुमिति के अनुकूल दृष्टान्त के रूप मे स्वीकार्य हो नही सकता है, क्योकि अनुद्भूत रूप मे उद्भूत रूप की जनकता के समान निमित्तविशेष के सहकार से अनुत्कट स्पर्श मे उद्भूत स्पर्श की कारणता मुमकिन होने से यह अनुमान कि —› "नील द्रव्य का त्रसरेणु उद्भूतस्पर्शवान् है, क्योकि उद्भूत स्पर्शवाले चतुरणुक आदि का जनक है, जैसे पाटितपट का सूक्ष्म अवयव। अथवा नीलद्रव्य के त्रसरेणु का स्पर्श उद्भूत है, क्योकि वह चतुरणुक मे उद्भूत स्पर्श का जनक है, जैसे पाटित पट के सूक्ष्म अवयव का स्पर्श"‹—निराधार है।

त्रसरेणु उत्कटस्पर्शशून्य - तमोभाववादी

अपि च०। इसके अतिरिक्त यह बात भी यहाँ ध्यातव्य है कि यदि त्रसरेणु को उद्भूतस्पर्श का आश्रय माना जाय तब तो

'द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनजनकतावच्छेदकीभूतप्रकर्षवन्महत्त्वाभावान्नाय दोष' इति चेत्?

◆ हेमलता ◆

= तादृशनीलत्रुटिसमवेतोद्भूतस्पर्शविषयकस्पार्शनप्रत्यक्षोदयापत्तिः। तस्योद्भूतत्वेन योग्यत्वादवश्यमुपलब्धि॰ स्यात्। न चैवमस्ति। प्रमाणाऽविषयस्याप्यभ्युपगमेऽतिप्रसङ्गात्। इत्थञ्च नीलत्रसरेणुस्पर्शनान्यथानुपपत्त्या तत्रोद्भूतस्पर्शाभावसिद्धेः पारिशेषन्यायात् तत्रानुद्भूतस्पर्शकल्पनम्। त्रसरेणुस्पर्शस्यानुद्भूतत्वेऽपि तज्जन्यचतुरणुकस्पर्शस्योद्भूत्वेनोद्भूतस्पर्शस्याऽनुद्भूतस्पर्शजन्यत्वमव्याहतम्। एतेन 'भर्जनकपाले चानुद्भूतरूपमुद्भूतस्पर्शमन्यदेव तेजः तादृशावयवं-वह्निसहचरितैरारभ्यते, अतितप्ततैलादौ कदाचिदुद्भूतरूपावयवप्रवेशाद् वह्न्यारम्भोऽपि' [त चि प्र ख प्र का पृ ७२७] इति तत्त्वचिन्तामणिकारवचनमपास्तम्, तेजोलेश्यादिलब्धिमतः चक्षुरुष्मादिसन्ततेर्दृश्यत्वाभ्युपगमेनेष्टापत्ते॰, नव्यनैयायिकैरपि चक्षुरादिष्वनुद्भूतस्पार्शनभ्युपगमाच्च। एतेन तैलान्तर्गतैरदृश्यदहनावयवैरेव स्थूलदहनोत्पत्तिस्वीकारे स्थूलदहनेऽपि अनुद्भूतरूपापत्त्या तत्प्रत्यक्षस्य दुरुपपादत्वापातादिति [मु म पृ २८६] मुक्तावलीमञ्जूषाकारवचनमपि प्रत्याख्यातम्। एवञ्च नीलत्रसरेणावुद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्यभिचारान्न तमसो नीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावो बाधक इति तमसो द्रव्यत्वसिद्धिः रूपवत्त्वहेतोरनाविलेवेति तमोद्रव्यवादितात्पर्यम्।

ननु नीलत्रसरेणोरुद्भूतस्पर्शवत्त्वेऽपि स्पार्शनकारणमहत्त्वविशेषविरहान्न तत्स्पर्शस्पार्शनप्रसङ्ग इत्याशयेन गौतमीयः शङ्कते - द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनजनकतावच्छेदकीभूतप्रकर्षवन्महत्त्वाभावात् = द्रव्यभिन्नत्वे सति यो द्रव्यसमवेत॰ तद्गोचरस्पार्शनप्रत्यक्षस्य कारणतावच्छेदकीभूतो यः प्रकर्ष॰ तद्विशिष्टमहत्त्वस्य नीले त्रसरेणौ विरहात्, न अय = त्रुटि समवेतस्पर्शस्पार्शनप्रसङ्गलक्षणो दोष। अयमाशय॰ त्रसरेणुस्पर्शः द्रव्यान्यो द्रव्यसमवेतश्च। द्रव्यान्यत्वविशिष्टद्रव्यसमवेतस्पार्शनसाक्षात्कार प्रति महत्त्वस्य कारणत्वम्। न च महत्त्वस्य त्रुटिसमवेतत्वेन तत्स्पर्शस्पार्शन दुर्वारमिति वाच्यम् त्रसरेणौ महत्त्वस्य समवेतत्वेऽपि द्रव्यान्यत्वविशिष्टद्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणतावच्छेदकीभूतप्रकर्षशून्यत्वेन तत्स्पर्शस्पार्शनापादनासम्भवात्। अत एवोद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्यत्वाबाधेन तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे तत्स्पार्शनप्रसङ्गः तमोभाववादिनये दुर्वारः। न चैव भवति। अतः 'तमो नीलमि'ति प्रतीतेर्भ्रमत्वाद्रूपवत्त्वस्य स्वरूपासिद्धिपङ्कपङ्किलत्वम्। अतो नान्धकारस्य द्रव्यत्व सङ्गतिमङ्गतीति योगाशयः।

▶ वल्लभा ◀

से त्वगिन्द्रिय रहती हे ओर सामानाधिकरण्य सम्बन्ध से महत्त्व भी उसीमे रहता हे। सामग्री होने पर तो कार्य का जन्म होना आवश्यक हे। इसलिए त्रसरेणु को उद्भूतस्पर्शवाला कहा जा नही सकता। अत नील त्रसरेणु के उद्भूत नीलरूप मे उत्कट स्पर्श का व्यभिचार अपरिहार्य ह। इसलिए धूम मे उद्भूत नीलरूप होने से उद्भूतस्पर्श की आपत्ति नही दी जा सकती । अत रूपवत्त्व हेतु से अन्धकार मे द्रव्यत्व की सिद्धि निराबाध हे - यह सिद्ध होता है।

■■ महत्त्वविशेषाभाव से त्रुटिस्पर्शस्पार्शनाभाव नामुमकिन - तमोभाववादी ■■

द्रव्या०। यदि नेयायिक आदि मनीषी की ओर से यह कहा जाय कि—>'त्रसरेणु मे उद्भूत स्पर्श होने पर भी विजातीय महत्त्व नही होने से उसके स्पर्श का स्पार्शन प्रत्यक्ष होता नहीं हे। आशय यह हे कि जो द्रव्य से भिन्न होता हे एव द्रव्य मे समवाय सम्बन्ध से रहता हैं उसके स्पार्शन साक्षात्कार के प्रति महत्त्वविशेष कारण होता ह आर कारणतावच्छेदक धर्म हैं प्रकर्ष = प्रकृष्टत्वजाति। त्रसरेणु मे महत्त्व हे मगर वह अपकृष्ट महत्त्व हे, प्रकृष्ट महत्त्व नही हे। अतएव त्रुटिसमवेतस्पर्शविषयक स्पार्शन प्रत्यक्ष की आपत्ति नही दी जा सकती। कारणतावच्छेदकधर्मविशिष्ट कारण के नहीं होने पर कार्य का आपादन केसे हो सकता ह? इस तरह नील त्रसरेणु का स्पर्श उद्भूत होने पर भी त्रसरेणुस्पर्शप्रत्यक्ष का आपादन अयुक्त होने से उत्कट नील रूप उत्कट स्पर्श का अव्यभिचारी सिद्ध होता हे। अतएव अन्धकार मे उद्भूतरूप मानने पर उत्कटस्पर्शाभाव बाधक बनेगा। इसलिए अन्धकार को द्रव्य माना जा नही सकता'<—तो यह भी गलत हे। इसका कारण यह ह कि तादृशकारणतावच्छेदक धर्म के आश्रयविधया महत्त्व का स्वीकार किया जाय या एकत्वसङ्ख्या का? इस समस्या का कोई समाधान नहीं हैं। कारणतावच्छेदक धर्म का आश्रय ही जब अनिश्चित हे तब कारण केसे निश्चित हो सकेगा? एव कारण अनिश्चित होने पर 'विजातीय महत्त्व का अभाव होने से नील त्रसरेणु के उद्भूत स्पर्श का प्रत्यक्ष होता नहीं ह' यह केसे कहा जा सकता हे? मतलब कि- गुणस्पार्शन प्रत्यक्ष मे विजातीय महत्त्व कारण है, त्रसरेणु मे उसका विरह होने से उसके स्पर्श का स्पार्शन प्रत्यक्ष नहीं होता हैं' - इसके स्थान मे विनिगमनाविरह

न, तादृशप्रकर्षस्यैकत्वेऽपि कल्पयितु शक्यत्वेन विनिगमनाविरहात्।

अथैकत्वे तादृशजातिकल्पने द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकीभूतैकत्वनिष्ठजात्या साङ्कर्यमेव विनिगमकमिति चेत्?

◆ हेमलता ◆

तमोभाववादी तन्निराकरोति - नेति। तादृशप्रकर्षस्य =द्रव्यान्यत्वविशिष्टद्रव्यसमवेतस्पार्शनजनकतावच्छेदकीभूतप्रकर्षस्य एकत्वेऽपि = एकत्वसङ्ख्यायामपि कल्पयितु शक्यत्वेन विनिगमनाविरहात्। तादृशः प्रकर्षः किं महत्त्वे यद्वैकत्वे? इत्येकतरपक्षपातियुक्तिविरहान्न विजातीयमहत्त्वस्याऽद्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणत्वं सिध्यति, येन तद्विरहेण नीलत्रसरेणुस्पर्शोऽस्पार्शनमुपपद्येतेति लाघवात् नीलत्रसरेणुस्पर्शस्यानुद्भूतत्वमेव कल्पनीयम्। एवञ्चोद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्त्यसिद्धेर्न तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावो बाधकः। ततश्च रूपवत्त्वात् तमसो द्रव्यत्वमनपायमेवेति तमोभाववाद्यभिप्रायः।

नैयायिक शङ्कते - अथेति। चेदित्यनेनास्यान्वयः। एकत्वे तादृशजातिकल्पने = एकत्ववृत्तिद्रव्यान्यत्वविशिष्टद्रव्यसमवेतचाक्षुषजनकतावच्छेदक-जात्यङ्गीकारे, द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकीभूतैकत्वनिष्ठजात्या = स्वतन्त्रमतसिद्ध - द्रव्यविषयकचाक्षुष- प्रत्यक्षकारणतावच्छेदक- घटादिस्थैकत्ववृत्तिजात्या सम साङ्कर्यमेव द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणतावच्छेदकप्रकृष्टत्वजात्याः महत्त्ववृत्तित्वे विनिगमकमिति। अयमथाशयः स्वतन्त्रमते द्रव्यचाक्षुषकारणता-वच्छेदकजाति द्रव्यगतैकत्वे वर्तते यथा प्रभात्रसरेण्वादिगोचर- चाक्षुषप्रत्यक्षनिष्ठजन्यतानिरूपिताया जनकताया अवच्छेदिका जातिः प्रभा-त्रसरेण्वादिगतैकत्वसङ्ख्याया वर्तते। न च तत्र द्रव्येतरद्रव्यसमवेतविषयकस्पार्शनप्रत्यक्षनिष्ठकार्यतानिरूपिताया कारणताया अवच्छेदिका प्रकृष्टत्वजातिर्वर्तते, प्रभात्रसरेण्वादिसमवेतस्पर्शेऽनित्यप्रत्यक्षगोचरत्वविरहात्। वायुनिदाघोष्मादिनिष्ठैकत्वे द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनप्रत्यक्षनिरूपि-तकारणताया अवच्छेदकीभूता प्रकृष्टत्वजातिर्वर्तते न तु द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदकीभूतजाति वायु-निदाघोष्मादिस्पर्शस्य प्रत्यक्षविषयत्वेऽपि वाय्वादेश्चाक्षुषविषयत्वविरहात्। परस्परव्यधिकरणीभूते तादृशजाती घटादिनिष्ठैकत्वे समानाधिकरणे, घटस्य चाक्षुषगोचरत्वात् तत्स्पर्शस्य च स्पार्शनविषयत्वात्। अद्रव्यद्रव्यसमवेतगोचरस्पार्शनकारणतावच्छेदकीभूतप्रकृष्टत्वजात्या एकत्वनिष्ठत्वाङ्गीकारे द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदकजात्या एकत्ववृत्त्या सह साङ्कर्यस्य सुरगुरुणाऽपि निवारयितुमशक्यत्वेन तादृशप्रकृष्टत्वजात्या महत्त्ववृत्तित्वमेवोपगन्तुमर्हति। तथा च न सङ्करकलुपिततालेशोऽपि, द्रव्यगोचरचाक्षुषप्रत्यक्षनिरूपितकारणतावच्छेदकजात्या एकत्वनिष्ठत्वेन अद्रव्य-द्रव्यसमवेतगुण-जाति-कर्म-विशेषविषयकस्पार्शनप्रत्यक्षनिष्ठकार्यतानिरू-पितकारणतावच्छेदकीभूतप्रकृष्टत्वजात्याश्च महत्त्वनिष्ठत्वेन व्यधिकरणत्वात्। इत्थञ्च नीलत्रसरेणोरुद्भूतस्पर्शवत्त्वेऽपि तादृशप्रकृष्टत्वविशिष्टमहत्त्वविरहात् न तत्स्पर्शस्पार्शनप्रसङ्ग। अत एवोद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्यत्वमव्याहतम्। ततश्च सुष्ठूक्तं 'तमस उद्भूतरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभाव एव बाधक' इति [दृश्यतां १२५ तमे पुटे] स्थितम्।

▶ वल्लभा ◀

के सबब यह भी कहा जा सकता है कि गुणादि के स्पार्शन प्रत्यक्ष मे विजातीय एकत्व कारण है और उसका अभाव होने से त्रसरेणु के स्पर्श का स्पार्शन प्रत्यक्ष होता नहीं है। अत इन कल्पनाओ की अपेक्षा उचित तो यही है कि त्रसरेणु के स्पर्श को अनुद्भूत माना जाय। निमित्त विशेष के सहयोग से अनुद्भूत स्पर्श भी उत्कट स्पर्श का जनक हो सकता है। अत त्रसरेणु के अनुत्कट स्पर्श से भी चतुरणुक मे उद्भूत स्पर्श की उत्पत्ति मुमकिन है। अत उद्भूत नीलरूप त्रसरेणु मे उद्भूत स्पर्श का व्यभिचारी सिद्ध होता है। अतएव उद्भूतस्पर्शाभाव भी अन्धकार मे उत्कटनीलरूपाभाव का व्याप्य या साधक हो नहीं सकता। इसलिए 'नील तम' इस प्रतीति से उद्भूत नील रूप का अङ्गीकार करने मे कोई दोष नहीं है। इसलिए रूपवत्त्व हेतु अन्धकार मे द्रव्यत्व का साधक हो सकता है। अत अन्धकार को द्रव्यात्मक मानना ही सुसङ्गत है।

तमोभाववाद मे साङ्कर्य का आपादन

नैयायिक :- अथ०। द्रव्यान्य ऐसे द्रव्यसमवेत की स्पार्शनकारणता की अवच्छेदक प्रकृष्टत्वजाति को एकत्ववृत्ति मानने पर साङ्कर्य दोष प्रसक्त होने से उसे महत्त्वगत मानना ही उचित है। साङ्कर्य दोष इस तरह समझा जा सकता है - स्वतन्त्र मत मे वायु के स्पर्श का स्पार्शन साक्षात्कार होता है। द्रव्यान्य द्रव्यसमवेत के स्पार्शन प्रत्यक्ष की कारणतावच्छेदक प्रकृष्टत्व = प्रकर्ष जाति को एकत्वसङ्ख्यावृत्ति मानने पर वायुनिष्ठ एकत्व मे तादृश जाति रहेगी। किन्तु वायु का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होने से वायुगत एकत्वसङ्ख्या मे द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदक जाति रहती नहीं है। पाटितपट के सूक्ष्म अवयव का चाक्षुष प्रत्यक्ष होने से पाटितपटसूक्ष्मावयवगत एकत्व मे चाक्षुष प्रत्यक्ष की कारणतावच्छेदक जाति रहती है मगर पाटित पट के सूक्ष्म अवयव के स्पर्श का स्पार्शन साक्षात्कार नहीं होने से द्रव्यान्य ऐसे द्रव्यसमवेत के स्पार्शन प्रत्यक्ष की कारणतावच्छेदक जाति पाटितपटसूक्ष्मावयवगत एकत्व सङ्ख्या मे नहीं रहती। परस्पर असमानाधिकरण ये जातियाँ घटगत एकत्वसङ्ख्या मे परस्पर समानाधिकरण है, क्योंकि घट का चाक्षुष प्रत्यक्ष भी होता है और घट

तथापि सा जातिर्महत्त्वे कल्प्यता इय त्वेकत्वे इत्यत्रैव विनिगमकमन्वेषणीयम्।

◆ हेमलता ◆

तमोद्रव्यवादी प्राह - तथापीति। द्रव्येतर-द्रव्यान्यसमवेतगोचरस्पार्शनकारणतावच्छेदकप्रकृष्टत्वजात्या एकत्ववृत्तित्वोपगमे स्वतन्त्रमतानुसारेणैकत्ववृत्त्या द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदकीभूतजात्या सम साङ्कर्यस्य वाधकत्वेऽपीति। सा = द्रव्यगोचरचाक्षुपनिरूपितकारणतावच्छेदकीभूता जाति महत्त्वे = महत्त्ववृत्तिः कल्प्यता = स्वीक्रियता इय = द्रव्येतर-द्रव्यसमवेतगुणादिगोचरस्पार्शनकारणतावच्छेदकजातिः प्रकृष्टत्वाभिधाना तु एकत्वे = एकत्वसङ्ख्यावृत्तिः इत्यत्रैव विनिगमक = नियामक अन्वेषणीय = मार्गणीयम्। यथा स्वतन्त्रमते एकत्ववृत्त्या द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदकीभूतया जात्या सम साङ्कर्यस्य निराकरणकृते नैयायिकसिद्धान्तिना द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतगुणादिस्पार्शनकारणतावच्छेदकप्रकर्पजात्या एकत्ववृत्तित्वाङ्गीकारे साङ्कर्यपरिहारकृते द्रव्यचाक्षुपनिष्ठकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकजात्या महत्त्ववृत्तित्व कल्पयितु नाशक्यम्। एतेन द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदकजातिरेकत्वे एव न तु महत्त्वे, द्रव्यान्यसत्स्पार्शनकारणतावच्छेदकजातिश्च महत्त्वे एव न त्वेकत्वे इति प्रत्युक्तम्, द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदकजातिर्महत्त्वे एव न त्वेकत्वे, द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणतावच्छेदकप्रकर्पजातिश्चैकत्ववृत्तिरेव न तु महत्त्ववृत्तिरित्यस्यापि विनिगमकाभावेन सुवचत्वात्। न चेवमपि सङ्करोऽपरिहार्य इति वक्तव्यम् तयोर्व्यधिकरणत्वात्। अत एव नीलत्रसरेणोरुद्भूतस्पर्शवत्त्वेऽपि द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणतावच्छेदकप्रकृष्टत्वजातिविशिष्टमहत्त्वशून्यत्वान्न तत्स्पर्शविषयकस्पार्शनप्रसङ्गः इत्यपि प्रत्युक्तम्, नीलत्रसरेणुसमवेतैकत्वस्य द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणताश्रयत्वसम्भवात्। न च तस्य तत्कारणत्वेऽपि द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणतावच्छेदकीभूतप्रकृष्टत्वजातिशून्यत्वान्न नीलत्रसरेणुस्पर्शस्पार्शनप्रसङ्गः इत्यारेकणीयम् नीलत्रसरेणुसमवेतैकत्वे घटादिसमवेतैकत्ववैजात्यकल्पने मानाभावात्। द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणताच्छेदकप्रकृष्टत्वविशिष्टैकत्वस्य घटवत् नीलत्रसरेणावपि सम्भवे वाधकाभावात् नीलत्रसरेणोरुद्भूतस्पर्शवत्त्वे तत्स्पर्शस्पार्शनस्य वज्रलेपायमानत्वात्। न चैवमस्ति। एतेन नीलत्रसरेणोरुद्भूतस्पर्शवत्त्वे तत्स्पर्श स्पार्शनस्य विरह एव वाधक इति प्रदर्शितम्। अत एवोद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्यत्वमपि निराकृतम्। अतो न तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावस्य वाधकत्वम्। अत एव तमसो द्रव्यत्व रूपवत्त्वाद्धेतोरव्याहतमिति तमोद्रव्यवादिनः तात्पर्यम्।

केचित्त्वत्र 'सा जातिः = द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनजनकतावच्छेदिका जातिः, इय = द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदकीभूता जातिरिति विवृण्वन्ति। तच्चिन्त्यम्।

► वल्लभा ◄

के स्पर्श का स्पार्शन प्रत्यक्ष भी होता है। परस्पर व्यधिकरण धर्म के एकत्र समावेशात्मक साङ्कर्य के परिहारार्थ यही मानना मुनासिव ह कि द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतविषयकस्पार्शनजनकतावच्छेदक प्रकृष्टत्व जाति महत्त्वगत है, न कि एकत्वगत। ऐसा होने पर साङ्कर्य दोष की सम्भावना नही हे। इसका कारण यह है कि स्वतन्त्रमतानुसार द्रव्यविषयक चाक्षुप जनकतावच्छेदक जाति द्रव्यगत एकत्व सख्या मे रहती हे ओर द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतगोचरस्पार्शनकारणतावच्छेदकीभूत जाति द्रव्यगत महत्त्व मे रहती हे आर घटसमवेतस्पर्शविषयकस्पार्शनहेतुतावच्छेदक जाति घटवृत्ति महत्त्व = महत्परिमाण मे समवेत हे। दोनो व्यधिकरण ही हे, समानाधिकरण = एकाधिकरणवृत्ति नही हे। इस तरह द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणतावच्छेदक जाति को महत्त्ववृत्ति मानने मे साङ्कर्य दोष अप्रसक्त हे। जव कि उसे एकत्वसख्यावृत्ति मानने पर सङ्कर अपरिहार्य है। अत तादृश प्रकृष्टत्व जाति की एकत्वगत मान्यता का साङ्कर्य ही विनिगमक (=वाधक) है एव महत्त्वगत मान्यता मे साङ्कर्याभाव ही विनिगमक = साधक है। उद्भूतस्पर्शाश्रय नील त्रसरेणु मे तादृश प्रकृष्टत्वजाति नही होने से नीलत्रसरेणुस्पर्शविषयक रपार्शन पत्यक्ष का आपादन किया जा नही सकता। अत उद्भूतनीलरूपाश्रय त्रुटि मे भी उत्कट नील रूप उद्भूत स्पर्श का व्यभिचारी नही है। अत अन्धकार मे उद्भूत नीलरूप मानने मे उद्भूतस्पर्शाभाव = व्यापकअभाव ही वाधक हे। व्यापकाभाव से व्याप्याभाव की सिद्धि होती है। निष्कर्प - अन्धकार द्रव्य नही है।

नैयायिक मत मे विनिगमनाविरह

मीमासक ·- **तथापि।** उस्ताद! आपकी इस रामकहानी का मूलाधार हे द्रव्यविषयकचाक्षुपकारणतावच्छेदक जाति को एकत्वगत मानना। मगर द्रव्यगोचरचाक्षुपजनकतावच्छेदक जाति को महत्त्वगत एव द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतरपार्शनकारणतावच्छेदक प्रकर्प जाति को एकत्ववृत्ति क्यो न मानी जाय? इस विषय का विनिगमक = निर्णायक कौन होगा? यही अभी तक खोज का विषय वना हुआ हे। मतलव यह हे कि घटगत एकत्व सख्या मे द्रव्यविषयकचाक्षुपकारणतावच्छेदक जाति के साथ द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणतावच्छेदक प्रकृष्टत्व जाति के साङ्कर्य के निवारणार्थ जैसे स्वतन्त्र मत के अनुसार द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदक वेजात्य को एकत्वगत एव द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतगोचरस्पार्शनजनकतावच्छेदक प्रकृष्टत्व जाति को महत्त्वगत मानी जाती हे। ठीक वैसे साङ्कर्य के परिहारार्थ द्रव्यगोचरचाक्षुपकारणतावच्छेदक

अथ द्रव्यान्यसत्त्वाचत्वावच्छिन्नं प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन त्वाचाभावस्य प्रतिबन्धकत्वात् त्रसरेणोरस्पार्शनत्वादेव

◆ हेमलता ◆

ननु द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदककत्वनिष्ठजातिव्याप्यैव द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनजनकतावच्छेदकजातिरभ्युपेयता, वायोश्चाक्षुषत्वं तु विषयविधया वायोश्चाक्षुषाऽहेतुत्वादिति चेत्? तर्ह्येवमेव त्रुटिस्पर्शाऽस्पार्शनस्याप्युपपत्तेर्द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातेर्द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनजनकतावच्छेदकजातिव्याप्यत्वे विनिगमकाभावः विषयस्य तत्तद्व्यक्तित्वेन कारणताया मानाभावश्च।

यत्तु महत्त्वोद्भूतस्पर्शयोः कारणत्वकल्पनालाघवात्त्वक्संयुक्तत्वाचवत्समवायत्वेन द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनं प्रति प्रत्यासत्तित्वान्न त्रुटिस्पर्शस्पार्शनमिति, तन्न, आश्रयत्वाचस्य नियमतः पूर्वमभावेन त्वाचवत्त्वस्य विशेषणत्वाऽयोगात्, उपलक्षणत्वे घटोत्पत्तिद्वितीयक्षणे स्पर्शादिस्पार्शनापत्तेः। कालभेदेनैकस्यामेव व्यक्तावनन्तत्वाचाना सम्भवेन तावत्त्वाचप्रवेशापेक्षया महत्त्वोद्भूतस्पर्शयोरेव प्रत्यासत्तिमध्ये प्रवेशस्य त्रुटिस्पर्शेऽनुद्भूतत्वकल्पनस्य चोचितत्वात्।

अथ व्यासज्यवृत्तिगुणास्पार्शननिर्वाहाय प्रकृष्टमहत्त्वोद्भूतस्पर्शयोः प्रत्यासत्त्यघटकत्वेन लाघवाद् लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्यान्यसत्त्वाचत्वावच्छिन्नं प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन त्वाचाभावस्य = लौकिकविषयत्वावच्छिन्नत्वाचाभावस्य प्रतिबन्धकत्वात्। तथाहि 'घटं स्पृशामी'त्यत्र लौकिकविषयतया त्वाचप्रत्यक्षं घटे वर्तते, लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकतदभावश्च पटे वर्तते। तत्समवेतस्तु घटसयोगादिः तस्य द्विष्ठत्वात्। स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन लौकिकत्वाच घटस्पर्श-कर्मादौ वर्तते इति लौकिकविषयतया तत्र स्पार्शनमुपजायते। तदानीं स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकःत्वाचाभावस्तु घटपटसंयोग-पटस्पर्शादौ वर्तते, घटत्वक्संयोगदशायां पटत्वाचविरहेण घटपटसंयोग-पटस्पर्शादिस्पार्शनत्वं तु न यौक्तिकमिति न तद्वृत्तिस्पर्शस्पार्शनानुपपत्तिः। तथा च त्रसरेणो अस्पार्शनत्वात् = त्वगिन्द्रियजन्यलौकिकप्रत्यक्षाऽविषयत्वात् एव न तद्वृत्तिस्पर्शस्पार्शनप्रसङ्गः = त्रसरेणुसमवेतस्पर्श-संयोगादिस्पार्शनापत्तिः, लौकिकविषयतासम्बन्धेन कार्याधिकरणत्वेनाभिमते त्रुटिस्पर्शादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन प्रतिबन्धकस्य त्रुटिस्पार्शनाभावस्य सत्त्वात्, प्रतिबन्धकाभावस्याऽपि कारणत्वेनापादकविरहादेव न त्रसरेणुस्पर्शादिस्पार्शनमापादयितुमर्हति। अतो नोद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शव्याप्यत्वे व्यभिचारः। अत एव 'नीलं तमः' इति प्रतीतेः भ्रमत्वं तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे चोद्भूतस्पर्शाभावस्य बाधकत्वञ्च व्यवतिष्ठेते। ततश्च न तमसो द्रव्यत्वसिद्धिः कल्पकोटिभिरपि स्वात्मलाभक्षमेति फक्किकार्थः।

▶ वल्लभा ◀

जाति को महत्त्वगत एवं द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतगोचरस्पार्शनकारणतावच्छेदक प्रकर्ष जाति को एकत्ववृत्ति मानी जा सकती है, क्योंकि इन दोनों पक्ष में न तो कोई प्रमाण बाधक है और न तो कोई साधक। अर्थात् घटद्रव्यविषयकचाक्षुषकारणतावच्छेदक जाति घटगत महत्त्व में रहती है एवं घटसमवेतस्पर्शविषयकस्पार्शनकारणतावच्छेदक प्रकृष्टत्व जाति घटगत एकत्व में रहती है - ऐसा मानने से भी साङ्कर्य दोष निराकृत हो जाता है। अतः द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनकारणतावच्छेदक प्रकृष्टत्व जाति को एकत्वगत मानने में साङ्कर्य दोष की सम्भावना रहती नहीं है। जैसी एकत्व संख्या घट में रहती है तादृश ही एकत्व संख्या नील पट के त्रसरेणु में भी रहती है। अतः जैसे घटगत एकत्वसङ्ख्या द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतविषयक स्पार्शन की कारणतावच्छेदक जाति का आश्रय है ठीक वैसे ही नील त्रसरेणु में समवेत एकत्व संख्या भी तादृश प्रकर्ष का अधिकरण बनेगी। अतएव घटस्पर्श के स्पार्शन प्रत्यक्ष की भाँति नीलत्रुटिस्पर्श के स्पार्शन साक्षात्कार की आपत्ति वज्रलेपायमान बनी रहती है। मतलब कि नील त्रसरेणु में उद्भूत नीलरूप का व्यापक उद्भूत स्पर्श एवं अद्रव्यस्पार्शनकारणतावच्छेदक प्रकर्ष जाति दोनों रहने से नील त्रसरेणु के स्पर्श का स्पार्शन प्रत्यक्ष अवश्य होना चाहिए। मगर तादृश स्पार्शन होता नहीं है - यह सर्वविदित है। इसलिए विषयविधया कारणीभूत स्पर्श का नील त्रसरेणु में अभाव ही मानना मुनासिब है। ऐसा होने पर तो उत्कट नील रूप उत्कट स्पर्श का व्यभिचारी सिद्ध हो जायेगा, क्योंकि उद्भूतस्पर्शशून्य त्रुटि में भी उद्भूत नील रूप रहता है। उद्भूत नील रूप में उत्कट स्पर्श की व्याप्ति नहीं होने की वजह अन्धकार में उद्भूत नीलरूप के स्वीकार में उद्भूतस्पर्शाभाव बाधक कैसे हो सकेगा? क्योंकि उद्भूत स्पर्श तो उत्कट नीलरूप का व्यापक नहीं है। अव्यापक के अभाव से व्याप्याभाव की सिद्धि नहीं की जा सकती। अतएव 'नीलं तमः' यह प्रतीति भी प्रमितिस्वरूप सिद्ध होती है। इसलिए रूपवत्त्व हेतु के द्वारा अन्धकार में द्रव्यत्वसिद्धि निर्बाध है। निष्कर्ष - अन्धकार द्रव्यात्मक है।

☛ त्रसरेणु के स्पार्शन प्रत्यक्ष की आपत्ति ☚

अथ०। यदि नैयायिक की ओर से यह कहा जाय कि→'आश्रय के स्पार्शन प्रत्यक्ष का अभाव आश्रित के स्पार्शन प्रत्यक्ष में प्रतिबन्धक होता है। नव्यन्याय की परिभाषा में प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव इस तरह कहा जा सकता है कि द्रव्यान्य सत् के त्वाचसाक्षात्कार के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से स्पार्शनाभाव प्रतिबन्धक होता है। जैसे परमाणुस्पर्श के स्पार्शनसाक्षात्कार का विषयतासम्बन्ध से अधिकरणविधया

न तद्वृत्तिस्पर्शस्पार्शनप्रसङ्ग इति चेत्? न, उद्भूतस्पर्शाभावस्य प्रतिबन्धकत्वेन तत्राऽनुद्भूतत्वकल्पनस्यैवौचित्यात्।

त्रुटितत्स्पर्शौ गृह्येते इति केचित्, तन्न, विवेकस्याऽनिर्वचनात्।

◆ हेमलता ◆

यद्यपि लौकिकविषयतावच्छिन्नत्वाचाभावस्य प्रतिबन्धकत्वे उपनीतभानप्रयोज्यविषयत्वभिन्नविषयत्वसम्बन्धावच्छिन्न-त्वगिन्द्रियजन्यसाक्षात्कारत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावत्वस्य प्रतिबन्धकतावच्छेदकत्व स्यात्। तदपेक्षया समवायसम्बन्धावच्छिन्नोद्भूतस्पर्शत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावत्वस्य तत्त्वे लाघवम्। वायोरस्पार्शनत्वमपि साम्प्रदायिकमिति न लौकिकविषयतावच्छिन्नत्वाचाभावस्य प्रतिबन्धकत्व युक्त तथापि स्फुटत्वात्तो दोषावुपेक्ष्य तमोद्रव्यवादी नैयायिकमत प्रकारान्तरेण दूषयितुमाह-नेति। समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य उद्भूतस्पर्शाभावस्य एव स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन द्रव्यान्य-सत्त्वाचत्वावच्छिन्न प्रति प्रतिबन्धकत्वेन तत्र = त्रुटिस्पर्शे अनुद्भूतत्वकल्पनस्येवोचित्यादिति। इत्यश्च घटाकाशसयोगादिव्यासज्यवृत्तिगुण-स्पार्शनप्रसङ्गोऽपि प्रत्याख्यात घटसयोगाश्रयाकाशस्य समवायावच्छिन्नोद्भूतस्पर्शाभावाश्रयत्वेन तादृशसयोगादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन प्रतिबन्धकस्य सत्त्वात्। न च तथापि घटाद्येकैकप्रतियोगिकत्वक्सयोगदशाया घटपटसयोगादिस्पार्शन दुर्निवारमिति वाच्यम्, सयोगाद्याश्रयत्वावच्छेदेन त्वक्सयोगस्य द्रव्यान्यसत्त्वाचत्वावच्छिन्न प्रति नियामकत्वाभ्युपगमात्। तादृशनियमस्य फलवलकल्प्यत्वान्न गौरवस्य दोषत्वम्। ततश्च समवायसम्बन्धावच्छिन्नोद्भूतस्पर्शाभावस्य त्वगिन्द्रियसयुक्तत्रुटिस्पर्शे सत्त्वान्न लौकिकविषयतया द्रव्यान्यसत्त्वाचत्वावच्छिन्नोत्पत्त्यापत्तिः। एवञ्च नीलत्रसरेणावुद्भूतनीलरूपस्योद्भूतस्पर्शाऽव्यभिचारित्वान्न तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावस्य बाधकत्व येन 'नील तम' इति प्रतीतेः भ्रमत्व स्यात्। ततश्च रूपवत्त्वस्य स्वरूपासिद्धिकलङ्कपङ्कक्षालितत्वेन तमोद्रव्यत्वसिद्धिरिति भावः।

वस्तुतस्तु घटप्रभासयोगादौ द्रव्यान्य-सत्त्वाचत्वावच्छिन्नप्रतिबध्यतावच्छेदकपराभिमतजातिस्थानीयत्वगऽग्राह्यतास्वभावादेव न स्पार्शनत्वमिति न द्रव्यान्यसत्त्वाचत्वावच्छिन्न प्रति समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्योद्भूतस्पर्शाभावस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन प्रतिबन्धकत्वकल्पनावश्यकीति समाकलितसकलतन्त्रसिद्धान्ताः स्याद्वादिनो वयम्।

ननु यथा घट-तत्स्पर्शयोः स्पार्शनसाक्षात्कारदशाया कपाल-तत्स्पर्शयोः स्पार्शन भवत्येव तथैव चतुरणुक-तत्स्पर्शयोः त्वाचप्रत्यक्षकाले त्रुटितत्स्पर्शौ गृह्येते = स्पार्शनविषयौ भवत एवेति नोद्भूतनीलरूपोद्भूतस्पर्शयोर्व्याप्यव्यापकभावव्याघातः। ततस्तमस उद्भूतनीलरूपवत्त्वे उद्भूतस्पर्शाभावस्यैव बाधकत्वात्, 'तमो नीलमि'ति प्रतीतेर्भ्रमत्वम्। अनेन तमसो द्रव्यत्वमपाकृतम्, तद्धेतोस्स्वरूपासिद्धत्वादिति केचित् तमोऽभाववादिनो वदन्ति।

तन्न चारु, चतुरणुक-तत्स्पर्शस्पार्शनाभ्या त्रुटि-तत्स्पर्शस्पार्शनयोः विवेकस्य = भेदस्य अनिर्वचनात् = निरूपयितुमशक्यत्वात्,। त्रुटि-तत्स्पर्शस्पार्शनयोः चतुरणुक-तत्स्पर्शत्वाचव्यतिरेकेणावधारयितुमशक्यत्वान्न तत्स्वीकर्तुं युज्यते। कपाल-तत्स्पर्शसाक्षात्कारयोस्तु घट-त्स्पर्शस्पार्शनव्यतिरेकेणाऽपि अवधारयितु शक्यत्वात्तत्स्वीकारस्तु सङ्गत एव। यदि कपाल-तत्स्पर्शस्पार्शनवत् अवयवितत्स्पर्शस्पार्शनव्यतिरेकेण त्र्यणुक-त्स्पर्शस्पार्शने स्याता, स्यादेव तदा तयोःप्रामाणिकत्वम्। न चैव भवति। अतो न त्रसरेणु-तत्स्पर्शयोःस्पार्शनत्वमिति त्रसरेणुस्पर्शस्यानुद्भूतत्वमेव

▶ वल्लभा ◀

अभिमत हे परमाणुस्पर्श, जिसमे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से स्पार्शनाभाव रहता है, क्योकि परमाणु का स्पार्शन साक्षात्कार नही होने से स्व = त्वाचाभाव के आश्रय = परमाणु मे समवेत परमाणुस्पर्श मे स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से रह कर वहाँ लौकिकविषयतासम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले परमाणुस्पर्शविषयक स्पार्शन प्रत्यक्ष का प्रतिबन्धक बनता है। ठीक इसी तरह त्रसरेणु का स्पार्शन नही होने की वजह त्रसरेणुरपर्शगोचर स्पार्शनप्रत्यक्ष की आपत्ति को भी अवकाश नही है। स्व = त्रसरेणुरपार्शनाभाव के आश्रय = त्रसरेणु मे समवेत रपर्श मे लोकिक विषयता सम्बन्ध से स्पार्शन प्रत्यक्ष उत्पन्न हो नही सकता। अर्थात् नील त्रसरेणु के स्पर्श का प्रत्यक्ष हो नही सकता। इसलिए त्रसरेणु के स्पर्श को उद्भूत मानने पर भी उसके त्वाच साक्षात्कार की आपत्ति दी जा नही सकती। इसलिए उद्भत नीलरूप मे उत्कट स्पर्श की व्याप्ति अवाधित हे। अतएव अन्धकार मे उद्भूतस्पर्शाभाव उत्कट नीलरूप का वाधक = व्यावर्तक होता है। इसलिए रूपवत्त्व हेतु से अन्धकार मे द्रव्यत्वसिद्धि वाधित है'← तो यह असङ्गत है, क्योकि 'त्रसरेणुरूप आश्रय का प्रत्यक्ष क्यो होता नही है?' इसके उत्तर मे यही कहना होगा कि उद्भूतस्पर्शाभाव उसके स्पार्शन प्रत्यक्ष का प्रतिवन्धक हे। अत त्रसरेणु मे उद्भूतस्पर्शाभावस्वरूप प्रतिवन्धक की सत्ता उपपन्न करने के लिए उसके स्पर्श को अनुद्भूत मानना ही मुनासिव हे क्योकि यदि उसके स्पर्श को उद्भूत माना जायेगा तो उसके स्पार्शन साक्षात्कार मे उद्भूतस्पर्शाभाव प्रतिवन्धक न वनने से महत्त्वविशेषाभाव, एकत्वविशेषाभाव आदि अनेको मे विनिगमनाविरहवश उसके स्पार्शन की प्रतिवन्धकता माननी होगी, जो एक महागोरवग्रस्त कल्पना होगी। इसकी अपेक्षा लाघव से त्रुटिस्पर्श को ही अनुद्भूत मानना उचित हे। इस परिस्थिति मे उद्भूतनीलरूप मे उत्कटस्पर्श का व्यभिचार अपरिहार्य होगा। अत एव उत्कटस्पर्शाभाव अन्धकार के उद्भूतनील रूपवाले होने मे वाधक नही हो सकता। इसलिए रूपवत्त्व हेतु अन्धकार मे द्रव्यत्वसाधक हे।

यत्तु नीलरूपवत्त्वे तमसः पृथिवीत्वापत्तिः नीलत्वावच्छिन्नं प्रति पृथिवीत्वेन हेतुत्वादिति तन्न, अवयवनीलादिनैवावयविनीलाद्युपपत्तौ पृथिवीत्वेन तत्समवायिकारणत्वाभावात्, जन्यसन्मात्रसमवायिकारणतावच्छेदकीभूतद्रव्यत्वाभावादेव स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेनावयवनीलादिमति रूपादौ नीलाद्यनुपपत्तेः।

◆ हेमलता ◆

कल्पनीयम्। एवञ्चोद्भूतनीलरूपोत्कटस्पर्शयोर्व्याप्य-व्यापकभावबाधान्नोद्भूतस्पर्शशून्यत्वमन्धकारस्योद्भूतनीलरूपवत्त्वे बाधकम्। तमसि पवनाभिव्यज्यमानः शीतस्पर्शोऽप्यनुभूयत एव। अत उद्भूतस्पर्शवत्त्वमपि तत्र' इति साम्प्रदायिकाः।

यत्तु नीलरूपवत्त्वे तमसः पृथिवीत्वापत्तिः, समवायेन नीलत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन पृथिवीत्वेन रूपेण हेतुत्वात्। प्रयोगस्त्वेवं नीलं तमः पृथिवी नीलरूपवत्त्वात् नीलघटवत्। असिद्धस्यापि पक्षत्वमत्र इदं द्रष्टव्यम्। तदनुपगमे तु - यदि तमो नीलं स्यात् पृथिवी स्यात् अन्यथा नीलं न स्यादिति प्रसङ्गापादनं द्रष्टव्यम्। कार्यस्य स्वसमवायिनि समवायिकारणतावच्छेदकसाधकत्वादित्यापादनबलम्। न च पृथिवीत्वं तमसि स्वीक्रियते तमोद्रव्यवादिभिः। अतः 'नीलं तमः' इति प्रतीतेर्भ्रमत्वमकामेनाऽपि मन्तव्यम्। ततो नान्धकारस्य द्रव्यत्वमिति यत्तुमताकूतम्।

स्याद्वादिनये स्वभावविशेषस्यैव नीलनियामकत्वान्नेयमापत्तिः तथापि नैयायिकैकदेशिमतानुसारेण तामपनोदयति तमोद्रव्यवादी-नेति। अवयवनीलादिनैवेति। एवकारेण पृथिवीत्वविशिष्टावयवनीलादिव्यवच्छेदः कृतः। अवयविनीलाद्युपपत्तौ =अवयविसमवेतनीलरूपाद्युत्पादसम्भावनायां पृथिवीत्वेन रूपेण तत्समवायिकारणत्वाभावात् = अवयविनीलादिसमवायिकारणत्वायोगात्। समवायेनाऽवयविनि नीलादिरूपं प्रति स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेनावयवनीलादेः कारणत्वेनैवावयविनीलाद्युत्पादनिर्वाहे तादात्म्येन पृथिवीत्वेन पृथिव्याः तत्समवायिकारणत्वाऽकल्पनात्।

ननु स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेनावयवनीलरूपमवयविनि वर्तते तथैव स्वस्मिन्नपि वर्तते स्वस्य = अवयवनीलरूपस्य समवायिनि = अवयवेऽवयविन इव स्वस्यापि समवेतत्वाऽविशेषात्। ततश्चावयविनीवाऽवयवनीलरूपेऽपि नीलरूपसम्भवः प्रसज्येत। तन्निराकरणाय समवायेन नीलरूपं प्रति तादात्म्येन पृथिव्याः समवायिकारणत्वस्यावश्यकत्वादित्याशङ्कापरिहारकृते तमोद्रव्यवादी नैयायिकैकदेशिमतानुसारेणाऽऽह- जन्यसन्मात्रसमवायिकारणतावच्छेदकीभूतद्रव्यत्वाभावादेव = समवायसम्बन्धावच्छिन्नया जन्यसन्मात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नया कार्यतया निरूपितायाः तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नायाः कारणताया अवच्छेदकधर्मस्य द्रव्यत्वस्य विरहादेव, स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन अवयवनीलादिमति रूपादौ = अवयवनीलरूपादौ नीलाद्यनुपपत्तेः = नीलादिरूपोत्पादविरहोपपत्तेः। अवयवनीलरूपस्य स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन स्वस्मिन् सत्त्वेऽपि सकलजन्यभावसमवायिकारणतावच्छेदकीभूतद्रव्यत्वस्य समवायेन विरहादेव न तत्र नीलादिकमुपजायते, सामान्यसामग्रीसमवहिताया एव विशेषसामग्र्याः कार्यविशेषजनकत्वनियमात्। एतेनावयवनीलादिनैवावयवितमोनीलोत्पादकल्पने जन्यसन्मात्रस्य ससमवायिकारणकत्वनियमो भज्येतेत्यपि निरस्तम्। ततश्चान्धकारावयवनीलरूपादेवावयवितमोनीलोत्पादसम्भवेन तमसि पृथिवीत्वकल्पनाया अनावश्यकत्वात्, तमःपरमाणुनीलरूपस्य नित्यत्वादेव न तत्र कारणगवेषणम्। ततश्च तमोद्रव्य-

► वल्लभा ◄

★★ पृथिवीत्वेन नीलकारणता अस्वीकार्य - तमोभाववादी ★★

यत्तु०। तमोभाववादी के मन्तव्य के खिलाफ नैयायिक ओर से यह कहा जाय कि→ 'अन्धकार में नील रूप मानने पर तो अन्धकार में पृथिवीत्व की आपत्ति आयेगी, क्योंकि नीलरूपमात्र के प्रति पृथिवी कारण है। अतः नीलरूपाश्रय अन्धकार में नीलकारणतावच्छेदकीभूत पृथ्वीत्व का परिहार कैसे किया जा सकेगा?'←तो यह बेबुनियाद है, क्योंकि अवयवी में नीलरूप की उत्पत्ति अवयव के नीलरूप से ही मुमकिन है, तो फिर पृथ्वीत्वेन रूपेण नीलरूपसमवायिकारणता की कल्पना करने की आवश्यकता क्या है? कपाल में नीलरूप है वही स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से अवयवी घट में नील रूप को उत्पन्न करेगा। स्व = कपालीय नीलरूप, उसका समवायी = कपाल, उसमें समवेत है घट। अतः स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से कपालीय नीलरूप घट में रहेगा और वहाँ समवाय सम्बन्ध से नील रूप उत्पन्न होगा। इस तरह कार्यकारणभाव मुमकिन होने से पृथ्वीत्व को नीलरूपसमवायिकारणतावच्छेदक मानने की कोई जरूरत नहीं है। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि→'कपालादि अवयव का नील रूप जैसे स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्ध से घट में रहता है ठीक वैसे ही अपने में भी उसी सम्बन्ध से रह सकता है, क्योंकि स्व = कपालादिनीलरूप, उसका समवायी = कपालादि, उसमें घट की भाँति कपालीय नीलरूप आदि भी समवेत है। अतः घट की भाँति कपालादिनीलरूप में भी नीलरूप की समवायसम्बन्ध से उत्पत्ति होने लगेगी। इसके निराकरणार्थ पृथ्वीत्व को नीलसमवायिकारणतावच्छेदकधर्मविधया मान्य करना जरूरी है'←मगर यह इसलिए निराधार है कि जन्यभावमात्र के प्रति तादात्म्यसम्बन्ध से द्रव्य समवायिकारण होने की वजह कपालीय नीलरूप आदि में नीलरूप आदि की उत्पत्ति को अवकाश रहता नहीं है। कपालीय नीलरूप आदि में जन्यभावसमवायिकारणतावच्छेदक द्रव्यत्व ही नहीं है, क्योंकि वह गुण है। अतः अवयवरूपादि में नीलादि की उत्पत्ति की आपत्ति को अवकाश नहीं रहेगा। इसलिए अन्धकार में नीलरूप

नीलविशेष एव पृथिवीतमसोः समवायिकारणत्व रसविशेष इव पृथिवीजलयोः, अन्यथा रसत्वावच्छिन्न प्रति जलत्वेन समवायिकारणत्वाद्रसवत्याः पृथिव्या जलत्वापत्तेः इत्यन्ये।

◆ हेमलता ◆

स्योद्भूतनीलरूपवत्त्वेऽपि नैयायिकैकदेशिमतानुसारेणाऽपि न पृथिवीत्वप्रसङ्गो न वा तसमि द्रव्यत्वानुपपत्तिरिति निष्कर्षः।

अथ नीलजनकविजातीयतेज·सयोगस्य जलादावपि सम्भवात् तत्र नीलानुत्पत्तये नीलत्वावच्छिन्न प्रति पृथिवीत्वेन हेतुत्व कल्प्यत इति चेत्? न, तथाप्युपस्थितविजातीयनीलत्वावच्छिन्न प्रति एव तद्धेतुत्वोचित्यात्, व्यापकधर्मस्य व्याप्यधर्मेणाऽन्यथासिद्धेः, अन्यथाऽनुत्पाद्येऽपि स्वरूपयोग्यतालक्षणकार्यताभ्युपगमप्रसङ्गात्। इत्थमेव विजातीयानुष्णाशीतस्पर्शस्य पृथिवीत्व जनकतावच्छेदकमित्युपपद्यते।

ननु तमसो नीलरूपवत्त्वे पृथिवीत्वमेव स्यान्नातिरेक इति चेत्? न रूपपरावृत्तिप्रयोजकपृथिवीत्वाभावस्य तेजसीव तमस्यपि नैयायिकस्यापि दुरपह्नवत्वात्।

वाचस्पतिमिश्रास्तु न्यायकणिकाया 'नापि पार्थिव तमः, तद्गुणाना गन्धादीनामभावात्। 'ननु तथैव गन्धादिव्याप्त कृष्णमपि रूप तन्निवृत्तावसदित्युक्तम्' 'तत्कि पवनेऽनुष्णाशीतस्पर्शोऽसन्नेव? गन्धादिव्याप्तस्य तस्य पृथिव्यामेवोपलब्धेः पवने च तेषामभावात्'। 'पाकजस्य स्पर्शस्य गन्धादिव्याप्तत्वम्, अयन्त्वपाकज· स्पर्शो वायवीय' इति चेत्? न इहापि साम्यात्। न हि तमसोऽपि कालिमा पाकज·, प्रत्यक्षश्चोभयत्रापि समानम्। तम·परमाणवश्च पार्थिवादिपरमाणव इव द्व्यणुकादिक्रमेण महान्त तमोऽवयविन पार्थिवमारभन्ते। तच्च रूपविशेषे सत्यनेकद्रव्यत्वान्महत्त्वाद्वा चाक्षुषमिति न तदुत्पत्त्यनवक्लृप्तिः। न च तस्य दिवाऽऽरम्भसम्भवः शाश्वतिकविरोधे सति तेजसि। न जातु स्पर्शवद्वेगवन्मुद्गरादिघाते परपन्थिनि कुम्भारम्भाय भवन्ति मृदवयवाः बिभ्रति वा कुम्भमारब्धमिति। अत एव हि दिवाऽपि निरस्ततमसि गिरिगुहायामारभन्त एव' [न्या क पृ ५५] इत्यादिकमाहु।

नीलविशेषे =विजातीयनीलत्वावच्छिन्न प्रति एव पृथिवीतमसो समवायिकारणत्वम्। दृष्टान्तेनेद समर्थयति रसविशेषे = विजातीयरसत्वावच्छिन्न प्रति इव पृथिवीजलयो । यथा विजातीयरसो जलजन्यः तदन्यो विजातीयरसश्च पृथिवीजन्य·, न तु रसत्वावच्छिन्न प्रति जलत्वेन पृथिवीत्वेन वा समवायिकारणता व्यतिरेकव्यभिचारात्। प्रकारान्तरेणात्र विपक्षबाधमुपदर्शयति - अन्यथा= रसविशेष प्रति पृथिवीजलयोः समवायिकारणत्वानुपगमे रसत्वावच्छिन्न प्रति = जन्यरसत्वावच्छिन्ने जलत्वेन रूपेण समवायिकारणत्वात् रसवत्या पृथिव्या जलत्वापत्ते, कार्यस्य स्वसमवायिनि स्वसमवायिकारणतावच्छेदकधर्मसाधकत्वात्। एवमेव नीलत्वावच्छिन्न प्रति पृथिवीत्वेन समवायिकारणत्वे तमसोऽपि पृथिवीत्वप्रसङ्गः। अतोऽतिरिक्तमोद्र-व्यवादिभिः विजातीयनील प्रत्येव पृथिवीत्वेन कारणत्वमुपेय न तु नीलत्वावच्छिन्न प्रति। नीलान्तर प्रति च तमस्त्वेन तत्त्वमिति न तमसः पृथिवीत्वप्रसङ्ग इत्यन्ये तमोद्रव्यवादिनो नव्यनैयायिका वदन्ति।

अन्ये इत्यनेन स्वास्वरसः प्रदर्शितः। तद्बीजञ्च नानाकार्यकारणभावकल्पना-नीलत्वव्याप्यवैजात्यद्वयकल्पनागौरवम्। किञ्च नीलत्वावच्छिन्न प्रति समवायिकारणतावच्छेदकधर्मान्वेषणमपि दुर्घट स्यात्। तदनुरोधेन 'यद्विशेषयो· कार्यकारण भावः स तत्सामान्ययोरि'तिन्यायस्याऽप्यपक्षेपप्रसङ्गः। तत ईश्वरसिद्धिप्रभृतिकमपि न घटाकोटिमश्चेतेत्यादिक बहु विप्लवेत।

► वल्लभा ◄

का विना किसी हिचकिचाहट के मान्य करना आवश्यक है। जिसके फलरूप मे अन्धकार मे द्रव्यत्व की सिद्धि निराबाध है।

▶▶ नीलविशेष के प्रति कारणता - अन्यमत ◀◀

नीलवि०। तमोद्रव्यवादी अन्य विद्वानो की यह राय है कि नीलविशेष के प्रति पृथ्वीत्वेन समवायिकारणता है और अन्य नीलरूपविशेष के प्रति तमस्त्वेन समवायिकारणता है। यह ठीक उसी तरह सगत हो सकता है जैसे कि रसविशेष के प्रति पृथ्वीत्वेन समवायिकारणता है और उससे भिन्न रसविशेष के प्रति जलत्वेन समवायिकारणता है। यदि विजातीयरसत्त्वावच्छिन्न के प्रति जलत्वेन एव तदन्य विजातीयजलत्वावच्छिन्न के प्रति पृथिवीत्वेन समवायिकारणता न मानी जाय और रसत्वावच्छिन्न यानी सकल रसात्मक गुण के प्रति जलत्वेन समवायिकारणता को मान्यता दी जाय तब तो रसाश्रय पृथ्वी मे भी जलत्व की आपत्ति आयेगी, क्योकि कार्य अपने समवायी मे स्वसमवायिकारणतावच्छेदकधर्म का आक्षेपक है। इसलिए जैसे विजातीय-विजातीय रस के प्रति पृथ्वी और जल मे क्रमश समवायिकारणता मानी जाती है ठीक वैसे ही विजातीय विजातीय नीलरूप के प्रति पृथ्वी और तम मे क्रमश समवायिकारणता मानी जा सकती है। इसलिए पृथ्वीजन्यभिन्न विजातीय नीलरूप के आश्रय अन्धकार मे पृथ्वीत्व की आपत्ति को अवकाश नही है। इसलिए अन्धकार मे नीलरूप की उत्पत्ति निराबाध है। इसलिए रूपवत्त्व हेतु से अन्धकार मे द्रव्यत्वसिद्धि अबाधित है - यह अन्य विद्वानो का तात्पर्य है।

यत्तु एवमनुष्णाशीतस्पर्शत्वावच्छिन्नं प्रति पृथिवीत्वेन हेतुत्वाद्वायोः पृथिवीत्वापत्तिः इति, तन्न, शीतोष्णेतरस्पर्शत्वरूपस्य तस्य संशयत्ववदर्थसमाजसिद्धत्वेन कार्यतानवच्छेदकत्वात्।

◆ हेमलता ◆

यत्तु इति तन्नेत्यनेनान्वेति। एवं = कार्यस्य स्वसमवायिनि स्वसमवायिकारणतावच्छेदकधर्माक्षेपकत्वनियमोपगमे, अनुष्णाशीतस्पर्शत्वावच्छिन्नं प्रति पृथिवीत्वेन हेतुत्वात् = समवायिकारणत्वात् वायोः अनुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वेन पृथिवीत्वापत्तिः। अत एवानुष्णशीतस्पर्शो न वायावभ्युपगन्तव्यः इति।

तन्न चारु, शीतोष्णेतरस्पर्शत्वरूपस्य तस्य = अनुष्णाऽशीतस्पर्शत्वस्य संशयत्ववत् अर्थसमाजसिद्धत्वेन = सामग्रीद्वयप्रयोज्यत्वेन कार्यतानवच्छेदकत्वात्। अयमाशयः एकस्मिन् धर्मिणि विरुद्धनानाप्रकारकं ज्ञानं संशय इति एकधर्मितावच्छेदकविशिष्टविशेष्यकत्वावच्छिन्नविरुद्धनानाप्रकारकज्ञानत्वं संशयलक्षणम्। वस्तुतस्तद्धर्मावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यतावच्छेदकं यत् तदवच्छिन्नतद्विरुद्धधर्मप्रकारताकत्वं तद्धर्मिकतत्प्रकारकज्ञानत्वं संशयत्वम्। अत्रैककोटिभासकसामग्रीभ्यामुभयकोटिप्रकारकत्वं विरोधभासकसामग्र्या च विरोधभानमिति संशयत्वघटकतत्तद्धर्मावच्छिन्नोत्पादकसामग्रीकलापेनोपजायमानस्य ज्ञानस्य संशयत्वोपपत्तेर्न संशयत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वम्। एवमेव मनोऽन्यमूर्तजन्यत्वात्स्पर्शवतो वायोः स्पर्शे शीतत्वावच्छिन्नकारणतावच्छेदकजलत्वावच्छिन्नविरहदशायामुपजायमानत्वेन शीतेतरत्वं उष्णत्वावच्छिन्नजनकतावच्छेदकतेजस्त्वावच्छिन्नाभावकालीनत्वेनोष्णेतरत्वमित्येतावतैव वायुस्पर्शे शीतोष्णेतरस्पर्शत्वात्मकस्यानुष्णाशीतस्पर्शत्वस्योपपत्तेर्न तस्याऽपि जन्यतावच्छेदकत्वमिति नाशीतानुष्णस्पर्शवतो वायोः पृथिवीत्वापत्तिरिति भावः।

वस्तुतस्तु पाकजाशीतानुष्णस्पर्शमात्रवृत्तिवजात्यावच्छिन्नं प्रत्येव पृथिवीत्वेन समवायिकारणत्वम्। वायुस्पर्शस्याऽशीतानुष्णत्वेऽप्यपाकजत्वेन न पृथिवीत्वावच्छिन्नजन्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वम्। अत एव वायोरशीतानुष्णस्पर्शवत्त्वेऽपि न पृथिवीत्वापत्तिरिति ध्येयम्।

एतेनावयव्युद्भूतस्पर्शं प्रति अवयवोद्भूतस्पर्शस्यैव स्वसमवायिसमवेतत्वसम्बन्धेन हेतुत्वात् कथं चतुरणुकोद्भूतस्पर्शारम्भकस्य नीलत्रुटिस्पर्शस्यानुद्भूतत्वं? येन 'तमो नीलं' इति प्रतीतेर्भ्रमत्वं न स्यादिति निरस्तम् उद्भूतस्पर्शत्वस्यार्थसमाजसिद्धत्वेन कार्यतानवच्छेदकत्वादिति।

'इदानीं मे शरीरं शीतलीभूतमि'ति प्रतीत्या तमसः उद्भूतस्पर्शवत्त्वमप्यानुभविकमिति तु वृद्धाः। तेषामयमाशयः यथाहि उद्भूतशीतस्पर्शवत एव जलस्य संयोगाद् देहे शैत्यं प्रतीयते तथा तमसोऽप्युद्भूतशीतस्पर्शवत्त्व एव तत्संयोगाच्छरीरे शैत्यप्रतीतिरुपपन्निमती, तादृशस्यैव तस्य परम्परासम्बन्धेन शैत्यप्रतीतिजनकत्वात्तत्परिणामकत्वाद्वेत्यधिकं मध्यमस्याद्वादरहस्यतोऽवधेयम्।

► वल्लभा ◄

► अशीतानुष्णस्पर्शत्व अर्थसमाजसिद्ध - स्याद्वादी ◄

यत्तु०। कुछ विद्वानो का यह वक्तव्य है कि→'कार्य अपने समवायी मे स्वसमवायिकारणतावच्छेदक धर्म का साधक है- ऐसा माना जाय तब तो वायु मे पृथिवीत्व की आपत्ति आयेगी, क्योंकि वायु मे अशीत-अनुष्ण स्पर्श समवेत है जिसका समवायिकारणतावच्छेदक पृथिवीत्व है←किन्तु यह अविचारित रमणीय है। इसका कारण यह है कि अशीतानुष्णस्पर्शत्व शीतोष्णेतरस्पर्शत्वात्मक है जो संशयत्व की भाँति अर्थसमाजसिद्ध होने की वजह कार्यतावच्छेदक होता नहीं है। आशय यह है कि एक धर्मी मे विरुद्ध नानाधर्मप्रकारक ज्ञान ही संशय है जिसमे प्रत्येक कोटिभासक दो सामग्री मे उभयकोटिप्रकारकत्व संपन्न होता है एवं विरोधभासकसामग्री से विरोध का ज्ञान होता है। अतः सामग्रीद्वयप्रयोज्य एकधर्मिविशेष्यक-विरुद्धानेकधर्मप्रकारकज्ञानत्व संशय मे उपपन्न होता है। तदर्थ अन्य स्वतन्त्र सामग्री की कल्पना अनावश्यक है। इसलिए निरुक्त संशयत्व किसीका कार्यतावच्छेदक धर्म होता नहीं है। ठीक इसी तरह मनोभिन्नमूर्तजन्य वायु मे स्पर्श उत्पन्न होता है उसमे शीतत्व हो नहीं सकता, क्योंकि वह शीतजनकतावच्छेदकजलत्वावच्छिन्न के विना ही उत्पन्न होता है। इसलिए उसमे शीतेतरस्पर्शत्व धर्म रहेगा। एवं उसमे उष्णत्व धर्म भी नहीं रहेगा, क्योंकि वह उष्णजनकतावच्छेदकतेजस्त्वावच्छिन्न के विरह मे ही जायमान है। इसलिए उसमे उष्णेतरत्व धर्म रहेगा। इस तरह भिन्न भिन्न सामग्री से वायु स्पर्श मे शीतोष्णेतरस्पर्शत्व धर्म संक्रान्त हो जाता है। तदर्थ अन्य स्वतन्त्र सामग्री की कल्पना बिनजरूरी है। इसलिए शीतोष्णेतरत्वात्मक अशीतानुष्णस्पर्शत्व किसीका कार्यतावच्छेदक बन नहीं सकता। इस परिस्थिति मे अनुष्ण-अशीत स्पर्श के आश्रय वायु मे पृथ्वीत्व की आपत्ति को कैसे अवकाश होगा? क्योंकि शीतोष्णेतरस्पर्शत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदक धर्म ही अप्रसिद्ध है। घटक की अप्रसिद्धि से घटित भी अप्रसिद्ध ही हो जाता है। इसलिए वायु मे पृथ्वीत्वापत्ति निराधार है।

★★ नीलरूप के प्रति पृथ्वी-तमसाधारण कारणता - तमोद्रव्यवादी ★★

वस्तु०। जब तक वस्तुस्थिति का प्रश्न है, हम कह सकते है कि पृथ्वी एवं अन्धकार मे अनुगत जातिविशेष को ही नीलत्वावच्छिन्न

वस्तुत पृथिवीतमःसाधारणजातिविशेषेणैव नीलत्वावच्छिन्न प्रति समवायिकारणत्वमुचितम्, अन्यथोक्तरीत्या कार्यकारणभावद्वय-जातिद्वयकल्पनागौरवादिति ध्येयम्।

अथ तमसो जन्यद्रव्यत्वे स्पर्शवदवयवारभ्यत्व स्यात्, स्पर्शवदनन्त्यावयवित्वस्य द्रव्यारम्भकतावच्छेदकत्वादिति चेत्? न स्पर्शवत्त्वादेर्विशेष्यविशेषणभावे विनिगमनाविरहेण तेन रूपेणाऽहेतुत्वात्, अनन्त्यावयवित्वस्य द्रव्यसमवायिकारणत्वपर्यवसितत्वाच्च।

◆ हेमलता ◆

वस्तुत पृथिवीतम साधारणजातिविशेषेणेव नीलत्वावच्छिन्न प्रति समवायिकारणत्वमुचितम्, एकेनैव कार्यकारणभावेन तदुपपत्तेः। अन्यथा = नीलत्वावच्छिन्ने उपदर्शितकारणत्वानुपगमे, उक्तरीत्या विजातीयनील प्रति पृथिवीत्वेन समवायिकारणता तदन्यद् विजातीयनीलरूप प्रति च तमस्त्वेनेत्येव रीत्या कार्यकारणभावद्वय-जातिद्वयकल्पनागौरवात् = फल-फलवद्भावद्वैविध्य-कार्यतावच्छेदकवैजात्यद्वयकल्पनाप्रयुक्तगौरवापातात्। एतेन तमसो नीलरूपवत्त्वे पृथिवीत्वापत्तिरपि निरस्ता पृथिवीत्वावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यताक्रान्तस्य तमस्यनुत्पादात्।

ननु तमोद्रव्य नित्य यदुताऽनित्य? इति विकल्पयुगली समुपतिष्ठते। नाद्यः चारु तमस्युत्पादविनाशप्रतीत्यनुपपत्तेः। द्वितीये आह अथ तमसो जन्यद्रव्यत्वे स्पर्शवदवयवारभ्यत्व = स्पर्शवद्भिरेवावयवैर्जन्यत्व स्यात्। न च स्पर्शवत्त्वेन जनकत्वे अन्त्यावयविनि व्यभिचार इति वाच्यम् स्पर्शवदनन्त्यावयवित्वस्य = अन्त्यावयविभिन्नत्वे सति स्पर्शवत्त्वस्य, द्रव्यारम्भकतावच्छेदकत्वात् = जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकत्वात्। घटादेः स्पर्शवद्द्रव्यत्वेऽपि अन्त्यावयविभिन्नत्वविरहेण विशेषणाभावप्रयुक्तविशिष्टकारणतावच्छेदकधर्मविरहान्न व्यभिचारः। ततश्च तमसो जन्यद्रव्यत्वे तत्समवायिकारणभूते तमोऽवयवेषु स्पर्शवत्त्वप्रसङ्गः इत्यथाशयः।

तमोद्रव्यवादी तन्निराकरोति - नेति। स्पर्शवत्त्वादे विशेष्यविशेषणभावे विनिगमनाविरहेण तेन रूपेण = स्पर्शवदनन्त्यावयवित्वेन रूपेण जन्यद्रव्य प्रति अहेतुत्वात् = समवायिकारणत्वासम्भवात्। स्पर्शवत्त्वे सत्यनन्त्यावयवित्व जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकमाहोस्वित् अनन्त्यावयवित्वे सति स्पर्शवत्त्व? इति विनिगमकाभावेन कारणतावच्छेदकधर्मानिश्चयोन्न तादृश' कार्यकारणभावः कल्पनामर्हतीति तमोद्रव्यवादिनोऽभिप्रायः।

अस्तु तर्हि अनन्त्यावयवित्वस्येव जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकत्वमित्याशङ्कायां तमोद्रव्यवादी हेत्वन्तरमाह अनन्त्यावयवित्वस्य द्रव्यसमवायिकारणत्वपर्यवसितत्वाच्चेति अनन्त्यावयवित्व-द्रव्यसमवायिकारणत्वयोः समनियतत्वेनैक्यम्। अत एव जन्यद्रव्यत्वावच्छिन्नसमवायसम्बन्धाव-

▶ वल्लभा ◀

का समवायिकारणतावच्छेदक धर्म मानना मुनासिब महसूस होता हे। मतलब कि पृथ्वी-तमसाधारणवजात्यावच्छिन्नकारणतानिरूपितकार्यतावच्छेदक नीलत्व धर्म हे। इसलिए अन्धकार मे नीलरूप होने पर भी उसमे पृथ्वीत्व आपत्ति की शक्यता नही है, क्योकि पृथिवीत्व नीलत्वावच्छिन्न का कारणतावच्छेदक धर्म नही हे। यदि इस तरह पृथ्वी-अन्धकारअनुगत नीलकारणता का स्वीकार न किया जाय ओर उक्त रीति से विजातीय नीलरूप के प्रति पृथ्वीत्वेन समवायिकारणता ओर तदन्य विजातीय नीलरूप के प्रति तमस्त्वेन समवायिकारणता का स्वीकार किया जाय तब तो द्विविध कार्यकारणभाव एव नीलत्वव्याप्य वेजात्यद्वय की कल्पना का गोरव प्रसक्त होगा, जो असह्य हे।

अन्धकारावयव मे स्पर्शापत्ति-नव्यनैयायिक

तमोऽभाववादी'- अथ त०। उस्ताद! उक्त रीति से अन्धकार को द्रव्य मानने पर यदि आप उसे जन्य द्रव्य मानेगे तब तो स्पर्शवाले अवयवो से आरभ्यत्व भी उसमे मानना होगा, क्योकि स्पर्शवदनन्त्यावयवित्व द्रव्यारम्भकता का अवच्छेदक है। मतलब यह है कि जन्य द्रव्य का समवायिकारण स्पर्शविशिष्ट अनन्त्य अवयवी द्रव्य हे। अन्त्य घटादि अवयवी किसी द्रव्य का समवायिकारण नही होने से प्रकृत मे उसके व्यवच्छेदार्थ अनन्त्य यानी अन्त्यभिन्नत्व का अवयविविशेषणविधया ग्रहण किया गया हे। जन्यद्रव्य का समवायिकारणतावच्छेदक धर्म स्पर्शवदनन्त्यावयवित्व होने की वजह अन्धकार को जन्य द्रव्य मानने पर उसे स्पर्शविशिष्ट अन्त्येतर अवयवी से आरब्ध मानना होगा। अर्थात् अन्धकार के समवायिकारणीभूत अवयवो मे स्पर्शवत्त्व भी मानना होगा। जो तमोद्रव्यवादी मीमासको को अभिमत नही हे। इसलिए बकरी को निकालने पर ऑगन मे सॉप घूस जायेगा। समझे, मीमासक महाशय!

स्पर्शवदनन्त्यावयवित्व द्रव्यारम्भकता का अनवच्छेदक - मीमासक

तमोद्रव्यवादी :- न०। जनाव! 'अध जल गगरी छलकत जाय' इस लोकोक्ति का आप नेयायिक भी अनुसरण कर रहे हे! मगर कुछ सोचिये तो सही। स्पर्शवदनन्त्यावयवित्व द्रव्यारम्भकतावच्छेदक केसे होगा? इसका कारण यह है कि जैसे स्पर्शवत्त्व विशेषण हो सकता है ठीक वेसे ही विशेष्य भी बन सकता है। मतलब कि जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक स्पर्शवत्त्वे सति अनन्त्यअवयवित्व

वस्तुतः चक्षुराद्यवयवेष्वनुद्भूतस्पर्शानभ्युपगमे जातिविशेष एव द्रव्यारम्भकतावच्छेदकत्वेनाऽभ्युपेयः। स तु तमोऽवयवेष्वपि सम्भवतीति नानुपपत्तिः। न च द्रव्या(ना)रम्भकत्वान्यथानुपपत्त्यैव तत्रानुद्भूतस्पर्शाङ्गीकार इति वाच्यम् अनन्तानुद्भूतस्पर्शकल्पना-

◆ हेमलता ◆

च्छिन्नकार्यतया निरूपिताया॰ तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नाऽनन्त्यावयवित्वावच्छिन्नसमवायिकारणतायाः कल्पना न युक्ता, दर्शितसमवायिकारणतावच्छेदक-समवायिकारणतयोरैक्येन ज्ञप्तौ स्वाश्रयकलङ्कपङ्किलत्वात्, अवच्छेदकावच्छेद्ययोर्भिन्नत्वनियमात्, अप्रसिद्धेनाऽप्रसिद्धापादनाऽयोगात्। अत एव कार्यं विहाय संयोगस्य समवायिकारणतावच्छेदकतया द्रव्यत्वजातिसिद्धिकल्पान्तरानुसरणमप्युपपद्यते इति विभावनीयं न्यायमर्मविद्भिः।

अथ द्रव्यासमवायिकारणं द्रव्यं अन्त्यावयवितद्भेदाभावत्वेन प्रतीयमानत्वादतिरिक्त एव न तु द्रव्यसमवायिकारणत्वमेव। स एवात्र द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक इति चेत्? न, द्रव्यसमवायिकारणतापरिचयं विनाऽनेनाऽपि रूपेण कारणताया दुर्ग्रहत्वात्।

स्याद्वादिनये तु तमसि स्पर्शवदवयवारभ्यत्वस्याभीष्टत्वमेव, शकुल्याद्यतिशयस्यैव च द्रव्यजनकत्वमिति तु ध्येयम्।

तमसि पवनाभिव्यज्यमानः शीतस्पर्शोऽप्यनुभूयत एव। अत उद्भूतस्पर्शवत्त्वमपि तत्रेति सम्प्रदायमतं पूर्वमुक्तमेवात्र स्मर्तव्यम्।

वस्तुत नव्यनैयायिकमतानुसारेण चक्षुराद्यवयवेषु अनुद्भूतस्पर्शानभ्युपगमे जातिविशेष एव द्रव्यारम्भकतावच्छेदकत्वेन = जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक-धर्मविधया, अभ्युपेय । यद्यपि चक्षुराद्यवयवेषु प्राचीननैयायिकमते उद्भूतस्पर्शो नास्ति परमनुद्भूतस्पर्शोऽस्ति तथापि नव्यनैयायिकमते तत्रानुद्भूतस्पर्शोऽपि नास्ति, प्रमाणाभावात्,। प्रकृते चाथवादी नव्यनैयायिक एव। तन्मतेऽपि स्पर्शवदन्त्यावयवित्वस्यैव जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकत्वम्। चक्षुराद्यवयवव्रजन्दुरादीन्द्रिय जन्यते। न च तन्मते तत्र स्पर्शोऽस्ति । अत॰ प्रदर्शितकारणताया व्यतिरेकव्यभिचारो लब्धावकाशो दुर्निवार एव। तदपनोदाय चक्षुराद्यवयवसाधारणो जातिविशेष एव द्रव्यारम्भकतावच्छेदकविधया नव्येन स्वीकर्तुमर्हति। स = द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकीभूतो जातिविशेष॰ तु तमोऽवयवेष्वपि सम्भवति तमोनयनावयवादिसाधारणतादृशवैजात्यकल्पनात् इति हेतो॰ तमसि तमोऽवयवे वा स्पर्शविरहेऽपि नानुपपत्ति = न तमसो द्रव्यत्वव्याहतिः।

न चेति वाच्यमित्यनेनान्वेति। द्रव्यारम्भकत्वान्यथानुपपत्त्यैव तत्र = चक्षुराद्यवयवेषु अनुद्भूतस्पर्शाङ्गीकार । स्पर्शवदद्रव्यस्यैव द्रव्यारम्भकत्वदर्शनाच्च-क्षुरादीन्द्रियारम्भकेषु तदवयवेषु स्पर्श॰ स्वीकर्तव्य एव। स चोद्भूतो न सम्भवति, तदाश्रयस्पार्शनापत्ते॰, लौकिकविषयतया द्रव्यस्पार्शनं प्रति सामानाधिकरण्येनोद्भूतस्पर्शस्य कारणत्वात्। अत॰ चक्षुराद्यवयवेषु पारिशेष्यन्यायेनानुद्भूतस्पर्शः कल्प्यते, अन्यथा गगनवत् तस्याऽपि द्रव्यारम्भकत्वमपि न स्यात्। अतोऽन्ततो गत्वा तत्रानुद्भूतस्पर्श एव कल्पनीय इति शङ्काशय॰।

तन्निराकरणे तमोद्रव्यवादी आह - अनन्तानुद्भूतस्पर्शकल्पना = अनन्तेषु चक्षुराद्यवयवेषु पृथक्पृथगनन्तानां अनुद्भूतस्पर्शानां कल्पनां अपेक्ष्य चक्षुराद्यवयवादिषु लघुभूतैकजातिकल्पनाया = लघुभूतस्यैकस्य द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकस्य वैजात्यस्य कल्पनाया एवोचितत्वात्। चक्षुराद्यवयवेषु जातिविशेषकल्पनयैव द्रव्यारम्भकत्वोपपत्तावनन्तानुद्भूतस्पर्शकल्पनाया अन्याय्यत्वाज्जातिविशेषस्यैव तमश्चक्षुराद्यवयवसाधारणस्य द्रव्यसमवायिकारणता-वच्छेदकविधया स्वीकारस्समुचित इति तमोद्रव्यवाद्याशय॰।

▶ वल्लभा ◀

को माना जाय या अनन्त्यअवयवित्व सहित स्पर्शवत्त्व को? इस विषय में विनिगमनाविरह = एकतरपक्षपातियुक्तिविकल्प होने से द्रव्यारम्भकतावच्छेदक धर्म का निश्चय हो सकता नहीं है। तथा दोनों को द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक मानने में महागौरव है। इस स्थिति में जन्यद्रव्यत्वावच्छिन्न समवायसम्बन्धावच्छिन्न जन्यद्रव्यनिष्ठ कार्यता से निरूपित तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न समवायिकारणता के अवच्छेदकविधया अनन्त्यअवयवित्व का भी स्वीकार हो नहीं सकता, क्योंकि अवच्छेद्य समवायिकारणता भी अनन्त्यभिन्नअवयवित्वात्मक होने से अनन्त्यावयवित्व ही अनन्त्यअवयवित्व का अवच्छेदक बनेगा, जिससे ज्ञप्ति में स्पष्टतया आत्माश्रय दोष प्रसक्त होता है। अवच्छेदक धर्म कारणता का परिचायक = ज्ञापक होता है, कारणता उससे परिचायित = ज्ञापित होती है । इसलिए अवच्छेदक धर्म अवच्छेद्य से भिन्न एवं प्रसिद्ध होना चाहिए। मगर यहाँ समवायिकारणतावच्छेदक और समवायिकारणता एक बन जाने से ज्ञप्ति में स्वाश्रय दोष अपरिहार्य बन जाता है। अत एव अनन्त्यअवयवित्व भी जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक धर्म हो नहीं सकता - यह फलित होता है।

नेत्रावयव स्पर्शशून्य - नव्यनैयायिक

वस्तुतः। जब तक वस्तुस्थिति का प्रश्न है हम यह कह सकते है कि प्रतिवादी नव्यनैयायिक के मतानुसार चक्षु के अवयवों में उद्भूत रूप की भाँति अनुद्भूत रूप भी रहता नहीं है, क्योंकि उनमें अनुत्कट स्पर्श में कोई प्रमाण नहीं है। फिर भी उनसे चक्षु आदि इन्द्रिय का आरम्भ होता है। अत स्पर्शवद् अनन्त्य अवयवी को द्रव्यसमवायिकारण मानने पर व्यतिरेक व्यभिचार होगा।

मपेक्ष्य लघुभूतैकजातिकल्पनाया एवोचितत्वात्, तादृशजातेरन्त्यावयविन्यपि अभ्युपगमान्न जलत्वादिना साङ्कर्यं, घटत्वादिना घटादेर्द्रव्यं प्रति प्रतिबन्धकत्वाच्च नान्त्यावयविनि द्रव्योत्पत्तिः।

◆ हेमलता ◆

ननु जातिविशेषस्यैव द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकत्वे जलत्वादिना साङ्कर्यं दुर्वारम्। तथाहि कपाले तादृशजातिविशेषोऽस्ति जलत्वञ्च नास्ति, अन्त्यावयविनि जले जलत्वमस्ति तादृशजातिविशेषश्च नास्ति, तस्य द्रव्यारम्भकत्वात्। परस्परव्यधिकरणयो· जलत्व-जातिविशेषयोरनन्त्यावयविनि जले समावेशाज्जलत्वादिना सम विवक्षितजातिविशेषस्य सङ्करप्रसङ्गेन जातिविशेषस्य न जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकत्व किन्तु स्पर्शवदन्त्यावयवित्वस्यै-वेत्याशङ्कामपाकर्तुमन्धकारद्रव्यत्ववाद्याह- तादृशजाते = द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकजातिविशेषस्य अन्त्यावयविनि जलादौ अपि अभ्युपगमान्न जलत्वादिना साङ्कर्यम्। अपिशब्देनान्त्यावयविसमुच्चयः कृतः। आदिपदेन पृथिवीत्वादिपरिग्रहः। जलत्वादिना जातिविशेषस्य वैयधिकरण्याऽसिद्धेर्न परस्परासमानाधिकरणयोरेकत्र समावेशलक्षणः सङ्करो लब्धावकाशः, अन्त्यावविनि अनन्त्यावयविनि च जलादौ तादृशजातेः सत्त्वाभ्युपगमादिति तमोद्रव्यवाद्यभिसन्धि।

केचित्तु 'जलस्य कस्यचिन्नान्त्यावयवित्वमिति तादृशजातेरन्त्यावयविवृत्तित्वाभावेऽपि जलमात्रे सत्त्वेन तादृशजात्यभाववति जलत्वस्यासत्त्वेन तेन तस्यास्साङ्कर्याभावेऽपि पृथिवीत्वस्यान्त्यावयविवृत्तित्वेनोक्तजातेरन्त्यावयविवृत्तित्वाभावे तदभाववत्यन्त्यावयविनि पृथिवीत्वस्य सत्त्वेन साङ्कर्यं स्यादेवेति विवृण्वन्ति तन्न, जलस्यान्त्यावयवित्वानुपगमे शरीरलक्षणस्य जलीयशरीरेऽव्याप्त्यापत्तेः, जलस्याऽप्यन्त्यावयवित्वप्रदर्शनार्थमेव प्रकरणकृता उपस्थितिकृत-लाघवप्राप्त पृथिवीत्व विहाय जलत्वनिर्देशः कृत इति ध्येयम्।

ननु घटादावन्त्यावयविन्यपि द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकजात्यभ्युपगमे तु घटादेरपि द्रव्यारम्भकत्व प्रसज्येत, तस्य द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेद-कधर्मवत्त्वात्। न च तस्य द्रव्यारम्भकत्व कस्यचिदपि सम्मतम्। न च महापटस्यान्त्यावयविनः खण्डपटारम्भकत्वान्यथानुपपत्त्याऽन्त्यावयविन्यपि तादृशजात्यङ्गीकार उचित इति वाच्यम् खण्डपटस्य महापटध्वसजन्यत्वेन महापटोपादानोपादेयत्वात्। अतो नान्त्याऽवयविनि द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेद-कजात्यभ्युपगम· प्रामाणिक इत्याशङ्कामपाकर्तुमन्धकारद्रव्यत्ववाद्याह- घटत्वादिना रूपेण घटादे अन्त्यावयविनः समवायेन द्रव्य प्रति प्रतिबन्धकत्वाच्च नान्त्यावयविनि घटादौ द्रव्योत्पत्ति आपाद्या। समवायेन द्रव्यत्वावच्छिन्ने तादात्म्येनान्त्यावयविनः प्रतिबन्धकत्वमिति नियमेन घटादिषु

► वल्लभा ◄

चक्षु आदि के अवयवो मे स्पर्शवद्अनन्त्यअवयवित्व नही होने के सबब उसे द्रव्यारम्भकतावच्छेदक माना जा नही सकता। इसकी अपेक्षा जातिविशेष को ही द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक मानना मुनासिब हे। चक्षु आदि इन्द्रिय के अवयवो मे स्पर्शवद् अनन्त्यअवयवित्व नही होने पर भी जातिविशेष होने की वजह उक्त कार्य-कारणभाव मे व्यभिचार नही होगा। इसलिए प्रतिवादी नव्यनैयायिक के लिये भी उचित तो यही है कि द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकधर्मविधया जातिविशेष का स्वीकार किया जाय। वह जातिविशेष जेसे चक्षु आदि इन्द्रिय के अवयवो मे रहेगा ठीक वैसे ही अन्धकार के अवयवो मे भी रहेगा। अत अन्धकार के अवयवो से अन्धकार द्रव्य की उत्पत्ति हो सकती हे। अतएव अन्धकार एव तदवयवो मे स्पर्श का अनङ्गीकार करने पर भी अन्धकार को जन्य द्रव्य कहने मे कोई दोष सम्भवित नही हे, क्योकि द्रव्यारम्भकतावच्छेदक वैजात्य=जातिविशेष के आश्रयीभूत अन्धकारअवयवो से वह जन्य हे। यहाँ इस शङ्का का कि→'चक्षु आदि के अवयवो मे या अन्धकार के अवयवो मे उत्कट स्पर्श नही होने पर भी अनुत्कट स्पर्श का स्वीकार करना उचित है, क्योकि अन्यथा उनमे द्रव्यारम्भकत्व=द्रव्यसमवायिकारणत्व ही अनुपपन्न होगा। घटादि के अवयवो मे स्पर्श होने पर ही उनसे घटादि का आरम्भ होता हे - यह देखा गया हे । अत चक्षु ओर अन्धकार के अवयवो मे अनुद्भूत स्पर्श का स्वीकार करना ही होगा'←समाधान यह है कि चक्षु, अन्धकार आदि के अनन्त अवयवो मे अनन्त पृथक् पृथक् अनुद्भूत स्पर्श की कल्पना करने मे गौरव है। इसकी अपेक्षा उनमे एक जातिविशेष की कल्पना करना ही उचित हे, क्योकि इस कल्पना मे लाघव है।

द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जाति मे साङ्कर्य का निरास- मीमासक

तादृश०। यहाँ इस समस्या का कि→ जातिविशेष को द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक मानने पर जलत्व आदि जाति के साथ उसका साङ्कर्य प्रसक्त होगा। देखिये, कपाल आदि मे द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जातिविशेष हे किन्तु जलत्व नही हे। अन्त्य अवयवी जल मे जलत्व जाति है किन्तु द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जाति नही हे । जब कि परस्पर व्यधिकरण जलत्वजाति एव द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक जाति दोनो ही अनन्त्य जल द्रव्य मे रहती है, क्योकि वह जल हे एव अवयवी जलद्रव्य का समवायिकारण भी हे। परस्पर व्यधिकरण धर्म का एकत्र समावेश होना ही सङ्कर है, जो जातिबाधक हे। उक्त साकर्य दोष के कारण ही द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जातिविशेष

मूर्त्तत्वेनैव द्रव्यारम्भकत्वं, न च मनसोऽपि मूर्तत्वात्तदारम्भकत्वप्रसङ्गः, मनोऽन्यमूर्तत्वेनैव तथात्वादित्येके। 'मूर्तत्वेनैव तथात्वं, मनसि द्रव्यानुत्पत्तिस्तु विजातीयसंयोगरूपहेत्वन्तराभावात्'इत्यपरे।

◆★ हेमलता ◆★

द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजातेः सत्त्वेऽपि समवायेन द्रव्यं प्रति तेषामेव तादात्म्येन प्रतिबन्धकत्वान्न तत्र द्रव्योत्पादः प्रतिबन्धकाभावस्यापि कारणत्वेन सामग्रीवैकल्यात्। न च गौरवम्, फलामिमुखत्वात्,। अतो घटादिषु द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजातिस्वीकारेऽपि न दोष इति तमोद्रव्यवादितात्पर्यम्।

एतेन द्रव्यत्वं कार्याकार्यवृत्ति न कार्यतावच्छेदकं जन्यद्रव्यत्वस्य जन्यमात्रवृत्तित्वेऽपि तदवच्छिन्नजनकतावच्छेदकजातेरस्वीकारः जलत्वादिना साङ्कर्यादिति वर्धमानोक्तिः निरस्ता, जन्यद्रव्यत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकजातेरन्त्यावयविन्यपि स्वीकारेण जलत्वादिना साङ्कर्याऽयोगात्। वस्तुतः जन्यद्रव्यमात्रवृत्तिवैजात्यस्यैव तत्त्वमिति तु ध्येयम्।

अत्रैवैकेषां विदुषां मतमावेदयति मूर्त्तत्वेनैव द्रव्यारम्भकत्वं = द्रव्यसमवायिकारणत्वम्। एवकारेण द्रव्यत्वादिकं व्यवच्छिन्नम्। द्रव्यसमवायिकारणताया मूर्तत्वावच्छिन्नत्वे मनस्यपि समवायेन द्रव्यान्तरमुत्पद्येत, तत्र मूर्तत्वस्य समवेतत्वादित्याशङ्कायामाहुः न च मनसोऽपि मूर्तत्वात् तदारम्भकत्वप्रसङ्गः = द्रव्यारम्भकत्वापातः, मनोऽन्यमूर्तत्वेनैव तथात्वात् = द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकत्वात्। मनसि विशेष्यसत्त्वेऽपि मनोभिन्नत्वलक्षणविशेषणविरहेण विशिष्टकारणतावच्छेदकस्यासत्त्वान्न तत्र समवायेन द्रव्यान्तरोत्पादप्रसङ्गः।

द्रव्यत्वन्तु न द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकम्, व्यापकत्वात्, अनतिरिक्तवृत्तिधर्मस्यैव तथात्वादिति मनोऽन्यमूर्तत्वमेव द्रव्यारम्भकतावच्छेदकम्, अनतिरिक्तवृत्तित्वात्, अन्यथाऽकारणेऽपि स्वरूपयोग्यत्वलक्षणकारणतास्वीकारापत्तेरिति तदाशयः।

एके इत्येव वदता स्वकीयास्वरसोद्भावनं कृतम्। तद्बीजञ्चेदम्-मनोभिन्नत्व-विशिष्टमूर्तत्वं तथा यदुत मूर्तत्वविशिष्टमनोभिन्नत्वम्? इत्यत्राऽविनिगमकम्। किञ्चैवं घटादावपि समवायेन द्रव्यान्तरोत्पादप्रसङ्गः दुर्वारः। अन्त्यावयविभिन्नत्वविशेषणोपादाने च पुनर्विशेषणविशेष्यभावेऽविनिगमात् महागौरवाच्चेति विभावनीयम्।

द्रव्यसमवायिकारणत्वस्थले एवापरेषां मतं व्याकरोति - मूर्त्तत्वेनैवेति। एवकारेण मनोऽन्यमूर्तत्वादिव्यवच्छेदः कृतः। तथात्वं = द्रव्यसमवायिकारणत्वम्। तर्हि मनसि व्यभिचारः किं पाणिपिधेयः? इत्याह मनसि मूर्तत्ववति समवायेन द्रव्यानुत्पत्तिस्तु विजातीयसंयोगरूपहेत्वन्तराभावात्।

▶▶ वल्लभा ◀◀

का स्वीकार किया जा नहीं सकता' ←— समाधान यह है कि अनन्त्य अवयवी की भाँति अन्त्य अवयवी जलादि में भी द्रव्यारम्भकतावच्छेदक वैजात्य रहता है - यह मान्य है। मतलब यह है कि जलत्व एवं उक्त जातिविशेष को परस्पर व्यधिकरण सिद्ध करने के लिये जो कहा गया था कि— अन्त्य अवयवी जल में जलत्व जाति है मगर द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जातिविशेष नहीं है- वही असङ्गत है, क्योंकि उसमें दोनों ही जाति रहती है। अतः परस्परव्यधिकरण धर्म का एक धर्मी में समावेशात्मक साङ्कर्य दोष नामुमकिन है।

घटत्वा०। यहाँ यह शङ्का हो कि—›'अन्त्य अवयवी में द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक जातिविशेष का स्वीकार करने पर तो घटात्मक अन्त्य अवयवी से भी अन्य द्रव्य की उत्पत्ति होने लगेगी, क्योंकि उसमें द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक जातिविशेष विद्यमान है। अतः कपाल की भाँति घट में भी द्रव्यारम्भकता की आपत्ति होगी'←—तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि घट आदि अन्त्य अवयवी में द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक जातिविशेष होने पर भी घटत्वादि धर्म को नवीन द्रव्य का प्रतिबन्धकतावच्छेदक मान कर उसके आश्रय घट आदि में द्रव्यारम्भकता की आपत्ति का निराकरण किया जा सकता है। आशय यह है कि समवायसम्बन्ध से नवीन द्रव्य के प्रति तादात्म्यसम्बन्ध से घट आदि अन्त्यअवयवी को घटत्वादिधर्मेण प्रतिबन्धक मान लेने से ही घटादि अन्त्य अवयवी से नवीन द्रव्य की उत्पत्ति का आपादन परिहृत हो जाता है। प्रतिबन्धक होने पर कार्य का उदय कैसे हो सकता है?

■■ मनोभिन्नमूर्तत्व द्रव्यारम्भकतावच्छेदक - मतविशेष ■■

मूर्त्त०। अमुक विद्वानों का यह कथन है कि द्रव्यारम्भकतावच्छेदक धर्म मूर्तत्व ही है। कपाल, तन्तु आदि में मूर्तत्व होने की वजह ही वे घट, पट आदि के समवायिकारण हो सकते हैं। यहाँ यह कहना कि—›'मूर्तत्व तो मन में भी है। अतः कपाल आदि की भाँति मन में भी समवायसम्बन्ध से द्रव्यान्तर की उत्पत्ति होनी चाहिए'←— इसलिए निराधार है कि द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक केवल मूर्तत्व नहीं है किन्तु मनोभिन्नमूर्तत्व है। मनोद्रव्य मूर्त्त जरूर है मगर मनोभिन्न नहीं है। अपने से कौन भिन्न होगा? मन में मनोभिन्नत्व नहीं होने से मनोभेदविशिष्ट मूर्तत्व भी रहता नहीं है। विशेषणाभाव-प्रयुक्तविशिष्टकारणतावच्छेदकाभाव का आश्रय होने की वजह मन में समवायसम्बन्ध से अन्य द्रव्य की उत्पत्ति हो सकती नहीं है। कारणतावच्छेदक धर्म से शून्य कैसे कार्यजनक हो सकता है? उसके बल से कार्योत्पाद का आपादन हो नहीं सकता।

यत्तु द्रव्यारम्भकतावच्छेदकतया पृथिव्यादिचतुर्ष्वेव भूतत्वाख्यो जातिविशेषः कल्प्यते। स एव च भूतपदशक्यतावच्छेदकः आकाशे भूतत्वव्यवहारस्तु भाक्त इति तन्न, मनसोऽनतिरिक्तत्वनये भूत-मूर्तपदयोः पर्यायत्वापत्तेः ।

हेमलता

जन्यद्रव्यासमवायिकारणीभूतविलक्षणसयोगविरहात् मनसि न समवायेन द्रव्यमुत्पद्यते, सामग्रीविकलताया कार्योत्पादाऽयोगात्। युक्तश्चैतत् सम्भवति क्लृप्ताऽगुरुधर्मविशेषे सामान्यधर्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वात्, अन्यथा द्रव्यत्वमपि घटत्वाद्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितायाः कारणताया अवच्छेदकमापद्येत।

अपर इत्यनेन प्रकरणकृता स्वकीयाऽस्वरसोद्भावन कृतम्। तद्बीजञ्चैवम् मनसि विजातीयसयोगलक्षणहेत्वन्तरविरहे मानाभावात्, यत्क्रियया घटे आरम्भको मनसि चानारम्भकः सयोगो जनितः तत्क्रियाजन्यतावच्छेदाय तत्रोक्तवैजात्यस्यावश्यकत्वात्। न च मनोऽन्यमूर्तत्वेनैव तथात्वमिति वक्तव्यम्, गौरवात्। एवञ्च तादृशजातिकल्पने विजातीयसयोगकल्पने नोदनत्वादीना तद्वैजात्यव्याप्यत्वकल्पने तदवच्छिन्नकारणकल्पने च महागौरवात् वरमतिशय एवानतिप्रसक्तः द्रव्यजनक कल्प्यत इति। मनसि सर्वदा विजातीयसयोगविरहे च नित्यत्वे सति स्वरूपयोग्यस्य फलावश्यम्भाव इति नैयायिकराद्धान्तभङ्गस्तु परस्याधिकदोषः।

अत्रैव कस्यचिन्मतमपाकर्तुमावेदयति- यत्त्विति तन्नेत्यनेनाऽन्वेति। द्रव्यारम्भकतावच्छेदकतया = जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकविधया पृथिव्यादिचतुर्षु = पृथिवीजलानलानिलेषु एव भूतत्वाख्य जातिविशेष कल्प्यते = अनुमीयते। एवकारेणाकाशव्यवच्छेदः कृतः। प्रयोगस्त्वेव - पृथिव्यादिचतुष्कनिष्ठसमवायसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यनिष्ठकार्यतानिरूपिता तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्ना कारणता किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ना कारणतात्वात्, कपालनिष्ठघटकारणतावत्। तादृशकारणताया गगनाद्यवृत्तितया गगनादिव्यावृत्ता तादृशकारणतावच्छेदकविधया भूतत्वजातिः सिध्यति। स = भूतत्वाख्यो जातिविशेष एव च भूतपदशक्यतावच्छेदक = भूतपदनिष्ठशक्तिनिरूपितविषयताया नियामकः, भूतपदप्रवृत्तिनिमित्तमिति यावत्।

नन्वेव सति गगने भूतपदप्रयोगस्योन्मत्तप्रलापत्व प्रसज्येत यतो भूतत्वलक्षण भूतपदप्रवृत्तिनिमित्त नास्ति भूतपदञ्च तत्र व्यवह्रियते इत्याशङ्कायामाह - आकाशे भूतत्वव्यवहारस्तु भाक्त = गौण इति। इलाजलानलानिलेष्वेव भूतपदप्रयोगो मुख्यः, गगने तूपचरितः, चित्रगवि गोपदप्रयोगवत्। एतेन गगने भूतपदप्रयोगविषयतया भूतत्वसिद्धिः प्रत्युक्ता माणवकेऽपि सिहत्वसिद्धिप्रसङ्गात्। अतः पृथिव्यादिचतुष्कबहिर्भूतानामन्धकारावयवाना द्रव्यारम्भकत्व सम्भवति। न हि कारणतावच्छेदकानाक्रान्तात्कार्योदयो लब्धावकाशो भवति। न च एतन्मते तमसोऽद्रव्यत्वेन तमोऽवयवानामप्यसिद्धिरिति वाच्यम् अभ्युपगमवादेन तमोऽवयवानङ्गीकृत्य तमसो द्रव्यत्वप्रतिषेधार्थत्वेनास्यादोषत्वात्। न हि परप्रसिद्धानुवादेन प्रसङ्गापादनमसम्भवग्रस्तम्। अतो नान्धकारस्य द्रव्यत्वमिति यत्तुमताशयः।

यद्यपि तमःसाधारणस्यापि भूतत्वस्य कल्पयितु शक्यत्वेन तमसो द्रव्यत्वमव्याहतमिति वक्तु शक्यते तथापि स्फुटत्वात्तदुपेक्ष्य दोषान्तर तमोद्रव्यवादी प्रदर्शयति - तन्नेति मनस = मनःपदप्रतिपाद्यस्य अनतिरिक्तत्वनये = माध्वादिमते भूत-मूर्तपदयो पर्यायत्वापत्ते । तत्समानार्थकपदान्तरेण तदर्थकथनात् अभिन्नप्रवृत्तिनिमित्तपदत्वलक्षणस्य पर्यायत्वस्य प्रसङ्गात्। आकाशे भूतत्वजात्यनङ्गीकारात्, मनसश्चातिरिक्तस्य विरहात् भूतमूर्तपदाभ्या

वल्लभा

मूर्तत्व ही द्रव्यारम्भकतावच्छेदक - अपरमत

मूर्त०। प्रकरणकार यहाँ अपर विद्वानो के अभिप्राय को बताते है कि - मूर्तत्व ही द्रव्यसमवायिकारणता का अवच्छेदक = नियामक धर्म है न कि मनोभिन्नमूर्तत्व, क्योकि वैसा मानने मे जनकतावच्छेदक धर्मशरीर मे गौरव होता है। मूर्तत्व को ही द्रव्य की समवायिकारणता का अवच्छेदक मानने पर भी मन मे समवायसम्बन्ध से किसी द्रव्य की उत्पत्ति को अवकाश नही होगा, क्योकि द्रव्यारम्भकतावच्छेदक मूर्तत्व धर्म मन मे होने पर भी विजातीयसयोगात्मक अन्य हेतु के न होने की वजह मन मे समवायसम्बन्ध से द्रव्य की उत्पत्ति हो सकती नही हे। किसी एक कारण से ही कार्य का उत्पाद होता नही है किन्तु सामग्री = कारणकलाप से ही। अत मूर्तत्व का द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकविधया स्वीकार निर्दोष है।

द्रव्यारम्भकतावच्छेदक भूतत्वजाति हो नही सकती

यत्तु०। कुछ विद्वानो का यह कथन है कि—"द्रव्यारम्भकतावच्छेदक धर्म न तो मूर्तत्व है, न तो मनोऽन्यमूर्तत्व है किन्तु भूतत्व है। इसका कारण यह है कि भूतत्व जाति की सिद्धि ही द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकधर्मविधया होती है। द्रव्य के समवायिकारण ह पृथ्वी, जल, तेज ओर वायु। अत भूतत्वजाति भी इन चारो मे ही रहेगी, न कि अन्य मे । भूतपद का शक्यतावच्छेदक भी भूतत्व जाति ही हे। जहाँ जहाँ भूतत्व जाति रहती हे, वहाँ वहाँ ही भूतपद का प्रयोग-व्यवहार होता है। यद्यपि आकाश मे भी भूतत्व का प्रयोग होता है किन्तु वह प्रयोग मुख्य नही है। आकाश मे होनेवाला भूतपद का व्यवहार गोण है। अत आकाश मे भूतत्व का व्यवहार भूतत्वजाति का साधक नही हे। अन्धकार तो पृथ्वी आदि चतुष्क से बहिर्भूत द्रव्य है। अतएव वह भूतत्वजातिशून्य

वेदादावाकाशादौ प्रयुक्तभूतपदमुख्यत्वाय बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणसजातीयगुणवत्त्वस्य गुरुणोऽपि भूतपदशक्यतावच्छेदकत्वात्, अन्यथा पशुपदादेरपि गोत्वविशिष्ट एव शक्यतापत्तेः।

▲★ हेमलता ★▲

पृथिव्यादिचतुष्कस्यैव प्रतिपादनात् अभिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वलक्षणं पर्यायत्वं तयोः दुर्वारम्। नव्यनैयायिकैरपि नातिरिक्तं मनोऽभ्युपगम्यते, भौतिकाः परमाणव एव मनांसि अनन्तधर्मिणामतिरिक्तायाश्च जातेः कल्पनामपेक्ष्य क्लृप्तानामेव धर्मिणा तादृशेण हेतुत्वस्य युक्तत्वात्, सुषुप्तौ ज्ञानानुत्पत्तिनियमस्त्वदृष्टोपग्रहादिति नव्यानामभिप्रायः। ततश्च भूतमूर्तपदाऽपर्यायत्वोपपत्तिकृतेऽपि मनसोऽनतिरिक्तत्वमतानुरोधेन गगने भूतत्वमुपगन्तव्यम्। एवञ्च पृथिवीजलतेजोवायुगगनतमोद्रव्येषु भूतत्वं कल्पनामर्हति, सङ्कोचे मानाभावात्। ततो भूतत्वस्य द्रव्यारम्भकतावच्छेदकत्वेऽपि तमोऽवयवाना न द्रव्यारम्भकत्वानुपपत्तिरिति तमोद्रव्यत्ववादिनोऽभिप्रायः।

ननु मनसोऽनतिरिक्तत्वनये भूत-मूर्तपदयो पर्यायत्वमभिमतमेवेत्याशङ्कायां हेत्वन्तरमाह- वेदादौ =वेदोपनिषत्स्मृत्यादिषु आकाशादौ प्रयुक्तभूतपदमुख्यत्वाय = प्रयुक्तस्य भूतपदस्य प्राधान्योपपत्तये बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणजातीयगुणवत्त्वस्य = मनोभिन्नेन्द्रियेण ग्राह्यो यो विशेषगुणः तत्सजातीयगुणवत्त्वस्य गुरुणोऽपि भूतपदशक्यतावच्छेदकत्वात् = भूतपदनिष्ठशक्तिनिरूपित- विषयताया नियामकत्वात्। अयमभिसन्धिः आकाशेऽपि वेदादौ भूतपद प्रयुज्यते। न च तत्र भूतपदप्रयोगसम्भवो लक्षणयैवोपपादनीय इति वाच्यम् वेदे लक्षणाया अनभ्युपगमात्, तस्या जघन्यवृत्तित्वात्, अन्यथा वेदादपि पदशक्यार्थाऽनिर्णये तस्य शक्तिग्राहकत्वमनुपपन्नं स्यात्। अत आकाशे प्रयुक्तस्य श्रुतिघटकभूतपदस्य मुख्यत्वोपपत्तये बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणजातीयगुणवत्त्वलक्षणमेव भूतत्वं भूतपदशक्यतावच्छेदकतया स्वीकर्तव्यम्। अन्यथा = गुरोः शक्यतानवच्छेदकत्वे पशुपदादेरपि गोत्वादिविशिष्टे = गोत्वाद्यवच्छिन्ने एव शक्यतापत्ते। एवकारेण लोमवल्लाङ्गूलवत्त्वस्य व्यवच्छेदः कृतः। अत्र च यद्विशेषवक्तव्यं तदस्माभिरन्यत्रोक्तमिति न पुन प्रतन्यते।

●● वल्लभा ●●

सिद्ध होता है। अतएव अन्धकार के अवयवो से अन्धकारनामक द्रव्य का आरम्भ हो सकता नही है। द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक जाति से रहित से समवायसम्बन्ध से द्रव्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है?''←किन्तु यह असङ्गत है, क्योंकि जो दार्शनिक मन को अतिरिक्त द्रव्य मानते नहीं है, उनके मतानुसार भूतपद और मूर्तपद पर्यायवाचक बन जायेंगे, क्योंकि आप पृथ्वी आदि चार को ही भूत मानते है और मन नाम का कोई स्वतन्त्र द्रव्य वे दार्शनिक मानते नहीं है। अत भूतपद और मूर्तपद का वाच्यार्थ पृथ्वी आदि द्रव्यचतुष्क ही बनेगा। मतलब कि उन दोनों पदो का प्रवृत्तिनिमित्त एक ही बनेगा। जिन पदो का प्रवृत्तिनिमित्त एक ही होता है वे पद पर्यायवाचक कहलाते है। इसलिए अभिन्न पदप्रवृत्तिनिमित्तवाले भूतपद और मूर्तपद मे पर्यायत्व की आपत्ति आयेगी।

▶ गुरु धर्म भी शक्यतावच्छेदक ◀

वेदा०। पृथ्वी आदि चार मे भूतत्व जाति माननेवाले विद्वानो ने जो कहा था कि→'आकाश मे भूतत्व जाति रहती नही है। इसलिये आकाश मे होनेवाला भूतपद का प्रयोग गौण है'← वह भी अयुक्त है। इसका कारण यह है कि नैयायिक और मीमांसक दोनों ही वेदादि को प्रमाण मानते है। तथा वेदादि मे तो अनेक बार आकाशात्मक अभिधेय मे भूतपद का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। आकाश को उद्देश्य कर के वेदादि मे जो भूतपदप्रयोग उपलब्ध है उन्हे गौण तो नही माना जा सकता। अत उसके मुख्यत्व की उपपत्ति लिये आकाश मे भी भूतत्व का अङ्गीकार करना उचित है। भूतपद के शक्यतावच्छेदकस्वरूप भूतत्व को जातिस्वरूप नही माना जा सकता, क्योंकि तब मूर्तत्व जाति के साथ भूतत्व का साङ्कर्य प्रसक्त होता है। इसलिए भूतत्व को सखण्डउपाधिस्वरूप मानना युक्त है जिसका निर्वचन ऐसा हो सकता है कि बहिरिन्द्रियग्राह्य विशेषगुण के सजातीय गुणवत्त्व भूतत्व है। पृथ्वी आदि मे बहिरिन्द्रिय घ्राण आदि से ग्राह्य गन्ध आदि विशेष गुण के सजातीय गुण होने से निरुक्त भूतत्व रहेगा। यहाँ भूतत्व का जो निर्वचन किया गया है वह अन्धकार मे अबाधित है, क्योंकि उसमे नीलरूप आदि विशेष गुण रहते हैं जो बहिरिन्द्रियग्राह्य विशेषगुण रूप आदि के सजातीय है। अत भूतत्व को द्रव्यारम्भकतावच्छेदक मानने पर भी अन्धकार के अवयवो से अन्धकार द्रव्य का आरम्भ हो सकता है। यहाँ यह कहना कि→'भूतत्व को बहिरिन्द्रियग्राह्यविशेषगुणसजातीयगुणवत्त्व स्वरूप मानने पर भूतपद का वह शक्यतावच्छेदक बन नही सकेगा, क्योंकि लघु धर्म ही शक्यतावच्छेदक हो सकता है'←भी ठीक नही है, क्योंकि गुरु धर्म भी शक्यतावच्छेदक हो सकता है, अन्यथा पशुपद का शक्यतावच्छेदक लोमवल्लाङ्गूलवत्त्व कैसे हो सकेगा? क्योंकि वह भी गोत्वादि की अपेक्षा गुरुभूत है, अनेक पदार्थो से घटित है। तब तो गोत्वादिविशिष्ट मे ही पशुपदशक्यता की आपत्ति आयेगी। लघु धर्म मे ही शक्यतावच्छेदकता का स्वीकार करने पर तो पशुपद का शक्यतावच्छेदक लोमवल्लाङ्गूलवत्त्व नही हो सकेगा। मगर ऐसा नही है। अत जैसे लोमवल्लाङ्गूलवत्त्व

स्वतन्त्रास्तु एकत्वनिष्ठ एव द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजातिविशेषः कल्प्यते। स चान्त्यावयव्येकत्वव्यतिरिक्त एवेति न तत्तदन्त्यावयवित्वेनानन्तप्रतिवध्य-प्रतिवन्धकभावकल्पनागौरवम्।

हेमलता

स्वतन्त्रास्त्विति आहुरित्यनेनान्वेति। एकत्वनिष्ठ = एकत्वसङ्ख्यासमवेत॰, एव द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजातिविशेष = द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकीभूतः एकत्वत्वविशेषलक्षणो जातिविशेष॰ कल्प्यते = अनुमीयते। 'या या कारणता सा सा किञ्चिद्धर्मावच्छिन्ने'तिव्याप्तिवलेन समवायसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यमात्रवृत्तिकार्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणतावच्छेदकविधया एकत्वसख्यावृत्ति॰ एकत्वत्वविशेषोऽनुमीयते। 'सिद्धो धर्म एको नित्यश्चेदसति बाधके तदा लाघवमि'ति न्यायेन स च जातिस्वरूप एव सिध्यति। न चैकत्वसख्यायामेवैकत्वत्वविशेषो वर्तते समवायेन घटादि द्रव्य तु कपालादौ वर्तते इति वैयधिकरण्यात्कथ कार्यकारणभावः घटाकोटिमटाट्येतेति वाच्यम् जातिविशेषस्य समवायेनैकत्ववृत्तित्वेऽपि स्वसमवायिसमवायसम्बन्धेन कपालादौ सत्त्वात्, स्वसमवायिसमवायस्यैवात्र जन्यद्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकसम्बन्धेन विवक्षितत्वात्। एतेन एकत्वसमवेतस्यैकत्वत्वविशेपस्य द्रव्यारम्भकतावच्छेदकत्वे एकत्वसख्याया द्रव्यसमवायिकारणत्व प्रसज्येतेति मुग्धाशङ्काऽपि परिहृता, व्याख्यानतो विशेपप्रतिपत्ते॰।

नन्वेव सति घटादेरपि द्रव्यारम्भकत्वापातः, स्वसमवायिसमवायसम्बन्धेनैकत्वत्वविशेपस्य तत्र सत्त्वात्। एतेन चरमावयविनो द्रव्यरम्भकत्व न कुत्रापि दृष्टमिति न तदापादनमर्हतीति प्रत्युक्तम्, सत्या मामग्र्या कार्योत्पादाऽवश्यम्भावनियमात्। न हि प्रयोजनक्षतिभिया सामग्री स्वकार्यं नार्जयतीत्याद्धायामाचक्षते - स = द्रव्यारम्भकतावच्छेदक एकत्वसमवेतो जातिविशेष॰ च अन्त्यावयव्येकत्वव्यतिरिक्त चरमावयविसमवेतैकत्वसख्यायामसमवेत एव। एकत्वत्वविशेपस्यान्त्यावयविसमवेतैकत्वासमवेतत्वादेव स्वसमवायिसमवायसम्बन्धेन चरमावयविवृत्तित्वासम्भवः। एतेन घटादेः द्रव्यारम्भकतापत्तिः प्रत्युक्ता, स्वसमवायिकारणतावच्छेदकतावच्छेदकससर्गेण द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकाभाववतो द्रव्यारम्भायोगात्। एकत्वत्वविशेपस्यान्त्यावयव्येकत्वसमवेतत्वोपगमे तु घटादीनामनारम्भकत्वरक्षणाय समवायेन द्रव्य प्रति तादात्म्येन तत्तद्द्रव्यस्य प्रतिवन्धकत्वकल्पनावश्यकत्वेनाऽनन्तप्रतिवध्यप्रतिवन्धकभावप्रसङ्गात्। एतादृशगौरवस्य प्रथममेवोपस्थितत्वेन न तत्र जातिविशेषः कल्प्यते इति न गौरवमित्याशयमाविष्कुर्वन्ति- इति = उक्तहेतो॰ न तत्तदन्त्यावयवित्वेन अनन्तप्रतिवध्यप्रतिवन्धकभावकल्पनागारवम्। घटे समवायेन द्रव्य प्रति प्रतिवन्धकत्व, पटे समवायेन द्रव्य प्रति तादात्म्येन पटस्य प्रतिवन्धकत्वमित्याद्यनन्तप्रतिवध्य-प्रतिवन्धकभावकल्पनागौरव घटादिसमवेतैकत्वसख्यायामेकत्वत्वविशेपस्य द्रव्यारम्भकतावच्छेदकस्याऽनभ्युपगमेनेव परिहृतम्। न चान्त्यावयविसमवेतकत्वव्यावृत्तिरेकत्वविशेपे कथ सिद्धेति वाच्यम्, धर्मिग्राहकप्रमाणादेव तल्लाभात्, 'समवायसम्बन्धावच्छिन्न-जन्यद्रव्यमात्रवृत्तिवजात्यावच्छिन्नकार्यतानिरूपिता तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नाऽनन्त्यावयविनिष्ठसमवायिकारणता किञ्चिद्ध-

वल्लभा

गुरु धर्म होने पर भी पशुपद की शक्यता का अवच्छेदक ह ठीक वैसे ही वहिरिन्द्रियग्राह्यविशेपगुणसजातीयगुणवत्त्व गुरुधर्म होने पर भी भूतपद की शक्ति की विपयता का नियामक = शक्यतावच्छेदक हो सकता हे। निष्कर्प - अन्धकार को जन्य द्रव्य कहा जा मकता हे।

♦★ एकत्ववृत्ति जातिविशेष द्रव्यारम्भकतावच्छेदक - स्वतन्त्रमत ♦★

स्वत॰। अमुक स्वतत्र विद्वानो का यह कथन हे कि→'द्रव्यारम्भकतावच्छेदक न तो मूर्तत्त्व है, न तो भूतत्व है किन्तु एकत्वसख्या मे रहनेवाली जाति विशेष ही द्रव्यारम्भकतावच्छेदक ह। कपालगत एकत्व मे तादृश जातिविशेष होने से कपाल घटारम्भक होता है। यद्यपि तादृश जाति समवाय सम्बन्ध से कपाल मे नही अपितु कपालगत एकत्व सख्या मे रहती ह। कारणतावच्छेदक धर्म तो कारण मे ही रहना चाहिए- यह एक नियम हे। अत आपातत तादृश जाति को द्रव्यारम्भकतावच्छेदक मानी जा नही सकती तथापि स्वाश्रयसमवायसम्बन्ध से विवक्षित जातिविशेष कपाल मे भी रह सकती हे, क्योकि स्व = जातिविशेष के आश्रय = एकत्वसख्या का समवाय उस कपाल मे रहता है जहाँ समवायसम्बन्ध से घट उत्पन्न होता है। यहाँ यह शङ्का हो कि→'घटादि अन्त्य अवयवी मे भी एकत्वसख्या रहने से तादृशएकत्वगत जाति स्वाश्रयसमवाय सम्बन्ध से घट आदि मे भी रहने से घट आदि मे भी कपालादि की भाँति समवाय ससर्ग से द्रव्य उत्पन्न होगा'←तो यह निराधार है, क्योकि द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जातिविशेष अनन्त्य अवयवी मे रहनेवाली एकत्व सख्या मे ही वृत्ति हे, न कि अन्त्य अवयवी मे रहनेवाली एकत्व सख्या मे भी। घट अन्त्य अवयवी होने की वजह घटगत एकत्वसख्या मे तादृश जातिविशेष समवायसम्बन्ध से नही रहने से स्वाश्रयसमवायसम्बन्ध से वह जाति घटादि अन्त्य अवयवी मे भी रह नही सकती। अत घटादि मे समवायसम्बन्ध से द्रव्यान्तर की उत्पत्ति हो नही सकती। अन्त्य अवयवी मे रहनेवाली एकत्व सख्या मे द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जाति समवाय सम्बन्ध से रहती नही हे - यह मानना उचित भी ह, क्योकि ऐसा न मानने पर तत् तत् अनन्त अन्त्य अवयवी को समवायसम्बन्ध से होनेवाली द्रव्य की उत्पत्ति के प्रति तादात्म्यसम्बन्ध से प्रतिवन्धक मानना

न च तस्य जन्यैकत्वत्वेन सम साङ्कर्यम्, तद्व्याप्यजन्यैकत्वत्वस्य भिन्नत्वात्, कार्यतावच्छेदकाननुगमस्याऽदोषत्वाद्' इत्याहु ।

◆ हेमलता ◆

र्मावच्छिन्ना कारणतात्वात्' इत्यनुमानेनचाऽन्त्यावयविसमवेतैकत्वासमवेतस्यैव वैजात्यस्य द्रव्यारम्भकतावच्छेदकधर्मविधया सिद्धेरिति।

न च तस्य = अनन्त्यावयविमात्रसमवेतैकत्वसङ्ख्यासमवेतैकत्वत्वजातिविशेषस्य स्वसमवायिसमवायसम्बन्धेन द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकस्य जन्यैकत्वत्वेन = जन्यैकत्वसङ्ख्यासमवेतैकत्वत्वसामान्येन सम साङ्कर्यम्। तथाहि घटादौ जन्ये चरमावयविनि या एकत्वसङ्ख्या साऽपि जन्येति तत्र सामानाधिकरण्येन जन्यत्वविशिष्टैकत्वत्वजातिः समवेता पर द्रव्यारम्भकतावच्छेदक एकत्वत्वविशेषस्तत्र नास्ति, स्वतन्त्रैः तादृश-जातेश्चरमावयव्येकत्वव्यावृत्तत्वाभ्युपगमात्। परमाणोर्द्रव्यारम्भकत्वेन तद्गतैकत्वसङ्ख्याया द्रव्यारम्भकतावच्छेदको जातिविशेषो वर्तते पर जन्यैकत्वत्व-जातिर्नास्ति, परमाणोर्नित्यत्वेन तद्गतैकत्वस्यापि नित्यत्वेन जन्यैकत्वमात्रवृत्तिवैजात्याऽयोगात्। द्व्यणुकादिसमवेतैकत्वे तु जन्यैकत्वमात्रवृत्तिवैजात्य द्रव्यारम्भकतावच्छेदक एकत्वत्वविशेषश्च स्त इति साङ्कर्यम्। अत एवान्त्यावयविसमवेतैकत्वव्यावृत्तैकत्वत्वविशेषस्याऽनन्त्यावयव्येकत्वसमवेतस्य द्रव्यारम्भकतावच्छेदकत्वकल्पन नार्हति। तस्यान्त्यावयविगतैकत्ववृत्तित्वे तूपदर्शितानन्तप्रतिवध्यप्रतिबन्धकभावकल्पनागौरवमिति व्याघ्रतटीन्यायापात इति।

तन्निरासार्थं स्वतन्त्राः ब्रुवते- तद्व्याप्यजन्यैकत्वत्वस्य = द्रव्यारम्भकतावच्छेदकैकत्वत्वविशेषव्याप्यजन्यैकत्वत्वस्य अन्त्यावयविसमवेतैकत्वगतज-न्यैकत्वत्वाद् भिन्नत्वात्। एवञ्च न साङ्कर्यावकाशः। तथाहि घटादिगतैकत्वे द्रव्यारम्भकतावच्छेदकीभूतैकत्वत्वविशेषस्याऽवृत्तित्वेन तद्व्याप्यस्य जन्यैकत्वत्वविशेषस्याऽपि तत्राभाव, व्यापकाभावस्य व्याप्याभावव्याप्यत्वात्। यच्चैकत्वत्व घटादिगतैकत्वे वर्तते तत्रानन्त्यावयविगतैकत्वे द्रव्यारम्भकतावच्छेदकैकत्वत्वजातिविशेषसमवायिनि वर्तते किन्तु तदतिरिक्तैकत्वत्व द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदकैकत्वत्वविशेषव्याप्यमेव वर्तत इति न परस्परव्यधिकरणयोरेकत्र समावेशलक्षणस्य सङ्करस्यावकाशः। ततश्चान्त्याऽवयविगतैकत्वाऽवृत्त्यैकत्वत्वव्यापकोऽनन्त्यावयविसमवेतैकत्वाऽसमवेत एकत्वसमवेतो जातिविशेष एकत्वत्वविशेषलक्षणः स्वसमवायिसमवायसम्बन्धेन द्रव्यसमवायिकारणतावच्छेदक इत्यभ्युपगमे दोषलेशावकाशो नास्तीति स्वतन्त्राणामभिप्रायः।

ननु जन्यैकत्वत्वजात्या सम द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजातेः साङ्कर्यनिरासकृते जन्यैकत्वत्वजातेर्नानात्वमुपकल्प्यैकत्वनिष्ठद्रव्यारम्भकतावच्छेदकजाति-विशेषव्याप्यत्वकल्पने तादृशविभिन्नैकत्वत्वयोः कार्यतावच्छेदकत्वापातेन कार्यकारणभावभेदापत्तिरित्याशङ्कायां स्वतन्त्रा वदन्ति- कार्यतावच्छेदकाननुगमस्य अदोषत्वात्। यदि च द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजातेर्नानात्वमुपकल्प्यते तदा व्यभिचारभिया तदवच्छिन्नजन्यतावच्छेदिकाऽपि नाना जातिः कल्प्या, साऽपि च जलत्वादिना सङ्कीर्यमाणा जलत्वादिव्याप्या नाना स्वीकार्येति बहुतरकारणतावच्छेदकजातिकल्पनावश्यकतया बहुतरकार्यकारणभावप्रसङ्गः,

► वल्लभा ◄

होगा। तत् तत् अनन्त चरम अवयवी में प्रतिबन्धकता की कल्पना करने पर अनन्त प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव की कल्पना करनी होगी जिसमें अत्यन्त गौरव है। इसकी अपेक्षा अनन्त्यावयविगत एकत्वसंख्या में ही तादृश जाति का स्वीकार करना उचित है, क्योंकि तब अनन्त प्रतिबध्य-प्रतिबन्धकभाव की कल्पना अनावश्यक बनती है। स्वाश्रयसमवायसम्बन्ध से चरम अवयवी में द्रव्यारम्भकतावच्छेदक वैजात्य के नहीं रहने से ही अन्त्य अवयवी में समवाय सम्बन्ध से द्रव्यान्तर की उत्पत्ति को अवकाश कहाँ होगा? समवायिकारणतावच्छेदक धर्म से शून्य में कार्य की समवाय सम्बन्ध से उत्पत्ति होती नहीं है।

यहाँ यह कथन कि→अन्त्य अवयवी में रहनेवाली एकत्वसंख्या से व्यावृत्त और अनन्त्यावयविगत एकत्व संख्या में अनुगत समवेत जातिविशेष = एकत्वत्वविशेष को द्रव्यारम्भकतावच्छेदक मानने पर साङ्कर्य दोष प्रसक्त होने से उक्त कार्यकारणभाव को मान्य किया जा नहीं सकता। वह साङ्कर्य जन्यएकत्वत्वजाति के साथ प्रसक्त होता है। जन्यैकत्वत्वजाति का मतलब है केवल कार्यभूत एकत्वसंख्या में रहनेवाली एकत्वत्वजाति। घटगत जन्य एकत्वसंख्या में जन्यैकत्वत्व जाति है, मगर द्रव्यारम्भकतावच्छेदक एकत्वत्वजातिविशेष नहीं है, क्योंकि घट अन्त्य अवयवी होने से तद्गत एकत्वसंख्या में द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जातिविशेष का स्वतन्त्रमतानुसार स्वीकार किया जा नहीं सकता, यह अभी उपर्युक्त कथन से स्पष्ट किया गया है। परमाणुगत एकत्वसंख्या नित्य होने से उसमें जन्यैकत्वत्वजाति रहती नहीं है, मगर द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जाति रहती है, क्योंकि परमाणु द्व्यणुकजनक होता है। इस तरह परस्पर व्यधिकरण ऐसी जन्यैकत्वत्वजाति एवं द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जातिविशेष कपालादिगत एकत्वसङ्ख्या में रहती है। परस्परव्यधिकरण धर्मो का एकत्र धर्मी में समावेश होने से जन्यैकत्वत्व जाति के साथ द्रव्यारम्भकतावच्छेदक एकत्वत्वजातिविशेष का साङ्कर्य प्रसक्त होता है←अज्ञानजन्य होने का कारण यह है कि द्रव्यारम्भकतावच्छेदक एकत्वत्वजातिविशेष की व्याप्य जन्यैकत्वत्वजाति अन्त्यावयविगत एकत्वसंख्या में रहनेवाले वैजात्य से भिन्न ही है-ऐसा हम मानते हैं। आशय यह है कि घटादि में रहनेवाली एकत्वसंख्या में समवेत जन्यैकत्वत्वजाति कपालादिगत एकत्वसंख्या में रहती नहीं है, किन्तु उससे भिन्न जातिविशेष ही कपाल आदि में समवेत एकत्वसंख्या में रहती है, जो द्रव्यारम्भकतावच्छेदक

अत्र वदन्ति तमसो द्रव्यत्वे आलोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्व न स्यात्, द्रव्यचाक्षुपत्वावच्छिन्न प्रत्यालोकसयोगत्वेन हेतुत्वात्।

◆ हेमलता ◆

जन्यैकत्वनिष्ठजातेर्द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजातिव्याप्यत्वे त्वेकत्वकार्यतावच्छेदकजातिद्वयमेव कल्पनीयमिति कार्यकारणभावद्वयस्वीकारेणैवोपपत्तेर्लाघवम्। एतेन द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजातेरनेकविधत्वकल्पनायाः सम्भवेन जन्यैकत्वमात्रवृत्तिजातिव्याप्यत्वोपगमे विनिगमनाविरह इत्यपि प्रत्युक्तम् कार्यकारणभाव-लाघवस्यैव विनिगमकत्वात्।

स्वतन्त्रमते विजातीयसयोगस्याऽपि जन्यद्रव्य प्रति पृथक्कारणत्वाऽकल्पनात् लाघवम्। जन्यभावमात्रस्य ससमवायिकारणकत्वनियमस्त्वसिद्धः सिद्धौ वा तत्र द्रव्यत्वेनैव तयात्वमस्त्विति न तदनुरोधेन द्रव्यनिष्ठजातिविशेषकल्पनमिति न तमसो द्रव्यत्वानुपपत्तिरित्यधिकमस्मत्कृतजयलतायामवग-न्तव्यम्।

केचित्तु समवायसम्बन्धेन जन्यद्रव्यम्प्रति समवायसम्बन्धेन तादृशजातिमदेकत्वविशेषः कारणमिति फलितमिति व्याख्यानयन्ति, तन्न, एकत्वसङ्ख्याया द्रव्यारम्भकताया अनङ्गीकारात्, द्रव्यसमवायिकारणताया द्रव्येतराऽवृत्तित्वात्।

अत्र नैयायिकवैशेषिकादय' तमोद्रव्यत्वापाकरणाय वदन्ति यदुत तमस = तमःपदप्रतिपाद्यस्य द्रव्यत्वे आलोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्व = आलोकासहकृतनेत्रजन्यप्रतीतिविषयत्व न स्यात्, लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्याचाक्षुपत्वावच्छिन्न प्रति आलोकसयोगत्वेन समवायसम्बन्धेन हेतुत्वात् = कारणत्वसिद्धेः। तमसि समवायेनालोकसयोगविरहान्न तच्चाक्षुप भवितुमर्हति। न चैव भवति। अतो निरुक्तकार्यकारणभावबलेन तमसो

► वल्लभा ◄

एकत्ववृत्तिवैजात्य की व्याप्य है। घटादिगत एकत्व मे द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जातिविशेष नही होने से उसकी व्याप्य कपालादिगतकत्वसमवेत एकत्वत्वविशेष जाति का न होना सिद्ध होता है, क्योकि व्यापक का अभाव व्याप्याभाव का व्याप्य होता है। इस तरह कपालगतैकत्व मे समवेत एकत्वत्वजातिविशेष घटादिगत एकत्वसख्या मे रहती नही है और घटादिगत एकत्व मे समवेत जन्यैकत्वत्वजाति कपालादिगत एकत्वसख्या मे रहती नही है। अत परस्पर व्यधिकरण धर्मो का एकत्र समावेश ही असिद्ध है। तब साङ्कर्य को अवकाश कैसे? प्रस्तुत मे कार्यतावच्छेदक धर्म का अननुगम दोषात्मक नही है। मतलब यह है कि जन्यैकत्वनिष्ठ एकत्वत्वविशेष जाति को द्रव्यारम्भकतावच्छेदक एकत्वत्वजातिविशेष की व्याप्य मानने पर अनन्त्यावयविगत एकत्वसख्या मे रहनेवाले वैजात्य एव अनन्त्यावयविगत एकत्व सख्या मे रहनेवाले अन्य वैजात्य को कार्यतावच्छेदक मानना पडेगा जिसके फलस्वरूप द्विविध कार्यकारणभाव को मान्य करना होगा। मगर फलमुख होने से यह गौरव दोषात्मक नही है। द्रव्यारम्भकतावच्छेदकजाति को जन्यैकत्वमात्रवृत्तिजाति की व्याप्य मानने पर तो अनेकविध कार्यकारणभाव के स्वीकार का महागौरव दोष उपस्थित होगा जिसकी अपेक्षा द्विविध हेतु-हेतुमद्भाव का गौरव नगण्य है, आपेक्षिक लाघवस्वरूप है। अतएव जन्यैकत्वत्वजाति को द्रव्यारम्भकतावच्छेदकीभूतएकत्वत्वजाति की व्याप्य मानने पर प्राप्त कार्यतावच्छेदक धर्म का अननुगम निर्दोष है। अन्धकार के अवयवो मे जो एकत्वसख्या रहती है उसमे द्रव्यारम्भकतावच्छेदक जाति विद्यमान होने से अन्धकार के अवयवो से तमोद्रव्य की उत्पत्ति हो सकती है। इस तरह अन्धकार मे द्रव्यत्वसिद्धि सुघट है - यह स्वतन्त्र विद्वानो की राय है। इस तरह यहाँ तक के ग्रन्थ से मीमासको की ओर से अन्धकार मे द्रव्यत्व को सिद्ध किया गया।

► अन्धकार द्रव्य नही है - नैयायिक ◄

नैयायिकः- अत्र वद०। मीमासक! आप दूर की नही सोचते, अन्यथा अन्धकार को द्रव्य नही कहते। देखिये, अन्धकार यदि द्रव्य होगा तो आलोकनिरपेक्ष चक्षु से वह ग्राह्य कैसे हो सकेगा? क्योकि लौकिक विषयता सम्बन्ध से द्रव्यचाक्षुपसामान्य के प्रति समवाय सम्बन्ध से आलोकसयोग कारण होता है। जैसे घट आलोकसयुक्त होने पर ही चक्षुजन्य प्रतीति = चाक्षुप का विषय बन सकता है ठीक वैसे ही अन्धकार भी आलोकसयुक्त होने पर ही चाक्षुष साक्षात्कार का गोचर हो सकेगा। मगर अनुभव तो यही है कि आलोकसयोग के बिना ही अन्धकार का चाक्षुप होता है। इस व्यतिरेक व्यभिचार से अन्धकार को द्रव्य नही माना जा सकता। यहाँ यह कहना नही चाहिए कि→'आलोकद्रव्य का भी चाक्षुप होता है किन्तु आलोक मे तो अन्य आलोक का सयोग होता नही है। इसलिये आलोकसयोग को द्रव्यचाक्षुपसामान्य का कारण कैसे माना जा सकता?'← क्योकि आलोक मे भी आलोकगगनसयोग समवायसम्बन्ध से रहता ही है। इसी सबब उसमे लौकिकविषयतासम्बन्ध से द्रव्यचाक्षुप = आलोकचाक्षुप उत्पन्न होता है। इसलिये दर्शित कार्यकारणभाव मे व्यतिरेक व्यभिचार का अवकाश नही है। यहाँ इस शका का कि→'आलोकसयोग को द्रव्याचाक्षुप का कारण मानने पर तो गाढ अन्धकार मे भी सुवर्ण का चाक्षुप होने लगेगा, क्योकि सुवर्ण भी नैयायिक मतानुसार तैजस होने से सुवर्णात्मकआलोक-गगनसयोग तो सुवर्ण मे भी रहता ही है'←समाधान नैयायिक की ओर से यह है कि द्रव्यचाक्षुपसामान्य के प्रति महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसयोगत्वेन रूपेण तादृश आलोकसयोग समवायसम्बन्ध से कारण होता है। सुवर्ण का रूप अभिभूत होने

न चालोकचाक्षुषे व्यभिचारः, तत्राऽप्यालोकगगनसंयोगस्य सत्त्वात्। न चैवं बहलतमे तमसि सुवर्णसाक्षात्कारापत्तिः, महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगत्वेन तद्धेतुत्वात्। न चैकावच्छेदेनालोकसंयोगवत्यपरावच्छेदेन चक्षुःसंयोगाच्चाक्षुषापत्तिः, चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगस्य तथात्वात्। न च पेचकादिचाक्षुषे व्यभिचारः, चैत्रीयद्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति चैत्रचक्षुःसंयोगावच्छे-

◆ हेमलता ◆

द्रव्यत्वं न सम्भवति। न च द्रव्यचाक्षुषसामान्यं प्रति समवायेनालोकसंयोगस्य हेतुत्वे तु आलोकचाक्षुषे व्यभिचारः = व्यतिरेकव्यभिचारः, आलोके आलोकान्तरविरहादिति वाच्यम्, तत्र = आलोके अपि आलोकगगनसंयोगस्य समवायेन सत्त्वात्। अत एव लौकिकविषयतासम्बन्धेनालोकचाक्षुषं तत्रोपजायते। न चैवं आलोकगगनसंयोगस्याऽपि द्रव्यचाक्षुषजनकत्वे बहलतमे तमसि सुवर्णसाक्षात्कारापत्तिः = लौकिकविषयतासम्बन्धेन सुवर्णे चाक्षुषोदयप्रसक्तिः, सुवर्णस्य नैयायिकमते तेजस्त्वेन सुवर्णात्मकालोक-गगनसंयोगस्याऽन्धतमस्यपि सुवर्णे समवायेन सत्त्वादिति वाच्यम्, महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगत्वेन = महत्परिमाणाश्रयः उत्कटानभिभूतरूपवान् य आलोकः तत्संयोगत्वेन रूपेण तद्धेतुत्वात् = द्रव्यचाक्षुषसामान्यकारणत्वाभ्युपगमात्। पार्थिवादिपरमाणुचाक्षुषवारणाय महदिति विशेषणमालोकस्य। पिशाचादिचाक्षुषपराकरणाय उद्भूतेति रूपविशेषणम्, पिशाचरूपस्यानुद्भूतत्वेन पिशाचसाक्षात्कारानुदयात्। एतेन चक्षुरादीन्द्रियप्रत्यक्षापत्तिरपि निराकृता। सुवर्णात्मकालोकस्य रूपमभिभूतमिति न सुवर्णस्य तमसि चाक्षुषप्रसङ्गः। न च महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगत्वेन द्रव्यचाक्षुषकारणत्वे एकावच्छेदेनालोकवति =परभागावच्छिन्नालोकसंयोगविशिष्टे घटादौ अपरावच्छेदेन = पुरोवर्तिभागावच्छेदेन चक्षुःसंयोगात् घटादौ लौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषापत्तिः, तत्र महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगस्य सत्त्वादिति वाच्यम्, चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगस्य = नेत्रसंयोगावच्छेदकीभूतो यो विषयदेशः तदवच्छिन्नस्य महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगस्य, तथात्वात् = लौकिकविषयतया जायमानं द्रव्यचाक्षुषं प्रति समवायेन कारणत्वात्। यदा चक्षुःसंयोगालोकसंयोगयोरवच्छेदक एक एव विषयदेशस्तदैवोक्तकारणसत्त्वाद् द्रव्यचाक्षुषं भवति। एकावच्छेदेनालोकवत्यपरावच्छेदेन चक्षुःसंयोगसत्त्वे आलोकसंयोगस्य चक्षुःसंयोगावच्छेदकानवच्छिन्नत्वान्न तदानीं चाक्षुषप्रसङ्गः।

न च पेचकादिचाक्षुषे = उलूकादिसमवेतचाक्षुषसाक्षात्कारे व्यभिचारः = व्यतिरेकव्यभिचारः, चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्न-महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगस्य सत्त्वेऽपि दिवा घूकादीनां चाक्षुषानुदयादिति वाच्यम्, लौकिकविषयतासम्बन्धेन चैत्रीयद्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं = चैत्रसमवेतं यद् द्रव्यचाक्षुषं तन्मात्रवृत्तिजात्यवच्छिन्नं प्रति चैत्रचक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगत्वेन = चैत्रीयचक्षुःसंयोगावच्छेदको

▶ वल्लभा ◀

से उसमें महदुद्भूतानभिभूतरूपविशिष्ट आलोक का संयोग रहता नहीं है। कारण के न होने पर कार्य का आपादन कैसे हो सकता है? यहाँ इस समस्या के कि—›'घटादि के एक भाग में महदुद्भूतानभिभूतरूपविशिष्टालोकसंयोग एवं अपर भाग में चक्षुसंयोग होने पर भी उसके चाक्षुष की आपत्ति आयेगी। इसका निराकरण कैसे हो सकेगा?'‹—परिहारार्थ नैयायिक की ओर से यह कहा जा सकता है कि चक्षुसंयोग के अवच्छेदक विषयदेश से अवच्छिन्न आलोकसंयोग ही द्रव्यचाक्षुष का कारण होता है। जब द्रव्य के अलग अलग भाग में आलोकसंयोग और चक्षुसंयोग रहता है तब आलोकसंयोग और चक्षुसंयोग का अवच्छेदक देश भिन्न होने की वजह चक्षुसंयोग आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्न होता नहीं है। इसलिए तब घटादि द्रव्य के चाक्षुष की आपत्ति को अवकाश रहता नहीं है।

▲▲ उलूकचाक्षुष में व्यभिचारवारण ▲▲

न च पे०। यहाँ इस शंका का कि—› उक्त कार्यकारणभाव के स्वीकार में उल्लू, बिल्ली आदि जानवरों के द्रव्यचाक्षुष में व्यतिरेक व्यभिचार प्रसक्त होता है‹—समाधान यह है कि लौकिक विषयता सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले चैत्रीयद्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्न के प्रति समवाय सम्बन्ध से चैत्रचक्षुसंयोगावच्छेदकावच्छिन्न आलोकसंयोग कारण होता है। घटादि के जिस भाग में चैत्रीय चक्षु का संयोग होता है उसी भाग में जब आलोकसंयोग होता है तब चैत्र को घटादि द्रव्य का चाक्षुष उत्पन्न होता है। इसलिये उक्त कार्यकारणभाव की कल्पना की जाती है। उल्लू आदि के घटादिद्रव्यचाक्षुष में चैत्रीयद्रव्यचाक्षुषत्वात्मक कार्यतावच्छेदक धर्म ही रहता नहीं है। अतः वह बिना आलोकसंयोग के उत्पन्न हो तो भी कोई दोष नहीं है। चैत्रीयचक्षुसंयोगावच्छेदकावच्छिन्न आलोकसंयोग के कार्यतावच्छेदक धर्म से अनाक्रान्त होने से उसके बिना उल्लू आदि को घटादिद्रव्य चाक्षुष उत्पन्न हो तो व्यतिरेक व्यभिचार कैसे कहा जा सकता है? यहाँ इस शंका के कि—›'चैत्र भी जब चक्षु को अञ्जन, औषधि आदि से संस्कृत - लिप्त करता है तब तो रात को गाढ अंधकार में भी बिना तादृश आलोकसंयोग के ही चैत्र को घटादि द्रव्य का चाक्षुष उत्पन्न होता है। अतः पुनः व्यतिरेक व्यभिचार प्रसक्त होगा‹—समाधानार्थ नैयायिक की ओर से यह कहा जाता है कि आलोक की भाँति अञ्जनादि भी स्वाव्यवहितोत्तर

दकावच्छिन्नालोकसयोगत्वेन तथात्वात् । न चाञ्जनादिसस्कृतचक्षुषश्चैत्रस्य चाक्षुषे व्यभिचारः, आलोकस्येवाऽञ्जनादेरपि स्वाव्यवहितोत्तरचाक्षुष प्रति हेतुत्वे व्यभिचाराऽप्रचारात् ।

यत्तु 'फलबलात् पेचकादिचाक्षुषहेतुरप्यालोकविशेष एव कल्प्यते' इति, तन्न, तदालोकेनाऽन्येषामपि तमसि चाक्षुषापत्तेर्दुर्वारत्वात्,

◆ हेमलता ◆

यो विषयदेशः तदवच्छिन्न-महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसयोगत्वेन रूपेण तथात्वात् = द्रव्यचाक्षुषजनकत्वात् । काकारिप्रभृतीना द्रव्यचाक्षुषे चैत्रीयद्रव्यचाक्षुषत्वात्मकस्य कार्यतावच्छेदकस्यैव विरहेण निरुक्तकारणविरहदशाया निशाटादिसमवेतद्रव्यचाक्षुषोदयेऽपि व्यतिरेकव्यभिचाराप्रसरात् । स्वकार्यतावच्छेदकावच्छिन्नस्यैव स्वाभावकालीनोत्पादे व्यतिरेकव्यभिचारमामनन्ति मनीषिणः । एतेन चैत्रचक्षुःसयोगावच्छेदकावच्छिन्नालोकसयोगदशाया जायमाने यज्ञदत्तादिसमवेतद्रव्यचाक्षुषे व्यतिरेकव्यभिचारोऽपि परास्त । न च तथापि अञ्जनादिसस्कृतचक्षुष चैत्रस्य चाक्षुषे = लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्ये जायमाने द्रव्यचाक्षुषप्रत्यक्षे व्यभिचार = व्यतिरेकव्यभिचार', आलोकसयोगविरहेऽपि अञ्जनौषधिप्रभृतिद्रव्यसस्कृतचक्षुषो द्रव्यगोचरचाक्षुषोत्पत्तेरिति वाच्यम् आलोकस्य = महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकस्य इव अञ्जनादेरपि स्वाऽव्यवहितोत्तरचाक्षुष = स्वाऽव्यवहितोत्तरत्वविशिष्टचाक्षुषत्वावच्छिन्न प्रति हेतुत्वे = कारणत्वस्वीकारे व्यभिचाराऽप्रचारात् = व्यतिरेकव्यभिचाराऽसम्भवात् । अञ्जनादिसस्कृतचक्षुषः चैत्रस्य जायमाने द्रव्यचाक्षुषे आलोकाऽव्यवहितोत्तरत्वस्य विरहेणालोकमृतेऽपि तदुत्पादे नालोककारणताया व्यभिचारः, तत्रालोककार्यतावच्छेदकविरहात् । तस्याञ्जनाद्यव्यवहितोत्तरजायमानत्वेनाञ्जनादिकार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वान्नाञ्जनादिकारणतायामपि व्यतिरेकव्यभिचारः । नाप्यालोकजन्ये द्रव्यचाक्षुषेऽञ्जनादिकारणताया व्यभिचारः, तस्यालोकाऽव्यवहितोत्तरत्वविरहेणालोककार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वात् । आलोकाऽव्यवहितोत्तरत्वविशिष्ट चैत्रीयद्रव्यचाक्षुष प्रति चैत्रचक्षुःसयोगावच्छेदकावच्छिन्न-महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसयोगत्वेन समवायेन कारणताया आवश्यकत्वेनालोकनिरपेक्षचक्षुषा ज्ञायमानस्य तमसो द्रव्यत्वानुपपत्तिरिति नयायिकाशय' ।

यत्तु इति तन्नेत्यनेनान्वेति । फलबलात् = चाक्षुषसाक्षात्कारलक्षणफलोदयान्यथानुपपत्त्या यद्वा अञ्जनाद्यजन्यचाक्षुषालोकयोः कार्यकारणभावलक्षणस्य फलस्य बलात् । पेचकादिचाक्षुषहेतु अपि आलोकविशेष = महदुत्कटानभिभूतरूपापेक्षया विजातीय आलोकः एव कल्प्यते = अनुमीयते । प्रयोगश्चात्रैवम् - कौशिकादिचाक्षुषमालोकज अञ्जनाद्यजन्यत्वे सति चाक्षुषत्वात्, अञ्जनाद्यसहकृतचैत्रीयचाक्षुषवत् । पक्षतावच्छेदकञ्च पेचकादिचाक्षुषत्वम् । चाक्षुषजनक गाढतमःस्थोलूकादिचक्षु' आलोकसयुक्त अञ्जनाद्यजन्यचाक्षुषजनकबहिरिन्द्रियत्वात् अञ्जनाद्यसस्कृतनैत्रचैत्रसमवेतचाक्षुषवत् । जनकत्वाश्चात्रोपधायकत्वस्वरूप ग्राह्यम्, तेन न व्यभिचारः । बहलतमतम'सयुक्त विवक्षितद्रव्य आलोकसयुक्त द्रव्यत्वे सत्यञ्जनाद्यजन्यचाक्षुषविषयत्वात्, सम्प्रतिपन्नवत् । पेचकादिचाक्षुषजनकालोको विजातीयत्वादस्मदादिभिर्न गृह्यते इति न बाधो न वा गौरव फलाभिमुखत्वादिति । न च व्यभिचारग्रहे आलोकस्य कारणताग्रहस्यैवानुपपत्तिरिति वाच्यम् तदवच्छेदेन व्यभिचारग्रहस्यैव तत्सामाधिकरण्येन कारणताग्रहप्रतिबन्धकत्वात् । अत्र चालोकत्वसामानाधिकरण्येनैव तद्ग्रहात् तत्सामानाधिकरण्येन जनकत्वज्ञानस्य निरपायत्वात्, अन्यथा क्वचित्प्रथममतिप्रसक्तेनाऽपि धर्मेण कारणताग्रहोत्तर पश्चादनुगतावच्छेदकधर्मकल्पनासिद्धान्तव्याकोपापत्तेरिति ।

तन्न चारु, तदालोकेन =पेचकादिनयनगोलकससृष्टालोकविशेषेण, अन्येषा = कौशिकादिभिन्नाना अपि तमसि चाक्षुषापत्ते =

► वल्लभा ◄

चाक्षुष के प्रति ही हेतु है । चैत्र जब अपनी ऑखो मे अञ्जनादि का सस्कार करता है तब उसे होनेवाला घटादिद्रव्यचाक्षुष आलोकाऽव्यवहितोत्तर नही है किन्तु अञ्जनादिअव्यवहितोत्तर है । अतएव वह आलोककार्यतावच्छेदकधर्मआक्रान्त नही बल्कि अञ्जनादिकार्यतावच्छेदकधर्माक्रान्त है । इसलिए बिना आलोक के उसकी उत्पत्ति होने पर भी आलोककारणता मे व्यतिरेक व्यभिचार को अवकाश नही है । इसी तरह आलोकाव्यवहितोत्तर द्रव्यचाक्षुष मे अञ्जनादिकारणता का व्यभिचार नही है, क्योकि वह अञ्जनादिकार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त नही है । इसलिये दर्शित कारणता मे व्यतिरेक व्यभिचार को अवकाश नही है ।

► उलूकचाक्षुष मे आलोकविशेषकारणता असगत ◄

यत्तु । कुछ विद्वानो की यह राय है कि → 'एक बार चैत्रादिचाक्षुषानुरोधेन आलोकसयोग मे कारणता निश्चित होने की वजह उलूक आदि को होनेवाले चाक्षुष के प्रति भी आलोकसयोग मे जनकता का स्वीकार करना ही होगा । फल = कार्य के बल से कारण का अनुमान होता है । मगर वहाँ सार आलोक तो बाधित है । इसलिए वहाँ सूर्यप्रकाश आदि से विजातीय आलोक की सिद्धि होती है । अत आलोकसयोग कारणता अबाधित ही है'' ← किन्तु यह असगत है । इसका कारण यह है कि गाढ अन्धकार मे आलोकविशेष से जैसे उलूक, बिल्ली आदि जानवरो को घटादिविषयक चाक्षुष साक्षात्कार होता है ठीक वैसे ही उसी

२१ आलोकविशेष से हमे भी गाढ अन्धकार मे बिना अञ्जनादि के घटादिविषयक चाक्षुष प्रत्यक्ष होना चाहिए- यह आपत्ति मुँह फाडे

पेचकादिनयनगोलकससृष्टालोकस्य पेचकाद्यन्यचाक्षुषं प्रति नानाप्रतिबन्धकत्वकल्पने च महागौरवादिति ।

अत्रेदं चिन्त्यते- चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगस्यालोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगस्य वा चाक्षुषहेतुत्वमिति विनिगमनाविरहः । स्वावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगसम्बन्धेनालोकसंयोगस्य तथात्वेऽपि स्वावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगसम्बन्धेन चक्षुःसंयोगस्य तथात्वे स एव दोषः ।

◆ हेमलता ◆

अञ्जनाद्यजन्यचाक्षुषप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वात्, कारणतावच्छेदकावच्छिन्नस्योपस्थितौ तदितरसकलसमवधाने कार्योत्पादस्य न्याय्यत्वात् । न च तदालोकस्य पेचकादिचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वात् नान्येषां तदानीं चाक्षुषापादनमर्हति, अन्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकस्य कारणत्वा-दिति वाच्यम्, नानाकार्यकारणभावकल्पनाया गुरुत्वेनाप्रामाणिकत्वादित्याशयेनाह - पेचकादिनयनगोलकसंसृष्टालोकस्य = विजातीयालोकस्य पेचकादिमात्रचाक्षुषं प्रति नानाकारणत्वकल्पने पेचकाद्यन्यचाक्षुषं = पेचकादीतरसमवेतचाक्षुषं प्रति नानाप्रतिबन्धकत्वकल्पने च महागौरवात् । किञ्च पेचकादिचाक्षुषं प्रति महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकस्य प्रतिबन्धकत्वकल्पनाया अवश्यक्लृप्तत्वेन तदभावेनैवोलूकादिचाक्षुषोपपत्तावालोकविशेषकल्पनाया अनुत्थानपराहतत्वात् सारालोकेन विजातीयालोकाभिभवकल्पनायान्त्वप्रामाणिकगौरवात् । एतेन पेचकादीनां बाह्यालोकनिरपेक्षं चक्षुर्ग्राहकमित्यसिद्धमेव । तत्र तेजोऽन्तरस्य विद्यमानत्वात् । अत एव ते दिवा न पश्यन्ति, तस्य सौरालोकेनाभिभूतत्वात्, तेषां तत्सहकृतचक्षुर्ग्राहित्वनियमादिति [न्या सि दी पृ ११] न्यायसिद्धान्तदीपकृत शशधरशर्मणो वचनमपहस्तितम् अनभिभूततेजोऽन्तरस्य पेचकाद्यन्यचाक्षुषं प्रति प्रतिबन्धकत्वकल्पने पेचकादिचाक्षुषं प्रति नानाकारणत्वकल्पने चादिपदार्थाननुगमेन तद्घटितप्रतिबध्यता-कार्यतावच्छेदकधर्माननुगमादिति दिक् ।

स्याद्वादिभिः अत्र = तमोद्रव्यत्वप्रतिक्षेपकनैयायिकवक्तव्ये इदं = अनुपदं वक्ष्यमाणं चिन्त्यते । तथाहि यदुक्तं नैयायिकेन चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नस्यालोकसंयोगस्य तथात्वादिति [द्रष्टव्यं १४७ तमे पृष्ठे] तन्न सम्यक्, यतः चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगस्य चाक्षुषहेतुत्वं आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगस्य वा चाक्षुषहेतुत्वमिति विनिगमनाविरहः । न च किञ्चिदत्र नियामकमस्ति । न च स्वावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगसम्बन्धेन महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगस्य लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्यचाक्षुषं प्रति कारणत्वोपगमान्नायं दोष इति वक्तव्यम्, यतः स्वावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगसम्बन्धेन आलोकसंयोगस्य = महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगस्य तथात्वेऽपि = लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यचाक्षुषनिष्ठकार्यतानिरूपितकारणतावत्त्वेऽपि स्वावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगसम्बन्धेन चक्षुःसंयोगस्य तथात्वे द्रव्यचाक्षुषकारणत्वे सः = विनिगमनाविरह एव दोषः तुल्ययोगक्षेमत्वादुभयोरपि ।

अन्ये तु चक्षुःसंयोगस्यैव स्वावच्छेदकावच्छिन्नमहदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसंयोगसम्बन्धेन द्रव्यचाक्षुषकारणत्वमस्तु महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालो-

▶ वल्लभा ◀

खडी है । यहाँ यह कहना कि —> उल्लू आदि के नयनगोलक से संयुक्त आलोकविशेष उल्लू आदि के चाक्षुष में ही कारण होता है, न कि मनुष्यवृत्ति चाक्षुष के प्रति । इसलिए उल्लू आदि के चाक्षुष के जनक आलोकविशेष से हमें गाढ अन्धकार में घटादि का चाक्षुष प्रत्यक्ष हो नहीं सकता <— भी असंगत है, क्योंकि उल्लू आदि के चाक्षुष के प्रति विजातीय आलोक को कारण और महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोक को प्रतिबन्धक मानना एवं चैत्रवृत्ति चाक्षुष साक्षात्कार के प्रति विजातीय आलोक को प्रतिबन्धक मानना और महदुद्भूतानभिभूतरूपविशिष्ट आलोक को कारण मानना इत्यादि कल्पना करने में अनेकविध कार्यकारणभाव के स्वीकार का महागौरव प्रसक्त होता है, जो अप्रामाणिक होने से मान्य हो नहीं सकता । इसलिए पुनः गाढ अन्धकार में विजातीय आलोक से घटादिगोचर चाक्षुष हमें भी होने लगेगा । अतएव आलोकविशेष में उल्लू आदि के चाक्षुष की कारणता मान्य हो नहीं सकती ।

आलोकसंयोगकारणता विनिगमनाविरहग्रस्त

अत्रेद । यहाँ यह सोचा जाता है कि अन्धकार को द्रव्य नहीं माननेवाले नैयायिक ने पूर्व में जो कहा था कि —> चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्न आलोकसंयोग द्रव्यचाक्षुषजनक होने से घटादि के एक भाग में आलोकसंयोग और दूसरी ओर चक्षुःसंयोग होने पर घटादिचाक्षुष की आपत्ति नहीं आयेगी <— वह ठीक नहीं है, क्योंकि लौकिक विषयता सम्बन्ध से होनेवाले द्रव्य चाक्षुष के प्रति समवायसम्बन्ध से चक्षुःसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोग को कारण माना जाय या आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्न चक्षुःसंयोग को कारण माना जाय ? इस विषय में कोई अन्यतरपक्षपाती युक्ति नहीं है । इस स्थिति में दोनों में कारणता मानने पर महागौरव होगा ।

स्वा० यदि आलोकसंयोगकारणतावादी की ओर से यह कहा जाय कि—> 'लौकिक विषयता सम्बन्ध से होनेवाले द्रव्यचाक्षुष के प्रति स्वावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगसम्बन्ध से आलोकसंयोग कारण है । जैसे कि घट के पुरोवर्ती भाग में आलोकसंयोग और चक्षुःसंयोग दोनों होने पर स्व = आलोकसंयोग के अवच्छेदक से अवच्छिन्न चक्षुःसंयोग घट के विवक्षित भाग में रहता है । इसलिए उसका

अथ द्रव्यनिष्ठलौकिकविषयता-द्रव्यसमवेतनिष्ठलौकिकविषयतादिसम्बन्धभेदेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगतत्संयुक्तसमवायादेर्नानाहेतुताकल्पने गौरवात् ।

◆ हेमलता ◆

कसंयोगत्वस्य चाक्षुषानभिभूतरूपवदालोकसंयोगत्वस्य कारणतावच्छेदकधर्मत्वे लाघवादिति वदन्ति । तन्न सङ्गतम्, सम्बन्धविधया तत्प्रवेशे गौरवस्य दुर्वारत्वात्, सम्बन्धगौरवाऽदोषत्वप्रवादस्य निर्युक्तिकत्वात्, विजातीयालोकसंयोगत्वेनैव तद्धेतुत्वमित्यपरे ।

आलोकसंयोगकारणतावादी शङ्कते - अथेति । चेदित्यनेनास्यान्वयः । द्रव्यनिष्ठलौकिकविषयता - द्रव्यसमवेतनिष्ठलौकिकविषयतादिसम्बन्धभेदेनेति । आदिशब्देन द्रव्यसमवेतसमवेतवृत्तिलौकिकविषयता - द्रव्यवृत्त्यभावविशेषणताख्यलौकिकविषयता - द्रव्यसमवेतवृत्त्यभावविशेषणताभिधानलौकिकविषयता-द्रव्यसमवेतसमवेतनिष्ठाभावविशेषणतात्मकलौकिकविषयताना ग्रहणमभिप्रेतम् । लौकिकविशेषणतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगतत्संयुक्तसमवायादेरिति । आदिपदेन तत्संयुक्तसमवेतसमवाय - तत्संयुक्तविशेषणता - तत्संयुक्तसमवेतविशेषणता-तत्संयुक्तसमवेतसमवेतविशेषणताना परिग्रहः कार्यः । नानाहेतुताकल्पने गौरवादिति । चक्षुःसंयोगस्य चाक्षुषकारणत्वे षट्कार्यकारणभावकल्पनागौरवादित्यर्थः । तथाहि (१) द्रव्यनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगस्य समवायेन हेतुत्वं यथा घटचाक्षुषे तादृशचक्षुःसंयोगस्य । अत्र चाक्षुषनिष्ठकार्यताच्छेदकसम्बन्धविधया द्रव्यवृत्तिविषयतोपादाने 'चैत्रस्याय पुत्र' इत्यादिचाक्षुषे चैत्राद्यंशे व्यभिचारः स्यादिति लौकिकत्वाख्यविषयताविशेषोपादानम् । (२) द्रव्यसमवेतनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगाश्रयसमवायस्य स्वरूपेण यद्वा तादृशचक्षुःसंयोगस्य स्वाश्रयसमवायेन हेतुत्वं यथा घटनीलरूपचाक्षुषं प्रति दर्शितस्वरूपस्य । (३) द्रव्यसमवेतसमवेतनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगस्य स्वाश्रयसमवेतसमवायेन हेतुत्वं यथा रूपत्वचाक्षुषे तादृशचक्षुःसंयोगस्य । (४) द्रव्यवृत्त्यभावविशेषणतात्मकलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगस्य स्वाश्रयविशेषणतासंसर्गेण कारणत्वं यथा भूतलवृत्तिघटाभावचाक्षुषं प्रति तादृशनेत्रसंयोगस्य । (५) द्रव्यसमवेतवृत्त्यभावनिष्ठविशेषणतात्मकलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगस्य स्वाश्रयसमवेतविशेषणतासम्बन्धेन जनकता यथा रूपवृत्तिरूपाभावचाक्षुषे तादृशचक्षुःसंयोगस्य । (६) द्रव्यसमवेतसमवेतनिष्ठाभाववृत्तिविशेषणतालक्षणलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुःसंयोगस्य स्वाश्रयसमवेतसमवेतविशेषणतासम्बन्धेन हेतुत्वं यथा रूपत्ववृत्तिरूपाभावचाक्षुषे निरुक्तनेत्रसंयोगस्य । कार्यतावच्छेदक - कारणतावच्छेदकसम्बन्धधर्मान्यतमभेदेऽपि कार्यकारणभावो भिद्यते, घटकभेदे तद्घटितभेदात् ।

▶ वल्लभा ◀

चाक्षुष हो सकता है' ← तो यह भी असंगत है, क्योंकि 'लौकिक विषयता सम्बन्ध से होनेवाले द्रव्यचाक्षुष के प्रति स्वावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगसम्बन्ध से चक्षुसंयोग कारण होता है - यह भी कहा जा सकता है। जैसे घट के पुरोवर्ती भाग में आलोक संयोग एवं चक्षुसंयोग होने पर स्व = आलोकसंयोग के अवच्छेदक से अवच्छिन्न चक्षुसंयोग घट के पुरोवर्ती भाग में रहने की वजह उसका चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है। अतः पुनः विनिगमनाविरह दोष प्रसक्त होता है।

●● विषयनिष्ठप्रत्यासत्ति से चक्षुसंयोगकारणता ●●

पूर्वपक्षः - अथ द्र । चक्षुसंयोग को विषय में रख कर चाक्षुष का कारण मानने पर अनेकविध कार्यकारणभाव की कल्पना आवश्यक बनने से कार्यकारणभाव में बाहुल्य प्रसक्त होता है, जो दोषात्मक माना जाता है। यह इस तरह - द्रव्यनिष्ठ लौकिक विषयता सम्बन्ध से चाक्षुष के प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्न चक्षुसंयोग को कारण मानना होगा, जैसे घटविषयक लौकिक चाक्षुष द्रव्यनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्ध से घट में रहता है और उसी घट के एक ही भाग में आलोकसंयोग और चक्षुसंयोग रहने पर आलोकसंयोग के अवच्छेदक भाग से अवच्छिन्न चक्षुसंयोग भी घट में रहेगा। कार्य और कारण इस तरह विषयनिष्ठ सम्बन्ध से समानाधिकरण बनने से उन दोनों के बीच कार्यकारणभाव सम्पन्न हो सकता है। मगर घटनीलरूपविषयक चाक्षुष की उपपत्ति प्रदर्शित कार्यकारणभाव से हो नहीं सकती, क्योंकि उक्त चाक्षुष का विषय घटीय नीलरूप है, जो गुण है न कि द्रव्य। अतः द्रव्यनिष्ठ लौकिकविषयता सम्बन्ध से वह चाक्षुष घट के नीलरूप में रह नहीं सकेगा [उत्पन्न हो नहीं सकेगा]। अतः यहाँ कार्यतावच्छेदक सम्बन्ध द्रव्यनिष्ठ लौकिविषयता न हो कर द्रव्यसमवेतनिष्ठ लौकिकविषयता संसर्ग होगा, क्योंकि घटीय नीलरूप घट में समवेत होने से द्रव्यसमवेतवृत्ति लौकिकविषयता सम्बन्ध से घटनीलरूपगोचर चाक्षुष घटनीलरूप में रह सकता है। नीलरूप में चक्षुसंयोग समवाय सम्बन्ध से रह नहीं सकता, क्योंकि घटनीलरूप गुण है और संयोग भी गुण है तथा गुण में गुण रहता नहीं है। इसलिये आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुसंयोगाश्रयसमवाय को ही घटनीलरूपविषयक चाक्षुष का कारण मानना होगा। तादृश नेत्रसंयोग का आश्रय नीलघट है, जिसका समवाय घटनीलरूप

समवायेन लौकिकविषयतादिविशेषवचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रत्यालोकसंयोगस्य स्वावच्छेदकावच्छिन्नसंयोगवच्चक्षुःसंयुक्तमनःप्र-

◆ हेमलता ◆

विषयनिष्ठप्रत्यासत्त्या चक्षुःसंयोगकारणत्वपक्षे गौरवमुपदर्श्याधुनाऽऽत्मनिष्ठप्रत्यासत्त्याऽऽलोकसंयोगकारणतावादी स्वपक्षे लाघवमाविष्करोति समवायेनेति । अनेन कार्यतावच्छेदकसम्बन्धप्रदर्शनं कृतम् । लौकिकविषयतादिविशेषवचाक्षुषत्वावच्छिन्नं = तमस्तद्व्याप्यभिन्ननिष्ठलौकिकविषयतानिरूपितलौकिकविषयिताश्रयचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति आलोकसंयोगस्येति । कारणतेत्यनेनास्यान्वयः । आत्मनिष्ठप्रत्यासत्तिवादी आलोकसंयोगकारणतावच्छेदकसम्बन्धमाह स्वावच्छेदकावच्छिन्नसंयोगवच्चक्षुःसंयुक्तमनःप्रतियोगिकविजातीयसंयोगसम्बन्धेनेति । स्वपदेनालोकसंयोगस्य ग्रहणम् । तदवच्छेदको यो विषयदेशः, तदवच्छिन्नः संयोगः = चक्षुःसंयोगः तदाश्रयीभूतेन चक्षुषा संयुक्तं यन्मनः तत्प्रतियोगिक आत्मानुयोगिको यो विजातीयसंयोगस्तत्सम्बन्धेनेत्यर्थः । तेन सम्बन्धेनालोकसंयोग आत्मनि वर्तते । तत्रैव च दर्शितं चाक्षुषं समवायेन वर्तते । अन्धकारप्रत्यक्षे तमोव्याप्यालोकसंयोगाभावादिचाक्षुषे च नालोकसंयोगापेक्षेति कार्यतावच्छेदकसम्बन्धकोटौ 'विशेषे'ति निवेशः । न च कारणतावच्छेदकसम्बन्धकोटौ 'विजातीये'ति निरर्थकमिति शङ्कनीयम्, घ्राणज-रासनादिसाक्षात्कारजनकात्ममनःसंयोगव्यवच्छेदकृते तस्याऽऽवश्यकत्वात् । यद्यपि प्रतिक्षणमात्ममनःसंयोगो भिद्यते, मनसः त्वरितगतित्वात् तथापि चाक्षुषजनकतावच्छेदकजातिविशेषसत्त्वान्न व्यतिरेकव्यभि- चारः । न चात्रापि नानाकार्यकारणभावकल्पनागौरवमिति वाच्यम् तमस्तद्व्याप्यभिन्नीयलौकिकविषयिताश्रयस्य घटचाक्षुषस्य नीलरूपादिचाक्षुषस्य रूपत्वादिगोचरचाक्षुषस्य भूतलवृत्तिघटाभावविषयकचाक्षुषस्य रूपवृत्तिरूपाभावप्रभृतिविषयकस्य चाक्षुषस्य रूपत्ववृत्तिरूपाभावादिविषयकस्य चाक्षुषस्य वा समवायेनात्मन्येव सत्त्वात् तत्र च निरुक्तसम्बन्धेनालोकसंयोगस्यापि सत्त्वात् । एवञ्चात्मनिष्ठप्रत्यासत्त्या आलोकसंयोगस्यैकविधकारणत्वेन लाघवमेव विनिगमकमित्यभिप्रायः ।

ननु भवतु ममापि चक्षुःसंयोगस्यात्मनिष्ठप्रत्यासत्त्यैव कारणत्वमिति चक्षुःसंयोगकारणतावादिशङ्कां मनसिकृत्यालोकसंयोगकारणतावाद्याह-

▶ वल्लभा ◀

में है । इसलिये द्रव्यसमवेतनिष्ठ लौकिकविषयता सम्बन्ध से चाक्षुष के प्रति आलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नचक्षुसंयोगाश्रयसमवाय को कारण मानना होगा । यह दूसरा हेतु-हेतुमद्भाव हुआ । इस तरह अन्य कार्यकारणभावों का स्वीकार रूपत्व-घटाभावादिविषयक चाक्षुष के अनुरोध से करना होगा । अतः विषयनिष्ठप्रत्यासत्ति से चाक्षुषप्रत्यक्ष के प्रति कारणविधया चक्षुसंयोगादि की कल्पना महागौरवग्रस्त है ।

▶ आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से आलोकसंयोगकारणता ◀

समवा । विषयनिष्ठप्रत्यासत्ति से चक्षुसंयोग में कारणता की कल्पना करने की अपेक्षा आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से आलोकसंयोग में कारणता की कल्पना करने में लाघव है । आत्मा में समवायसम्बन्ध से चाक्षुष साक्षात्कार उत्पन्न होता है, क्योंकि वह गुण है और आत्मा में उसकी समवायिकारणता रहती है । अतः कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध है समवाय । चाक्षुषात्मक कार्य आत्मा में रहता है । इसलिये उसके कारणीभूत आलोकसंयोग का भी आत्मा में रहना आवश्यक है, क्योंकि कार्य और कारण समानाधिकरण होने पर ही उन दोनों के बीच कार्यकारणभाव हो सकता है । आलोकसंयोग और चक्षुसंयोग एक भाग में रहने पर ही चाक्षुष साक्षात्कार का उदय होता है । तथा चक्षुसंयोग के आश्रय चक्षु के साथ मन का संयोग होता है और मन का विजातीय संयोग आत्मा के साथ होता है । अतः आलोकसंयोग स्व(= आलोकसंयोग) अवच्छिन्न चक्षुसंयोगाश्रय(=चक्षु) संयुक्तमन प्रतियोगिक आत्मानुयोगिक विजातीय संयोग सम्बन्ध से आत्मा में रहता है । यद्यपि ज्ञानमात्र के प्रति आत्ममन संयोग कारण है तथापि चाक्षुषजनक आत्ममन संयोग स्पार्शनादिजनक आत्ममन संयोग से विजातीय = भिन्नजातिवाला होता है । इसलिये कारणतावच्छेदकसंबंध में आत्ममन संयोग न कह कर 'तादृशविजातीयसंयोग' ऐसा कहा गया है । कार्यभूत चाक्षुष लौकिकविषयिताविशेषवाला अभिमत है, क्योंकि आलोकसंयोग चाक्षुषमात्र का जनक होता नहीं है । आशय यह है कि अन्धकार, प्रकाशाभाव एवं उसके व्याप्य प्रकाशसंयोगाभाव का चाक्षुष बिना आलोकसंयोग के ही होता है । इसलिये आलोकसंयोग का कार्यतावच्छेदक धर्म भी लौकिकविषयिताश्रयचाक्षुषत्व नहीं होगा किन्तु लौकिकविषयिताविशेषाश्रयचाक्षुषत्व होगा । अर्थात् अन्धकारतद्व्याप्यभिन्नपदार्थनिरूपितलौकिकविषयिताश्रयचाक्षुषत्व ही होगा । यहाँ अनेक कार्यकारणभाव की कल्पना अनावश्यक है, क्योंकि चाहे घटनीलरूपचाक्षुष हो चाहे घटनीलरूपत्वविषयक चाक्षुष हो चाहे घटाभावविषयक चाक्षुष हो, चाहे पीतरूपवृत्तिनीलाभावविषयक चाक्षुष हो, चाहे रूपत्वजातिवृत्तिरूपाभावविषयक चाक्षुष साक्षात्कार हो, वे सभी समवाय सम्बन्ध से आत्मा में ही रहते हैं । अतः आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से आलोकसंयोग में कारणता का स्वीकार करने में अनेक कार्यकारणभावकल्पनाऽनावश्यकताप्रयुक्त लाघव है । यह लाघव ही विनिगमक होने से 'चाक्षुषप्रत्यक्ष का कारण चक्षुसंयोग है या आलोकसंयोग ?' इत्याकारक विनिगमनाविरह का अवकाश नहीं है । इसलिये आलोकसंयोग में ही चाक्षुषकारणता का स्वीकार करना उचित है - यह फलित होता है ।

तियोगिकविजातीयसंयोगसम्बन्धेन कारणता । चक्षुःसंयोगस्य स्वावच्छेदकावच्छिन्नलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नस्व (त्व?) वच्चक्षुः-संयुक्तमनःप्रतियोगिकविजातीयसंयोगसम्बन्धेन तथात्वे तु स्फुटमेव गौरवमिति चेत् ? न, उक्तसम्बन्धेन तमःसंयोगाभावस्य

◆ हेमलता ◆

चक्षु संयोगस्येति । तथात्वे इत्यनेनास्यान्वयः । स्वावच्छेदकेति । अत्र स्वपदेन चक्षुःसंयोगस्य ग्रहणम् । चक्षुःसंयोगस्य अवच्छेदको यो विषयदेशः तदवच्छिन्नो य आलोकसंयोगः तद्वत् यत् चक्षु' तत्संयुक्त यन्मनः तत्प्रतियोगिक आत्मानुयोगिक' यो विजातीयः = घ्राणजादिसाक्षात्कारजनकतावच्छेदकजातिशून्यत्वे सति साक्षात्कारजनकतावच्छेदकजातिमान् संयोगः स आत्मनि वर्तते । अतस्तेन सम्बन्धेन चक्षुःसंयोगोऽप्यात्मन्येव वर्तते । एवञ्चात्मनिष्ठप्रत्यासत्त्या चक्षुःसंयोगस्य तथात्वे = तमस्तद्व्याप्यभिन्ननिरूपितलौकिकविषयिताश्रयचाक्षुषत्वावच्छिन्नकारणत्वे तु स्फुटमेव कारणतावच्छेदकसम्बन्धशरीरकृत गौरवम् । न च चक्षुःसंयोगस्य स्वाश्रयसंयुक्तमनःप्रतियोगिकविजातीयसंयोगसम्बन्धेनैव तथात्वमिति वाच्यम् एव सति बहलतमे तमसि घटचक्षुःसन्निकर्षदशायां तच्चाक्षुषापत्तेः । न चैतद्व्यभिचारवारकत्वेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नेति चक्षुर्विशेषणगौरवस्य फलाभिमुखत्वेनाऽदोषत्वमिति वाच्यम् चक्षु'संयोगकारणतानिश्चयात्प्रागेवालोकसंयोगकारणताया सम्बन्धलाघवस्योपस्थितत्वात् । एतेन प्रकृते सम्बन्धगौरवस्याऽदोषत्वमित्यप्यपाकृतम्, सम्बन्धगौरवाऽदोषत्ववादिनाऽपि सम्भवति लघुसम्बन्धे गुरुसम्बन्धाऽकल्पनादित्यथवादिनोऽभिप्रायः ।

तदपाकरोति - नेति । यद्यपि संयोगस्य सम्बन्धविधया निवेशाऽनिवेशाभ्यां महत्त्वोद्भूतानभिभूतरूपवत्त्वविशेषण-विशेष्यभावे च विनिगमनाविरहदोषतादवस्थ्य तथापि स्फुटत्वात्तदुपेक्ष्य दोषान्तरमाविष्करोति - उक्तसम्बन्धेन = स्वावच्छेदकावच्छिन्नसंयोगवच्चक्षुःसंयुक्तमनःप्रतियोगिक-विजातीयसंयोगसम्बन्धेन तमःसंयोगस्य तत्प्रतिबन्धकत्वमुपकल्प्य निरुक्तसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य तम संयोगाभावस्य तथात्वे = तमस्तद्व्याप्य-

► वल्लभा ◄

► चक्षुसंयोग मे आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से कारणता गौरवग्रस्त ◄

चक्षुःसं० ।यदि यहाँ चक्षुसंयोगकारणतावादी की ओर से यह कहा जाय कि → यदि विषयनिष्ठ प्रत्यासत्ति से नेत्रसंयोग को चाक्षुषकारण मानने मे गौरव है तब उसे आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति उसे ही कारण मानो । जैसे आलोकसंयोग को आप आत्मनिष्ठ प्रत्यासत्ति से कारण मानते है ठीक वैसे ही चक्षुसंयोग को भी आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से चाक्षुष का कारण माना जा सकता है । अत विनिगमनाविरह दोष पुन प्रसक्त होगा← तो यह नामुनासिब है । इसका कारण यह है कि आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से चक्षुसंयोग को चाक्षुष साक्षात्कार का कारण मानने का मतलब यह होता है कि चक्षु संयोग आत्मा मे रहकर आत्मा मे समवायसम्बन्ध से चाक्षुष को उत्पन्न करता है । मगर चक्षुसंयोग केवल स्वाश्रयसंयुक्तमन प्रतियोगिकविजातीयसंयोग सम्बन्ध से आत्मा मे रह कर चाक्षुष को उत्पन्न कर सकता नही है, क्योकि तब तो गाढ अन्धकार मे अवस्थित घटादि द्रव्य के साथ चक्षुसंयोग होने पर भी घटादि का चाक्षुष होने लगेगा, क्योकि तब भी चक्षुसंयोग स्व (=चक्षुसंयोग) आश्रय (=चक्षु) संयुक्त मन प्रतियोगिक विजातीय संयोगवाले आत्मद्रव्य मे तादृशसम्बन्ध से रहता है । इसके निवारणार्थ यही कहना होगा कि चक्षुसंयोग स्वावच्छेदकावच्छिन्नालोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नस्ववच्चक्षु संयुक्तमन प्रतियोगिक विजातीयसंयोग सम्बन्ध से आत्मा मे रह कर समवाय सम्बन्ध से आत्मा मे चाक्षुष उत्पन्न करता है। गाढ अन्धकार मे अवस्थित घटादि मे जो चक्षुसंयोग है उसके अवच्छेदक घटादिद्रव्यावयव से अवच्छिन्न आलोकसंयोग ही नही होने से उससे घटित उपर्युक्त सम्बन्ध से चक्षुसंयोग भी आत्मा मे रहता नही है । मगर जब घट के नयनाभिमुख भाग मे आलोकसंयोग ही नही होने से उससे घटित उपर्युक्त सम्बन्ध से चक्षुसंयोग भी आत्म मे रहता नही है । मगर जब घट के नयनाभिमुख भाग मे आलोकसंयोग रहता है तभी चक्षुसंयोग दर्शितसम्बन्ध से आत्मा मे रह सकता है, क्योकि स्व = चक्षुसंयोग, उसके अवच्छेदक घटावयव से अवच्छिन्न है आलोकसंयोग, उसके अवच्छेदकीभूत उसी घटावयव से अवच्छिन्न है वही चक्षुसंयोग, जो ग्रन्थस्थ द्वितीय स्वपद से अभिमत है । तादृश चक्षुसंयोगवाली चक्षु है और उससे संयुक्त है मन, जिसका विजातीय संयोग आत्मा मे रहता है । अत चक्षुसंयोग दर्शित सम्बन्ध से आत्मा मे रह सकता है, जो उसी आत्मद्रव्य मे समवायसम्बन्ध से घटविषयक चाक्षुष को उत्पन्न करता है । इस तरह चक्षुसंयोग और चाक्षुष मे सामानाधिकरण्य एव कार्यकारणभाव की उपपत्ति करनी होगी । अब महाशय चक्षुसंयोगकारणतावादी ! देखिये, आपके मत मे कारणतावच्छेदक सम्बन्ध हुआ स्वावच्छेदकावच्छिन्नआलोकसंयोगावच्छेदकावच्छिन्नस्ववच्चक्षुसंयुक्तमन प्रतियोगिकविजातीय संयोग और आलोकसंयोग को कारण माननेवाले हमारे मत मे कारणतावच्छेदकसम्बन्ध हुआ स्वावच्छेदकावच्छिन्नसंयोगाश्रयचक्षुसंयुक्तमनप्रतियोगिक विजातीय संयोग । स्पष्ट ही है कि आत्मनिष्ठ प्रत्यासत्ति से नेत्रसंयोग को चाक्षुष का कारण मानने पर आपके पक्ष मे हमारे मतानुसार कल्पनीय सम्बन्ध की अपेक्षा गुरुभूत सम्बन्ध है । इसलिये आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से चक्षुसंयोग को कारण न मान कर आलोकसंयोग को ही कारण मानना उचित है - यह फलित होता है ।

तथात्वे बाधकाभावात्, आलोकं विना पेचकादिचाक्षुषोदयाद् विषयनिष्ठतयैव चैत्रादिचाक्षुषे तद्धेतुतावश्यकत्वाच्च ।

यत्तु तमोऽभावत्वेन न हेतुतापि त्वालोकत्वेन लाघवादिति, तन्न, महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकत्वापेक्षया महत्तमोऽभावत्वस्य लघुत्वात् ।

◆ हेमलता ◆

भिन्नीयलौकिकविषयितावच्चाक्षुषकारणत्वस्वीकारे बाधकाभावात् सति सम्भवे त्यागायोगात् ।

आत्मनिष्ठप्रत्यासत्त्या आलोकसंयोगस्य लौकिकविषयितावच्चाक्षुषजनकत्वं न युक्तम् आलोकं विना पेचकादिचाक्षुषोदयात् । अत तमस्तद्व्याप्यभिन्नीयलौकिकविषयितावच्चाक्षुषत्वस्यापि आत्मनिष्ठप्रत्यासत्त्या तत्कार्यतावच्छेदकत्वमपि प्रत्युक्तम् कार्यतावच्छेदकधर्मगौरवात् । निरुक्त-व्यतिरेकव्यभिचारात् विषयनिष्ठतयैव चैत्रादिचाक्षुषे = अञ्जनाद्यसंस्कृतचक्षुषः चैत्रादेः चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति, तद्धेतुतावश्यकत्वाच्च = आलोकसंयोगकारणताया अवश्यक्लृप्तत्वाच्च । अतो नोलूकादिचाक्षुषे व्यभिचारः । न च गौरवम्, व्यभिचारवारकत्वेन तस्य फलाभिमुखत्वात् । न चाञ्जनादिसंस्कृतचक्षुषः चैत्रस्य द्रव्यचाक्षुषे तथापि व्यभिचार इति वाच्यम् आलोकस्येवाञ्जनादेः स्वाव्यवहितोत्तरचाक्षुषं प्रति हेतुत्वे व्यभिचारप्रचारादिति प्रोक्तोत्तरत्वात् ।

इदन्त्वत्रावधेयम् - अञ्जनादेः स्वाव्यवहितोत्तरचाक्षुषं प्रति आलोकसंयोगस्य च स्वाव्यवहितोत्तरचाक्षुषं प्रति कारणत्वस्वीकारे तमसो द्रव्यत्वेऽपि तच्चाक्षुषस्यालोकाव्यवहितोत्तरत्वाभावेनालोकसंयोगकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वादालोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वमन्धकारस्य न दुर्घटं स्यात् । आत्मनिष्ठप्रत्यासत्त्या तमःसंयोगाभावस्य तथात्वेऽपि प्रतिबन्धकीभूतसंयोगाश्रयत्वेन तमसो द्रव्यत्वसिद्धिर्न दुर्घटा स्याद्वादिनामिति दिक् ।

यत्तु तमोऽभावत्वेन लौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति न हेतुता अपि तु आलोकत्वेन रूपेण, कारणतावच्छेदकधर्मकृक्षा लाघवात् इति तन्न चारु बहलतमे तमसि आलोकपरमाणु-चक्षुरिन्द्रिय-सुवर्णादिचाक्षुषप्रसङ्गात् । न च महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकत्वेन चाक्षुषकारणत्वोपगमात्र व्यभिचार इति वाच्यम् महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकत्वापेक्षया महत्तमोऽभावत्वस्य लघुत्वात् । मन्दतमसि घटादिचाक्षुषोदयात् न तमोऽभावत्वेन चाक्षुषकारणता किन्तु महत्तमोऽभावत्वेनैव ।

▶ वल्लभा ◀

●○ आलोकसंयोग एवं तमःसंयोगाभाव में अविनिगम ○●

उत्तरपक्षः - न उ० । उत्पाद ! आपकी यह बात ठीक नहीं है, क्योंकि जैसे आलोकसंयोग को स्वावच्छेदकावच्छिन्नसंयोगवच्चक्षु संयुक्तमन प्रतियोगिक विजातीयसंयोग सम्बन्ध से चाक्षुष साक्षात्कार का कारण माना जाता है ठीक उसी तरह अन्धकारसंयोग को उसी सम्बन्ध से चाक्षुष का प्रतिबन्धक माना जा सकता है, क्योंकि उसमें कोई बाधक नहीं है । मतलब कि तादृशसम्बन्धावच्छिन्न अन्धकारसंयोगाभाव को चाक्षुषजनक माना जा सकता है । अन्धकारसंयुक्त द्रव्य के जिस भाग में अन्धकारसंयोग हो उसी भाग में चक्षुसंयोग होने पर उस द्रव्य का चाक्षुष नहीं होता है। अत तब अन्धकारसंयोग भी स्व(=अन्धकारसंयोग) अवच्छेदकावच्छिन्नचक्षुसंयोगाश्रयीभूतचक्षुसंयुक्तमनप्रतियोगिक विजातीय संयोग सम्बन्ध से आत्मा में रहेगा । अतएव तब द्रव्यचाक्षुष नहीं होगा । मगर द्रव्य के साथ चक्षुसंयोग जिस भाग में हो उस भाग में अन्धकाराभाव रहने पर निरुक्तसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक अन्धकारसंयोगाभाव आत्मा में रहता है और तब आत्मा में समवायसम्बन्ध से द्रव्यचाक्षुष उत्पन्न होता है । इस तरह अन्धकारसंयोगाभाव को ही प्रतिबन्धकाभावविधया चाक्षुष का कारण मान लेने से सब सङ्गत हो सकता है । तब आलोकसंयोग में द्रव्यविषयक लौकिक चाक्षुष का कारण मानने की आवश्यकता ही रहती नहीं है ।

इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि आलोक के बिना ही उल्लू आदि को घटादि का चाक्षुष साक्षात्कार उत्पन्न होता है । इसलिए आत्मनिष्ठ प्रत्यासत्ति से आलोकसंयोग को चाक्षुषजनक माना जा नहीं सकता । उल्लू आदि के द्रव्यचाक्षुष का परिहार करने के लिए उचित तो यही है कि विषयनिष्ठ प्रत्यासत्ति से चैत्रादिचाक्षुष के प्रति ही आलोकसंयोग को कारण माना जाय- जो आवश्यक भी है । इसलिये आत्मनिष्ठप्रत्यासत्ति से आलोकसंयोगकारणता नामुनासिब है ।

यत्तु० । कुछ विद्वानों का यह कहना है कि → 'अन्धकाराभावत्वेन रूपेण चाक्षुषकारणता का स्वीकार करने की अपेक्षा आलोकत्वेन रूपेण ही उसका स्वीकार उचित है, क्योंकि तब कारणतावच्छेदक धर्म में लाघव होता है'← मगर यह ठीक नहीं है । इसका कारण यह है कि आलोकत्वेन चाक्षुषकारणता का स्वीकार करने पर गाढ अन्धकार में भी आलोकपरमाणु से या चक्षुरिन्द्रिय से या सुवर्ण संयोग से द्रव्यचाक्षुष की उत्पत्ति का प्रसङ्ग आयेगा, जिसके निवारणार्थ महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकत्वेन रूपेण चाक्षुषकारणता का स्वीकार करना होगा, जिसके फलरूप में कारणतावच्छेदकधर्म में गौरव प्रसक्त होगा । इसकी अपेक्षा अन्धकाराभाव को चाक्षुष

तमसो द्रव्यत्वे प्रौढालोकमध्ये सर्वतो घनावरणे सति तमो न स्यात्, तेजोऽवयवेन तत्र तमोऽवयवाना प्रागनवस्थानात् सर्वतस्तेजःसकुले चान्यतोऽप्यागमनासम्भवादिति वर्धमानोपाध्याया· ।

वस्तुतो गन्धसमवायिकारणतावच्छेदिकयैव नीलसमवायिकारणतावच्छेदात्तमसो नीलरूपवत्त्वे गन्धवत्त्वप्रसङ्गः । अपि चालोकाभावेनैव तमोव्यवहारोपपत्तेर्नानाद्रव्य-तत्प्रागभावध्वसादिकल्पने गौरवम् ।

◆ हेमलता ◆

वर्धमानमतमाह- तमसो द्रव्यत्वे = जन्यद्रव्यत्वोपगमे प्रोढालोकमध्ये = प्रकृष्टालोकसयुक्तदेशमध्ये सर्वतो घनावरणे = निविडपिधाने सति तमो न स्यात् । कुतः ? इत्याह- तेजोऽवयवेन सम तत्र प्रकृष्टालोकसयुक्तदेशमध्यभागे तमोऽवयवाना प्रागनवस्थानात्, तमोऽवयवाना तेजोऽवयवानाञ्च परस्परपरिहारविरोधात् । तत्र घटादेः पराङ्मुखकरणदशायामन्यतस्तमोऽवयवानामागमन भविष्यति । तैरेव तदाननीमन्धकारावयव्यारम्भो भवतु कि निश्छन्न ? इत्याशङ्कायामाह- सर्वत तेज सङ्कुले = महदुद्भूतानिभिभूतरूपवदालोकव्याप्ते च देशमध्ये अन्यत इतरदेशात् अपि तमोऽवयवाना आगमनासम्भवात् । सर्वतो जलसङ्कीर्णे देशेऽन्यतः तेजोऽवयवानामिव सर्वतः प्रकृष्टालोकसम्भिनत्रे देशेऽन्यस्मादन्धकारावयवानामागमनाऽसम्भावात्र तमोऽवयव्यारम्भोऽपि सम्भवति । अतो न तमसो द्रवयत्व कल्पनामर्हतीति वर्धमानोपाध्याया ।

यद्द्रव्य यद्द्रव्यध्वसजन्य तत्तदुपादानोपादेयमिति व्याप्तेस्तेजोऽवयविध्वसजनन्यसय तमसः तेजोऽवयवोपादेयत्वान्न तदा तमोद्रव्यारम्भारम्भवो नैयायिकमतानुसारेणाऽपि । स्याद्वादिनये तु घनतरावरणसाचिव्येन तेजःपुद्गलानामेव घनतगवरणमध्ये तमस्त्वेन परिणमनसम्भवात् नियतारम्भवादस्य निरस्तत्वादित्याशङ्काया नैयायिक आह- वस्तुत गन्धसमवायिकारणतावच्छेदिकयेव जात्या नीलसमवायिकारणकावच्छेदात् तमस नीलरूपवत्त्वे गन्धसमवायिकारणतावच्छेदकावच्छिन्नजन्यत्वेन गन्धवत्त्वप्रसङ्ग एव बाधकः । गनन्धसमवायिकारणतावच्छेदकनीलरूपसमवायिकारणतावच्छेदकजात्योरैक्यात् तमसो नीलरूपवत्त्वान्धवत्त्वमपि दुर्वारम् । एतेन 'नील तमः' इति प्रतीतेः प्रमात्वमप्यपाकृतम् । अतो न तमसो द्रव्यत्वसिद्धिः रूपवत्त्हेतोः स्वरूपासिद्धत्वात् ।

तमसो द्रव्यत्वे नैयायिकः दोपान्तरमाह- अपि चेति समुच्चयार्थम् । आलोकाभावेनैव तमोव्यवहारोपपत्ते नानाद्रव्य-तत्प्रागभाव-प्रध्वसादिकल्पने = नानातमोद्रव्य - तमःप्रागभाव - तमोध्वस - तमःकारणता - तमोनाशकता - तमोदेशादिसयोग - तमोविभाग - तमोनिष्ठैकत्व - द्वित्वादिसङ्ख्याकर्मततूप्रागभावध्वसप्रभृतिकल्पने गोरवम् । अतोऽन्धकारस्य तेजोविरहात्मतेवाङ्गीकर्तव्या ।

▶ वल्लभा ◀

जनक मानने पर महत्तमोऽभावत्वेन रूपेण चाक्षुपकारणता का स्वीकार करना होगा । स्पष्ट ही है कि महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकत्व की अपेक्षा महत्तमोऽभावत्वे को चाक्षुपकारणतावच्छेदक मानने मे लाघव है ।

▽ वर्धमानउपाध्यायमत ▽

तमसो० । गगेशउपाध्याय के पुत्ररत्न वर्धमान उपाध्याय का कथन हे कि यदि अन्धकार को द्रव्य माना जाय तब दोष यह प्रसक्त होगा कि जिस प्रदेश मे प्रौढ आलोक फेला हुआ है, उस प्रदेश के मध्य भाग को चारो ओर सें दुर्भेद्य आवरणो द्वारा अत्यन्त घनरूप मे आवृत कर देने पर वहाँ अन्धकार हो जाता है उसे अस्तित्वलाभ न हो सकेगा, क्योकि आवरण के पूर्व उस स्थान मे तेज के अवयव भरे थे । अत उस समय वहाँ अन्धकार के अवयवो का होना नामुमकिन है और आवरण के बाद आवरण के ही कारण अथवा आवरण के बाहर चारो ओर तेजअवयवो के ही व्याप्त होने कारण बाहर से भी अन्धकार के अवयवो का उस स्थान मे पहुँचना सभव नही है । फलत अन्धकार के अवयवो का अभाव होने से उस स्थान मे अन्धकार की उत्पत्ति अशक्य हे । इसलिये अन्धकार को द्रव्य माना जा नही सकता ।

☐ नील अन्धकार मे गन्धापत्ति ☐

वस्तु० । वास्तविकता तो यह है कि गन्धसमवायिकारणता ओर नीलरूपसमवायिकारणता की अवच्छेदक जाति एक ही है । नीलसमवायिकारणतावच्छेदकजातिविशिष्ट से उत्पन्न नील रूप के आश्रय मे गन्ध अवाय होती हे - यह देखा गया है, क्योकि नीलरूप के आश्रय मे जो नीलरूपसमवायिकारणतावच्छेदक जाति है वही गन्धसमवायिकारणतावच्छेदक जाति हे । इसलिए अन्धकार मे नीलरूप का स्वीकार करने पर गन्ध की भी वहाँ उत्पत्ति होने लगेगी । इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि अन्धकार जहाँ जहाँ होता हे वहाँ वहाँ आलोकाभाव अवश्य होता है । इसलिए अन्धकारव्यवहार की उपपत्ति आलोकाभाव से ही हो सकती है । आलोकाभाव को छोड कर अतिरिक्त कोई अन्धकारपदप्रतिपाद्य नही हे । यह मानना युक्तिसगत भी है, क्योकि अन्धकार को आलोकाभावात्मक न मान कर स्वतन्त्र द्रव्य माना जाय तब अनेक अन्धकार द्रव्य, उसके प्रागभाव एव ध्वसाभाव, नीलरूप-एकत्वसख्यादि गुण, चलनादि

अथाभावत्वे तमसः तेजोज्ञान विना तज्ज्ञान न स्यात्, अभावज्ञाने प्रतियोगिज्ञानस्य हेतुत्वादिति चेत् ? सत्यम्, आलोक जानतामेव तमःप्रत्यक्षस्वीकारात् । तदाहुराचार्या 'गिरिदरिविवरर्तिनो यदि योगिनो न ते तिमिरावलोकिनः, तिमिरावलोकिनश्चेत् ? नून स्मृतालोकाः' इति ।

नव्यास्तु 'अभावज्ञाने प्रतियोगिज्ञान न हेतुः, प्रमेयत्वादिनाऽभावग्रहेऽभावत्वसामान्यलक्षणाधीनप्रत्यक्षे च व्यभिचारात् ।

◆ हेमलता ◆

तमोद्रव्यवादी शङ्कते-अथेति । अभावत्वे स्वीक्रियमाणे तमस तेजोज्ञान विना तज्ज्ञान = तेजोविरहात्मधी' न स्यात्, अभावज्ञाने = अभावगोचरज्ञानत्वावच्छिन्न प्रति प्रतियोगिज्ञानस्य = प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारताकज्ञानस्य हेतुत्वात् = कारणत्वावधारणात् । अतो नान्धकारस्य तेजोऽभावात्मकत्वमित्यथाशय' ।

नैयायिक आह - सत्यम् । स्वीकारोऽनेनोपदर्शितः । आलोक जानतामेव = आलोकत्वावच्छिन्नप्रकारताकज्ञानवतामेव तम प्रत्यक्षस्वीकारात् । आलोकमविदुषो न कदापि तम'प्रत्यक्षमुदेति । तदाहु किरणावल्या आचार्या = उदयनाचार्या गिरिदरीविवरवर्तिन = धराधरदरविवरान्तःवर्तिन' यदि योगिन न ते तिमिरावलोकिन = तमःसाक्षात्कारवन्त', जन्मत' प्रभृति आलोकज्ञानविकलत्वात् । तिमिरावलोकिनश्चेत् ? नून = निश्चयेन स्मृतालोका = आलोकस्मरणवन्त' । अन्वयव्यतिरेकाभ्यामभावज्ञान प्रति प्रतियोगिज्ञानस्य कारणत्वग्रहात्तेजोज्ञानवतामेवान्धकारसाक्षात्कार इति ध्वनितम् । साम्प्रतन्तु किरणावल्या 'गिरिदरीविवरवर्तिनस्तु यदि योगिन न ते तिमिरावलोकिनः । अवलोकिनश्चेत् ? नून स्मृतालोका. [कि पृ ७२] इतिपाठ उपलभ्यते । अत्र च किरणावलीरहस्यकारो मथुरानाथ 'ननु तथापि गिरिगुहाविवरस्थाना योगिनामालोकादर्शिना कथ दिवा तमोधीरित्यत आह-गिरीति । यदि योगिन' = यदि योगसक्ता' न ते तिमिरावलोकिनः इति । योगासक्ततया बाह्यविषयकज्ञानविरहादिति भावः । अवलोकिनश्चेत् ? यदि तिमिरावलोकिन',नून = निश्चितम्' इति विवृणोति ।

नव्यास्तु अभावज्ञाने = विषयतया अभावस्य ज्ञानमात्रे प्रत्यक्षमात्रे वा प्रतियोगिज्ञान न हेतु , प्रमेयत्वादिना अभावग्रहे व्यभिचारादित्यत्रान्वेति । प्रमेयत्वेन निखिलप्रमेयज्ञानेऽभावस्याऽपि प्रमेयान्तर्गतत्वेन प्रमेयत्वप्रकारकज्ञानविषयत्वमनपायम् । प्रतियोगिज्ञानकार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वेऽपि प्रतियोगिज्ञानमृते एव तदुदयात् व्यतिरेकव्यभिचारः । एव अभावत्वसामान्यलक्षणाधीनप्रत्यक्षे च व्यभिचारात् = व्यतिरेकव्यभिचारात् यत्किञ्चिदभावज्ञानानन्तरमभावत्वसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या 'अभावा' इत्याकारकस्याऽलौकिकस्याभावविषयकस्य प्रत्यक्षस्य प्रतियोगिज्ञानमन्तरेण जायमानत्वेन व्यतिरेकव्यभिचारान्नाभावप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न प्रति प्रतियोगिज्ञानस्य कारणत्वग्रह' सम्भवति । न चाभावत्वस्याऽसमवेतत्वेन सामान्यलक्षणाऽनाक्रान्तत्वमिति वाच्यम्, नित्यत्वे सत्यनेकसमवेतत्वविरहेऽपि 'समानाना भावः सामान्यमि'तिलक्षणस्य प्रकृते विवक्षितत्वान्न दोषः ।

▶ वल्लभा ◀

क्रिया आदि की कल्पना करनी होगी जिसके स्वीकार मे महागौरव है । इसलिये भी अन्धकार को आलोकाभावस्वरूप मानना सगत हे ।

अथा० । यहाँ इस प्रश्न का कि ⟶ अन्धकार को आलोकअभावात्मक मानने पर आलोकज्ञान के बिना अन्धकार का ज्ञान ही हो नहीं सकेगा, क्योकि प्रतियोगिज्ञान अभावज्ञान मे हेतु होता हे । घट के ज्ञान के बिना घटाभावज्ञान होता नहीं है। अत तेजोज्ञानाभावदशा मे अन्धकारज्ञान, जो तेजोऽभावज्ञानात्मक है, भी कैसे हो सकेगा ?'⟵ समाधान यह हे कि यह सत्य है । अभावज्ञान के प्रति अभावप्रतियोगिविषयक ज्ञान कारण होने से हम यही मानते हे कि आलोक को जाननेवाले ही अन्धकार का साक्षात्कार करते हे । जिन्हे आलोक का ज्ञान नही हे उन्हे अन्धकार का प्रत्यक्ष होता नहीं ह । इसलिये तो उदयनाचार्य ने भी कहा हे कि जन्म से ही पर्वत की गुफाओ की कोटरो मे रहनेवाले योगी महापुरुषो को अन्धकार का साक्षात्कार नहीं होता है। यदि उनको अन्धकार का साक्षात्कार हो तो अवश्य उनको आलोक का स्मरणात्मक ज्ञान होना चाहिए । उदयनाचार्य की इस बात से साफ साफ मालूम होता हे कि अभावज्ञान के प्रति आलोकज्ञान कारण होता हे । अन्यथा जन्मत प्रभृति अधेरी गुफा मे रहनेवाले योगियो को अन्धकार प्रत्यक्ष का अनाश्रय कहना और अन्धकारप्रत्यक्ष हो तो भी आलोकस्मरण का स्वीकार करना- यह कथमपि सगत नही हो सकता । अन्वय-व्यतिरेक से आलोकज्ञान मे अन्धकारज्ञान की जनकता सिद्ध होती हे ।

♦♦ प्रतियोगिज्ञान अभावज्ञान का अकारण - नव्यनैयायिक ♦♦

नव्या । नव्य नैयायिक का यह कथन हे कि ⟶ 'अभावज्ञान के प्रति प्रतियोगिज्ञान की कारणता भी विवेचनीय है । अभावज्ञानमात्र के प्रति प्रतियोगिज्ञान को कारण माना जा नहीं सकता, क्योकि प्रमेयत्व आदि रूप से अभाव का जो 'प्रमेय' ऐसा ज्ञान होता हे एव अभावरूप से किसी एक अभाव का लौकिक प्रत्यक्ष होने के बाद अभावत्वरूप सामान्यलक्षण प्रत्यासत्ति से समस्त अभावो का जो 'अभावा' ऐसा प्रत्यक्ष होता हे वह प्रतियोगिज्ञान के विना ही होता है । अत अभावज्ञानमात्र

नापि तदभावलौकिकप्रत्यक्षे तज्ज्ञानं हेतुः, घट-घटध्वसादिप्रतियोगिकघटात्यन्ताभावस्यापि समनियतैकत्वपरिमाणाद्यभावस्य

◆ हेमलता ◆

नापि तदभावलौकिकप्रत्यक्षे = तदभावलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति, तज्ज्ञानं = प्रतियोगिज्ञानं हेतुः, तेनाभावत्वसामान्यलक्षणाधीनप्रत्यक्षादौ व्यतिरेकव्यभिचाराऽप्रचारः, तस्यालौकिकत्वादिति वाच्यम्, प्राचां घट-घटध्वसादिप्रतियोगिक-घटात्यन्ताभावस्य = घट-घटध्वस-घटप्रागभावत्रितयप्रतियोगिकस्य घटात्यन्ताभावस्य अपि नव्यानां समनियतैकत्व-परिमाणाद्यभावस्य च एकप्रतियोगिमात्रग्रहेऽपि = अन्यतरमात्रप्रतियोगि-ज्ञानसत्त्वेऽपि ग्रहात् = लौकिकप्रत्यक्षोदयात् व्यतिरेकव्यभिचारः। अयं भावः प्राचां मते प्रतियोगिवत् प्रागभाव-प्रध्वंसयोरपि अत्यन्ताभावविरोधित्वम्। 'यो यदभावविरोधी स तदभावप्रतियोगी'ति नियमात् घट-घटप्रागभाव-घटध्वंसत्रितयप्रतियोगिकत्वं घटात्यन्ताभावस्य सिध्यति। घटप्रागभावाधिकरणे घटध्वंसाधिकरणे च 'घटो नास्ती'ति प्रतीतिरत्यन्ताभावमेव विषयीकरोतीति न नियमः किन्तु प्रागभावध्वंसाधिकरणादन्यत्राऽत्यन्ताभावं विषयीकरोति, प्रागभावध्वंसाधिकरणे तु सा प्रागभावं ध्वंसं वा यथायोगं विषयीकरोतीति प्राचां मतम्। घटप्रागभाव-घटध्वंसज्ञानयोरजातत्वेऽपि घटमात्रज्ञानात् घटात्यन्ताभावलौकिकप्रत्यक्षोदयात् तदभावलौकिकप्रत्यक्षे न तज्ज्ञानस्य कारणत्वसम्भवः। न च प्रागभाव-प्रध्वंसयोरत्यन्ताभावविरोधित्वे नव्यमतानुसारेण प्रमाणविरहान्नैव नव्यमतानुसारेण व्यभिचारः सम्भवतीति वाच्यम् अत एवैकत्वाद्यभावज्ञाने व्यभिचारप्रदर्शनात्। समनियताभावयोरैक्यनियमेनैकत्वाभाव-परिमाणाभावयोः समनियतयोरैक्यम्। अत एव तयोः परस्परप्रतियोगिप्रतियोगिकत्वम्। तत्र परिमाणाग्रहेऽपि एकत्वमात्रज्ञानात्परिमाणप्रतियोगिक-स्याभावस्य लौकिकप्रत्यक्षं भवति। एवमेकत्वाज्ञानेऽपि परिमाणमात्रज्ञानादेकत्वप्रतियोगिकस्य परिमाणात्यन्ताभावस्य लौकिकसाक्षात्कारस्सञ्जायते। इत्थं नव्यमतानुसारेणापि तदभावलौकिकप्रत्यक्षे तज्ज्ञानस्य कारणत्वं न सम्भवति। तदुक्तं सामान्यलक्षणागादाधर्यां 'प्राचीनमते घटध्वंसस्य घटात्यन्ताभावविरोधितया स एव घटात्यन्ताभावस्यात्यन्ताभावः, प्रागभावध्वंसस्य प्रतियोगितद्ध्वंसस्वरूपतया स घटप्रागभावस्य ध्वंसोऽपीति घट-तदत्यन्ताभावतत्प्रागभावत्रयप्रतियोगिकः। एवं घटप्रागभावोऽपि घटात्यन्ताभावस्यात्यन्ताभावः घटध्वंसस्य प्रागभावश्च ध्वंसप्रागभावस्य प्रतियोगि-तदभावात्मकत्वादिति सोऽपि घटादित्रयप्रतियोगिकः। घटात्यन्ताभावोऽपि तद्ध्वंसतत्प्रागभावात्यन्ताभावसमनियततया तदभिन्न इति घटादित्रयप्रतियोगिकः। अथ चैकैकप्रतियोगिज्ञानादेव गृह्यते इत्यभ्युपगमेन तत्प्रत्यक्षे परस्परप्रतियोगिज्ञानस्य व्यभिचारादिति। नव्यमते समनियतसंख्या-परिमाणाद्यभावस्याऽभिन्नतया संख्यादिज्ञानजन्ये तदभावप्रत्यक्षे परिमाणादिज्ञानस्य व्यभिचारोऽपि बोध्यः' [सा ल गा] इति।

ननु मास्तु यावत्प्रतियोगिज्ञानस्याभावलौकिकप्रत्यक्षे हेतुत्वं किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिनिश्चयत्वेनैव तदभावलौकिकप्रत्यक्षकारणतैव सम्भवति। घटात्यन्ताभावप्रतियोगिनोः घटप्रागभाव-घटध्वंसयोरज्ञानेऽपि प्रतियोगितावच्छेदकीभूतघटत्वप्रकारकनिश्चयानन्तरमेव घटात्यन्ताभावलौकिक-प्रत्यक्षोदयान्न व्यतिरेकव्यभिचारः प्राचां मते सम्भवति। एवमेव परिमाणाभावसमनियतैकत्वाभावलौकिकप्रत्यक्षस्य परिमाणज्ञानमृतेऽप्युदये

► वल्लभा ◄

के प्रति प्रतियोगिज्ञान में कारणता व्यतिरेकव्यभिचार ग्रस्त है। 'तत्प्रतियोगिक अभाव के लौकिकप्रत्यक्षमात्र के प्रति तत्प्रतियोगी का ज्ञान कारण होता है'- यह भी कहा जा सकता नहीं है, क्योंकि इसमें भी व्यभिचार है। जैसे, प्राचीननैयायिकों के मतानुसार घटात्यन्ताभाव के तीन प्रतियोगी होते हैं (१) घट (२) घटप्रागभाव और (३) घटध्वंस, क्योंकि उनके मत में घट के समान घटप्रागभाव और घट का ध्वंस भी घटात्यन्ताभाव का विरोधी होता है। यह एक नियम है कि 'जो जिस अभाव का विरोधी होता वह उस अभाव का प्रतियोगी होता है'। इस प्रकार घटात्यन्ताभाव जैसे घटप्रतियोगिक होता है ठीक वैसे ही घटप्रागभावप्रतियोगिक एवं घटध्वंसप्रतियोगिक भी होता है। किन्तु उसका लौकिकप्रत्यक्ष घटप्रागभाव एवं घटध्वंस का ज्ञान न रहने पर भी घटज्ञानमात्र से 'अत्र घटो नास्ति' 'यहाँ घट नहीं है' इस रूप में होता है। अतः घटप्रागभाव एवं घटध्वंसस्वरूप प्रतियोगी के विरह में भी घटप्रागभावप्रतियोगिक एवं घटध्वंसप्रतियोगिक घटात्यन्ताभाव का लौकिक प्रत्यक्ष होने से तत्प्रतियोगिक अभाव के लौकिक प्रत्यक्ष में तत्प्रतियोगिज्ञान की कारणता व्यतिरेकव्यभिचारग्रस्त है।

यद्यपि नवीन नैयायिक के मतानुसार घटात्यन्ताभाव का विरोधी घटप्रागभाव एवं घटध्वंस नहीं है फिर भी तत्प्रतियोगिक अभाव के लौकिक प्रत्यक्ष में तत्प्रतियोगिज्ञान को कारण मानने में उनके मतानुसार भी व्यतिरेक व्यभिचार दुर्वार है। जैसे नव्यमतानुसार समनियत अभावों में लाघव से अभेद माना जाता है। तदनुसार एकत्वाभाव, परिमाणाभाव आदि सभी समनियत अभाव परस्पर प्रतियोगिप्रतियोगिक होते हैं, अर्थात् एकत्वाभाव एकत्वप्रतियोगिक होने के साथ परिमाणप्रतियोगिक भी होता है एवं परिमाणअभाव परिमाणप्रतियोगिक होने के साथ एकत्वप्रतियोगिक भी होता है। किन्तु एकत्वाभाव का लौकिक प्रत्यक्ष तो परिणामज्ञान के न रहने पर भी एकत्वज्ञानमात्र से सम्पन्न हो जाता है एवं परिमाण अभाव का लौकिक प्रत्यक्ष एकत्वज्ञान के न रहने पर भी परिमाणमात्र के ज्ञान से उत्पन्न होता है। लौकिक प्रत्यक्ष होने से नव्यमतानुसार भी तत्प्रतियोगिक अभाव के लौकिक प्रत्यक्ष में तत्प्रतियोगी का ज्ञान कारण हो नहीं सकता। व्यतिरेक व्यभिचार का ज्ञान होने पर कारणता का निश्चय कैसे हो सकता?

१२

चैकप्रतियोगिमात्रग्रहेऽपि ग्रहात् । प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिनिश्चयत्वेन हेतुता तु विशेष्टवैशिष्ट्यज्ञानत्वावच्छिन्न प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयत्वेन हेतुता नातिशेते । अत एव प्रतियोग्यग्रहेऽपि इदन्त्वेन तमःप्रत्यक्ष नानुपपन्नम् । न चैव प्रथममभावाभावत्वयोः निर्विकल्पके 'अभावः' इत्याकारकप्रत्यक्षापत्तिः, 'शून्यमिद दृश्यते' इत्यादिप्रत्ययादभावत्वमात्रेण

◆ हेमलता ◆

व्यतिरेकव्यभिचारावकाशो नास्ति, एकत्वाभावप्रतियोगितावच्छेदकीभूतैकत्वप्रकारकनिश्चयानन्तरमेव तदुत्पादादिति प्रतियोगिज्ञानस्याभावज्ञानकारणत्वम-व्याहतमेवेत्याशङ्कायां नव्या वदन्ति - प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिनिश्चयत्वेन = अभावनिरूपितप्रतियोगिताया अवच्छेदको यो धर्मः तत्प्रकारको य' प्रतियोगिनिर्णय' तादृशनिर्णयत्वेन अभावलौकिकप्रत्यक्षे हेतुता प्रतियोगिज्ञानस्य स्वातन्त्र्येणाभावज्ञानकारणत्वसाधनार्थमुच्यमाना तु विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानत्वावच्छिन्न प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयत्वेन हेतुता नातिशेते । 'आलोको नास्ती'ति ज्ञानमालोकत्वविशिष्टस्यालोकस्य स्वप्रतियोगिकत्वसम्बन्धेनाभावे वैशिष्ट्यमवगाहते । अत' तेन विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयत्वेन कारणत्वम् । न ह्यालोकत्वमविदुष आलोकत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकालोकाभावज्ञान- मुदेति । इत्थञ्च 'आलोक' इत्याकारकप्रतियोगिज्ञानस्य विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयत्वात्मकेन कारणतावच्छेदकधर्मेणाक्रान्तत्वात् तादृशकार्यकारणभावे- नवाभावज्ञानोदयनिर्वाहेऽभावज्ञान प्रति स्वातन्त्र्येण प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिनिश्च-यत्वेन प्रतियोगज्ञाननिष्ठकारणत्वस्य कल्पना नार्हति । तदुक्त दीधितिकृता 'प्रतियोगिविशेषिताभावज्ञान तु विशिष्टवैशिष्ट्यबोधमर्यादा नातिशेते [त चि दी] इति । अत एव = अभावज्ञाने प्रतियोगिज्ञानत्वेन कारणत्वविरहादेव, प्रतियोग्यग्रहेऽपि = तेजोलक्षणप्रतियोगिज्ञानाभावदशायामपि इदन्त्वेन = पुरोवर्तित्वरूपेण 'इद' इत्याकारक तम प्रत्यक्ष = तमःपदवाच्यतेजोऽभावज्ञान नानुपपन्नम्, इदन्त्वेन तम'प्रत्यक्षस्य विशिष्टवैशिष्ट्यानवगाहित्वेन तत्कार्यतावच्छेदकधर्मानाक्रान्तत्वात् । एतेन प्रतियोगिज्ञानस्याभावप्रत्यक्षाहेतुत्वे विना प्रतियोगिज्ञान 'न' इत्याकारकप्रत्ययापत्तिरित्यपि प्रत्याख्यातम्, इदन्त्वग्राहकसन्निकर्षसन्निधानेनाभावत्वस्यापीदन्त्वेन ग्रहात् निर्विशेषणाभावत्वावगाहिन' 'न' इत्याकारकज्ञानस्यापादकविरहात् ।

न च एव = प्रतियोगिज्ञानस्याभावप्रत्ययाऽहेतुत्वे, विशिष्टबुद्धिम्प्रति विशेषणज्ञानस्य कारणत्वनियमेन विशेष्यज्ञानसम्पादनाय प्रथम अभावाभावत्वयो निर्विकल्पके ज्ञाने सति सखण्डस्य पुरोवर्तित्वरूपस्येदन्त्वस्य भासकसामग्रीविरहात् तदनन्तर 'अभाव' इत्याकारकप्रत्यक्षापत्ति = 'अभावः' इत्याकारकस्य इदन्त्वानवगाहिन' स्वरूपतोऽभावत्वावगाहिन' प्रत्यक्षस्य प्रसङ्ग' दुर्वार इति वाच्यम् तदा 'शून्यमिद दृश्यते' इत्यादिप्रत्ययात् = 'अत्र किमपि न दृश्यते' इत्याद्याकारकज्ञानोदयात् अभावत्वमात्रेण इदन्त्वानवगाहिन' प्रतियोग्यविशेषिताऽभावगोचरस्य प्रत्यक्षस्य इष्टत्वात् ।

► वल्लभा ◄

प्रति० । यदि यहाँ ऐसा कहा जाय कि —> 'अभाव के लौकिकप्रत्यक्ष के प्रति प्रतियोगिज्ञान नहीं किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिनिश्चय कारण है । तादृशनिश्चयत्व कारणतावच्छेदक है'<— तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि यह कोई नवीन सिद्धान्त नहीं है, किन्तु विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञान के प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चयत्वेन रूपेण कारणता का ही अन्य शब्दावलि में किया गया प्रतिपादन है । रक्तदण्ड का ज्ञान नहीं होने पर 'रक्तदण्डिमान् देश ' इस प्रकार ज्ञान नहीं होने से विशिष्टवैशिष्ट्यावगाही ज्ञान के प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चय को कारण मानना आवश्यक है । रक्तदण्ड से विशिष्ट पुरुष के वैशिष्ट्य का देश में अवगाहन करनेवाला ज्ञान विशेषणतावच्छेदक रक्तदण्डप्रकारक निश्चय से सम्पाद्य है ठीक वैसे ही प्रतियोगितासम्बन्ध से वह्निविशिष्ट अभाव के वैशिष्ट्य का भूतल आदि में ज्ञान करना हो तब अवश्य ही विशेषणतावच्छेदकीभूतवह्निप्रकारकनिश्चय की उपस्थिति होनी चाहिए । मगर प्रतियोगी से अविशेषित वह्निअभावप्रत्यक्ष के प्रति वह्नि का ज्ञान होना जरूरी नहीं है, क्योंकि वह्निअविशेषित वह्निअभाव का ज्ञान विशिष्ट के वैशिष्ट्य का अवगाही नहीं होने की वजह विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चय के कार्यतावच्छेदक धर्म से अनाक्रान्त है । इसीलिये तो वह्नि का ज्ञान नहीं होने पर इदन्त्वेन अन्धकार का ज्ञान, जो 'तम इदम्' इत्याकारक है, हो सकता है । वह ज्ञान वह्नित्व से विशिष्ट वह्नि के वैशिष्ट्य का वह्निअभावात्मक तम में अवगाहन करता नहीं है किन्तु इदन्त्व का अवगाहन करता है । इसलिये अन्धकार को आलोकाभावस्वरूप मानने में कोई दोष नहीं है ।

न चै । यहाँ कुछ विद्वानो की ओर से इस समस्या का उद्भावन किया जाता है कि —>''अभावज्ञान और प्रतियोगिज्ञान के बीच कार्यकारणभाव का स्वातन्त्र्येण स्वीकार न किया जाय तब तो सर्वप्रथम अभावत्व-अभाव का निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होने पर 'अभाव ' इत्याकारक प्रतियोगिविनिर्मुक्त केवल अभाव का साक्षात्कार भी होने लगेगा । यह ज्ञान विशिष्टवैशिष्ट्यअवगाही नहीं होने की वजह प्रतियोगितावच्छेदक के ज्ञान की, जो विशेषणतावच्छेदकविधया अभिमत है, अपेक्षा ही रखता नहीं है । स्वकार्यतावच्छेदकानाक्रान्त की उत्पत्ति स्व के विना हो तो इसे व्यतिरेक व्यभिचार कहा जा नहीं सकता । अभाव के साथ इन्द्रियसन्निकर्ष आदि सामग्री तो विद्यमान ही है । मगर वस्तुस्थिति यह है कि केवल 'अभाव ' इत्याकारक प्रतियोगिविनिर्मुक्त केवल अभाव का साक्षात्कार भी

प्रत्यक्षस्येष्टत्वात् । अस्तु वाऽभावत्वप्रत्यक्षे योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञानत्वेन हेतुत्वमित्याहु ।

तच्चिन्त्यम्, योग्यधर्माणामननुगमात् । 'घटत्वाद्यन्यतमत्वेन तदनुगम इति चेत् ? न, अतिगौरवात् । अपि चैव

◆ हेमलता ◆

इत्थमेवाभावत्वस्य भावभेदरूपस्य पिशाचादिभेदवत् योग्यस्य 'घटो नास्ती'त्यादौ स्वरूपतो भानमपि प्राचा सम्भवदुक्तिकम् । नञुल्लेखस्तु प्रतियोगिवाचकपदनियतो न सार्वत्रिक' । एतेनाभावत्वेनाभावप्रत्यक्षोपगमे 'न'इत्याकारकशब्दादभावप्रत्ययापत्तिरिति निरस्तम्।

ननु प्रतियोगिज्ञानस्याभावज्ञानाहेतुत्वे तु अन्धकारे इव हृदादावपि 'शून्योऽयमि'ति अनलाभावादौ प्रत्यक्षापत्तिरित्याशङ्कायामाह- अस्तु वा अभावत्वप्रत्यक्षे = अभावत्वप्रकारकसाक्षात्कारे योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञानत्वेन = योग्यधर्मप्रकारकज्ञात्वेन, हेतुत्वम् । युक्तश्चैतत् अभावप्रत्यक्षे प्रतियोगिज्ञानत्वेन हेतुत्वे अभावप्रतियोगिनामनन्तत्वेनानतकार्यकारणभावगौरवात्। अभावत्वप्रकारकप्रत्यक्षे योग्यधर्मप्रकारकज्ञानत्वेन कारणत्वे त्वेकेनैव कार्यकारणभावेन तदुपपत्ति' कार्यकारणभावशरीरेऽभावप्रतियोगिनोऽप्रवेशात् । एतत्कार्यकारणभावस्वीकारे नैव 'अभावः' इत्याकारकप्रत्यक्षापत्तिः, अभावत्वप्रत्यक्षाव्यवहितपूर्वक्षणे उपस्थितस्य योग्यधर्मावच्छिन्नस्य विशेषणविधया स्वप्रतियोगिकत्वसम्बन्धनाभावे भाने वाधकविरहात् । तेजोऽभावात्मकत्वे तमसोऽभावत्वप्रकारकप्रत्यक्षस्यैतत्कार्यकारणभाववलेन तेजोविशेषिताभावविपयकत्वात्तेजसो ज्ञाने एव भावात्, अन्यथा तमःसाक्षात्कारस्याभावत्वप्रकारकत्व न स्यात् किन्तु इदन्त्वप्रकारकत्वमखण्डतमस्त्वप्रकारकत्वमेव स्यात् । इत्थमभावत्वप्रत्यक्षे योग्यधर्मप्रकारकज्ञानत्वेनैव कारणत्व न त्वभावप्रत्यक्षे प्रतियोगिज्ञानत्वेन कारणत्वमिति नव्याभिप्रायः ।

नव्यमतखण्डनार्थमाह- तच्चिन्त्यमिति । चिन्तावीजमेवावेदयति- योग्यधर्माणा घटत्वपटत्वादिलक्षणाना अननुगमात् अनुगताननतिप्रसक्तलघुधर्मानाक्रान्तत्वात् ।

ननु घटत्वाद्यन्यतमत्वेन तदनुगम =घटत्व-पटत्वादियोग्यधर्माणा सङ्ग्रह' इति चेत् ? न, घटत्वाद्यन्यतमत्वस्य घटत्वादिभेदकूटवद्भिन्नत्वात्, तत्रानन्ताना घटत्वादिभेदानामेकविशिष्टापररूपेणैव प्रवेशावश्यकत्वे विशेषणविशेष्यभावे विनिगमनाविरहात् उभयरूपेण तदुपगमे घटत्वाद्यन्यतमत्वशरीरे अतिगारवात्, पिशाचत्वाद्ययोग्यधर्मावच्छिन्नस्याग्रहेपि 'नाय पिशाच' इतिप्रतीतेश्च । अपि च एव = अभावत्वप्रत्यक्षे योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञानत्वेन

▶ वल्लभा ◀

होने लगेगा । यह ज्ञान विशिष्टवैशिष्ट्यअवगाही नही होने की वजह प्रतियोगितावच्छेदक के ज्ञान की, जो विशेषणतावच्छेदकविधया अभिमत हे, अपेक्षा ही नही रखता है । स्वकार्यतावच्छेदकानाक्रान्त की उत्पत्ति स्व के विना हो तो उसे व्यतिरेक व्यभिचार कहा जा नही सकता । अभाव के साथ इन्द्रियसन्निकर्प आदि सामग्री तो विद्यमान ही है । मगर वस्तुस्थिति यह है कि केवल 'अभाव' इत्याकारक प्रत्यक्ष होता नही है । तदनुरोधेन प्रतियोगिज्ञान को अभावज्ञान का कारण मानना आवश्यक है'' ← मगर विचार किया जाय तो यह कथन भी असगत है । इसका कारण यह है कि जव भूतल आदि मे घट, पट आदि का दर्शन नही होता हे तव 'शून्यमिद दृश्यते' = 'यह स्थल शून्य दीखता है' इत्याकारक प्रत्यक्ष का होना तो इष्ट ही है । केवल अभावत्वरूप से प्रतियोगी से अविशेपित अभाव का प्रत्यक्ष अभिमत होने से प्रतियोगिज्ञान को अभावज्ञानजनक कहा जा नही सकता । यहाँ इस वात पर ध्यान देना जरूरी हे कि अन्धेरे मे 'शून्यमिद दृश्यते' यह प्रतीति होती हे इसका अर्थ यह है कि 'अत्र किमपि न दृश्यते' । अथवा 'अभाव' इस प्रकार की आपत्ति के परिहारार्थ अभावप्रत्यक्ष मे प्रतियोगिज्ञान को कारण मानना उचित नही है किन्तु लाघव से अभावत्वप्रकारक प्रत्यक्ष के प्रति योग्यधर्मप्रकारक ज्ञान ही कारण हे । इस कार्यकारणभाव का स्वीकार करने पर अभावत्वप्रत्यक्ष के पूर्व किसी न किसी योग्यधर्मावच्छिन्न का ज्ञान मानना होगा ओर जव कोई नञ् योग्यधर्मावच्छिन्न उक्तप्रत्यक्ष के पूर्व उपस्थित होगा तव अभाव मे विशेषणविधया उसके भान का कोई विरोधी नही होने से अभाव मे उसका भान अवश्य होगा । अत कोई भी अभावत्वप्रकारक प्रत्यक्ष 'अभाव' इत्याकारक न हो सकेगा । अन्धकार को तेजोऽभावात्मक मानने पर अन्धकार का यदि अभावत्वप्रकारक प्रत्यक्ष होता हे तव वह स्वप्रतियोगिकत्वसम्वन्ध से तेजविशिष्ट अभाव = तेजोविशेपित अभाव को ही विपय करने के कारण तेज का ज्ञान रहने पर ही होता है, अन्यथा अन्धकार का प्रत्यक्ष अभावत्वप्रकारक न हो कर इदन्त्वप्रकारक या अखण्डतमस्त्वप्रकारक ही होता है । यह नव्य नैयायिकों का कथन है ।

■■ योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञानत्वेन हेतुता सदोष ■■

तच्चिन्त्य० । मगर नव्यनेयायिको का उपर्युक्त कथन भी विचारणीय है न कि विना विचार के ग्राह्य । चिन्तन का एक पहलु यह है कि घटत्व, पटत्व आदि योग्य धर्म अनन्त है । उन सव को सगृहीत करनेवाला कोई ऐसा अनुगत अनतिप्रसक्त धर्म नही है जिससे उन सभी का ग्रहण कर के योग्यधर्मावच्छिन्न ज्ञान मे एक कारणता मानी जा सके । अत इस कार्यकारणभाव मे भी योग्य धर्मो के आनन्त्य से अनन्त कार्यकारणभाव की आपत्ति अपरिहार्य है ।

केवलाभावनिर्विकल्पकापत्तिः । इन्द्रियसम्बद्धविशेषणतायाः 'घटो नास्ती'ति प्रत्यक्षत्वं कार्यतावच्छेदकमिति चेत् ? न, इन्द्रि-य(त्व)स्य चक्षुस्त्वगादिभेदभिन्नत्वेनातिगौरवात्, घटत्वावच्छिन्नप्रकारत्वान्यप्रकारत्वाऽनिरूपिताभावविषयताकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति

◆ हेमलता ◆

कारणत्वोपगमे मास्त्वभावत्वमात्रप्रकारकप्रत्यक्षापत्तिः किन्तु केवलाभावनिर्विकल्पापत्तिः = अभावत्वप्रतियोग्यादिविनिर्मुक्ताभावमात्रगोचरनिर्विकल्पोत्पत्ति-प्रसक्तिः दुर्वारैव, केवलाभावनिर्विकल्पकस्य योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञानकार्यतावच्छेदकीभूताभावप्रत्यक्षत्वानाक्रान्तत्वात्, स्वकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तस्योत्पादे स्वस्यानपेक्षणात् ।

ननु इन्द्रियसम्बद्धविशेषणतायाः 'घटो नास्ती'तिप्रत्यक्षत्वं = प्रतियोगिविशेषितप्रत्यक्षत्वं एव कार्यतावच्छेदकम् । केवलाभावप्रत्यक्षस्य त्विन्द्रियसम्बद्धविशेषणताकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वादेव नोत्पत्तिरिति । न हि कारणविरहे कार्यमुपजायते कुत्रापि कदापि । एतेन पिशाचत्वाद्ययोग्यधर्माव-च्छिन्नस्य ग्रहेऽपि 'नाय पिशाचः' इतिप्रतीतेर्व्यतिरेकव्यभिचार इत्यपि परास्तम् इन्द्रियसम्बद्धविशेषणताया एव प्रतियोगिविशेषिताभावप्रत्यक्षहेतुत्वोपगमादिति चेत् ? न, इन्द्रियस्य = इन्द्रियपदवाच्यस्य चक्षुस्त्वादिभेदभिन्नत्वेन इन्द्रियसम्बद्धविशेषणतायाः प्रतियोगिविशेषिताभावप्रत्यक्षहेतुत्वे अतिगौरवात्। तथाहि घ्राणेन्द्रियसम्बद्धविशेषणतया घटाभावादिप्रत्यक्षासम्भवेन तत्तदिन्द्रियजप्रत्यक्षे तत्तदिन्द्रियसम्बद्धविशेषणताया एव कारणत्वं वाच्यम् । यस्य नानेन्द्रियग्राह्यता तत्प्रतियोगिविशेषिताभावप्रत्यक्षे नानेन्द्रियसम्बद्धविशेषणानां भिन्नरूपेण कारणत्वे महागौरवम् । तदपेक्षयाऽभावप्रत्यक्षमात्रे इन्द्रियसम्बद्धविशेषणताया हेतुता प्रतियोगिविशेषिताभावप्रत्यक्षे च पृथक् प्रतियोगिज्ञानस्य हेतुतैव युक्ता । न च तथापि 'न' इत्याकारकप्रत्यक्षापत्तिरिति वाच्यम्, उपस्थितस्य प्रतियोगिनोऽभावे वैशिष्ट्यभाने बाधकाभावात् । न च 'अभावो न घटीयः' इत्यादिबाधधीदशायां तदापत्तिरिति वाच्यम्, अभावत्वावच्छेदेनाभावे तादृशबाधस्य आहार्यत्वात्, अभावत्वसामानाधिकरण्येन च तत्सत्त्वेऽपि प्रतियोगिवैशिष्ट्यभानसम्भवात् । न च प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितयाऽभावे घटवैशिष्ट्यविषयकत्वात् प्रतियोगितासामान्येन घटवाधग्रहाऽभावेऽपि संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिता-सम्बन्धेन 'न घटीयः' इतिबाधधीकाले संयोगादिना घटाभावादेः 'न' इत्याकारकप्रत्यक्षापत्तिरिति वक्तव्यम् तदाऽपि प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियो-गितया घटस्य प्रकारतया भाने बाधकाभावात्, घटत्वावच्छिन्नप्रकारत्वान्यप्रकारत्वाऽनिरूपिताभावविषयताकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं = घटत्वावच्छिन्नप्रकारताया भिन्ना या प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता तयाऽनिरूपिताया अभावनिष्ठविषयताया निरूपकं यत्प्रत्यक्षं तादृशप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति

▶ वल्लभा ◀

यदि यह कहा जाय कि → 'घटत्व पटत्व आदि धर्मों का अन्यतमत्वरूप से अनुगम हो सकता है । अर्थात् घटत्वपटत्वाद्यन्यतमत्वावच्छिन्नप्रकारताकज्ञानत्वेन अभावत्वप्रत्यक्षकारणता को मान्य की जा सकती है ← तो यह उचित नहीं है, क्योंकि इस प्रकार अनुगम करने में अतिगौरव है । जैसे घटत्वाद्यन्यतमत्व घटत्वादिभेदकूटावच्छिन्नत्वस्वरूप ही होगा । उसमें अनन्त घटत्वादिभेदों के कूट का प्रवेश एकभेदविशिष्टअपरभेदरूप में ही होगा । फिर भेदों के विशेषण-विशेष्यभाव में विनिगमनाविरह होने से घटत्वाद्यन्यतमत्व गुरुस्वरूप से अनन्त होगा । अतः घटत्वादि अनन्त धर्मों का अन्यतमत्वरूप से अनुगम करने में अतिमहान गौरव है । इसके अतिरिक्त दोष यह है कि अभावत्वप्रत्यक्ष के प्रति योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञान को कारण मानने पर घटादिज्ञानविरहदशा में अभावत्व एवं प्रतियोगी से विनिर्मुक्त केवल अभाव का निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होगा, क्योंकि वह अभावत्वानवगाही होने की वजह योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञान के कार्यतावच्छेदक धर्म से अनाक्रान्त होने से घटादिज्ञान की अपेक्षा रखता नहीं है ।

◆◆ 'न' इत्याकारकप्रत्यक्षप्रसङ्गवारण असम्भव ◆◆

इन्द्रि० । प्रस्तुत सन्दर्भ में कुछ विद्वानों का यह कथन है कि → 'अभावत्वादिविनिर्मुक्त 'न' इत्याकारक केवलअभावगोचर निर्विकल्पक प्रत्यक्ष का परिहार करने के लिये इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता सन्निकर्ष को अभावमात्र का कारण न मान कर 'घटो नास्ति' 'पटो नास्ति' इत्याद्याकारक प्रतियोगिविशेषितअभावप्रत्यक्ष का जनक मान लेना चाहिये, क्योंकि ऐसा मान लेने पर प्रतियोगिविशेषित अत्यन्ताभाव को विषय न कर के शुद्ध अभावमात्र को विषय करनेवाले 'न' इत्याकारक प्रत्यक्ष का कोई आपादक नहीं होने से उसकी आपत्ति नहीं आयेगी' ← किन्तु यह वक्तव्य भी तथ्यहीन है, क्योंकि इन्द्रियाँ चक्षु, त्वक् आदि अनेक प्रकार की होती हैं । उनमें एक इन्द्रिय के सम्बद्धविशेषणतासंसर्ग से अन्य इन्द्रिय से अभावप्रत्यक्ष की उत्पत्ति होती नहीं है । जैसे चक्षुसम्बद्धभूतलविशेषणता सन्निकर्ष से घ्राण आदि के द्वारा घटाभाव आदि का प्रत्यक्ष होता नहीं है । अतः तत् तत् इन्द्रियजन्य अभावप्रत्यक्ष में तत् तत् इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता कारण मानी जाती है । अब यदि उसे अभावसाक्षात्कारमात्र का कारण न मान कर प्रतियोगिविशेषित अभावप्रत्यक्ष का जनक माना जायगा तो जिस प्रतियोगी के अभाव का प्रत्यक्ष भिन्न भिन्न इन्द्रियों से होता है उस प्रतियोगी से विशेषित अभाव के प्रत्यक्ष में भिन्न भिन्न इन्द्रिय सम्बद्धविशेषणता को भिन्न रूप से कारण मानने में गौरव प्रसक्त होगा । अतः उसकी अपेक्षा इस कल्पना में ही लाघव होगा कि इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता अभावविषयक प्रत्यक्षमात्र का कारण है और प्रतियोगिविशेषित अभावप्रत्यक्ष

घटत्वावच्छिन्नज्ञानत्वेनैव हेतुत्वादभावांशे निर्विकल्पकस्य 'अभावः' इत्याकारकप्रत्यक्षस्य च निखिलप्रतियोगिज्ञानकार्यतावच्छेदकाक्रान्ततयैव यत्किञ्चित्प्रतियोगिज्ञानेऽसम्भवात्, यावत्प्रतियोगिज्ञानस्य चासम्भवात् ।

अथ यत्किञ्चित्प्रतियोगिधीसाध्यस्याभावांशे यत्किञ्चित्प्रतियोगिविशिष्टविषयस्याभावत्वांशे निर्विकल्पकस्याभ्युपगमेऽपि केवला-

◆ हेमलता ◆

घटत्वावच्छिन्नज्ञानत्वेनेव हेतुत्वात्, अन्यथा घटाभावप्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने घटत्वावच्छिन्नज्ञानत्वेन कारणत्वे घटत्वावच्छिन्नज्ञानविरहेऽपि घटाभावस्य पटाभावत्वादिना ग्रहे व्यभिचारापत्तेः । इत्थञ्च 'न' इत्याकारकस्य अभावांशे निर्विकल्पकस्य प्रत्यक्षस्य 'अभाव' इत्याकारकप्रत्यक्षस्य च नोत्पत्तिप्रसङ्गः । 'अभाव' इत्याकारकप्रत्यक्षस्य 'न' इत्याकारकस्य च प्रत्यक्षस्याभावनिष्ठविषयतायाः प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतयाऽनिरूपितत्वेन निखिलप्रतियोगिज्ञानकार्यतावच्छेदकाक्रान्ततया = घटत्व-पटत्वादिसकलयोग्यधर्मावच्छिन्नज्ञाननिरूपितजन्यताया अवच्छेदकधर्मेणालिङ्गिततया एव यत्किञ्चित्प्रतियोगिज्ञाने सति तदुदयस्य असम्भवात् 'सामग्री वै कार्यजनिका न त्वेक कारणमि'तिवचनात् । यावत्प्रतियोगिज्ञानस्य =सकलघटत्व-पटत्वादियोग्यधर्मावच्छिन्नप्रकारताकज्ञानस्य च असर्वज्ञाना असम्भवात् । अभावत्वांशे निर्विकल्पक त्वभावांशे यत्किञ्चित्प्रतियोगिविशिष्टविषयकत्वात् यत्किञ्चित्प्रतियोगिधीसाध्यमेवेति नानुपपत्तिः । तदुक्त प्रतियोगिज्ञानहेतुतावादे 'प्रतियोगिज्ञानस्य घटत्वादिप्रकारकज्ञानत्वादिनैव कारणत्वम् । कार्यतावच्छेदकञ्च घटत्वावच्छिन्नप्रकारताभिन्नप्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारत्वाऽनिरूपिताऽभावनिष्ठलौकिकविषयताशालिप्रत्यक्षत्वम् । एवञ्च न क्वापि व्यभिचारो न वा 'न' इत्याकारकाभावप्रत्यक्षापत्तिः, तस्य यावत्प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य कार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात् (यावत्) प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य चासर्वज्ञानामसम्भवात् सर्वज्ञाना तु दर्शितबाधानवतारणे यत्किञ्चित्प्रतियोगिकाभावप्रत्यक्षस्यैव सम्भवात् । एवञ्च घटाभावत्वादिना पटाभावभ्रमोपगमेऽपि न क्षति', तस्य घटत्वादिप्रकारकज्ञानजन्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात्, व्यभिचाराभावाच्चेति [वादवा. पृ १३०]

अथ यत्किञ्चित्प्रतियोगिधीसाध्यस्य = घटादिज्ञानजन्यस्य अभावांशे यत्किञ्चित्प्रतियोगिविशिष्टविषयस्य = स्वप्रतियोगिकत्वसम्बन्धेन घटादिविशिष्टाभावविषयकस्य 'घटो नास्ती'त्याद्याकारकस्य अभावत्वांशे निर्विकल्पकस्य प्रत्यक्षस्य अभ्युपगमेऽपि अभावप्रत्यक्षत्वावच्छिन्ने इन्द्रियसम्बद्धविशेषणताया हेतुत्वस्वीकारेण घटादिज्ञानविरहदशाया मुण्डभूतले इन्द्रियसम्बद्धविशेषणताबलेन केवलाभावत्वनिर्विकल्पकापत्ति = अभावप्रतियोगिभ्या विनिर्मुक्तस्य शुद्धाभावत्वगोचरस्य निर्वकल्पकप्रत्यक्षस्य प्रसक्ति', अभावविषयकविशिष्टबुद्धावभावत्वस्य निर्विशेषणतया भानेनाऽभावत्वस्याऽखण्डत्वात्, जात्यखण्डोपाध्योः स्वरूपेणैव भानादिति चेत् ?

► वल्लभा ◄

मे प्रतियोगिज्ञान पृथक् कारण है । इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि अभावप्रत्यक्ष ओर प्रतियोगिज्ञान के बीच जो कार्यकारणभाव माना जाता है उसका 'घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव के प्रत्यक्ष मे घटत्वादिप्रकारक ज्ञान कारण है' इस रूप मे स्वीकार किया जा नही सकता, क्योकि घटज्ञान के न रहने पर भी पटाभावत्वेन घटाभाव का प्रत्यक्ष होने से व्यभिचार हो जायेगा । अत 'घटत्वादिअवच्छिन्न प्रकारता से अन्य प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता से अनिरूपित अभावनिष्ठ विषयता के निरूपक प्रत्यक्ष मे घटत्वादिप्रकारक ज्ञान कारण है' इसी रूप मे उक्त कार्यकारणभाव का स्वीकार करना होगा आर उस स्थिति मे 'न' इत्याकरक प्रत्यक्ष की अभावनिष्ठविषयता के किसी भी प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता से निरूपित नही होने की वजह 'न' इत्याकारक प्रत्यक्ष घटत्वादि समस्तधर्मप्रकारक ज्ञान के कार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त होगा । अत घटत्वादि धर्मो मे से यत्किञ्चित्धर्मप्रकारक ज्ञान से तो उसकी उत्पत्ति नही होगी ओर घटत्वादि समस्त धर्मप्रकारक ज्ञान का सन्निधान असर्वज्ञ को कभी नही होगा । फलत अभावांश मे निर्विकल्पक 'न' इत्याकारक प्रत्यक्ष की उत्पत्ति की आपत्ति की सम्भावना ही न हो सकेगी । इसलिए अभावत्वप्रत्यक्ष के प्रति योग्यधर्मावच्छिन्नज्ञान को कारण मानना अनुचित है - यह फलित होता है ।

अथ० । यहाँ इस आपत्ति का कि —> 'यत्किचित् प्रतियोगी के ज्ञान से जो अभावप्रत्यक्ष होगा वह अभावांश मे यत्किञ्चित्प्रतियोगिविशिष्ट हो सकता है । जैसे घटज्ञान से होनेवाला मुण्ड भूतल मे अभावज्ञान स्वप्रतियोगिकत्वसम्बन्ध से घटविशिष्ट अभाव का ज्ञान होगा, जो 'भूतले घटो नास्ति' इत्याकारक होगा । यह ज्ञान अभावांश मे प्रतियोगिविशिष्टविषयक होने पर भी अभावत्वांश मे निर्विकल्पक होता है - इस बात का स्वीकार करने पर भी केवलअभावत्वगोचर निर्विकल्पक प्रत्यक्ष की आपत्ति प्रतियोगिज्ञानविरहदशा मे दुर्वार है, क्योकि यत्किञ्चित्प्रतियोगी का ज्ञान उसका कारण नही है आर इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता वहाँ उपस्थित है '<— परिहार करने के लिये यह कहा जाता हे कि केवलअभावत्वनिर्विकल्पकत्व किसी कारण का कार्यतावच्छेदक नही हे । आपत्ति उसकी दी जा सकती है, जो किसीके कार्यतावच्छेदक धर्म का आश्रय हो । अत अभाव एव प्रतियोगी से विनिर्मुक्त केवलअभावत्व के निर्विकल्पक प्रत्यक्ष की आपत्ति असम्भव हे ।

भावत्वनिर्विकल्पकापत्तिरिति चेत् ? न केवलाभावत्वनिर्विकल्पकत्वस्य कार्यतानवच्छेदकत्वेन तदवच्छिन्नापत्तेरभावात् ।

वस्तुतोऽभावत्वमपि भावभेद एवेति शुद्धतन्निर्विकल्पकस्य निखिलप्रतियोगिज्ञानकार्यतावच्छेदकाक्रान्ततयैव नापत्तिरिति । अत एवेदन्त्वेन तमःप्रत्यक्षमप्यनुपपन्नमिति ।

इदन्तु प्रतिभाति - यदि चक्षुःसम्बद्धविशेषणतायाः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावविषयताकप्रत्यक्षत्व

◆ हेमलता ◆

न, केवलाभावत्वनिर्विकल्पकत्वस्य कस्यापि कार्यतानवच्छेदकत्वेन तदवच्छिन्नापत्ते = केवलाभावत्वनिर्विकल्पकत्वावच्छिन्नोत्पत्त्यापत्तेः अभावात् असम्भवात् । इन्द्रियसम्बद्धविशेषणताकार्यतावच्छेदकं न शुद्धाभावत्वनिर्विकल्पकं येन ततस्तदापत्तिः स्यात् आपादकविरहे आपादनाऽयोगात् । 'शुद्धाभावत्वनिर्विकल्पकस्यानभ्युपगमेनोक्तकार्यकारणभावे व्यभिचाराप्रचार' इति कश्चित् ।

वस्तुतः अभावत्वमपि भावभेद एव न त्वखण्डोपाधिः । एतेन अभावत्वस्याखण्डत्वमेव अन्यथाऽभावविशिष्टबुद्धावपि तन्निर्विकल्पकाऽयोगादिति निरस्तम् । अभावत्वस्य भावभेदात्मकत्वेनाभावात्मकत्वमिति हेतोः शुद्धतन्निर्विकल्पकस्य =केवलाभावत्वनिर्विकल्पकस्य भावभेदात्मकाभावनिष्ठविषयताऽपि घटत्वावच्छिन्नप्रकारताभिन्नप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतया पटत्वावच्छिन्नप्रकारतेतरप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतया मठत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताऽन्य-प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतया चाऽनिरूपितेति तादृशविषयावगाहिनः केवलाभावत्वनिर्विकल्पस्य निखिलप्रतियोगिज्ञानकार्यतावच्छेदकाक्रान्ततया = घट-पट-मठादिसकलप्रतियोगिगोचरज्ञानस्य घटत्व-पटत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारत्वभिन्नप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारत्वाऽनिरूपिताभावनिष्ठलौकिकविषयताकप्रत्यक्षत्वलक्षणेन कार्यतावच्छेदकधर्मेण आलिङ्गिततया, एव नापत्ति, तादृशप्रत्यक्षस्य यत्किञ्चित्प्रतियोगिज्ञानेऽसम्भवात्, यावत्प्रतियोगिज्ञानस्य चासम्भवात् । इत्यञ्चाभावप्रत्यक्षमात्रे इन्द्रियसम्बद्धविशेषणताया हेतुत्वेऽपि न क्षतिरिति ध्येयम् ।

अत एव = घटत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारत्वान्यप्रकारत्वानिरूपिताभावनिष्ठलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति घटत्वाद्यवच्छिन्नज्ञानस्याभावप्रत्यक्षमात्रं प्रति चेन्द्रियसम्बद्धविशेषणतायाः कारणत्वादेव, इदन्त्वेन अखण्डतमस्त्वेन वा तमःप्रत्यक्षं =तेजोभावात्मकतिमिरप्रत्यक्षं अपि अनुपपन्नम्, अभावांशे निर्विकल्पकवत् तस्यापि यावत्प्रतियोगिधीकार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वात् । अत एव यत्किञ्चित्प्रतियोगिज्ञाने तदसम्भवे यावत्प्रतियोगिज्ञानस्याऽसम्भवादेव तदसम्भवः ।

अत्रैव प्रकरणकारः स्वाभिप्रायमाविष्करोति इदन्तु प्रतिभातीति । यदि चक्षुःसम्बद्धविशेषणतायाः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावविषयताकप्रत्यक्षत्व = प्रतियोगितानिरूपितानुयोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिनिष्ठप्रकारतानिरूपिताभावनिष्ठलौकिकविषयताशालिप्रत्यक्षत्व

▶ वल्लभा ◀

वस्तु० । जब तक वस्तुस्थिति का सवाल है हम कह सकते हैं कि अभावत्व भी भावभेद को छोड कर दूसरा कुछ नहीं है । अतएव शुद्ध अभावत्व का निर्विकल्पक प्रत्यक्ष भी सकल प्रतियोगी के ज्ञान के कार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त है, क्योंकि केवल अभावत्वगोचर प्रत्यक्ष की विषयता घटत्वावच्छिन्न प्रकारता से भिन्न प्रतियोगितावच्छिन्नप्रकारता से अनिरूपित होने से वह प्रत्यक्ष घटज्ञान का कार्य है, पटत्वावच्छिन्न प्रकारता से भिन्न ऐसी प्रतियोगितावच्छिन्नप्रकारता से अनिरूपित विषयता का निरूपक होने से शुद्धअभावत्वनिर्विकल्पक ज्ञान पटज्ञान का भी कार्य है । इस तरह मठज्ञान आदि का भी वह कार्य है । इसलिये वह सकल प्रतियोगिज्ञानकार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त है । अतएव यत् किञ्चित् प्रतियोगी के ज्ञान से उसका जन्म हो नहीं सकता और सकल घट-पटादिप्रतियोगी का ज्ञान हमें हो नहीं सकता । इसलिये केवल अभावत्व के निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के उदय की कोई सम्भावना नहीं है । इसलिये इदन्त्व धर्मेण अन्धकार का प्रत्यक्ष भी हो नहीं सकता, क्योंकि अभावांश में निर्विकल्पक की भाँति यह भी निखिलप्रतियोगी के ज्ञान के कार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त है । घटत्वावच्छिन्न प्रकारता, पटत्वावच्छिन्न प्रकारता, मठत्वावच्छिन्न प्रकारता आदि से भिन्न ऐसी प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्न प्रकारता से अनिरूपित ऐसी विषयता का वह प्रत्यक्ष अवगाहन करता है । अतएव वह घटज्ञान, पटज्ञान, मठज्ञान आदि सकल का कार्य बन जाता है । यत्किञ्चित् धर्मप्रकारक ज्ञान से तो उसकी उत्पत्ति हो नहीं सकती और यावत्प्रतियोगिज्ञान का सन्निधान हमें कभी भी हो नहीं सकने से उसकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है । इसलिये इदन्त्वेन या अखण्डतमस्त्वेन तेजोऽभावात्मक अन्धकार का प्रत्यक्ष भी मान्य हो नहीं सकता ।

▲▲ शुद्धाभावप्रत्यक्षप्रसङ्गनिराकरण ▲▲

इदन्तु० । प्रकरणकार अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि चक्षुःसम्बद्धविशेषणता का कार्य तो प्रतियोगिविशेषितअभावचाक्षुष ही होगा न कि प्रतियोग्यविशेषितअभावचाक्षुष भी । प्रतियोगितासम्बन्ध से अर्थात् स्वनिष्ठप्रतियोगितानिरूपितानुयोगिता सम्बन्ध से प्रतियोगी अभाव में रहता है । अतः प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिनिष्ठ प्रकारता होगी । तादृश प्रकारता से निरूपित विशेष्यतानामक विषयता

तादृशाभावत्वविशिष्टविषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वमेव वा कार्यतावच्छेदकम्, कोटिप्रतियोगिज्ञानकारणताकल्पनापेक्षया लाघवात्, घटादिधियश्च लाघवात् कॢप्तमेव घटत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविषयताकप्रत्यक्षत्व कार्यतावच्छेदकम्, उक्तसन्निकर्षहेतुतयैव शुद्धाभावप्रत्यक्षायापत्तेरभावादिति ।

◆ हेमलता ◆

कार्यतावच्छेदकमित्यत्राकृष्यते । लाघवेन कल्पान्तरमाह- तादृशाभावत्वविशिष्टविषयतासम्बन्धेन = प्रतियोगितानिरूपितानुयोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावत्वावच्छिन्नविषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वमेव कार्यतावच्छेदकम्, न तु चाक्षुषत्व अभावमात्रप्रत्यक्षत्वादिक वा । तथाहि चक्षुःसयुक्तमुण्डभूतलविशेषणीभूते घटाभावे चक्षुःसम्बद्धविशेषणतालक्षण कारण वर्तते तत्रैव च घटनिष्ठप्रतियोगितानिरूपितानुयोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावत्वावच्छिन्नलौकिकविषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वमपि वर्तते, घटाभावे घटस्य स्ववृत्तिप्रतियोगितानिरूपितानुयोगितासम्बन्धेन प्रकारत्वात् । अत्र कार्यतावच्छेदकधर्मकुक्षौ प्रतियोगिनोऽप्रवेशेन कोटिप्रतियोगिज्ञानकारणताकल्पनापेक्षया लाघवात् सङ्गतोऽयमेव पन्थाः ।

घटादिधियश्च कार्यतावच्छेदक न घटत्वावच्छिन्नप्रकारतान्यप्रकारत्वाऽनिरूपिताभावनिष्ठविषयताकप्रत्यक्षत्व गौरवात् किन्तु लाघवात् = शरीरकृतलाघवात् कॢप्त = आवश्यक एव घटत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविषयताकप्रत्यक्षत्व = घटत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितलौकिकविषयताकप्रत्यक्षत्व कार्यतावच्छेदकम् । न च तथापि 'न'इत्याकारकप्रत्यक्षापत्तिरिति वाच्यम्, उक्तसन्निकर्षहेतुतयैव = प्रतियोगितानिरूपितानुयोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावत्वावच्छिन्नविषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्न प्रत्येव चक्षुःसम्बन्धविशेषणतासन्निकर्षकारणतया, घटादिज्ञानविरहदशाया 'अभावो न घटीयः' इत्यादिबाधधीदशाया वा शुद्धाभावप्रत्यक्षापत्ते = प्रतियोगिविनिर्मुक्तकेवलाभावगोचरप्रत्यक्षोदयप्रसक्तेः अभावात् तादृशप्रत्यक्षस्य प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावविषयताकत्वशून्यत्वात् । न च 'अभावो न घटीयः' इत्यादिप्रत्यक्षे व्यभिचार इति वाच्यम् तत्रापि प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावविषयताकत्वस्याक्षतत्वात् । यदि चैवमपि प्रतियोगितामात्रेण 'द्रव्य नास्ति' 'मेय नास्ति' इत्यापत्तिः तदा प्रकारीभूतकिञ्चिद्धर्मावच्छिन्नत्वेन प्रतियोगिताया विशेषणान्न दोषः । अभावत्वनिर्विकल्प चोपेयत एव, निरवच्छिन्नप्रकारताकबुद्धौ निरवच्छिन्नविषयताकबुद्धेर्हेतुत्वात् ।

वस्तुतस्तु एवमपि घटाभावपटाभावयोरुभयोः सन्निकर्षे घटाभावाशे प्रतियोगिविशेषितस्य पटाभावाशे च तदविशेषितस्य समूहालम्बनस्य प्रसङ्ग । किञ्चैव, इदन्त्वादिनाऽभावकल्पने चातिगौरवम् । न चाभावत्वप्रकारकघटाद्यभावविषयकप्रत्यक्षे घटत्वादिना घटादिज्ञानस्य हेतुत्वम्, पटाभावत्वेन च भूतले न घटाभावादिज्ञान तत्र पटाभावस्यैवारोपात् इत्यालोकज्ञान विनाऽपि तमस इदन्त्वेन प्रत्यक्ष नानुपपन्नमिति वक्तव्यम् 'घटवद् भूतल' इत्यादिज्ञानोत्तर 'अभाववद् भूतलमि'त्यादिज्ञानप्रसङ्गात्, तादृशाऽससर्गाग्रहस्यापादकस्य सत्त्वात् ।

किञ्चैवम्, अभावप्रत्यक्षे प्रतियोगिज्ञानापेक्षाया विना प्रतियोगिज्ञान जायमान तमस्त्वप्रकारक तमःप्रत्यक्ष तमसो भावत्वमेव साधयति । एवञ्च, अभावलौकिकप्रत्यक्षस्य घटत्वाद्यन्यतमविशिष्टविषयकत्वनियमाद् विशेषसामग्रीं विना सामान्यसामग्रीमात्रात् कार्यानुत्पत्तेर्नाभावनिर्विकल्पक 'ने'तिप्रत्यक्ष वा, विशेषणादिज्ञानरूपविशेषसामग्रीविरहात् । न चाभावलौकिकप्रत्यक्षत्व-घटत्वादिविशिष्टविषयकप्रत्यक्षत्वयोर्व्याप्यव्यापकभावाऽभावात् कथ विशेषसामग्रीत्वमिति शङ्कनीयम् कार्यतावच्छेदकीभूततत्तद्धर्माश्रययत्किञ्चिद्व्यक्तिनिष्ठकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदक यावत् प्रत्येक तत्तदवच्छिन्नसत्त्वेऽवश्य तद्धर्मावच्छिन्नोत्पत्तिरित्येव नियमात्, 'तद्धर्मव्याप्यधर्मावच्छिन्नयत्किञ्चिद्व्यक्तिनिष्ठकार्यतानिरूपित'त्याद्युक्तौ व्याप्तिज्ञानपरामर्शयोः सत्त्वे बाधधीसत्त्वेऽप्यनुमित्यापत्तेः, 'तत्तद्धर्मव्याप्यव्यापकधर्मावच्छिन्नयत्किञ्चिद्व्यक्तिनिष्ठकार्यतानिरूपित' इत्याद्युक्तौ गौरवात्, 'घटत्वविशिष्टवैशिष्ट्यविषयकप्रत्यक्षत्वस्याभावलौकिकप्रत्यक्षत्वव्याप्यतत्तदभावलौकिकप्रत्यक्षत्वव्यापकत्वात् प्रकृतसिद्धेश्चेत्युक्तावपि न साध्यसिद्धिः ।

▶ वल्लभा ◀

अभाव मे रहती है, जो चक्षुसम्बद्धविशेषणताजन्य चाक्षुष का विषय है । अत चक्षुसम्बद्धविशेषणता का कार्यतावच्छेदक धर्म होगा प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावनिष्ठविषयतानिरूपकप्रत्यक्षत्व । अथवा लाघव से यह भी कहा जा सकता है कि प्रत्यक्षत्व ही इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता का कार्यतावच्छेदक धर्म है । मगर तब कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध होगा तादृशाभावत्वविशिष्टविषयता । विशिष्ट का अर्थ अवच्छिन्न है । अत प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावत्वावच्छिन्नविषयता सम्बन्ध से प्रत्यक्षत्व कार्यतावच्छेदक धर्म बनेगा । इस कार्यकारणभाव मे कार्यतावच्छेदकदल मे प्रतियोगी का विशेषरूप से प्रवेश नहीं है, क्योंकि प्रतियोगिविशेषिताभावप्रत्यक्ष का अर्थ है प्रतियोगितासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतानिरूपिताभावनिष्ठविषयताशाली प्रत्यक्ष । अत जिस प्रतियोगी के अभाव का प्रत्यक्ष अनेक इन्द्रियो से होता है उस प्रतियोगी से विशेषित अभाव के प्रत्यक्ष मे इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता को इन्द्रियभेद से भिन्न रूप से कारण न माने जाने के सबब पूर्वोक्त गौरव नहीं है किन्तु लाघव है । एव घटादिज्ञान का कार्यतावच्छेदक धर्म भी घटत्वावच्छिन्नप्रकारत्वाऽनिरूपिताभावनिष्ठलौकिकविषयताशालिप्रत्यक्षत्व नहीं है किन्तु लाघव से आवश्यक घटत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविषयताकप्रत्यक्षत्व धर्म ही उसका कार्यतावच्छेदक है । इस

'नात्रालोकः किन्त्वन्धकार' इतिव्यवहारस्तु 'नात्र घटः किन्तु तदभाव' इतिवद् विवरणपरतया समर्थनीयः । 'तमसोऽभावत्वे

◆ हेमलता ◆

न वा घटत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारत्वातिरिक्तप्रकारत्वानवच्छिन्नाभावत्वलौकिकविषयत्वावच्छिन्नाभावलौकिकविषयताकप्रत्यक्षे घटत्वातिरिक्तधर्मावच्छिन्न-प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारत्वानिरूपितत्वे सत्यभावत्वविषयत्वावच्छिन्नाभावलौकिकविषयताकप्रत्यक्षे वा घटत्वत्वाद्यवच्छिन्नप्रकारताकज्ञानहेतुत्वेऽपि निर्वाहः, तमोविषयताया तमस्त्वविषयतावच्छिन्नत्वेऽभावत्वविषयतावच्छिन्नत्वनियमात्, तमस्त्वस्य तेजोऽभावत्वानतिरिक्तत्वात् अभावत्वविषयतावच्छिन्न-निवेशे गौरवात् तमसो द्रव्यत्वस्यैव युक्तत्वादिति व्यक्तं स्याद्वादकल्पलताया प्रथमस्तवके । [दृश्यता स्या क ल स्त १ पृ २२२-२२८]

ननु तमस आलोकाभावात्मकत्वे 'नात्रालोकः किन्तु अन्धकारः' इति व्यवहारः कथं स्यात् ? 'नालोक'इत्यनेनैवान्धकारस्योक्तत्वेन पौनरुक्त्यापातादित्याशङ्कायां नैयायिक आचष्टे - 'नात्रालोक किन्तु अन्धकार' इति व्यवहारस्तु 'नात्र घट किन्तु तदभाव' इतिवत् विवरणपरतया समर्थनीय । समानार्थकपदान्तरेण कथनस्य विवरणत्वान्न पुनरुक्तिरिति नैयायिकाभिप्राय ।

वस्तुतस्तु ''नात्रालोकः किन्तु अन्धकारतदभावा'विति व्यवहारान्तरस्यापि दर्शनात् 'नात्रालोकः किन्तु अन्धकार' इतिव्यवहारस्य 'नात्र घटः किन्तु तदभाव' इतिवद् विवरणपरकत्वेन समर्थनमशक्यमेव अन्धकारस्यालोकाभावत्वे 'अन्धकारतदभावा' 'आलोकाभावान्धकारौ' इति द्वन्द्वसमासासम्भवः भिन्नपदार्थवाचकयोरेवेतरेतरद्वन्द्वसमासप्रवृत्तेः आलोकाभावान्धकारयोरनतिरिक्तत्वे 'आलोकाभावान्धकारा' इति द्विवचनानुपपत्तिः ।

यत्तु अन्धकारस्यालोकाभावत्वेऽन्धकारे नालोक इति प्रयोगो न स्यादिति, तन्न, 'घटाभावे घटो नास्ती'तिवत्तदुपपत्तेः । एवं सति 'तमसि तम ' इति व्यवहारप्रसङ्गस्तु स्यादेव । न हि नैयायिकमते तमस्त्वमालोकाभावत्वादतिरिक्तम् । न चैतादृशसमभिव्याहारस्य शाब्दबोधाजनकत्वात् नैतादृशापत्तिः जायमानप्रतीतेः प्रमात्व त्वभिमतमेवेति वक्तव्यम् तथापि 'अन्धकारे नान्धकार' इति प्रतीतेर्भ्रमत्वापत्तेः ।

किञ्च तमसोऽभावत्वे विधिमुखेन प्रत्यय. कथमुपपादनीयताम् ? न च ध्वंसादाविव क्वाचित्कनञ्प्रयोगं विनाऽपि तदुपपत्तिरिति वाच्यम् तथापि 'घटस्य ध्वंस' इतिवदालोकस्य तम इति प्रतीत्यापत्ते । न चाप्रयोगादेव तदप्रयोग इति वक्तव्यम् तथापि 'आलोके नालोक' इतिवत्

► वल्लभा ◄

परिस्थिति मे घटज्ञान के न रहने पर पटाभावत्वेन घटाभाव का प्रत्यक्ष होने पर भी व्यतिरेक व्यभिचार को अवकाश नहीं होगा, क्योंकि वह घटाभावप्रत्यक्ष घटत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविषयताकप्रत्यक्षत्वात्मक घटज्ञानकार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त नहीं है । इस तरह प्रतियोगिविशेषितअभावप्रत्यक्ष के प्रति ही इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता मे कारणता होने की वजह 'न' इत्याकारक प्रत्यक्ष के उत्पाद को भी अवकाश नहीं है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष प्रतियोगिविशेषिताभावविषयक नहीं है किन्तु शुद्धअभावविषयक है । अतएव इन्द्रियसम्बद्धविशेषणता के कार्यतावच्छेदकधर्म से वह अनाक्रान्त है । यह पक्ष लाघवयुक्त होने से उपादेय है ।

►► तमोऽभावपक्षबाधक निराकरण ◄◄

नात्रा० । यहाँ इस शङ्का का कि —>''यदि अन्धकार आलोकाभावस्वरूप है तो 'यहाँ आलोक नहीं है किन्तु अन्धकार है' ऐसा व्यवहार क्यों होता है ? 'यहाँ आलोक नहीं है' इसीसे आलोकाभावात्मक अन्धकार का ज्ञान हो चुका है तो फिर पुन अन्धकारपद के प्रयोग की वहाँ आवश्यकता क्या ? स्पष्ट ही पुनरुक्ति दोष प्रसक्त होगा । आलोकाभावात्मक अन्धकार का स्वीकार करने के सबब नैयायिक मतानुसार 'नात्रालोक किन्तु अन्धकार' इत्याकारक व्यवहार का समर्थन असंगत हो जायगा''<— समाधान यह है कि 'यहाँ घट नहीं है किन्तु घटाभाव है' यह व्यवहार जैसे विवरणपरक होता है ठीक वैसे ही 'नालोकोऽत्र किन्तु अन्धकार' इस प्रकार के व्यवहार का विवरणपरतया समर्थन हो सकता है । मतलब यह है कि 'नात्र घट किन्तु तदभाव' इस व्यवहार मे उत्तरभाग से पूर्वभाग का विवरण अभिप्रेत होता है । विवरण का अर्थ है तत्समानार्थक पदान्तर से उसी अर्थ का कथन करना । ठीक इसी तरह 'नात्रालोक किन्तु तदभाव' इस व्यवहार मे भी उत्तरभाग से पूर्व भाग का विवरण अभिमत है । 'नात्र घट' और 'अत्र घटाभाव' ये दो जैसे अर्थ दृष्टि से अभिन्न होते हुए भी उत्तरभाग मे पूर्वभाग का विवरण होता है ठीक वैसे 'नालोक' और 'अन्धकार' ये दो अर्थ की दृष्टि से एक ही अर्थ का प्रतिपादन करने पर भी भिन्न शाब्दानुपूर्वी के द्वारा उत्तर भाग पूर्व भाग का विवरण ही है । अत पुनरुक्ति दोष की कोई सम्भावना नहीं है । यह नैयायिक का वक्तव्य है ।

■♦ अन्धतमस - अवतमस निरूपण ♦■

तमसोऽभा० । यहाँ मीमांसक की इस शङ्का का कि—> यदि अन्धकार अभावस्वरूप होगा तो अभाव मे उत्कर्ष - अपकर्ष की कल्पना हो नहीं सकती, क्योंकि उत्कर्ष या अपकर्ष भावपदार्थ मे होता है न कि अभावपदार्थ मे । तो फिर 'उत्कृष्ट अन्धकार अन्धतमस है और अपकृष्ट तम अवतमस है' इस प्रकार तमोविशेष की कल्पना न हो सकेगी <— समाधान नैयायिक की ओर

उत्कर्षापकर्षाभावादन्धतमसत्वावतमसत्वादिकं न स्यादि'ति चेत् ? न, महदुद्भूतानभिभूतरूपवद्यावत्तेजसामभावेऽन्धतमसत्वस्य कतिपयतदभावे चावतमसत्वस्य स्वीकारात् ।

अस्तु वाऽन्धतमसावतमसत्वादिकमखण्डोपाधिरेव । अतः कतिपयतदभावो नावतमसं दिवा प्रकृष्टालोकेऽपि तत्सत्त्वात् ।

◆ हेमलता ◆

'आलोकेऽन्धकार' इति व्यवहारापत्तेः दुर्वारत्वादिति । एतेन विधिमुखप्रत्ययस्त्वसिद्धः । न हि नञोऽप्रयोग इत्येव विधिः, प्रलयविनाशावसानादिषु व्यभिचारात् । नञर्थान्तर्भावेन वाक्यार्थे पदप्रयोग इति तु सम समाधानमन्यत्राभिनिवेशात्' [कि पृ ७२] इति किरणावलीकृत उदयनाचार्यस्य वचनमपास्तम् ।

अथ तमसोऽभावत्वे उत्कर्षापकर्षाभावात् = अभावे उत्कर्षापकर्षासम्भवात् उत्कर्षापकर्षाविनाभावि अन्धतमसत्वावतमसत्वादिकं न स्यात्, व्यापकविरहे व्याप्यायोगात् । भावमात्रवृत्तिताकावुत्कर्षापकर्षौ नाभावात्मके तमसि सम्भवतः । दृश्येते चान्धकारेऽन्धतमसत्वावतमसत्वे । तदन्यथानुपपत्त्या तमसो द्रव्यत्वं सिध्यतीति चेत् ?

नैयायिकः तन्निराकुरुते - नेति । महदुद्भूतानभिभूतरूपवत्यावत्तेजसामभावेऽन्धतमसत्वस्य स्वीकारादित्यत्राप्यन्वीयते । आलोकपरमाणुचक्षुःसुवर्णादितेजोद्रव्याणां सत्त्वेऽप्यन्धतमसत्वव्यवहारदर्शनात् महदादिविशेषणत्रयोपादानम् । कतिपयतदभावे = महदुद्भूतानभिभूतरूपवत्कतिपयालोकाभावे चावतमसत्वस्य स्वीकारात् । इत्थञ्च तमसोऽभावत्वेऽपि महदुत्कटानभिभूतरूपवद्यावत्तेजोऽभावत्वेनान्धतमसत्वप्रकारकप्रतीतिव्यवहारयोः कतिपयतदभावत्वेन चावतमसत्वप्रकारकप्रतीतिव्यवहारयोः सम्भव इति नैयायिकाशयः ।

वस्तुतः महदुत्कटानभिभूतरूपवद्यावत्तेजोऽभावत्व - कतिपयतदभावत्वयोरज्ञानेऽपि अन्धतमसत्वावतमसत्वप्रतीतिव्यवहारोपलम्भान्नैतद्युक्तम्, व्यवहारे व्यवहर्तव्यज्ञानस्य कारणत्वात्, घटकाज्ञाने च घटितानवबोधादित्यतो नैयायिकः कल्पान्तरमावेदयति - अस्तु वेति । अन्धतमसावतमसत्वादिकं = अन्धतमसत्वावतमसत्व-तमस्त्वादिः = अखण्डोपाधिरेव न तु जातिः सखण्डोधिर्वा । नानापदार्थाऽघटितोऽसमवेतपदार्थोऽखण्डोपाधिः नानापदार्थघटितश्च सखण्डोपाधिः ।

अत =अन्धतमसत्वादीनामखण्डोपाधित्वोपगमात्, अस्य चाग्रे न क्षतिरित्यनेनान्वयः । नैयायिकः तमोभाववादिमतमेवोपदर्शयति - कतिपयतदभाव = कतिपयमहदुत्कटानभिभूतरूपवदालोकाभावः नावतमसं, कुतः ? इत्याह - दिवा प्रकृष्टालोकेऽपि भूतलादौ तत्सत्त्वात् = कतिपयमहदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकाभावस्य विद्यमानत्वात् तदानीमवतमसप्रतीतिप्रयोगौ प्रसज्येतामिति भावः । नह्येकत्रैकदा यावदुक्तालोकसम्भवो घटाकोटिमाटीकते । अतः कतिपयतादृशालोकाभावस्य नावतमसत्वं युक्तम् ।

▶ वल्लभा ◀

से यह दिया जाता है कि महद्-उद्भूत-अनभिभूतरूपवत् यावत् तेज का अभाव अन्धतमस है और इस प्रकार के कतिपय तेज का अभाव अवतमस है। इस प्रकार से अन्धकार का विभाजन करना अन्धकार को तेजोऽभावत्मक मानने पर भी सगत होता है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि अन्धतमसत्व और अवतमसत्व अखण्डउपाधिस्वरूप हैं। अनेक पदार्थ से अघटित अनुगत असमवेत धर्म को अखण्डउपाधि कहते हैं।

यहाँ कुछ विद्वानो का यह वक्तव्य कि → "महत्त्व एव उद्भूत तथा अनभिभूत रूप जिन तेजो मे होता है उनमे से कतिपय तेजो के अभाव को अवतमस कहा जा नही सकता, क्योकि दिन मे प्रकृष्ट आलोक होने पर भी अवतमस के व्यवहार एव प्रत्यक्ष की आपत्ति आयेगी। यहाँ यह कथन कि छाया मे, जो अवतमसभिन्न है, अवतमस के लक्षण की अतिव्याप्ति के निवारणार्थ उक्त आलोकाभाव मे उस अभाव से या उसके प्रतियोगी से अल्पसङ्ख्यक बाह्यआलोक के सवलन का निवेश करना होगा। सवलन का अर्थ है एक देश और एक काल मे अस्तित्व। इस सवलन का निवेश करने पर अवतमस का स्वरूप यह बनेगा कि स्व की अपेक्षा या स्वप्रतियोगी की अपेक्षा अल्पसङ्ख्यक बाह्य आलोक से स्वसमानदेशत्व और स्वसमानकालत्व उभयसम्बन्ध से विशिष्ट जो कतिपय उक्त तेज का अभाव है वह अवतमस है। अवतमस के लक्षण का यह स्वरूप होने पर छाया मे अतिव्याप्ति नही होगी, क्योकि उक्त प्रकार के कपितय तेज के जितने अभाव के रहने पर छाया का व्यवहार होता है उन अभावो अथवा उन अभावो के प्रतियोगिओ से न्यूनसङ्ख्यक बाह्य आलोक का सवलन छाया मे नही होता किन्तु अधिकसङ्ख्यक बाह्य आलोक का सवलन होता है। अवतमस का यह लक्षण निष्पन्न होने पर दिन मे प्रकृष्ट आलोक के समय अवतमस की प्रतीति एव उसके व्यवहार की आपत्ति हो नही सकती, क्योकि उस समय उक्त प्रकार के जितने तेज के अभाव होते है उनसे या उनके प्रतियोगियो से अधिक सङ्ख्यावाले बाह्य आलोक की उपस्थिति दिन के प्रकृष्ट आलोक के समय रहती है। अतएव उस समय मे विद्यमान

न च छायायामतिव्याप्तिवारणाय स्वन्यूनसङ्ख्यबाह्यालोकसवलने सतीति विशेषणदानावश्यकत्वात्तदानीं च बाह्यालोकस्य स्वाधिकसङ्ख्यत्वान्नातिव्याप्तिरिति वाच्यम्, तद्दिनातिरिक्तानन्तदिनवृत्तिबाह्यालोकाभावानामेवाधिकत्वादित्याद्युक्तावपि न क्षतिः ।

'संयोग-संयुक्तसमवायादिनानासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनानालोकाभावनिष्ठं तमस्त्वमप्यखण्डमेकमेव, तेन प्रकृष्टालोकेऽपि

◆ हेमलता ◆

न चेति वाच्यमित्यनेनान्वेति । अवतमसभिन्नाया छायाया कतिपयमहदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकाभावत्वयुक्ताया अतिव्याप्तिवारणाय = अवतमसलक्षणप्रवेशनिराकरणकृते, स्वन्यूनसङ्ख्यबाह्यालोकसवलने सतीति विशेषणदानावश्यकत्वादिति । सवलनं नाम एकदेशकालयोगित्वम् । ततश्च स्वसमानदेशत्व-स्वसमानकालीनत्वोभयसम्बन्धेन स्वापेक्षया स्वप्रतियोग्यपेक्षया वा न्यूनसङ्ख्याकनिरुक्तालोकविशिष्टत्वे सति कतिपयमहदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकाभावोऽवतमसमिति तल्लक्षणं पर्यवसितम् । छायायास्तु स्वसमानदेशत्व-स्वसमानकालीनत्वोभयसम्बन्धेन स्वापेक्षया स्वप्रतियोग्यपेक्षया वाधिकसङ्ख्यकालोकविशिष्टत्वान्नातिव्याप्तिः । निरुक्तोभयसम्बन्धेन स्वापेक्षया स्वप्रतियोग्यपेक्षया वाऽधिकसङ्ख्यकालोकविशिष्टत्वे सति निरुक्तालोकाभावस्यैव छायालक्षणमामनन्ति विद्वांसः । तथापि दिवा प्रकृष्टालोके सत्यपि कतिपयोक्तालोकाभावस्य सत्त्वेन कथं न तदानीमवतमसप्रतीतिप्रयोगौ ? इत्याशङ्कायामाह - तदानीञ्च = दिनसमये च बाह्यालोकस्य स्वाधिकसङ्ख्यत्वात् कतिपयमहदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकाभावस्य स्वसमानदेशत्व-स्वसमानकालीनत्वोभयसम्बन्धेन स्वापेक्षया स्वप्रतियोग्यपेक्षया वाऽधिकसङ्ख्याविशिष्टत्वात् नातिव्याप्तिः = न दिवा प्रकृष्टालोकदशायामवतमसलक्षणातिव्याप्तिरिति शङ्काशयः ।

तन्निराकरणे हेतुमाह - तद्दिनातिरिक्तानन्तदिनवृत्तिबाह्यालोकानामेवेति । अवतमसप्रतीतिप्रयोगप्रामाण्यापादनं यस्मिन् दिने क्रियते तस्मात् दिनात् अतिरिक्तेषु अनन्तदिनेषु वृत्तिना बाह्यालोकानामिति । एवकारो बाह्यालोकलक्षणान्ययोगव्यवच्छेदार्थः । अधिकत्वात् = स्वापेक्षया स्वप्रतियोग्यपेक्षया वाऽधिकसङ्ख्यत्वात् । तस्मिन् दिने निरुक्तोभयसम्बन्धेन बाह्यालोकविशिष्टकतिपयनिरुक्तालोकाभावसङ्ख्यापेक्षया सवलितबाह्यालोकाना न्यूनसङ्ख्यत्वेन निरुक्तोभयसम्बन्धेन न्यूनसङ्ख्यकालोकविशिष्टस्य कतिपयनिरुक्तालोकाभावस्य दिवा भूतलादावक्षतत्वात् तदानीमवतमसप्रतीतिप्रयोगप्रामाण्यप्रसङ्गो दुर्वार इत्याद्युक्तावपि न क्षतिः ।

अवतमसत्वास्याखण्डोपाधित्वेन स्वीकारात्र दिवा भूतलादौ प्रकृष्टालोकसत्त्वेऽवतमसप्रतीतिप्रयोगप्रामाण्यप्रसङ्ग इति नैयायिकसमाधानाशयः ।

यत्तु यदा यत्र महदुद्भूतानभिभूतरूपवद्यावत्तेजःसंसर्गाभावो निरवच्छिन्नस्तदा तत्रान्धतमसं यदा तु यत्राऽयं सावच्छिन्नस्तदा तत्रावतमसमिति, तन्न, घटादिरिवान्धतमसावतमसयोरवच्छेदकानुपरागेणैव प्रतीतेः ।

स्वतन्त्रमतमाह - संयोग-संयुक्तसमवायादिनानासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकनानालोकाभावनिष्ठं तमस्त्वमप्यखण्डमेकमेव । संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः स्वसंयुक्तसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकः स्वसंयुक्तसमवेतसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकश्च महदुद्भूतानभिभूतरूपवद्यावत्तेजोऽभावः तादृशानेकाभावेषु पर्याप्तमनुगतमखण्डोपाधिस्वरूपं तमस्त्वमेकमेव । यदा निरुक्तालोकशून्ये भूतल-घटादौ सर्वे दर्शितालोकाभावा वर्तन्ते तदैव तत्र तमोज्ञानव्यवहारौ । तेन = तमस्त्वस्य निरुक्तनानालोकाभावेषु पर्याप्तत्वेन, नान्धकारव्यवहारापत्तिरित्यादावस्यान्वयः । प्रकृष्टालोकेऽपि

▶ वल्लभा ◀

उक्त प्रकार के तेजोऽभावो मे उसकी अपेक्षा अथवा उसके प्रतियोगियो की अपेक्षा न्यूनसख्यावाले बाह्य आलोक का सवलन नही होता है ' इसलिये असङ्गत है कि जिस दिन प्रकृष्ट आलोक के समय अवतमस का आपादन करना है उस दिन केवल उस दिन के ही कितपय बाह्य आलोको का अभाव नहीं है किन्तु उस दिन से भिन्न अन्य अनत दिनो के बाह्य आलोको का भी अभाव वहाँ विद्यमान है। अत उस दिन जितने बाह्य आलोक का सवलन उस अभाव मे है उनकी सख्या उन अभावो अथवा उनके प्रतियोगियो से न्यून ही है। अत अवतमस का प्रस्तुत लक्षण मान्य करने पर भी दिन मे प्रकृष्ट आलोक के समय विद्यमान तेजोभाव मे अवतमस के लक्षण की अतिव्याप्ति वज्रलेप बनेगी। अतएव तब अवतमस की प्रतीति एव व्यवहार की आपत्ति का भी परिहार हो नहीं सकता''←भी हमे प्रतिकूल नहीं है क्योकि हम अवतमस का उक्त लक्षण मानते नहीं है। अवतमसत्व अखण्डउपाधिस्वरूप है - यह हम पहले ही कह चुके है। इसलिये उक्त आपत्ति को अवकाश रहता नहीं है।

▶ तमस्त्व अखण्डोपाधि है- स्वतन्त्रमत ◀

संयोग० । स्वतन्त्र विद्वानो का यहाँ यह वक्तव्य है कि → संयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक, संयुक्तसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक, संयुक्तसमवेतसमवायसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताक आदि अनेक आलोकाभावो मे रहनेवाला तमस्त्व एक अखण्डोपाधिस्वरूप है। इसलिये प्रकृष्ट

रूपादौ सयोगेनालोकाभावसत्त्वान्नान्धकारव्यवहारापत्तिः, न वा नानालोकाभावेष्वनुगततमोव्यवहारानुपपत्तिः, न वा 'इद तम' इति प्रतीतावपि तत्र भावत्वाभावत्वसशयानुपपत्तिः इदन्त्वावच्छेदेन तमस्त्वग्रहेऽप्यालोकाभावत्वाऽग्रहाद्' इति स्वतन्त्रा ।

'सयोगाद्यन्यतमसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक आलोकाभाव एक एव, अन्धकारत्वञ्च भाववृत्तित्वविशिष्टालोकाभावत्वम् ।

◆ हेमलता ◆

रूपादो सयोगेन आलोकस्य विरहेण आलोकाभावसत्त्वात् = सयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकयावदालोकाभावस्य दैशिकविशेषणतासम्बन्धेन विद्यमानत्वात् नान्धकारव्यवहारापत्ति = नैव तमःप्रयोगप्रतीतिप्रसङ्गः । रूपादौ तदा स्वसयुक्तसमवायसम्बन्धेन महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकस्य सत्त्वात्, केवले सयोगसम्बन्धावच्छिन्नालोकाभावे तमस्त्वस्य विरहात्, तस्य निरुक्तनानालोकाभावेष्वेव पर्याप्तत्वात् । एतेन प्रकृष्टालोकदशाया रूपत्वादौ सयोगसयुक्तसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकालोकाभावस्य सत्त्वादन्धकारप्रत्ययप्रयोगप्रसक्तिरपि प्रत्युक्ता तदा रूपत्वादौ स्वसयुक्तसमवायेनालोकस्य सत्त्वात्, रूपत्वादेः महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकसयुक्तघटादिसमवेतरूपादौ समवेतत्वात्, त्रितयसम्बन्धावच्छिन्नालोकाभावत्रिकपर्याप्तस्य तमस्त्वस्य तत्र विरहादेव नान्धकारप्रत्ययादिप्रसङ्गः ।

न वा नानालोकाभावेषु अनुगततमोव्यवहारानुपपत्ति तेषु तमस्त्वस्याखण्डस्यैकस्यानुगतत्वात् । न वा 'इद तम' इति प्रतीतावपि तत्र =तमसि भावत्वाभावत्वसशयानुपपत्ति । हेतुमाहुः इदन्त्वावच्छेदेन तमसि तमस्त्वग्रहेऽपि आलोकभावत्वाग्रहात् = तमस्त्वव्यतिरिक्तस्यालोकाभावत्वस्याभानात् । यदि च 'आलोकाभावोऽयमि'त्येव तमो गृह्यते तदा न तत्र भावत्वाभावत्वसशयसम्भवः, आलोकाभावत्वस्यैव ग्रहात् । इदन्त्वन्तु भावाभावोभयसाधारणमिति इदन्त्वावच्छेदन तमस्त्वग्रहे भावाभावत्वसन्देह' स्यात् । एतेन तमस आलोकाभावत्वे भावाभावत्वसशयो न स्यादिति निरस्तम् ।

स्वतन्त्रा इत्यनेनास्वरसः प्रदर्शितः । तद्बीजञ्चेदम् नानालोकाभावेषु तमस्त्वकल्पने गौरवात्, गगनपरमाणु-द्व्यणुकादौ स्वसयुक्तसमवाय-स्वसयुक्तसमवेतसमवायसम्बन्धावच्छिन्नालोकाभावविरहेण तमोव्यवहारानुपपत्ते', अखण्डतमस्त्वकल्पनापेक्षयाऽतिरिक्ततमोद्रव्यकल्पने लाघवाचेति दृढतरमवधेयम् ।

अत्रैवान्यमतमाह - सयोगाद्यन्यतमसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक = स्वसयोग-स्वसयुक्तसमवाय - स्वसयुक्तसमवेतसमवायाऽन्यतमससर्गावच्छिन्नप्रतियोगितानिरूपिकानुयोगितावात् आलोकाभाव एक एव लाघवात्, न तु नाना गौरवात् । यत्र सयोगाद्यन्यतमसम्बन्धेनालोकः, तत्रोक्तान्यतमसम्बन्धाव- च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्याऽसत्त्वेन नान्धकारव्यवहारापत्तिः । एतेन प्रकृष्टालोकदशायामपि रूपादौ सयोगसम्बन्धावच्छिन्नालोकाभावस्य सत्त्वेनान्धकारापत्तिरिति प्रत्युक्तम्, तत्र स्वसयुक्तसमवायसम्बन्धेनालोकस्य सत्त्वेन सयोग-सयुक्तसमवायाद्यन्यतमसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकालोकाभावस्य विरहात् । न च तथापि अन्धकारेऽन्धकार इति प्रतीतिप्रामाण्यप्रसङ्गो दुर्वारः तत्रान्यतमसम्बन्धेनालोकस्य विरहादिति वाच्यम्, यतः अन्धकारत्वञ्च = अन्धकारत्वपदवाच्यञ्च सामानाधिकरण्येन भाववृत्तित्वविशिष्टालोकाभावत्वम्,

► वल्लभा ◄

आलोक की विद्यमानता होने पर भी रूप आदि मे सयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक यावदालोकाभाव विद्यमान होने से अन्धकार की आपत्ति दी जा नही सकती, क्योकि रूप आदि गुण होने की वजह सयोगसम्बन्ध से उसमे कभी भी आलोक द्रव्य नही रहने पर भी प्रकृष्ट आलोककाल मे स्वसयुक्तसमवाय सम्बन्ध से रूप आदि मे भी आलोक रहता ही है । प्रकृष्ट आलोक से सयुक्त घटादि मे रूप आदि समवेत होने से स्वसयुक्तसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक आलोकाभाव रूपादि मे स्वरूपसम्बन्ध से रह नही सकता । स्वसयोगसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक तेजोऽभाव रहने पर भी स्वसयुक्तसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक आलोकाभाव नहीं होने की वजह रूप आदि मे अन्धकार का व्यवहार या प्रत्यक्ष हो नही सकता, क्योकि तमस्त्व अनेक दर्शित आलोकाभाव मे अखण्ड हे, पर्याप्त हे । अतएव अनेक आलोकाभावो मे अनुगत अन्धकारव्यवहार की भी अनुपपत्ति नही होगी, क्योकि दर्शित अखण्डोपाधिस्वरूप तमस्त्व सभी आलोकाभावो मे अनुगत हैं, एक हे । व्यवहार मे देखा जाता हे कि 'इद तम ' ऐसी प्रतीति होने पर भी 'अन्धकार भावात्मक है या अभावत्मक है ?' इस प्रकार सशय होता हे । यह भी हमारे मतानुसार सगत हो जाता है, क्योकि इदन्त्वावच्छेदेन अन्धकार मे तमस्त्व का भान होने पर भी आलोकाभावत्व का ज्ञान होता नही हे । आलोकाभावत्व का ज्ञान तब होता यदि 'अयमालोकाभाव ' इत्याकारक वोध होता । तादृश वोध नही होने की वजह अन्धकार मे अभावत्व का ज्ञान हुआ नही है । भाव-अभाव उभयसाधारण इदन्त्व धर्म के पुरस्कार से अन्धकार का साक्षात्कार होने की वजह 'अन्धकारो भावोऽभावो वा ?' इत्याकारक सशय भी सङ्गत होता हे ← यह स्वतन्त्रमत हैं ।

► भाववृत्तित्वविशिष्टालोकाभावत्व तमस्त्व - अन्यमत ◄

सयोगा० । प्रस्तुत सन्दर्भ मे अन्य विद्वानो का यह कथन हे कि → सयोग, सयुक्तसमवाय आदि सम्बन्ध से अवच्छिन्न

तेन न 'अन्धकारे अन्धकार:' इतिप्रयोगापत्तिः न वा 'अन्धकारे नान्धकार:' इति प्रतीतेर्भ्रमत्वम्' इत्यन्ये ।

प्राभाकरास्तु 'आलोकज्ञानाभाव एव तमः । अत एवालोकाद्गर्भगृहं प्रविशतः तमोधीः इत्याहु' तत्तुच्छम्, एवं

◆ हेमलता ◆

अन्धकारस्यालोकाभावस्वरूपान्धकारवृत्तित्वेऽपि भाववृत्तित्वविशिष्टालोकाभावत्वमत्र नास्ति, तेन भाववृत्तित्वविशिष्टालोकाभावत्वस्य भावमात्रवृत्तित्वेन न 'अन्धकारेऽन्धकार' इतिप्रयोगापत्ति । निरुक्ताभावस्वरूपेऽन्धकारे भाववृत्तित्वविशिष्टालोकाभावस्य विरहेण 'अन्धकारे नान्धकार' इति प्रतीते प्रमात्वमेवेत्याहु' । न वा 'अन्धकारे नान्धकार' इतिप्रतीते भ्रमत्वम् इत्यन्ये वदन्ति ।

अन्ये इत्यनेनास्वरसः प्रदर्शितः । तद्वीजञ्चेदम्- 'आलोकेऽन्धकारः' इतिप्रतीते तथापि दुर्वारत्वम्, भावात्मके आलोके संयोगाद्यन्यतमसम्बन्धेनालोकस्य विरहात् । किञ्च पुनरुक्तिग्रस्तत्वेन 'नात्रालोक' किन्तु तमस्तदभावो' इत्यपि व्यवहारोऽनुपपन्न' स्यात् । अपि चैवम् 'अन्धकारे नालोक' इत्यपि व्यवहारोऽनुपपन्न', अन्धकारस्याभावात्मकतया भाववृत्तित्वविशिष्टालोकाभावत्वशून्यत्वात् 'नालोक' इत्यस्यासङ्गते । एवमेव अवतमसत्वप्रतीतेरप्ययोग इत्यादिकं स्वयमभ्यूहनीयम् ।

प्राभाकरा = मीमांसकधुर्यकुमारिलभट्टशिष्य - गुर्वपराभिधान - प्रभाकरमिश्रानुयायिन' तु आलोकज्ञानाभाव एव तम = तम पदप्रतिपाद्य' । एवकारेणालोकाभाव-इत्यादे व्यवच्छेद' कृतः । उपलब्धियोग्यालोकचाक्षुषाभावे सति तमोऽभावप्रतीते तमोव्यवहारस्य तमस उपलब्धियोग्यालोकचाक्षुषत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वमेव, लाघवेन समनियतयोग्यत्वात् । जात्यन्ध-निमिलितनयनपुरुषादेरालोकचाक्षुषाभावेऽतिव्याप्तिवारणार्थं 'उपलब्धियोग्ये'ति विशेषणम् । अत एव = तमस आलोकचाक्षुषाभावात्मकत्वादेव प्रकृष्टसौरालोकवद्देशात् आलोकवद्गर्भगृह = प्रकृष्टसौरालोकापेक्षया मन्देनालोकेनोपेत गर्भगृहं प्रविशत पुरुषादे' तत्काल क्षणमेकं 'अत्रान्धकार' इति तमोधी उपपद्यते । तमस आलोकचाक्षुषाभावात्मकत्वे तु कथं तादृशप्रतीतिः स्यात् ? तत्रावश्यकालोकस्य सत्त्वात् । तमसो द्रव्यत्वेऽपि कथ तादृशीः स्यात् ? तदानीं तत्स्थान्यद्रव्याग्रहवत् तमोग्रहोऽपि न स्यात् । अत' अन्धकारस्योपलब्धियोग्यालोकचाक्षुषविरहात्मकत्वमेव युक्तम् । न चैव सति 'नील तम'' इति प्रतीति' कथमुपपद्येतेति शङ्कनीयम् स्मृतनीलिम्ना सममुपलब्धियोग्यालोकदर्शनाभावस्याऽसंसर्गाऽग्रहादेव तदुपपत्ते' । अत एव सौरालोकोपेतबहिर्देशाद्गालोकवद्गर्भगृह निगतः

▶ वल्लभा ◀

प्रतियोगिता का निरूपक आलोकाभाव एक ही है अनेक नहीं । जहाँ संयोग सम्बन्ध से या समवायसम्बन्ध आदि सम्बन्ध से आलोक रहता है वहाँ संयोगादिअन्यतमसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक आलोकाभाव रहता नहीं है। अतएव वहाँ अन्धकार का व्यवहार होता नहीं है। हाँ संयोग आदि अनेक सम्बन्धों में से किसी भी सम्बन्ध से आलोक रहता नहीं है वहाँ ही अन्धकार का व्यवहार होता है । यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि अन्धकारत्व केवल आलोकाभावत्वस्वरूप नहीं है किन्तु भाववृत्तित्वविशिष्ट आलोकाभावत्वात्मक है । अर्थात् जिस भावात्मक अधिकरण में आलोकाभाव रहता है वह सामानाधिकरण्यसम्बन्ध से भाववृत्तित्वविशिष्ट आलोकाभावत्वस्वरूप अन्धकारत्व से विशिष्ट बनता है। इस प्रकार कथन करने का लाभ यह है कि तब 'अन्धकारेऽन्धकार' इस प्रतीति की आपत्ति नहीं आयेगी, क्योंकि अभावात्मक अन्धकार में रहनेवाला अभावात्मक अन्धकार भाववृत्तित्वविशिष्ट आलोकाभावत्व का आश्रय नहीं है । वह सामानाधिकरण्यसम्बन्ध से अभाववृत्तित्वविशिष्ट आलोकाभावत्व का अधिकरण होता है । इसलिये अन्धकार में भाववृत्तित्वविशिष्ट आलोकाभावत्वात्मक अन्धकारत्व रहता नहीं है । अतएव 'अन्धकारे नान्धकार' यह प्रतीति भी प्रमात्मक सिद्ध होगी न कि भ्रमात्मक । इसलिये अन्धकार अभावस्वरूप ही है न कि भावात्मक - यह फलित होता है←

◆◆ आलोकज्ञानाभाव अन्धकार है - प्राभाकर ◆◆

प्राभा० । मीमांसक प्रभाकरमिश्र के अनुयायिओं का प्रस्तुत में यह वक्तव्य है कि → 'अन्धकार दूसरा कुछ न हो कर आलोकज्ञानाभावस्वरूप ही है । इसका आशय यह है कि जिस स्थान में मनुष्य को आलोक नहीं दीखता वहाँ तम का व्यवहार होता है । इससे सिद्ध होता है कि आलोकदर्शनाभाव ही अन्धकार है । इसीलिये जब मनुष्य बाहर के तेज आलोक से गृह के भीतर प्रवेश करता है तो सहसा उसे वहाँ स्थित शान्त आलोक का दर्शन होता नहीं है और वह झट से बोल पडता है कि 'अत्र अन्धकार' = 'यहाँ तो अँधेरा है' । इस व्यवहार से भी सिद्ध होता है कि आलोकदर्शनाभाव ही अन्धकार है । अन्यथा यदि आलोकाभाव तम होता तब तो आलोक तो वहाँ है ही, फिर आलोकाभावस्वरूप अन्धकार का दर्शन एवं व्यवहार कैसे हो सकता था ? यदि वह द्रव्यात्मक होता तब भी बाहर के प्रकृष्ट आलोक से गृह में प्रवेश करने पर तत्काल ही उसका दर्शन ठीक उसी तरह नहीं होता जैसे वहाँ स्थित अन्य द्रव्यों का तत्काल दर्शन नहीं होता । इस प्रकार आलोकदर्शनाभाव को अन्धकार मानने में युक्ति की अनुकूलता को देख कर प्रभाकर के अनुयायी कहते हैं कि आलोकदर्शनाभाव ही अन्धकार है' ←

तत्तु । मगर विचार करने पर उपर्युक्त वक्तव्य गलत प्रतीत होता है । इसका कारण यह है कि यदि अन्धकार आलोक-

सति 'अन्धकारवानहमि'ति प्रतीत्यापत्तिः । न च सम्बन्धविशेषेणालोकज्ञानाभाववत्येव तमःप्रतीतिनियमान्नाय दोष इति वाच्यम् तथा सत्यालोकज्ञानाभाववानहमिति प्रतीतेरपि विलयापत्तेः । किञ्चैवं तमसश्चाक्षुषत्वं न स्यात्, ज्ञानाभावस्य मानसत्वात् । तथा च 'तमः पश्यामी'ति प्रतीतिः कथमुपपादनीया ?

◆ हेमलता ◆

पुरुपादैः प्रथममालोकाऽग्रहे 'नील तमः' इति धीः । तदुक्त 'अप्रतीतावेव प्रतीतिभ्रमो मन्दानाम्'[ ] इति प्रभाकराशयः ।

तन्निराकरोति - तत्तुच्छमिति । एव सति = तमस उपलब्धियोग्यालोकदर्शनाभावात्मकत्वे सति, 'अन्धकारवानहमि'ति प्रतीत्यापत्ति, ज्ञानत्वावच्छिन्नस्याऽऽत्मनि समवायसम्बन्धेन जायमानतया उपलब्धियोग्यालोकदर्शनाभावलक्षणान्धकारस्याऽप्यात्मवृत्तित्वौचित्यात् । 'अन्धकारवद्भूतलमि'-तिप्रतीतेरप्रामाण्यापत्तिरप्युपलक्षणाद् बोद्धव्या ।

ननु समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकालोकदर्शनाभावस्य तमस्त्वमस्माभिर्नाङ्गीक्रियते येन तद्वत्यात्मनि तत्प्रतीतिप्रसङ्गः किन्तु स्वनिरूपितालोकनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यता - स्वनिरूपितालोकनिष्ठविशेष्यतानिरूपिताधेयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारतान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकचाक्षुषाभावस्यैव तमस्त्वमभ्युपगम्यते । 'आलोकवान् देशः' इतिप्रतीतिः प्रथमसम्बन्धेन देशे वर्तते 'अत्र देशे आलोक' इतिप्रतीतिश्च द्वितीयसम्बन्धेन । यत्र तु निरुक्तान्यतरसम्बन्धेन तादृशचाक्षुषप्रतीतिर्नैव वर्तते तत्रैव तमःप्रतीतिर्भवतीति नियमः । आत्मनि तु समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकालोकचाक्षुषाभावो वर्तते न तूक्तान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकालोकदर्शनाभाव इति 'अन्धकारवानहमि'तिप्रतीतेर्नैव प्रसङ्गः इति प्राभाकराशय दूषयितुमुपन्यस्यति न चेति । वाच्यमित्यनेनास्यान्वयः । विभावितार्थमेवेदम् । तदयुक्तत्वे हेतुमाह - तथा सति = 'दर्शितान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियागिताकालोकदर्शनाभाववत्येवान्धकारप्रतीतिव्यवहारनियमोपगमे सति, 'आलोकज्ञानाभाववानहमि'तिप्रतीतेरपि विलयापत्ते । अपिशब्दो गर्हार्थः । न हि आलोकज्ञानाभावत्व तमस्त्वादिदानीमतिरिच्यते । उक्तान्यतरसम्बन्धावच्छिन्नालोकदर्शनत्वाच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वलक्षणतमस्त्ववदाश्रयत्व नात्मनः किन्तु भूतलादेरेवेति न कदापि 'आलोकदर्शनाभाववानहमि'तिप्रतीतिः स्यात् । एतेन विषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्यापि तस्य तमस्त्व प्रत्याख्यातम्, भूतलादेरेव विषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकालोकदर्शनाभावत्वलक्षणतमस्त्ववदाश्रयत्वेन 'आलोकदर्शनाभाववानहमि'ति प्रतीतेरनुपपत्तेः ।

दोषान्तरसमुच्चयार्थमाह- किञ्चेति । एव = तमस उपलब्धियोग्यालोकचाक्षुषाभावत्वाङ्गीकारे, तमस चाक्षुषत्व न स्यात्, ज्ञानस्य मानसत्वेन ज्ञानाभावस्य मानसत्वात् = मानससाक्षात्कारविषयत्वात् । 'यो यदिन्द्रियेण गृह्यते तदभावस्तद्गता जातिरपि तेनैवेन्द्रियेण गृह्यते' इति नियमेनालोकज्ञानस्य मनोमात्रग्राह्यत्वेन तदभावस्यापि मनोमात्रग्राह्यतैव स्यात् न तु चक्षुर्ग्राह्यत्वम् । तथा च आलोकज्ञानाभावलक्षणस्य तमसो मानसत्वेऽभ्युपगम्यमाने 'तम पश्यामी''ति प्रतीति कथ प्रमात्वेन उपपादनीया ?

एतेन तदंशेऽलौकिकचाक्षुषमपि प्रत्युक्तम् बहिरिन्द्रियजन्यज्ञाने उपनीतस्य विशेषणतयेव भाननियमात् 'नील तमः' इतिप्रतीत्यनापत्तेश्च । एतेन 'नील तम' इति धीस्तु स्मृतनीलिम्ना सममालोकज्ञानाभावस्याऽससर्गग्रहादित्यपि निरस्तम् तथाननुभवात्, अप्रामाणिकगौरवात्, अस्खलद्वृत्तेश्च तस्या 'इद रजतमि'त्यादिप्रतीतिवदससर्गाग्रहेणोपपादनासम्भवात् । सौरालोकाद् मध्यन्दिने आलोकवद्गभगृह प्रविशतः तमःप्रत्ययश्च भ्रम एव, आलोकज्ञानप्रतिबन्धकदोषस्य तत्र स्वीकारावश्यकत्वादिति व्यक्त स्याद्वादकल्पलतादौ ।

► वल्लभा ◄

ज्ञानाभावत्मक होता तब तो 'अन्धकारवान् अह' यह प्रतीति प्रसक्त होती, क्योंकि आलोकज्ञान आत्मा मे रहने की वजह आलोकज्ञानाभावात्मक अन्धकार भी वही रहेगा । जो समवाय सम्बन्ध से जहाँ उत्पन्न होता ह उसका अभाव भी वहीं रह सकता है । मगर अन्धकार का व्यवहार तो बाहर भूतल आदि मे होता है ।

यदि बचाव के लिये प्रभाकर अनुयायी की ओर से यह कहा जाय कि → 'सम्बन्धसामान्य से आलोकज्ञानाभावाश्रय मे अन्धकार का व्यवहार नही होता किन्तु सम्बन्धविशेष से आलोकज्ञानाभाववान् मे अन्धकार की प्रतीति एव व्यवहार होता है । इसलिये 'अन्धकारवान् अह' इस आपत्ति को अवकाश रहता नहीं है । आशय यह ह कि स्वीय आलोकनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यता एव स्वीयआलोकनिष्ठविशेष्यतानिरूपितआधेयत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रकारता इन दोनो सम्बन्धो मे से किसी सम्बन्ध से आलोकदर्शन का न होना अर्थात् उक्तविशेष्यता - उक्तप्रकारता - एतदन्यतरसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियागिताकदर्शनाभाव ही तम है । जिस देश मे 'आलोकवान् अय देश ' इस प्रकार आलोकज्ञान होगा उस देश मे उक्त विशेष्यतासम्बन्ध से यह ज्ञान रहेगा, क्योंकि उक्त ज्ञान मे आलोक है प्रकार और देश है विशेष्य । अत उक्त विशेष्यता सम्बन्ध मे स्वशब्द से उक्त ज्ञान को लेने पर उक्त ज्ञान स्वीयालोकनिष्ठप्रकारतानिरूपितविशेष्यतासंसर्ग से देश मे रहेगा और जब देश मे 'अत्र देशे आलोक ' इस प्रकार आलोकज्ञान होगा तब यह ज्ञान उक्त प्रकारता सम्बन्ध से

ननु तमसोऽभावत्वे गतेः का गतिरिति चेत् ? भ्रान्तिरित्यवेहि, स्वाभाविकगतेरन्यगत्यनुविधानानुपपत्तेः ।

◆ हेमलता ◆

केचित्तु 'प्रभाकरमतेऽतिरिक्तोऽभाव एव नास्ति किन्तु 'घटो नास्ती'ति ज्ञानमेव घटाभावः । अत एव प्रभाकरस्यापि 'गुरुर्गेयमभावस्य स्थाने स्थानेऽभिषिक्तवान् । प्रसिद्ध एव लोकेऽस्मिन् बुद्धबन्धुः प्रभाकरः ॥' इत्येवमुपहासः । तथा चालोकाभावज्ञानमेव तमः' इति वस्तुमुचितम् । यदि चालोकज्ञानाभाव इत्यस्यालोकज्ञानान्यज्ञानमित्यर्थस्तदा रूपादिज्ञानमपि तम इति तत्सत्त्वेऽपि तस्य स्वस्य प्रकाशत्वात् स्वसंवेदनरूपज्ञानमादाय तमोबुद्धिः स्यात् । आलोकज्ञानरूपेणाऽपरिणतस्यात्मनस्तमोरूपत्वेऽप्युक्तापत्तिस्तदवस्थैवेति आलोकाभावज्ञानस्य तमोरूपत्वे तु नोक्तदोष' इति विवृण्वन्ति । तच्चिन्त्यम् ।

शङ्कते- ननु तमसोऽभावत्वे गतेः = 'तमश्चलती'ति गतिप्रत्ययस्य का गतिः ? इति चेत् ? नैयायिकः समाधत्ते → भ्रान्तिरित्यवेहि । 'तमश्चलती'तिगतिप्रतीतिः भ्रमात्मिकेत्यर्थः । स्वाभाविकगतेः = स्वसमवेतगतेः, अन्यगत्यनुविधानानुपपत्तेः । यथा स्फटिके जपाकुसुमसम्बन्धात् लौहित्यप्रत्ययः तथा प्रतियोगिस्वरूपालोकसम्बन्धात् तमसि आलोकसमवेतगतिस्मर्तविषयिणी तादृशप्रतीतिः, आलोकापसरणनिमित्तकत्वेन तस्या भ्रमत्वम् । तमःसमवेतगतिक्रियाप्रतीतौ तत्रालोकापसरणमृतेऽपि तदुपलम्भप्रसङ्गः । न च तथाऽस्तीति तद्गतेः औपाधिकत्वमेवेति । तदुक्तं किरणावल्यां उदयनाचार्येण 'आवरकद्रव्ये गच्छति यत्र यत्र तेजसोऽसन्निधिः तत्र तत्र छायाग्रहणात् अन्यदेशतानिबन्धनो गतिभ्रम इति । कथं भावरूपाध्यारोपोऽभावे इति चेत् ? न किञ्चिदेतत् । सारूप्यतत्त्वाग्रहावेव निबन्धनं न त्वन्यत्' [कि.पृ. ७८] इति ।

वस्तुतो नैतद्युक्तम् यतः प्रतीतेः भ्रमत्वं तत्रैव स्वीक्रियते यत्रोत्तरकाले बाधज्ञानं यथा 'इदं रजतमि'ति भ्रमानन्तरं 'नेदं रजतमि'ति बाधनिश्चयादेव पूर्वतनप्रतीतेः भ्रमत्वमुपकल्प्यते न तूत्तरकाले बाधनिश्चयाभावे, अन्यथा घटादिविषयकप्रतीतीनामपि भ्रमत्वकल्पनापत्त्या शून्यवादप्रसक्तिः । प्रकृते च 'तमश्चलती'ति प्रत्ययानन्तरं 'तमो न चलती'ति बाधज्ञानविरहात् कथं प्रतीतेः भ्रमत्वम् । किञ्च स्वाभाविकगतेराश्रयगत्यननुविधाननियमोऽपि न प्रामाणिकः, पद्मरागप्रभाया व्यभिचारात् । यथा पद्मरागप्रभा स्वाभाविकगतिशालिनी तेजस्त्वात् अथ च स्वाश्रयगत्युत्पत्त्यनन्तरमेव तद्गतिप्रत्ययः तत्कर्मोत्पादस्याश्रयकर्मोत्पादसमनियतत्वात् । तथैव तमोगत्युत्पादस्याप्यालोकादिगत्युत्पादसमनियतत्वादालोकादिगत्युत्पत्त्यनन्तरमेव तमोगतिप्रतीतिरप्युपपद्यते । एतेन स्वाभाविक्या गतावावरकद्रव्यानुविधानानुपपत्तेः । प्रभातुल्यत्वे तेजःप्रभाश्रयेषु रत्नादिदीपेषु छाया दिवसे न स्यात् । छाययैव तदभिभवे बहुलतमे तमसि तेषामालोको न स्यात् । आलोकान्तरेण चाभिभवे छायाया अप्युद्भवो न स्यादिति किरणावलीकृत उदयनाचार्यस्य [द्रव्यता कि पृ ७३] वचनमपहस्तितम्, यदा आवरकमणीनां क्रियादिक्रमेण भूतलादिसंयोगस्तदैव तच्छायाया अपि क्रियादिक्रमेण भूतलादिसंयोगोपपत्तेः ।

▶ वल्लभा ◀

देश में रहेगा, क्योंकि इस दर्शन में विशेष्य है आलोक और देश उसमें आधेयता सम्बन्ध से प्रकार है । अतः उक्त प्रकारता सम्बन्ध से 'स्व' पद से इस ज्ञान को लेने पर यह ज्ञान देश में उक्तप्रकारतासम्बन्ध से रहेगा । जिस देश में जब उक्त ज्ञानों में से कोई भी ज्ञान नहीं रहेगा तब उस देश में उक्त विशेष्यता एवं उक्त प्रकारता दोनों ही सम्बन्ध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक आलोकज्ञानाभाव रहेगा । अतः वैसी स्थिति में वहाँ अन्धकारव्यवहार एवं अन्धकारज्ञान होगा । आत्मा में उक्त आलोकज्ञानाभाव नहीं रहने से 'अहं अन्धकारवान्' इस प्रतीति की आपत्ति नहीं है'← तो यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि तब तो 'अहं आलोकज्ञानाभाववान्' इस प्रकार की प्रतीति भी विलीन हो जायेगी । अनुपपन्न बनेगी । बकरी को निकालने पर आँगन ऊँट से घुस जायेगा ।

किञ्च० । इसके अतिरिक्त प्रभाकरमत में दोष यह है कि - अन्धकार चाक्षुष प्रतीति का विषय नहीं बन सकेगा, क्योंकि ज्ञान मानस साक्षात्कार का विषय होने से आलोकज्ञानाभावात्मक अन्धकार भी मानस प्रत्यक्ष का ही विषय बनेगा । मगर तब 'तमः पश्यामि' = 'मैं अन्धकार को देखता हूँ' यह सर्वसम्मत प्रतीति की उपपत्ति कैसे हो सकेगी ? इसलिये अन्धकार को आलोकज्ञानाभावात्मक नहीं माना जा सकता - यह फलित होता है । अन्धकार को आलोकाभावात्मक मानना सङ्गत है ।

●● अन्धकार में गति आरोपित - नैयायिक ●●

ननु त० । यहाँ इस शङ्का का कि → 'यदि अन्धकार आलोकाभावात्मक होगा तो 'अन्धकार आगत' 'तमः गतम्' इत्यादि प्रतीति की उपपत्ति कैसे होगी ? क्योंकि गति-आगति आदि क्रिया केवल द्रव्य में ही मुमकिन है'← समाधान यह है कि 'तम आगत गत' इत्यादि प्रतीति होती है वह भ्रान्ति ही जाननी चाहिए, क्योंकि अन्धकार को द्रव्य मान कर उसमें स्वाभाविक गति मानने पर उसकी गति में आश्रय की गति का अनुविधान नहीं होने का नियम टूट जायेगा । वाहन आदि में बैठनेवाले पुरुष आदि को वाहन गतिमान होने पर दूरस्थ वृक्ष आदि में जिस गति का भान होता है वह गति वाहन की गति का अनुसरण करती है, न कि वह गति स्वाभाविक है । अतएव तब 'वृक्ष चलति' यह प्रतीति जैसे भ्रमात्मक होती है ठीक वैसे ही प्रकाशक

अथात्यन्ताभावत्वे तमस उत्पत्तिविनाशप्रत्ययो भ्रमः स्यादिति चेत् ? स्यादेव । आलोकप्रागभावप्रध्वसात्यन्ताभावसमुदायरूपस्य तमसः किञ्चित्समुदायिप्रागभावप्रध्वसावेव समुदायप्रागभावप्रध्वसप्रतीतिरवगाहते इति तु प्राञ्च ।

एव नीलरूपवत्त्वधीरपि तत्र भ्रान्तैव, दोपस्तु तत्र तमःस्वरूपमेव । न चैव पीतरूपाद्यारोपप्रसङ्गः, आरोपे सति

◆ हेमलता ◆

अनेन आवरकमणीना गत्यभावेन तच्छायाया अपि भूतलादिसयोगजनकगत्यसम्भव इति प्रत्युक्तम् । आश्रयस्य स्थिरत्वेऽपि कुड्याद्यावरणभङ्गे तन्नियमभङ्गस्य च प्रभायामिव छायादावपि तुल्यत्वादिति ।

अस्तु वाऽत्राऽऽरोपिता गतिस्तथापि भावरूपता दुरपह्नवा । तदुक्त स्याद्वादरत्नाकरे 'भावरूपा छाया अध्यारोप्यमाणगतित्वात् वृक्षवत्' [प्र न त ५-८ स्या र पृ ८५३] इति।

शङ्कते - अथ अत्यन्ताभावत्वे तमस 'तम उत्पन्न', 'तमो नष्टमि'त्याकारकः उत्पत्तिविनाशप्रत्ययो भ्रम स्यात्, अत्यन्ताभावस्य नित्यत्वेनोत्पादव्ययप्रतियोगित्वासम्भवादिति चेत् ?

इष्टापत्तितया नैयायिकः तदभ्युपगच्छति स्यादेव । तमःसम्भवभङ्गभानस्य भ्रमत्वमभिमतमेव नैयायिकानामित्याशयः ।

तमसो नालोकात्यन्ताभावरूपतैव किन्त्वालोकससर्गाभावात्मकता, आलोकप्रागभाव-प्रध्वसात्यन्ताभावसमुदायरूपस्य = महदुद्भूतानभिभूतरूपवदालोकप्रागभाव-तत्प्रध्वस-तदत्यन्ताभावाना कूटात्मकस्य तमस किञ्चित्समुदायिप्रागभावप्रध्वसावेव समुदायप्रागभावप्रध्वसप्रतीति = निरुक्तालोकप्रागभाव-प्रध्वसात्यन्ताभावसमूहात्मकान्धकारविशेष्यिका प्रागभाव-प्रध्वसप्रतीतिः अवगाहते । उपदर्शितसमूहात्मकान्धकारघटकीभूतालोकध्वसोत्पादे 'अन्धकार उत्पन्न' इतिधीर्जायते । तद्घटकालोकप्रागभावनाशे सति 'तमः नष्टमि'तिबुद्धिः सम्पद्यते । अतो न तमस्युत्पादव्ययप्रतीत्यनुपपत्तिः यथा राशिषु किञ्चित्समुदायिव्यतिरेकप्रयुक्त एव विनाशः एवमुत्पादोऽपि इति तु प्राञ्च शशधरशर्मादय न्यायसिद्धान्तदीपादौ वदन्ति ।

वस्तुगत्या नेदमपि युज्यते - राशिषु बहुत्वविशेषनाशोत्पादाभ्या तदाश्रयनाशोत्पादप्रतीत्युपपत्तावपि प्रकृते तदयोगात्, समूहविलक्षणमहदेकोत्पादाद्यनुभवाच्च ।

नैयायिक आह - एव = तमोगतिभ्रमवत् नीलरूपवत्त्वधीरपि तत्र = तमसि भ्रान्तैव = भ्रमात्मिकैव 'नील नभः' इतिप्रतीतिवत् । न च बाधकाभावात् कथ तस्या भ्रमत्वमिति वाच्यम् दोषजन्यत्वेन तस्या अप्रमात्वात् । भ्रमनिबन्धनः दोपस्तु तत्र = तमोनीलरूपप्रतीतो तम स्वरूपमेव । तमःस्वरूपस्य दोषत्वादेव तमसि नीलरूपमारोप्यते । न च एव =तमःस्वरूपस्यान्यरूपारोपनिबन्धनत्वे तमसि कदाचित् पीतरूपाद्यारोपप्रसङ्ग आरोपनिबन्धनस्य सत्त्वादिति वाच्यम् यत आरोपे सति हि = अवश्य निमित्तानुसरण = आरोपकारणत्व मार्गणीयम् ।

▶ वल्लभा ◀

आदि को गतिमान करने पर ही अन्धकार मे गति की उपलब्धि होती है । मतलब कि दीप आदि की गति का अनुविधान करने से वह अन्धकार की स्वाभाविक = स्वसमवेत गति नही है । अतएव 'तमश्चलति' इस प्रतीति तो भ्रमात्मक मानी जाती है ।

▶ अन्धकार मे उत्पादादिप्रतीति भ्रमात्मक - नैयायिक ◀

अथा० । यहाँ इस शङ्का का कि ⟶ 'अन्धकार को आलोक के अत्यन्ताभावस्वरूप मानने पर 'तम उत्पन्नम्', 'तमो विनष्टम्' इस प्रकार की अन्धकार की उत्पत्ति आदि की जो प्रतीति होती है वह प्रमात्मक नही किन्तु भ्रमात्मक हो जायेगी, क्योकि अत्यन्ताभाव नित्य होने से उसकी उत्पत्ति और उसका विनाश नामुमकिन है' ⟵ समाधान यह है कि 'तम उत्पन्न', 'तमो नष्ट' इत्यादि प्रतीति मे भ्रमत्व हम नैयायिक मनीषियो को अभिमत ही है। आपने पहली बार यह मनपसद बात हमको बताई है - तदर्थ धन्यवाद !

प्रस्तुत सन्दर्भ मे प्राचीन नैयायिको का यह कथन है कि ⟶ आलोक का केवल अत्यन्ताभाव ही तम नही है किन्तु आलोक के ससर्गाभाव का समुदाय अन्धकार है । इस समुदाय मे आलोक का प्रागभाव और आलोक का प्रध्वस भी प्रविष्ट हैं । आलोकप्रागभाव-आलोकध्वस-आलोकात्यन्ताभाव के समुदायात्मक अन्धकार के घटक आलोकध्वस की उत्पत्ति होने पर समुदाय की उत्पत्ति की और आलोक प्रागभाव का नाश होने पर समुदाय के नाश की प्रतीति ठीक उसी तरह उपपन्न की जा सकती है जैसे किसी राशि के कुछ अश का उत्पत्ति होने पर राशि की उत्पत्ति और राशि के कुछ अश का नाश होने पर उस राशि के नाश की प्रतीति होती है । समुदायी = अश के उत्पाद-नाश का अवगाहन समुदाय = आलोकससर्गाभावकूट मे होता है ।

☛ अन्धकार मे नीलरूपप्रतीति भ्रमात्मक - नैयायिक ☚

एव नी०। इस तरह अन्धकार आलोकाभावात्मक सिद्ध होने से उसमे जो नीलरूप की प्रतीति होती है वह भी भ्रान्त

हि निमित्तानुसरणं न तु निमित्तमस्तीत्यारोपः । इत्यन्धकारपदार्थविवेचनम् । पञ्चमो वादः सम्पूर्णः ॥५॥

◆ हेमलता ◆

न तु निमित्तमस्ति = यत्किञ्चिदारोपनिमित्तसत्त्वम् इति आरोप । तत्र नीलाद्यारोप एव न तु पीतरूपाद्यारोप' इति अत्र किं नियामक? इति पृच्छ्यते इति चेत्? उच्यते अदृष्टादिकमेवात्र नियामकमभ्युपेयम्। स्मर्यमाणञ्चैतत् रूपमारोप्यते, रजतत्ववत्, न गृह्यमाणम्। अतो न सहकार्यपेक्षाचोद्यमाशङ्कनीयम्, धर्मिणि निरपेक्षत्वादिति [कि पृ ७४] किरणावल्यां व्यक्तीकृतमुदयनाचार्येण।

वस्तुतो नेदमपि घटाकोटिमाटीकते - यत 'इदं नील' इत्यादिधिया भ्रमत्वं, तत्र 'नेदं नील' इत्यादिसाक्षात्कारे वस्तुस्वरूपस्याऽदृष्टविशेषस्य वा दोषस्य वा प्रतिबन्धकत्वं, तत्राप्यप्रामाण्यग्रहाभावविशिष्टतेजोऽभावत्वप्रकारकज्ञानादीनामुत्तेजकत्वं इत्यादिकल्पनाया महागौरवात्।

यत्तु 'गन्धसमवायिकारणतावच्छेदिकयैव नीलसमवायिकारणतावच्छेदात्तमसो नीलरूपवत्त्वे गन्धवत्त्वप्रसङ्गः'' [दृश्यतां १५३ तमे पृष्ठे] इत्युक्तं तन्न चारु, तादृशकार्यकारणभावे मानाभावात्। सामान्यतो जन्यसत्त्वावच्छिन्नं प्रति द्रव्यत्वेनैव समवायिकारणत्वात्, विलक्षणतेजःसंयोगादेवासमवायिकारणस्य असमवायिकारणविरहादेव जलादौ गन्धाद्युत्पत्तेरसम्भवात्। न च विलक्षणतेजःसंयोगस्य द्विष्ठतया तेजसि पाकजगन्धोत्पत्तिवारणाय तादृशकार्यकारणभावस्यावश्यकत्वमिति वक्तव्यम् विलक्षणतेजःसंयोगेन तेजस्त्वेनैव कारणत्वं तदपाकरणायोपगन्तव्यम्, पाकजगन्धस्याऽसमवायिकारणविरहेऽपि क्षतिविरहात्,

स्वीयसंयोगस्य स्वस्मिन् सत्त्वेऽपि संयोगसम्बन्धेन स्वस्य न स्वसम्बन्धित्वम्। न च गुरुत्वगुरुभिर्भेदेनोत्कर्षापकर्षभेदेन च विभिन्नानन्तकार्यकारणभावेषु अनन्तानां संयोगानां कारणतावच्छेदकसम्बन्धकल्पनामपेक्ष्य समवायसम्बन्धेन विलक्षणसंयोगत्वेन कारणत्वं कल्पयित्वा तेजसि गन्धोत्पादवारणाय सामान्यतो गन्धत्वावच्छिन्नं प्रति पृथिवीत्वेन समवायिकारणत्वमावश्यकमिति वाच्यम् तत्तद्व्यक्तिसमवेतसत्त्वावच्छिन्नं प्रति तत्तद्व्यक्तित्वेन समवायिकारणत्वस्यावश्यकतया तत एव तेजसि पाकजगन्धाद्युत्पत्तिकारणसम्भवात् यद्विशेषयोः कार्यकारणभावः स तत्सामान्ययोरपी'ति न्याये मानाभावात्, तत्तत्पृथिवीसमवेतातिरिक्तस्य गन्धादेरलीकत्वात्। अतो नान्धकारस्य नीलरूपवत्त्वे गन्धवत्त्वप्रसङ्ग इति दिक्।

यच्च आलोकस्येवाञ्जनादेरपि स्वाव्यवहितोत्तरचाक्षुषं प्रति हेतुत्वे व्यभिचारप्रचारादिति [दृश्यतां १४७ तमे पृष्ठे] गदितं, तन्न, एवं सति तमसोऽप्यालोकनिरपेक्षचक्षुर्ग्राह्यत्वापातेन लाभमिच्छतो मूलतो हानिप्रसङ्गात्।

यत्तु किरणावलीरहस्ये मथुरानाथेन तादृशाञ्जने मानाभावादिति [कि र पृ ६१] कथितं तदसङ्गतम्, साम्प्रतमपि हिमालयार्बुदाचलादावञ्जनसंस्कृतचक्षुषा निशायां स्वैरतया विचरतां पर्वत-पङ्क-प्रस्तर-पङ्कज-पक्षि-पशु-पथःप्रभृतिकं पश्यतां योगिप्रभृतीनामुपलम्भेः।

तमो द्रव्यं घनतरनिकरलहरीप्रभृतिशब्दैः व्यपदिश्यमानत्वात् किरणादिवदिति रत्नाकरावतारिकादौ व्यक्तम्।

उच्छृङ्खलशेषानन्त-प्रगल्भ-कुमारिलभट्ट-श्रीधरप्रभृतिमतनिराकरणादिकं बुभुत्सुभिः स्याद्वादरहस्य-कल्पलतादिकमभ्यसनीयमित्यलं पल्लवितेन।

नैयायिक! समुत्तिष्ठ तमोऽभावभ्रमं वम ।
तर्कागमादितः सिद्धं द्रव्यत्वं तमसो हि मत् ॥१॥

इति मुनियशोविजयविरचितायां हेमलताभिधानायां वादमालाटीकायां पञ्चमो वादः ॥

► वल्लभा ◄

ही है - यह फलित होता है। जैसे 'नील नभ' यह प्रत्यक्ष भ्रम है वैसे ही 'नील तम' यह साक्षात्कार भी भ्रम ही है। 'नील तम' इस भ्रमात्मक प्रत्यक्ष में दोष अन्धकारस्वरूप ही है। अन्धेरा भ्रम का निमित्त है। अन्यगत नीलरूप का अन्धकार में आरोप होता है उसका कारण अन्धकारस्वरूप दोष है। फिर भी पीत आदि रूप के अध्यारोप की समस्या को अवकाश नहीं है, क्योंकि आरोप होने पर निमित्त का अनुसरण होता है। निमित्त की उपस्थिति मात्र से कहीं आरोप नहीं किया जा सकता। नील रूप का अन्धकार में आरोप प्रसिद्ध है। अतः तदर्थ दोषात्मक निमित्त की कल्पना की जाती है। मगर तादृश दोष से पीत, श्वेत आदि रूप का आरोप अन्धकार में हो सकता नहीं है। इस तरह अन्धकार महदुद्भूतानभिभूतरूपवाले आलोक के अभावात्मक है - यह नैयायिकमतानुसार सिद्ध होता है। इस तरह अन्धकार पदार्थ का विवेचन समाप्त हुआ। साथ ही पाँचवा वाद भी पूर्ण हुआ। अन्धकारविषयक जैनदर्शन का क्या मन्तव्य है ? इस विषय में अधिक जिज्ञासु हेमलता टीका पर अपनी निगाह डाल सकते है।

★ ● ☆ ○ ★ ● ☆ ○

★ षष्ठो वायुस्पार्शनवादः ★

'वायुः स्पार्शन' इति मीमासकाः तेषामयमाशयः 'शीतो वायुर्वाती'ति वायुमुख्यविशेष्यकस्पार्शनप्रतीतेस्तस्य स्पार्शनत्व निराबाधम्। न चासौ न स्पार्शनी अपि तु मानसीति वाच्यम् 'वात स्पृशामी'त्याद्यनुव्यवसायानुपपत्तेः। न चासौ भ्रमः बाधकाभावात्। न च द्रव्यचाक्षुषवद्द्रव्यस्पार्शनेऽप्युद्भूतरूपस्य हेतुत्वात्, कारणाभाव एव बाधक इति वाच्यम् 'प्रभा हि



◆ हेमलता ◆

सहस्रफणिपार्श्व नत्वा सुरतविभूषणम् ।
स्पृश्यते खलु वायुर्न वेति मीमास्यतेऽधुना ॥१॥

वायुःस्पार्शनो न वा? इति विप्रतिपत्तिः। विधिकोटिः उद्देश्यतावच्छेदकसामानधिकरण्येन, निषेधकोटिश्चोद्देश्यतावच्छेदकावच्छेदेन, तेन न बाधसिद्धसाधने। वायुर्न स्पार्शन इति निषेधकोटिवादिनो नैयायिकाः वायु स्पार्शन इति च विधिकोटिवादिनः मीमासका वदन्ति। तेषा = मीमासकाना अयमाशयः शरीरवायुसयोगानन्तर 'शीतो वायुर्वाती'ति वायुमुख्यविशेष्यकस्पार्शनप्रतीते = निरुक्तवायुवृत्तिप्रधानविशेष्यतानिरूपकलौकिकस्पार्शनप्रत्यक्षानुपपत्तेः तस्य = वायोः स्पार्शनत्व निराबाधम्। तस्या लैङ्गिकत्वे 'शीतःस्पर्शो वायुवृत्तिरि'तिप्रतीतिः स्यात् न तु 'शीतो वायुर्वाती'तिप्रतीतिः। न च असौ = 'शीतो वायुर्वाती'तिव्यवसायात्मिका धीः न स्पार्शनी अपि मानसी इति न तदनुरोधेन वायोः स्पार्शनत्वमिति वाच्यम् 'वात स्पृशामी'त्याद्यनुव्यवसायानुपपत्ते अनुव्यवसायस्य व्यवसायविषयकत्वेन व्यवसायस्वरूपनिर्णायकत्वात्। न च असौ = 'वात स्पृशामी'त्याद्यनुव्यवसायो भ्रम इति वाच्यम् बाधकाभावात् = 'वात न स्पृशामी'त्याद्याकारकस्य बाधकस्य विरहात्। न हि बाधकविरहे प्रतीतेर्भ्रमत्वकल्पना युक्ता, अतिप्रसङ्गात्,। न च वायुना विषयविधया तत्तद्व्यक्तित्वेन स्वविषयकलौकिकप्रत्यक्ष प्रति कारणत्वकल्पनागौरवमेव बाधकमिति वाच्यम् विषयस्य तत्तद्व्यक्तित्वेन कारणताया मानाभावात्, विषयस्य तत्तद्व्यक्तित्वेन कारणतावृद्धिभियाऽतीन्द्रियत्वाभ्युपगमे घटादेरपि तथात्वापत्तेः। न च द्रव्यचाक्षुषवद् = द्रव्यगोचरलौकिकचाक्षुषवद् द्रव्यस्पार्शने = लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्यगोचरस्पार्शनत्वाच्छिन्न प्रति अपि समवायसम्बन्धेन उद्भूतरूपस्य हेतुत्वात् वायावुत्कटरूपविरहेण कारणाभाव = द्रव्यलौकिकस्पार्शनजनकविरह एव वायोः स्पार्शनत्वे बाधक',कार्यस्य कारणविरहेऽयोगादिति वाच्यम् एव प्रभाया अपि स्पार्शनापत्तेः तत्रोद्भूतरूपस्य सत्त्वात्।

यदि लौकिकविषयतासम्बन्धेन द्रव्यस्पार्शन प्रति समवायेनोद्भूतरूपस्य कारणत्व स्यात् प्रभाया अपि स्पार्शन स्यादेव। न च प्रभायाः भवति। अतो नोत्कटरूपस्य द्रव्यस्पार्शन प्रति कारणत्व सम्भवति। न च प्रभा हि न तेजोद्रव्य किन्तु तेजसो रूपमिति तत्स्पार्शनस्योत्कटरूपकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वेन न तत्त्वाच्प्रसङ्ग इति वाच्यम् प्रभा हि तेजसो रूपमिति नयेऽपि उत्कटरूपस्य द्रव्यस्पार्शनहेतुत्वे



▶ वल्लभा ◀

वायु०। वायु प्रत्यक्षविषय हे या नही ? यह दार्शनिक जगत मे विवाद हे। नैयायिक विद्वानो की यह मान्यता है कि वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष होता नही हैं। जब कि मीमासक मनीषियो की यह राय हे कि वायु स्पार्शन = स्पार्शनप्रत्यक्षविषय हैं। इसके भीतर मीमासको का आशय यह है→शरीर और वायु का सयोग होने के पश्चात् 'शीतो वायु वाति' = 'शीतल पवन बहता ह' इत्याकारक स्पार्शन साक्षात्कार होता है, जिसमे वायु मुख्यविशेष्यविधया भासमान हे। प्रत्यक्ष मे जो मुख्य विशेष्य बनता हे वह अवश्य लौकिक प्रत्यक्ष का विषय होता है। अत वायु का स्पार्शन साक्षात्कार निराबाध हे। यहाँ इस शङ्का का कि → ''उपदर्शित 'शीतो वायु वाति' यह प्रतीति स्पार्शन प्रत्यक्षात्मक नही है किन्तु मानस साक्षात्कारस्वरूप हे। इसलिये उस प्रतीति के बल से वायु को त्वगिन्द्रियजन्यसाक्षात्कार का विषय नही माना जा सकता←समाधान यह है कि 'शीतो वायु वाति' इत्याकारक प्रतीति के अनन्तर 'वायु स्पृशामि' इत्याकारक अनुव्यवसाय होता हे, जो पूर्वोत्पन्नप्रतीतिविषयक होने से उसके स्वरूप का निर्णायक होता ह। 'वायु स्पृशामि' इत्याकारक अनुव्यवसाय का अर्थ यह है कि 'अह वायुविषयकस्पार्शनप्रत्यक्षवान्'। अत 'शीतो वायु वाति' यह प्रत्यक्ष मानस नही है अपितु त्वाच हे - यह फलित होता है। उपर्युक्त अनुव्यवसाय को भ्रमात्मक नही कहा जा सकता, क्योकि उसके प्रामाण्य का कोई बाधक नही है। बिना बाधक के उसे भ्रम कहने पर घटादिप्रतीति भी भ्रमात्मक सिद्ध हो जायेगी, जिसके फलस्वरूप शून्यवाद की आपत्ति आयेगी।

●● उद्भूतरूप द्रव्यप्रत्यक्ष का अकारण - मीमासक ●●

न च द्र०। यदि नैयायिक की ओर से यह कहा जाय कि→'उद्भूतरूप जैसे द्रव्यविषयक चाक्षुष प्रत्यक्ष का कारण हे ठीक वेसे ही द्रव्यगोचर स्पार्शन साक्षात्कार का भी कारण होता हे। जिसका स्पार्शन प्रत्यक्ष होता हे उसमे उत्कट रूप अवश्य रहता है जेसे घटादि। उत्कट रूप से शून्य द्रव्य कभी भी त्वाचप्रत्यक्ष का विषय बनता नही हे जैसे आकाश, पिशाच आदि। इस तरह

२४

तेजसो रूपमि'ति नयेऽपि त्रसरेणुस्पार्शनवारणाय द्रव्यस्पार्शनं प्रत्युद्भूतस्पर्शस्य हेतुत्वावश्यकत्वे उद्भूतरूपस्य तत्राऽहेतुत्वात् । प्रकृष्टमहत्त्वस्य तद्धेतुत्वे तत्प्रकर्षस्य कार्यमात्रवृत्तिजातित्वेन तदवच्छिन्नं प्रति कारणताकल्पने गौरवात् त्रसरेणावनुद्भूतस्पर्शस्वीकारस्यै-वौचित्यात् ।

◆ हेमलता ◆

स्वीक्रियमाणे त्रुटिसाक्षात्कारप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वात्, तत्रोद्भूतरूपस्य सत्त्वेऽपि लौकिकविषयतया द्रव्यस्पार्शनानुदयात् । न च त्रसरेणावुद्भूतरूपस्य सत्त्वेऽप्युत्कटस्पर्शविरहान्न तत्त्वाचप्रसङ्गः लौकिकविषयतया द्रव्यस्पार्शने उद्भूतरूपस्येवोद्भूतस्पर्शस्याऽपि समवायेन हेतुत्वादिति वाच्यम् त्रसरेणुस्पार्शनवा-रणाय लौकिकविषयतया द्रव्यस्पार्शनं प्रति समवायेन उद्भूतस्पर्शस्य हेतुत्वावश्यकत्वे उद्भूतरूपस्य तत्र = द्रव्यस्पार्शने अहेतुत्वात् = कारणतानावश्यकत्वात् । द्रव्यस्पार्शनं प्रति उद्भूतस्पर्शस्य हेतुत्वेनैव पिशाचादेर्गगनादेश्चास्पार्शनत्वोपपत्तेः द्रव्यस्पार्शनं प्रति उद्भूतरूपकारणत्वकल्पनया मृतम् । न च लौकिकविषयतया द्रव्यस्पार्शनं प्रति समवायेनोद्भूतरूपस्येव प्रकृष्टमहत्त्वस्याऽपि पृथक्कारणत्वान्न त्रुटिस्पार्शनप्रसङ्गः तत्रोद्भूतरूपस्य सत्त्वेऽपि प्रकृष्टमहत्त्वस्य विरहात्, त्रुटिमहत्त्वस्याप्रकृष्टत्वादिति वक्तव्यम् प्रकृष्टमहत्त्वस्य तद्धेतुत्वे = लौकिकविषयतया द्रव्यस्पार्शनं प्रति कारणत्वाभ्युपगमे, तत्प्रकर्षस्य = महत्त्ववृत्तिप्रकृष्टत्वस्य कार्यमात्रवृत्तिजातित्वेन कार्यतावच्छेदकत्वापातात्, तदवच्छिन्नं = प्रकृष्टत्वजात्यवच्छिन्नं प्रति कारणताकल्पने गौरवात् त्रसरेणौ अनुद्भूतस्पर्शस्वीकारस्यैव औचित्यात् न तु द्रव्यस्पार्शनं प्रति प्रकृष्टमहत्त्वोद्भूतरूपयोः कारणत्वकल्पनमुचितमित्येवकारार्थः । न चरमुष्मणो भर्जनकपालस्थानलादेश्च स्पार्शनापत्तिः, द्रव्यस्पार्शनं प्रति रूपस्याऽहेतुत्वादिति वाच्यम् इष्टत्वात् । अतो नोद्भूतरूपवत्त्वं द्रव्यस्पार्शने कारणम्, वायोः प्रत्यक्षत्वात् । प्रयोगस्त्वेवं वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वात्, महत्त्वे सत्युद्भूतस्पर्शवत्त्वाद्वा घटवत् । न चाऽप्रयोजकः, स्पार्शनप्रत्यक्षत्वे महत्त्वे सत्युद्भूतस्पर्शवत्त्वं प्रयोजकं नोद्भूतरूपवत्त्वमपि गौरवादित्युक्तत्वात् । न च पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकः साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकश्चोद्भूतरूपवत्त्वमुपाधिः स्पार्शनप्रत्यक्षत्वे तस्याऽप्रयोजकत्वात्, त्वगिन्द्रियव्यापारानन्तरं 'वायुर्वाती'तिप्रतीतेश्च । न च स्पर्शलिङ्गग्रहे तदुपनयः घटेऽपि तथात्वापत्तेः, स्पर्शाग्रहेऽपि 'वायुर्वाति' 'शीतं वायुं स्पृशामी'तिप्रतीतेश्च । न च शीतद्रव्योपनायकत्वेनानुमिते वायौ तथा धीः, बाधकाभावात्, विशेषदर्शने सत्यारोपाऽभावाच्च । न च स्पार्शनत्वेऽचाक्षुषत्वं बाधकं चक्षुषानुपलभ्यमानस्य त्वचानुपलम्भादिति वक्तव्यम् तर्हि चक्षुरेव द्रव्यग्राहकं त्वचा स्पर्शमात्रं प्रतीयत इति वायाविव प्रत्यभिज्ञाऽपि तद्वदेव । न चानुभवस्य दुरपह्नवत्वात् त्वचाऽऽश्रयसहित एव स्पर्श उपलभ्यत इति वाच्यम् । वायावपि समसमाधानत्वात् । न

► वल्लभा ◄

अन्वय-व्यतिरेक से उद्भूतरूप में द्रव्यस्पार्शन प्रत्यक्ष की हेतुता सिद्ध होती है । वायु में रूप नहीं है, उद्भूत रूप की तो बात ही क्या ? द्रव्यस्पार्शन का कारणाभाव ही वायु के स्पार्शन प्रत्यक्ष में एवं 'वातं स्पृशामि'इत्याकारक अनुव्यवसाय के प्रामाण्य में बाधक है । प्रभा में उपर्युक्त कार्यकारणभाव बाधित नहीं है, क्योंकि प्रभा स्वयं तेजोद्रव्य नहीं है किन्तु तेजोद्रव्य का रूप है । अत एव उसका स्पार्शन न हो तो भी कोई हानि नहीं है । स्वकार्यतावच्छेदकधर्मानाक्रान्त की उत्पत्ति अपने से कैसे हो सकती ? इसलिये वायु का स्पार्शन हो नहीं सकता - यह फलित होता है' ← तो यह असंगत है, क्योंकि प्रभा को तेजोद्रव्य का रूप मानने पर भी द्रव्यस्पार्शन के प्रति उद्भूतरूप को कारण मानने की वजह त्रसरेणु के स्पार्शन प्रत्यक्ष की आपत्ति दुर्वार होगी, क्योंकि त्रसरेणु में उद्भूत रूप रहता है।

यदि त्रसरेणु के स्पार्शन प्रत्यक्ष के निवारणार्थ नैयायिक की ओर से यह कहा जाय कि→द्रव्यविषयक स्पार्शन प्रत्यक्ष के प्रति उद्भूतरूप की भाँति उद्भूतस्पर्श भी कारण होता है । त्रसरेणु में उद्भूत रूप होने पर भी उत्कटस्पर्श नहीं होने की वजह उसके स्पार्शन प्रत्यक्ष की आपत्ति को अवकाश रहता नहीं है'←तो यह भी असङ्गत है, क्योंकि त्रसरेणुस्पार्शन के परिहारार्थ द्रव्यस्पार्शन के प्रति उद्भूत स्पर्श में हेतुता आवश्यक = प्रमाणसिद्ध ही है तब उसीसे त्रसरेणु के स्पार्शन प्रत्यक्ष का परिहार हो जाने से द्रव्यविषयक स्पार्शन प्रत्यक्ष के प्रति उद्भूत रूप को कारण कहा जा नहीं सकता । अनावश्यक कारणता के स्वीकार में गौरव है ।

▲▲ प्रकृष्ट महत्त्व द्रव्यस्पार्शन का अजनक - मीमांसक ▲▲

प्रकृ० । बचाव के लिये यहाँ नैयायिक का यह वक्तव्य कि→'द्रव्यस्पार्शन के प्रति जैसे उत्कट रूप कारण होता है ठीक वैसे ही प्रकृष्ट महत्त्व = महत्परिमाण भी कारण होता है । घटादि के स्पार्शन के अनुरोध से प्रकृष्ट महत्परिमाण में द्रव्यस्पार्शन की हेतुता सिद्ध है । त्रसरेणु में उद्भूतरूप होने पर भी उसके स्पार्शन का आपादन नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसका महत्परिमाण अपकृष्ट है । प्रकृष्टमहत्त्व के विरह से त्रुटिस्पार्शन परिहृत हो जाता है'←भी निराधार है, क्योंकि त्रसरेणु से इतर चतुरणुक आदि में रहनेवाले प्रकृष्टमहत्त्व जन्य होने की वजह महत्परिमाणगत प्रकर्ष = प्रकृष्टत्वजाति कार्यमात्रवृत्ति है । जो जाति कार्यमात्रवृत्ति होती है वह किसीकी कार्यतावच्छेदक बनती है । अर्थात् महत्परिमाणवृत्तिप्रकृष्टत्वावच्छिन्न के प्रति अन्य कारणता की कल्पना करनी होगी, अन्यथा वह परिमाण आकस्मिक बन जायेगा । मगर इस तरह प्रकृष्टत्वावच्छिन्न के प्रति कारणतान्तर की कल्पना करने पर गौरव

अथ मानसेतरद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छेदेनैवोद्भूतरूपस्य द्रव्य लौकिक चाक्षुष प्रति हेतुत्वान्न वायोः स्पार्शनमिति चेत् ? न, आत्मेतरद्रव्यप्रत्यक्षत्वादिकमादाय विनिगमनाविरहात्, द्रव्यचाक्षुषत्वापेक्षया गौरवाच्च तदवच्छिन्न प्रत्युद्भूतरूपस्याऽहेतुत्वात् ।

◆ हेमलता ◆

च दोषाभावे सति द्रव्यग्रहे तद्गतसङ्ख्यापरिमाणादिग्रहनियमात् वायौ सर्वथा तदग्रहान्न स प्रत्यक्ष इति वक्तव्यम् यतः न तावदय व्यक्तो नियमः पृष्ठलग्नवस्त्रादेः सङ्ख्यापरिमाणाऽग्रहेऽपि त्वचा ग्रहणात् तज्जातीये तु फूत्कारादौ सङ्ख्यापरिमाणादीना वाय्वभिघातस्य च शरीरे प्रत्यक्षत्वात् । न च बहिरिन्द्रियजन्यसाक्षात्कारे महत्त्वे सत्युद्भूतरूपवत्त्व प्रयोजक सति सम्भवे त्यागाऽयोगात्, न तु जन्येन्द्रियग्राह्यविशेषगुणवत्त्व कार्यमहत्त्वसमानाधिकरणविशेषगुणवत्त्व वा, रसनागतपित्तद्रव्यस्योद्भूततिक्तस्य वायूपनीतसुरभिद्रव्यस्य च प्रत्यक्षतापत्तेरिति वाच्यम् यतो नोद्भूतरूपवत्त्व तथा नयनगतपित्तद्रव्यस्य च प्रत्यक्षतापत्तेः । अस्तु वोद्भूतस्पर्शवत्त्व तत्र तन्त्रम् । न चैव प्रभायामप्रत्यक्षत्व, यतः प्रभा हि न द्रव्य किन्तु तेजसो रूप, तदाश्रयतेजःप्रतीतिः प्रत्यक्षरूपलिङ्गाधीनैव यथा तत्रोष्मादिप्रतीतिः । तत्र सयोग-कर्मादिक कथ प्रत्यक्षमिति चेत् ? चान्द्रसौरदीपप्रभादौ तु न कथञ्चित् इन्द्रनीलप्रभाया रूपस्य पूर्वदेशानुपलम्भेनोत्तरदेशोपलम्भेन लिङ्गेन तदाश्रयतेज'सयोगविभागाद्यनुमानमिति नैयायिकनये यथा त्वचा स्पर्शमात्रग्रहानन्तर फूत्कारे सयोगादीनाम् । एतेन धूमबाष्पयोरस्पार्शनत्वेनोद्भू- तस्पर्शशून्यत्वेऽपि चाक्षुषत्व अन्यथा तद्गतसयोगविभागकर्मणा प्रत्यक्षता न स्यात् लिङ्गाभावादिति निरस्तम् ।

नन्वेव विनिगमकविरहादुभयोरपि तथात्वमस्तु, तथापि वायुरप्रत्यक्ष इति चेत् ? न, एव सति बहिरिन्द्रियजन्यसाक्षात्कारे चाक्षुषत्वे स्पार्शनप्रत्यक्षत्वे च प्रत्येकमुद्भूतरूपवत्त्वे सत्युद्भूतस्पर्शवत्त्व प्रयोजक पर्यवस्यतीति गौरवम् । मम तु चाक्षुषत्वे उद्भूतरूपवत्त्व स्पार्शनत्वे चोद्भूतस्पर्शवत्त्व तथा, यस्य विशेषे प्रयोजकत्व तस्यानुगतेन रूपेण सामान्यप्रयोजकत्वमिति द्रव्यग्राहकबहिरिन्द्रियव्यवस्थापकोद्भूतविशेषगुणवत्त्व सामान्यप्रयोजकमिति लाघवम् । विशेषस्य सामान्यस्य च भिन्नप्रयोज्यत्वनियमान्नैक प्रयोजकम् ।

ननु वायुर्यदि बहिरिन्द्रियजन्यसाक्षात्कारविषयद्रव्य स्पार्शनसाक्षात्कारविषयद्रव्य वा स्यात् उद्भूतरूपः स्यात् । न चैव तस्मात् तथा तादृशसाक्षात्कारविषयद्रव्यस्य रूपजनकत्वनियमादिति चेत् ? न, रूपवत्समवेतत्वेन हि द्रव्यस्य रूपजनकत्व न तु तादृशसाक्षात्कारविषयद्रव्यत्वेन, तस्य रूपजननोत्तरकालीनत्वात् । घटो यदि चक्षुरितरेन्द्रियग्राह्यद्रव्य स्यात् अरूपमस्पर्शमचाक्षुषादि स्यात्। त्वगिन्द्रिय यदि द्रव्यग्राहकबहिरिन्द्रिय स्यात् रूपवत् स्यात् स्पर्शग्राहक वा न स्यात् रूपग्राहि वा स्यात् चक्षुर्वत् । न चैव तस्मान्न तथेति घटोऽपि न त्वगिन्द्रियग्राह्य' स्यात् तद्गतसङ्ख्यादिज्ञान फूत्कारादाविवेति स्यात् स्पृशामीत्यनुव्यवसायश्च घटवद् वायावपि तुल्यः ।

प्राचीननैयायिकः पुनरपि कारणाभावमाशङ्कते अथेति । मानसेतरद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छेदेनैव = बहिरिन्द्रियजन्यद्रव्यलौकिकसाक्षात्कारत्वाव-च्छेदेनैव, उद्भूतरूपस्य द्रव्यलौकिकचाक्षुष प्रति हेतुत्वात् न वायो स्पार्शन तत्रोत्कटरूपस्य विरहात् । अत' कारणाभाव एव वायो' स्पार्शनत्वे बाधकः । न च तादृशकार्यकारणभावे मानाभाव इति वाच्यम् वायु- पिशाचादेरात्मनश्च लौकिकचाक्षुषवारणाय द्रव्यलौकिकचाक्षुष प्रति उद्भूतरूपस्य हेतुतावश्यकतया तस्येव सामान्यतो मानसेतरद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वात्, असति बाधके सामान्यधर्मावच्छेदेनेव कार्यतादिग्राहकप्रमाणप्र-वृत्तेरिति चेत् ?

मीमासकः प्रत्युत्तरयति - नेति । आत्मेतरद्रव्यप्रत्यक्षत्वादिक आदिपदेन मूर्तद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्व -स्पर्शवद्द्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्वादेर्ग्रहण, आदाय, कार्यतावच्छेदकधर्मे विनिगमनाविरहात् सर्वेषामङ्गीकारेऽनेककार्यकारणभावप्रसङ्गः । द्रव्यचाक्षुषत्वापेक्षया कार्यतावच्छेदकशरीरे गौरवाच्च तदवच्छिन्न = मानसेतरद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न प्रति समवायेन उद्भूतरूपस्य अहेतुत्वात् । अतो न वायोरुद्भूतरूपशून्यता प्रत्यक्षे बाधिका । अतो वायुः प्रत्यक्ष एवेति । द्रव्य चाक्षुषत्वस्यैवोत्कटरूपकार्यतावच्छेदकत्वौचित्यम्, बाधकसत्त्वे सामान्यस्याऽकिञ्चित्करत्वादिति मीमासकाशय' ।

► वल्लभा ◄

होगा । इसकी अपेक्षा लाघव से त्रसरेणु के स्पर्श को अनुद्भूत मानना ही मुनासिब है । द्रव्यस्पार्शन के प्रति उद्भूत स्पर्श कारण होने से उद्भूतस्पर्शशून्य त्रसरेणु के स्पार्शन प्रत्यक्ष की आपत्ति को अवकाश नहीं रहेगा । मगर इस परिस्थिति मे वायु का त्वाच साक्षात्कार निराबाध हो जायेगा, क्योकि वायु मे उद्भूत स्पर्श रहता है - जो अनुभवसिद्ध भी है । यह मीमासको का तात्पर्य है ।

◆◆ नैयायिकमत मे विनिगमनाविरह ◆◆

अथ मा० । यहाँ नैयायिक का यह कथन है कि→उद्भूतरूप द्रव्यलौकिकचाक्षुष का कारण है ही मगर कार्यतावच्छेदक धर्म मानसेतरद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्व ही है । वायु का यदि स्पार्शन प्रत्यक्ष माना जाय तब वह मानसेतर द्रव्यविषयक लौकिक साक्षात्कार होने

अथ मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व-द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्वयोः समशरीरतया विनिगमकाभावादुभयमेवोद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकमिति चेत् ? न, उक्तानुव्यवसायानुपपत्त्या मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्य प्रकृष्टमहत्त्वस्येवोद्भूतरूपस्यापि कार्यतानवच्छेदकत्वात् ।

◆ हेमलता ◆

नैयायिकः शङ्कते अथेति । चेदित्यनेनास्यान्वयः । मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व-द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्वयोः समशरीरतया एकतरस्य गुरुशरीरत्वविरहात् ।

विनिगमकाभावात् = अन्यतरपक्षपातियुक्तिविरहात् उभयमेव मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व-द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्वोभयमेव उद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकं न तु केवलं द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्वमेव । उद्भूतरूपशून्यत्वान्न वाय्वादेः स्पार्शनसाक्षात्कारसम्भवः तस्योद्भूतरूपनिष्ठकारणतानिरूपितकार्यताया अवच्छेदकीभूतेन मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वेनाक्रान्तत्वादिति ।

न च मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वेऽपि द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वमावश्यकम्, अन्यथा आत्मन्युद्भूतरूपाभावान्मूर्तद्रव्य-क्षेत्रादावसम्भवेऽपि चक्षुःसंयोगलक्षणसन्निकर्षसत्त्वेन द्रव्यलौकिकचाक्षुषोदयप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वात्, तथा चैवमेव विनिगमकमिति वाच्यम् मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व-मात्रस्य कार्यतावच्छेदकत्वेऽपि मूर्तलौकिकप्रत्यक्षानतिरिक्तस्य द्रव्यलौकिकचाक्षुषस्यालीकतया सामान्यसामग्रीविरहादेवात्मनि द्रव्यलौकिकचाक्षुषोत्पत्तेरस-म्भवादिति चेत् ?

मीमांसकः प्रत्युत्तरयति - नेति । 'वायुं स्पृशामी'ति उक्तानुव्यवसायानुपपत्त्या प्रकृष्टमहत्त्वस्य इव उद्भूतरूपस्यापि कार्यतानवच्छेदकत्वादिति । यथा 'त्रसरेणुं पश्यामी'त्यनुव्यवसायानुपपत्त्या मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वं न प्रकृष्टमहत्त्वस्य कार्यतावच्छेदकं तथा 'वायुं स्पृशामी'त्यनुव्यवसायानुपपत्त्या न तत् उद्भूतरूपस्याऽपि जन्यतावच्छेदकं व्यतिरेकव्यभिचारग्रस्तत्वात्तादृशकारणतायाः । अस्त्येव विनिगमकत्वात् द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्वस्यैवोद्भूतरूपकार्यता-वच्छेदकत्वमिति ।

अथ मीमांसकाभिप्रायः यथा त्रसरेण्वायवृत्तिविजातीयमहत्त्वस्य सामान्यतो द्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्वेनैव कार्यतावच्छेदकं लाघवात्, द्रव्यस्पार्शनस्य तु कार्यतावच्छेदकत्वे द्रव्यचाक्षुषं प्रति पृथग्महत्त्वसामान्यस्य कारणत्वकल्पनापत्तेः । अतः त्रसरेणुर्न चाक्षुषः किन्तु तद्गतरूपादिकमेव चाक्षुषमित्यस्य सुवचत्वेऽपि 'त्रसरेणुश्चलती'ति प्रत्यक्षानन्तरं 'त्रसरेणुं पश्यामी'त्याकारकानुव्यवसायबलात् द्रव्यस्पार्शनस्यैव विजातीयमहत्त्वकार्यतावच्छेदकत्वस्वीकारस्तथा 'शीतो वायुर्वाती'त्यादिप्रत्यक्षानन्तरं 'वायुं स्पृशामी'त्याकारकानुव्यवसायानुपपत्तिरेव मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्योद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्वाभावे विनि-गमिकेति ।

▶ वल्लभा ◀

की वजह उद्भूतरूप के कार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त होगा । अतएव उसकी उत्पत्ति उद्भूतरूप के बिना कैसे हो सकेगी ? अतः वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष होता नहीं है - यह फलित होता है'⟵मगर यह विचारसंगत नहीं है, क्योंकि उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक मानसेतरद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्व है या आत्मेतरद्रव्यप्रत्यक्षत्वादि है ? इस विषय में कोई अन्यतरनिर्णायक तर्क नहीं है । एवं मानसेतरद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्व धर्म द्रव्यचाक्षुषत्व की अपेक्षा गुरुतरशरीरवाला भी है । इसलिये मानसेतरद्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्व उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक बन नहीं सकता । इसलिये मानसेतर द्रव्यलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न के प्रति उद्भूतरूप को कारण नहीं माना जा सकता ।

◆◆ मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व कार्यतावच्छेदक - मीमांसक ◆◆

अथ मू० । यहाँ यह आक्षेप कि ⟶'मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व और द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्व तुल्यशरीरवाले हैं । दोनों धर्म समनियत है और अगुरु है । इसलिये उद्भूतरूप के कार्यतावच्छेदक मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व और द्रव्यलौकिकचाक्षुषत्व उभय बनेंगे । क्योंकि किसी एक को जन्यतावच्छेदक मानने में कोई अन्यतरनिर्णायक युक्ति नहीं है । इस परिस्थिति में वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष हो नहीं सकेगा, क्योंकि वह उद्भूत रूप के कार्यतावच्छेदकीभूत मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व धर्म से आक्रान्त है । वायु रूपशून्य होने से उसका लौकिकसाक्षात्कार नहीं हो सकता । बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति नामुमकिन है'⟵भी निराधार है, क्योंकि वायु का स्पार्शन साक्षात्कार मान्य न करने पर 'शीतो वायुर्वाति' इत्यादि प्रत्यक्ष के अनन्तर होनेवाला 'वायुं स्पृशामि' इत्याकारक अनुव्यवसाय की अनुपपत्ति हो जायेगी । यह अनुव्यवसाय तो स्वाऽव्यवहितपूर्वोत्पन्न उपर्युक्त व्यवसायात्मक प्रतीति को वायुस्पार्शनात्मक सिद्ध करता है । इसलिये जैसे मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व प्रकृष्टमहत्त्व का कार्यतावच्छेदक नहीं है ठीक वैसे ही उद्भूतरूप का भी कार्यतावच्छेदक होता नहीं है । प्रकृष्ट महत्त्व को मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न का कारण मानने पर जैसे 'त्रसरेणु चलति' इस प्रतीति के अनन्तर होनेवाली 'त्रसरेणुं स्पृशामि' यह प्रतीति अनुपपन्न बनने की वजह मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व प्रकृष्ट महत्त्व का कार्यतावच्छेदक नहीं है ठीक वैसे 'शीतो वायुर्वाति' इस प्रतीति के अनन्तर होनेवाली 'वायुं स्पृशामि' यह प्रतीति अनुपपन्न बनने की वजह मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक हो नहीं सकता । त्रसरेणु जैसे प्रकृष्टमहत्त्वशून्य है वैसे ही वायु उद्भूतरूपविहीन है । इसलिये वायु के स्पार्शन की सिद्धि प्रदर्शित अनुव्यवसाय के बल पर की जा सकती है - यह मीमांसकों का तात्पर्य है ।

यत्तु मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वं भगवत्साक्षात्कारसाधारणं न कार्यतावच्छेदकमिति वाय्वादेः स्पार्शनं निराबाधमिति तन्न इन्द्रियादिजन्यतावच्छेदकत्वेन लौकिकत्वस्य जन्यप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वात् । 'पश्यत्यचक्षुरि'त्यादेः लौकिकचाक्षुषसमानाकारज्ञानपरत्वाच्चाक्षुषादेस्तत्राऽसम्भवादिति केचित् ।

यदि तु परमाणु-द्वित्वादिजनकतावच्छेदककोटिप्रविष्टा लौकिकी विषयता भगवज्ज्ञानसाधारणी तदाऽस्तु मूर्तनिष्ठलौकि-

◆ हेमलता ◆

वस्तुतस्तु द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनं प्रति त्वक्संयुक्तत्वाचवत्समवायत्वेन सन्निकर्षस्य कारणता, न तु त्वक्संयुक्तप्रकृष्टमहत्त्वोद्भूतस्पर्शवत्समवायत्वेन, महत्त्वोद्भूतस्पर्शयोरुभयोः प्रवेशे गौरवात् । त्वाचवत्त्वञ्चोपलक्षणं न तु विशेषणं तेन सर्वत्र पूर्वमाश्रयत्वाचविरहेऽपि न क्षतिः । तथा च वाय्वादेरस्पार्शनत्वे तद्वृत्तिस्पर्शस्पार्शनानुपपत्तिरेव मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्योद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्वाभावे विनिगमिकेति मीमांसकाशयः ।

यत्तु मूर्तलोकिकप्रत्यक्षत्वं = मूर्तमात्रगोचरलौकिकप्रत्यक्षत्वं भगवत्साक्षात्कारसाधारणं = नित्यप्रत्यक्षानुगतं कार्याऽकार्यवृत्तितया न उद्भूतरूपस्य कार्यतावच्छेदकम् नित्यव्यावृत्ते धर्मे कार्यतावच्छेदके सम्भवति असति लाघवे तत्साधारणधर्मेण कार्यत्वकल्पनानुदयात् । न ह्यतिप्रसक्ते धर्मे सम्भवति गत्यन्तरेऽवच्छेदकत्वकल्पना दृष्टा श्रुता वा । इति हेतोः उद्भूतरूपस्य मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुत्वविरहेण नीरूपस्याऽपि वाय्वादेः = वायूष्मादेः स्पार्शनं प्रत्यक्षं निराबाधमिति, तन्न चारु, इन्द्रियादिजन्यतावच्छेदकत्वेन हेतुना लौकिकत्वस्य = लोकिकविषयताकत्वस्य जन्यप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वात् = सकलजन्यसाक्षात्कारवृत्तित्वे सत्यजन्यप्रत्यक्षाऽवृत्तित्वात् नातिप्रसक्तत्वं मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्येति भवेदेव तदुद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकम् । तथा च वायोः स्पार्शनानुपपत्तिः । न च भगवत्प्रत्यक्षस्य लौकिकविषयताशून्यत्वे 'पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' [ ] इत्यादिकं कथं सङ्गच्छेत ? पश्यतेः लौकिकचाक्षुषसाक्षात्कार एव रूढत्वादिति वाच्यम्, 'पश्यत्यचक्षुरि'त्यादेः 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः । स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं [ना.परि. ९/१४] इति नारदपरिव्राजकोपनिषद्वचनस्य आदिपदेन 'पश्यन्वै तन्न पश्यति' [बृ.उप. ४/३/२३] इति बृहदारण्यकोपनिषद्वचनस्य च लौकिकचाक्षुषसमानाकारज्ञानपरत्वात् । अन्यथा 'अचक्षुर्विश्वतश्चक्षुरकर्णो विश्वतः कर्णः' [भ.जा.उप.२] इति भस्मजाबालोपनिषद्वचनस्य 'विश्वतश्चक्षुः' [बृ.महाना. उप. २/२] इति महानारायणोपनिषद्वचनस्य चानुपपत्तेः । चाक्षुषादेः = लौकिकविषयताशालिनः चक्षुरादिजन्यप्रतीतेः तत्र = ईश्वरे असम्भवात् । न च महेशे नित्यकृतिसत्त्वेऽपि दृष्टानुसारेण कृतिसमानाधिकरणं ज्ञानादिकं यथा कल्प्यते तथैव तत्र 'पश्यती'त्यनुरोधेन लौकिकचाक्षुषमप्यनुमीयते इति वाच्यम् एवं सति 'तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत्' [ऐ. उप. १/३/५] इति ऐतरेयोपनिषद्वचनस्यानुपपत्तिप्रसङ्गात् । दृष्टानुसारेण कल्पनाऽपि तत्रात एव न कार्या । मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्योद्भूतरूपजन्यतावच्छेदकत्वान्नीरूपस्य वायोः स्पार्शनासम्भव इति केचित् वदन्ति ।

यदि तु महेशसाक्षात्कारस्य लौकिकविषयताशून्यत्वे द्व्यणुकादिपरिमाणजनकं परमाणुद्वित्वादिकं नोत्पद्येत, द्वित्वादिकं प्रति लौकिकापेक्षाबुद्धेः कारणत्वात् अन्यथाऽस्मदादीनामपि परमाण्वाद्येकत्वाऽलौकिकप्रत्यक्षस्य सम्भवेन तदात्मकापेक्षाबुद्धितः परमाण्वादिद्वित्वाद्युत्पत्तिसम्भवेनेशकल्पनाया अप्यनवकाशात् । अत एव परमाणुद्वित्वादिजनकतावच्छेदककोटिप्रविष्टा लौकिकी विषयता भगवज्ज्ञानसाधारणी = महेश्वरसाक्षात्कारवृत्ति,

► वल्लभा ◄

◆◆ लौकिकता जन्यप्रत्यक्षमात्रवृत्ति ◆◆

यत्तु० । कुछ विद्वानों का यह मन्तव्य है कि → 'मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक हो सकता नहीं है, क्योंकि भगवान् के साक्षात्कार में भी मूर्तगोचरलौकिकप्रत्यक्षत्व धर्म रहता है। भगवान का प्रत्यक्ष नित्य होने से कार्यताशून्य है। अकार्य में रहनेवाला धर्म कभी भी कार्यतावच्छेदक बन नहीं सकता। कार्याकार्यसाधारण मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक नहीं होने की वजह रूपशून्य वायु का स्पार्शन होने में कोई बाधा नहीं है।

तन्न० । मगर यह बात सङ्गत नहीं है। इसका कारण यह है कि लौकिकत्व = लौकिकविषयता इन्द्रियजन्यतावच्छेदक है। अतएव वह कार्यमात्रवृत्ति है। जो प्रत्यक्ष कार्यात्मक है उसीमें लौकिक विषयता के रहने के सबब भगवान के प्रत्यक्ष में वह नहीं रहती है, क्योंकि वह नित्य है। इसलिये मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व को उद्भूत रूप का कार्यतावच्छेदक कहना नैयायिक के लिये सुवच हो जायेगा। उपनिषद् आदि में 'स पश्यति अचक्षु स शृणोति अकर्ण' इत्यादि वचनोल्लेख उपलब्ध है, उसका तात्पर्य यही है कि ईश्वर का प्रत्यक्ष लौकिक चाक्षुष के समानाकारवाला होता है। मगर इसका मतलब यह नहीं है कि ईश्वर में चाक्षुष=चक्षुजन्य प्रत्यक्ष होता है। ईश्वरीयज्ञान नित्य होने से वह न तो चाक्षुष = चक्षुजन्य लौकिकप्रत्यक्षस्वरूप हो सकता है, न तो घ्राणजन्य या रसनादिजन्य हो सकता है - ऐसा भी कुछ विद्वानों का कथन है।

कविषयतासम्बन्धेन जन्यप्रत्यक्षत्वमेवोद्भूतरूपजन्यतावच्छेदकम्, समूहालम्बनगुणादिचाक्षुषे व्यभिचारवारणायोक्तसम्बन्धनिवेशस्यावश्यकत्वात्, जन्यप्रत्यक्षत्वञ्चेन्द्रियादिजन्यतावच्छेदकतया सिद्धा जातिरेवेति न गौरवम् ।

◆ हेमलता ◆

भगवत्साक्षात्कारसाधारणसाक्षात्कारत्वावच्छिन्नविषयताऽतिरिक्तलौकिकविषयताया मानाभावादिति लौकिकविषयताकत्वस्य नित्यसाधारणतया मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वं नोद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकं भवितुमर्हतीति विभाव्यते तदाऽस्तु मूर्तनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन जन्यप्रत्यक्षत्वमेव उद्भूतरूपजन्यतावच्छेदकं = समवायसम्बन्धावच्छिन्नोद्भूतरूपत्वावच्छिन्नया कारणतया निरूपिताया कार्यताया अवच्छेदकं प्रत्यक्षत्वस्य नित्यसाधारणतया तन्मात्रस्य कार्यतावच्छेदकत्वाऽसम्भवात्, समूहालम्बनगुणादिचाक्षुषे = मूर्तवृत्तिगुणादिगोचरसमूहालम्बनचाक्षुषोदये व्यभिचारवारणाय = उद्भूतरूपस्य व्यतिरेकव्यभिचारनिवारणकृते उक्तसम्बन्धनिवेशस्य = कार्यतावच्छेदकसम्बन्धविधया मूर्तनिष्ठलौकिकविषयत्वसम्बन्धघटितत्वस्य आवश्यकत्वात् = प्रमाणसिद्धत्वात् । यदि लौकिकविषयतया जन्यप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति उद्भूतरूपस्य कारणत्वमङ्गीक्रियेत तदा 'इमे शुक्लशुक्लत्वे' इत्याकारकसमूहालम्बनगुणजातिचाक्षुषे व्यतिरेकव्यभिचारः स्यात्, गुणादौ गुणस्याऽसमवेतत्वात् । अतो मूर्तनिष्ठलौकिकविषयताया एवोद्भूतरूपनिरूपितकार्यतावच्छेदकविधया स्वीकार आवश्यकः । निरुक्तचाक्षुषस्य मूर्तनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेनानुत्पादात्तत्राऽपि उद्भूतरूपस्याऽकारणत्वात् व्यतिरेकव्यभिचारानवकाशः । न च जन्यप्रत्यक्षत्वस्य सामानाधिकरण्येन जन्यत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वरूपतया कार्यतावच्छेदकधर्मे गौरवं तथापि दुर्वारमिति वाच्यम् । यतः जन्यप्रत्यक्षत्वञ्च इन्द्रियादिजन्यतावच्छेदकतया सिद्धा जातिरेव इति हेतोः कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरे न गौरवम् । जन्यप्रत्यक्षमात्रवृत्ति वैजात्यमेवोद्भूतरूपजन्यतावच्छेदकमिति 'न गौरवं कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरे, प्रमाणान्तरसिद्धस्य वैजात्यस्यैव कार्यतावच्छेदकतया स्वीकारेऽतिरिक्तधर्मकल्पनागौरवमपीति भावः ।

▶ वल्लभा ◀

यदि० । यदि यहाँ ऐसा कहा जाय कि→'परमाणु आदि में द्वित्वादि संख्या की जनक तो लौकिक अपेक्षाबुद्धि ही होती है । यदि अलौकिक अपेक्षाबुद्धि को द्वित्वादिसंख्या की जनक मानी जाय तो हमारी अलौकिक अपेक्षाबुद्धि से भी परमाणु आदि में संख्या की उत्पत्ति होने लगेगी । मगर ऐसा होने पर ईश्वर का उच्छेद हो जायेगा, क्योंकि द्व्यणुक आदि के परिमाण के प्रति परमाणुआदि में रहने वाली द्वित्वादि संख्या कारण होती है और परमाणु आदि का लौकिक प्रत्यक्ष हमें नहीं होने की वजह 'अयमेकोऽयमेकः' इत्याकारक लौकिक अपेक्षाबुद्धि हमें नहीं हो सकेगी किन्तु परमाणुनिष्ठएकत्वविषयक अलौकिक अपेक्षाबुद्धि तो हमें हो सकती है । जिससे परमाणु में द्वित्व संख्या उत्पन्न होगी जो द्व्यणुकपरिमाण को उत्पन्न करेगी । द्व्यणुकपरिमाणजनक परमाणुगतद्वित्व की उत्पत्ति के लिये ईश्वरीय अपेक्षाबुद्धि अनावश्यक बनने से उसके आश्रयविधया ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकेगी । मगर यह तो ईश्वरवादी को अभिमत नहीं है । अतः परमाणुगत द्वित्वादि की जनक लौकिक अपेक्षाबुद्धि माननी आवश्यक है । परमाणुगत द्वित्वादि की जनकता के अवच्छेदक धर्म में लौकिक विषयता का प्रवेश आवश्यक होने पर भगवान के प्रत्यक्ष में भी लौकिक विषयता की सिद्धि हो जायेगी, क्योंकि 'अयमेकोऽयमेकः' इत्याकारक लौकिक अपेक्षाबुद्धि हमें हो नहीं सकती किन्तु ईश्वर को ही हो सकती है । इस तरह भगवान के प्रत्यक्ष में भी लौकिकविषयताकत्व सिद्ध होने की वजह मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्व उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक बन नहीं सकता । कार्यताऽनतिरिक्तवृत्ति धर्म कार्यता का नियामक कैसे बन सकेगा ?←तो उद्भूतरूप के कार्यतावच्छेदकसम्बन्धविधया मूर्तनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्ध से जन्यप्रत्यक्षत्व ही स्वीकार्य होगा, क्योंकि वह नित्याऽनित्यसाधारण नहीं है । उद्भूतरूपकार्यता से अतिरिक्तवृत्ति नहीं होने की वजह जन्यप्रत्यक्षत्व उसका कार्यतावच्छेदक धर्म बन सकता है । यहाँ यह शङ्का कि→लौकिकविषयतासम्बन्ध से ही जन्यप्रत्यक्षत्व को उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक न बना कर मूर्तनिष्ठ लौकिक विषयता संसर्ग से ही क्यों जन्यप्रत्यक्षत्व को उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक बनाया गया ? ←इसलिये निराधार है कि लौकिकविषयतासम्बन्ध से जन्यप्रत्यक्षत्व को उद्भूत रूप का कार्यतावच्छेदक मानने पर 'रूपरूपत्वे' इत्याकारक गुण-जातिविषयक समूहालम्बन चाक्षुष में व्यभिचार होगा, क्योंकि लौकिक विषयता सम्बन्ध से वह समूहालम्बन चाक्षुष गुणादि में रहता है और गुणादि में गुण रहता नहीं है । उद्भूतरूपात्मक कारण के बिना ही गुणादि में उपर्युक्त समूहालम्बन चाक्षुषात्मक कार्य की उत्पत्ति होने से व्यतिरेक व्यभिचार स्पष्ट ही है । इसके परिहारार्थ मूर्तनिष्ठ लौकिक विषयता सम्बन्ध को उद्भूतरूप कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध मानना आवश्यक है । इस स्थिति में व्यतिरेकव्यभिचार को अवकाश नहीं होगा, क्योंकि गुणादिविषयक समूहालम्बन चाक्षुष मूर्तनिष्ठ लौकिक विषयता सम्बन्ध से गुणादि में उत्पन्न ही होता नहीं है । कार्यतावच्छेदकविधया अभिमत सम्बन्ध से कार्य के अधिकरण में कार्याऽव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदेन कारणतावच्छेदकसम्बन्ध से कारण न रहता हो तभी व्यतिरेक व्यभिचार दोष प्रसक्त होता है । गुणादि मूर्त = मूर्तत्वजातिवाले नहीं होने से उसमें मूर्तनिष्ठलौकिकविषयता सम्बन्ध से गुणादि का समूहालम्बन चाक्षुष ही उत्पन्न हो सकता नहीं है । इसलिये उपदर्शित कार्यकारणभाव सुरक्षित रहता है । यहाँ इस शङ्का का कि → जन्यप्रत्यक्षत्व सामानाधिकरण्यसम्बन्ध से जन्यत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वस्वरूप होने से उद्भूत रूप के कार्यतावच्छेदकधर्म का शरीर गुरुभूत हो जायेगा←समाधान यह है कि जन्यप्रत्यक्षत्व इन्द्रियादिजन्यतावच्छेदकविधया

एतेन द्रव्यनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन चाक्षुपत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्व सम्भवति, द्रव्यनिष्ठलौकिकविषयतयोर्भेदाभावेन विनिगमनाविरहानवकाशात्, न तु मूर्तनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वस्य, तस्य कार्याकार्यवृत्तित्वात्, जन्यप्रत्यक्षत्वस्य तथात्वे तु जन्यत्वस्य प्रध्वप्रतियोगित्वादिरूपस्य निवेशे गौरव, जन्यत्व-प्रत्यक्षत्वयोर्विशेष्यविशेषणभावे विनिगमनाविरहश्चेत्युक्तावपि न क्षतिरिति ।

केचितु निश्चिताऽव्यभिचारकतया द्रव्यचाक्षुपत्वमेवोद्भूतरूपकार्यतावच्छेदक, न तु सन्दिग्धव्यभिचारकमूर्तप्रत्यक्षत्वमित्याहुः ।

◆ हेमलता ◆

एतेन = जन्यप्रत्यक्षत्वस्य जन्यमात्रवृत्तिवैजात्यात्मकत्वेन, असय न क्षतिरित्यनेनान्वय' । द्रव्यनिष्ठलोकिकविपयतासम्बन्धेन चाक्षुपत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्व = उद्भूतरूपनिरूपितकार्यतावच्छेदकत्व सम्भवति । अतो वायुस्पार्शन निराबाधम्, तस्योद्भूतरूपकार्यतावचेदकानाक्रान्तत्वात् । न च मूर्तनिष्ठलौकिकविपयतया चाक्षुपत्वमुद्भूतरूजन्यतावच्छेदकमुताहो द्रव्यनिष्ठलौकिकविपयतया ? इत्यत्र विनिगमनाविरह इति वाच्यम् गगनादेरप्रत्यक्षत्वेन द्रव्यनिष्ठ-मूर्तनिष्ठलौकिकविपयतयो = द्रव्यवृत्तिलोकिकविपयता-मूर्तवृत्तिलाकिकविपयतयो' भेदाभावेन = ऐक्येन विनिगमनाविरहानव काशात् । न चात्मनोऽपि मानसप्रत्यक्षोदयाद् द्रव्यनिष्ठलौकिकविपयताऽऽत्मवृत्ति किन्त्वद्त्मनोऽमूर्तत्वेन मूर्तनिष्ठालोकिकविपयता नात्मवृत्तिरिति तयोरसमनियतत्वेन भेद एवेति वक्तव्यम् प्रकृते चाक्षुपत्वस्य कार्यतावच्छेदकविधया विवक्षणेन चाक्षुपत्वावच्छिन्ननिरूपिताया एव द्रव्यनिष्ठलौकिकविपयताया जन्यतावच्छेदकससर्गविधयाऽभिमताया आत्मनिष्ठत्वाभावेन तयोः समनियतत्वेनाभेदात् । न तु मूर्तनिष्ठलोकिकविपयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वस्य उद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्व सम्भवति, तस्य = केवलप्रत्यक्षत्वस्य कार्याऽकार्यवृत्तित्वात् = अस्मदादिप्रत्यक्षे त्रिलोचनप्रत्यक्षे च सत्त्वात् । अकार्यवृत्तित्वकथनादेवातिप्रसक्तत्वलाभेऽप्यसम्भवाशङ्कावारणाय कार्याकार्यवृत्तित्वादित्युक्तम् । न चास्तु तर्हि जन्यप्रत्यक्षत्वस्यैवाऽनतिप्रसक्तस्योद्भूतरूप-कार्यतावच्छेदकत्वमिति वाच्यम्, जन्यप्रतीत्वस्य तथात्वे = उद्भूतरूपजन्यतावच्छेदकत्वाभ्युपगमे तु जन्यत्वस्य प्रध्वमप्रतियोगित्तवादिरूपस्य कार्यतावच्छेदकधर्मकुक्षौ निवेशे कार्यतावचेदकधर्मशरीरकृत गोरव दुर्वार, जन्यत्वप्रत्यक्षत्वयो विशेष्यविशेषणभावे निनिगमनाविरहश्च । न हि जन्यत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वमुत्वद्भूतरूपकार्यतावच्छेदक प्रत्यक्षत्वविशिष्यजन्यत्व वा ? इत्यत्र किचिन्नियायक दर्शयितु पार्यते । न च द्रव्यलाकिकचाक्षुपत्वमप्युद्भूत रूपकार्यतावच्छेदक सम्भवति, शरीरगौरवेण लोकिकविपयतासम्बन्देन द्रव्यत्वविशिष्टचाक्षुपत्वरूपेण च द्रव्यत्वचाक्षुपत्वयोर्विनिगमनाविरहात् । ततो द्रव्यनिष्ठलौकिकविपयतया चाक्षुपत्वमेव केवलमुद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकमिति वायोः स्पार्शनमनपाय इत्युक्तावपि न क्षति मूर्तवृत्तिलोकिकविपयतया जन्यप्रतीमात्रवृत्तिवैजात्यस्येन्द्रियादिजन्यतावच्छेदकतया सिद्धस्योद्भूतरूपकार्यतावचेदकत्वाभ्युपगमात् ।

केचित्तु उद्भूतरूपवद्घटादीना चाक्षुपत्वनिश्चयात् निश्चिताऽव्यभिचारकतया लोकिकविपयतासम्बन्धेन द्रव्यचाक्षुपत्वमेव उद्भूतरूपकार्यतावच्छेदक न तु वायूष्मादेः प्रत्यक्षत्वसन्देहेन सन्दिग्धव्यभिचारकमूर्तप्रत्यक्षत्व, सम्भवति निश्चिताऽव्यभिचारके धर्मे इक्ष्यमाणव्यभिचाररूपेण कारणत्ववत्कार्यत्वस्याऽपि

► वल्लभा ◄

सिद्ध जातिस्वरूप ही है । मतलव ही जन्यप्रत्यक्षत्व कार्यसाक्षात्कारमात्रवृत्ति वैजात्यात्मक है । जाति अखण्ड होने से उद्भूतरूप के कार्यतावच्छेदक धर्म के शरीर मे गोरव को भी अवकाश नही हे । प्रमाणन्तरसिद्ध जाति का ही कार्यतावचेदकधर्मविधया स्वीकार करने की वजह भी गोरव का अवकाश नही हैं ।

ऐतन० । यहाँ अन्य विद्वानो का यह कथन हे कि → "उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदकधर्म द्रव्यनिष्ठलोकिकविपयता सम्वन्ध से चाक्षुपत्व ही सम्भव है । 'द्रव्यनिष्ठालैकिकविपयता सम्वनन्ध को कार्यतावचेदकसम्वननन्ध माना जाय या मूर्तनिष्ठ लोकिक विपयता को ?' इस विनिगमनाविरह को भी अवकाश नहीं हे, क्योकि द्रव्यनिनष्ठ लौकिक विपयता ओर मूर्तनिष्ठ लोकिक विपयता, जो चाक्षुपत्वावच्छिन्ननिरूपित हे, दोनो समव्याप्य-व्यापक = समनियत होने से अभिन्न है । मगर मूर्तनिष्ठ लौकिक विपयता सम्वन्ध से प्रत्यक्षत्व को कार्यतावच्छेदक धर्म माना जा नही सकता, क्योकि वह अनित्य प्रत्यक्ष और नित्य प्रत्यक्ष दोनो मे रहने मे उद्भूतरूपकार्यतातिरिक्तवृत्ति धर्म है । अतिरिक्तवृत्ति धर्म अवच्छेदक वन सकता नही है । जन्यप्रत्यक्षत्व को भी उद्भूत रूप का कार्यतावच्छेदक नही माना जा सकता, क्योकि कार्यतावच्छेदकधर्मकुक्षि मे प्रध्वसप्रतियोगितास्वरूप जन्यता का निवेश करने के सवव गोरव प्रसक्त होता हे आर उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदकधर्म जन्यत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्व माना जाय या प्रत्यीत्वविशिष्टजन्यत्व माना जाय ? इस विषय मे कोई विनिगमक नहि है । ←

मगर अव पछताये होत क्या जव चिडियाँ चूग गई खेत ? हमने पहले ही कह दिया कि उद्भूत रूप का कार्यतावच्छेदक मूर्तनिष्ठ लोकिक विपयता सम्वन्ध से जन्यप्रत्यक्षमात्रवृत्ति वैजात्य = जातिविशेष ही है, जिसके स्वीकार मे न तो गौरव है और न तो विनिगमनाविरह दोप हे, क्योकि वह इन्द्रियादिजन्यतावच्छेदकविधया सिद्ध अखण्ड जातिस्वरूप ह ।

अत्र प्रतिविधीयते - मूर्तप्रत्यक्षत्वमेवोद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकं, द्रव्याचाक्षुषत्वस्य तथात्वे गगनादिस्पार्शनवारणाय द्रव्यस्पार्शनं प्रत्युद्भूतस्पर्शत्वेन हेतुत्वे स्पर्शत्वप्रवेशे गौरवात्, अनुद्भूतत्वाभावकूटस्पर्शत्वयोः विशेष्यविशेषणभावे विनिगमनाविरहाच्च, मम तु स्पर्शनिष्ठानुद्भूतत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकानुद्भूताभावकूटत्वेनैव हेतुता, गगनादौ रूपाभावादेव त्वाचापत्तेरभावात्, सामान्यसामग्रीमादायैव विशेषसामग्र्याः कार्यजनकत्वनियमाच्च ।

♦ हेमलता ♦

विना लाघवमकल्पनात् । अत एव वायोः स्पार्शनमनाविलमेव, तस्योद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकधर्मानाक्रान्तत्वादित्याहुः ।

अत्र नैयायिकः प्रतिविधीयते । मूर्तप्रत्यक्षत्वमेव उद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकं, न द्रव्यप्रत्यक्षत्वं व्याप्यधर्मेण व्यापकधर्मस्यान्यथासिद्धेः न वा द्रव्यचाक्षुषत्वं गौरवात् । तथाहि द्रव्यचाक्षुषत्वस्य तथात्वे = उद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्वे त्वगिन्द्रियसन्निकर्षादिना गगनादेः स्पार्शनप्रसङ्ग उद्भूतरूपस्य तदकारणत्वात्, स्पार्शनसामग्र्याः महत्त्वादिरूपायाः तत्र सत्त्वात् । न च द्रव्यस्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रति उत्कटस्पर्शस्य कारणत्वस्वीकारादेव तद्विलयः, गगनादेः निःस्पर्शत्वादिति वाच्यम् द्रव्यचाक्षुषत्वे उद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्वमभ्युपगम्य गगनादिस्पार्शनवारणाय द्रव्यस्पार्शनं प्रति उद्भूतस्पर्शत्वेन हेतुत्वे = हेतुत्वोपगमे द्रव्यस्पार्शनकारणशरीरे स्पर्शत्वप्रवेशे गौरवात् = कार्यकारणभावगौरवात्, स्पर्शनिष्ठोद्भूतत्वस्यानुद्भूतत्वाभावकूटरूपतया कारणतावच्छेदकधर्मकुक्षौ अनुद्भूतत्वाभावकूट-स्पर्शत्वयोः विशेष्यविशेषणभावे विनिगमनाविरहाच्च । न हि स्पर्शत्वविशिष्टानुद्भूतत्वाभावकूटस्य द्रव्यस्पार्शनकारणावच्छेदकत्वमनुद्भूतत्वाभावकूटविशिष्टस्पर्शत्वस्य वा ? इत्यत्र किञ्चिद्विनिगमकमस्ति । उभयोः तत्कारणतावच्छेदकत्वे च महागौरवम् । न चोद्भूतरूपवतोऽनुद्भूतस्पर्शविशिष्टस्य त्र्यणुकादेः चाक्षुषत्ववत् स्पार्शनत्वापत्तिः दुर्वारा, तत्स्पार्शनस्य मूर्तप्रत्यक्षत्वलक्षणोद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वादिति तद्वारणायोद्भूतस्पर्शत्वेन कारणताया आवश्यकत्वमेवेति वाच्यम् यतो मम = नैयायिकस्य तु स्पर्शनिष्ठानुद्भूतत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकानुद्भूताभावकूटत्वेनैव हेतुता न तूद्भूतस्पर्शत्वेन । अत एवोद्भूतत्व-स्पर्शत्वयोः विशेषणविशेष्यभावे विनिगमनाविरहोऽपि निरवकाशो वेदितव्यः । न च तथापि गगनादेर्निरुक्तानुद्भूताभावकूटाश्रयत्वात्स्पार्शनत्वापत्तिर्दुर्वारेति वक्तव्यम् गगनादौ रूपाभावादेव त्वाचापत्तेरभावात् । न च महत्त्वादिविशिष्टत्वादाकाशादेःस्पार्शनमनिवार्यमिति वाच्यम् सामान्यसामग्रीमादायैव = व्यापकधर्मावच्छिन्नसामग्रीसमवहिताया एव, विशेषसामग्र्याः = व्याप्यधर्मावच्छिन्नसामग्र्याः कार्यजनकत्वनियमात् । द्रव्यस्पार्शनत्वस्य मूर्तप्रत्यक्षव्याप्यत्वात् मूर्तप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नसामग्रीविरहिताया द्रव्यस्पार्शनत्वावच्छिन्नसामग्र्या स्वकार्याऽजन - कत्वम् । अतो न गगनादेः नैयायिकमते स्पार्शनप्रसङ्गो न वा गौरवम् ।

► वल्लभा ◄

●● द्रव्यचाक्षुषत्व उद्भूतरूपकार्यतावच्छेदक - मीमांसकविशेष ●●

केचित्तु० । यहाँ कुछ मीमांसकों का यह मतलब है →उद्भूतरूपवाले घटादि द्रव्यों का चाक्षुष निःसन्दिग्ध होने से द्रव्यचाक्षुष के प्रति उत्कट रूप में अव्यभिचारिता का निश्चय होता है । इसलिये द्रव्यचाक्षुषत्व को ही उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक मानना आवश्यक है । मगर मूर्तप्रत्यक्षत्व को उद्भूतरूप का जन्यतावच्छेदक नहीं माना जा सकता, क्योंकि वायु आदि नीरूप द्रव्य का साक्षात्कार संदिग्ध होने से मूर्तप्रत्यक्ष के प्रति उत्कट रूप में व्यभिचार का संशय होता है । इसलिये उद्भूतरूप का कार्यतावच्छेदक धर्म द्रव्यचाक्षुषत्व ही होगा । इस कार्यकारणभाव के बल से वायु का प्रत्यक्ष होने में कोई दोष नहीं है । इस तरह यहाँ तक मीमांसकों के भिन्न भिन्न मतों का निरूपण हुआ ।

●● मूर्तप्रत्यक्षत्व उद्भूतरूपकार्यततावच्छेदक - नैयायिक ●●

नैयायिक :- अत्र प्र० । प्रदर्शित मीमांसकमत का अब यहाँ प्रतिविधान किया जाता है । उद्भूत रूप का कार्यतावच्छेदक द्रव्यचाक्षुषत्व नहीं है किन्तु मूर्तचाक्षुषत्व ही है । यदि द्रव्यचाक्षुषत्व को उद्भूतरूप का जन्यतावच्छेदक माना जाय तब तो गगन आदि अमूर्तद्रव्य का त्वगिन्द्रियसन्निकर्ष से स्पार्शनप्रत्यक्ष की आपत्ति आयेगी, क्योंकि प्रत्यक्षसामान्य की सामग्री में उद्भूतरूप प्रविष्ट नहीं है । मगर गगन का स्पार्शन प्रत्यक्ष होता नहीं है । अतः उसके परिहारार्थ द्रव्यस्पार्शन के प्रति उद्भूत स्पर्श को कारण मानना होगा । मतलब कि स्पर्शत्व का कारणताकुक्षि में प्रवेश होने से गौरव होगा । दूसरी बात यह है कि उद्भूतत्व तो अनुद्भूतत्वाभावकूटस्वरूप है । अतः द्रव्यस्पार्शन के कारणतावच्छेदकविधया उत्कटस्पर्शत्व का स्वीकार करने पर कारणतावच्छेदकधर्म अनुद्भूतत्वाभाकूटविशिष्टस्पर्शत्वात्मक है या स्पर्शत्वविशिष्टअनुद्भूतत्वअभावकूटस्वरूप है ? इस विषय में कोई निर्णायक तर्क नहीं होने से कारणतावच्छेदकधर्म में विशेषण-विशेष्यभाव में विनिगमनाविरह दोष प्रसक्त होगा । विनिगमनाविरह में दोनों को कारणतावच्छेदक धर्म मानने पर कार्यकारणभाव गौरवग्रस्त हो जायेगा ।

अथापेक्षाबुद्धिभेदेन कूटत्वस्य नानात्वान्न तादृशानुद्भूताभावकूटत्वेन हेतुत्वम्, अपि त्वनुद्भूतत्वाभावकूटस्पर्शत्वयोः

◆ हेमलता ◆

एतेन वायूष्मादेः प्रत्यक्षसन्देहेन मूर्त्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्य सन्दिग्धव्यभिचारकत्वान्नोद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्वमिति निरस्तम् तथापि मूर्तप्रत्यक्षत्वस्योद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्वे स्पर्शनिष्ठानुद्भूतत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकानुद्भूताभावकूटत्वेन द्रव्यस्पार्शनत्वावच्छिन्ने हेतुता, गगनादौ तादृशाभावकूटमत्त्वेऽप्युद्भूतरूपात्मककारणान्तरविरहादेवास्पार्शनत्वोपपत्तिः चाक्षुषत्वस्य तत्कार्यतावच्छेदकत्वे तु स्पर्शनिष्ठानुद्भूतत्वाभावकूटवत्स्पर्शत्वेनैव द्रव्यस्पार्शनं प्रति हेतुत्वमुपेयम्, अन्यथा गगनादेरपि स्पार्शनापत्तेः उद्भूतरूपस्य स्पार्शनाऽहेतुत्वात् । तथा च स्पर्शत्वस्य तत्र प्रवेशात् स्पर्शत्वानुद्भूतत्वाभावकूटयोर्विशेषणविशेष्यभावे विनिगमकाभावेन कार्यकारणभावद्वयप्रसङ्गाच्च महद्गौरवमिति सन्दिग्धव्यभिचारकत्वेऽपि मूर्तप्रत्यक्षत्वस्योद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्वोपपत्तिः ।

अथ कूटत्व त्रिविध एकविशिष्टापरस्वरूप अनेककारणगतसङ्ख्याविशेषात्मक अपेक्षाबुद्धिविशेषविषयत्वलक्षण वा । प्रथमे विशेषणविशेष्यभावे विनिगमनाविरहः । तदुक्त पक्षताजागदीशीगङ्गाया 'सामग्रीत्वेन (=कूटत्वेन) न हेतुत्व सामग्रीपदेन एककारणविशिष्टापरकारणस्यव बोधनेन तत्कारणविशिष्टापरकारणस्य सामग्रीत्वेन हेतुत्वमुत अपरकारणविशिष्टतत्कारणस्येति विनिगमनाविरहात्' [प जा ग पृ ६१] । द्वितीयेऽपेक्षाबुद्धिभेदेन सङ्ख्याभेदात् तद्भेदःमहत्त्वस्पर्शादौ विभिन्नसङ्ख्योत्पत्तेः, कस्याश्चित् सङ्ख्यायाः विशेषणरूपेण महत्त्वादिव्याप्यत्वस्वीकारे विनिगमनाविरहेणाऽनन्तयावत्त्वात्मकसङ्ख्यात्वेन व्याप्यत्वोपगमे महागौरवात् । तृतीयेऽपि अपेक्षाबुद्धिभेदेन विषयताभेदात् कूटत्वस्य नानात्वात् अनन्तकार्यकारणभावापत्तेः न तादृशानुद्भूताभावकूटत्वेन = स्पर्शनिष्ठानुद्भूताभावकूटत्वेन हेतुत्व = मूर्तप्रत्यक्षकारणत्वमुपगन्तुमर्हति । अपि तु अनुद्भूतत्वाभावकूटस्पर्शत्वयो = स्वरूपतोऽनुद्भूतत्वाभावकूटाना स्पर्शत्वस्य चैकत्र द्वयमिति न्यायेन व्यासज्यवृत्त्यवच्छेदकतोपगमेन = एकत्वानवच्छिन्नपर्याप्तिकत्वेन कूटत्वस्य कारणतावच्छेककोटौ प्रवेशात् अनुद्भूतत्वाभावकूटवत्स्पर्शत्वेनैव तथात्व = तत्कारणत्वमिति तत्र स्पर्शत्वप्रवेश आवश्यक एवेति न गगनादेः स्पार्शनत्वप्रसङ्गो न वा वायूष्मादेस्स्पार्शनत्वानापत्तिरिति चेत् ?

तर्हि मूर्तप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न प्रति महत्त्वोद्भूतरूपस्पर्शवत्त्वेन हेतुत्वमस्तु, महत्त्वानुद्भूतत्वाभावकूटवत्स्पर्शतादृशरूपेषु व्यासज्यवृत्त्यवच्छेदकताङ्गीकारस्य सुवचत्वादिति वायुप्रभादेः प्रत्यक्षत्वकथाऽप्युच्छिद्यते वायूष्मादेरुद्भूतरूपविरहात् प्रभात्रसरेण्वादेरुद्भूतस्पर्शविरहात् न मूर्तप्रत्यक्षत्वलक्षणकार्यतावच्छेदकाक्रान्तस्य वायूष्मादिस्पार्शनस्य प्रभादिचाक्षुषस्य च सम्भवः द्रव्यस्पार्शन प्रति महत्त्वोद्भूतस्पर्शवत्त्वेन द्रव्यचाक्षुष प्रति च महत्त्वोद्भूतरूपवत्त्वेन हेतुत्वानावश्यकत्वेन निरुक्तकार्यकारणभावे लाघवमपि स्फुटमेव । न चैव वायुप्रभादिज्ञानासम्भव इति वाच्यम् स्पर्शरूपादिप्रत्यक्षेणव तदनुमितिस्मृत्यादिसम्भवात् वायूष्मादिस्पर्शसाक्षात्कारेण वायोः प्रभात्रसरेण्वादिरूपचाक्षुषेण च प्रभात्रसरेण्वादेरनुमितेः स्मृतेः प्रत्यभिज्ञानस्य वा सम्भवात् ।

▶ वल्लभा ◀

हम नैयायिक के मतानुसार द्रव्यस्पार्शन प्रत्यक्ष का कारणतावच्छेदक स्पर्शवृत्ति अनुद्भूतत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकानुद्भूतत्वाभावकूटत्व ही है । स्पर्श मे रहनेवाला अनुद्भूतत्वाभावसमूह ही द्रव्यस्पार्शन का कारण है । हम जान सकते है कि गगन के स्पर्शशून्य होने से उक्त कार्यकारणभाव को मान्य करने पर उसके स्पार्शन प्रत्यक्ष की आपत्ति हो सकती नही है । इस तरह मूर्तप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न के प्रति ही उद्भूत रूप को कारण मानने पर एकविध कार्यकारणभाव से नीरूप गगनादि के स्पार्शन का परिहार हो जाने मे लाघव है । गगनादि मे स्पार्शन प्रत्यक्ष के कारणीभूत स्पर्शवृत्तिअनुद्भूतत्वाभाव का अभाव होने से उसके स्पार्शन की आपत्ति को अवकाश ही नही है । त्वगिन्द्रियसन्निकर्ष आदि स्पार्शन की विशेष सामग्री है, जो गगनादि मे विद्यमान है फिर भी उसमे मूर्तप्रत्यक्ष की सामग्री नही है । द्रव्यस्पार्शन भी मूर्तप्रत्यक्षविशेषस्वरूप ही है । अत द्रव्यस्पार्शन की सामग्री विशेष सामग्री बनती है और मूर्तप्रत्यक्ष की सामग्री सामान्यसामग्री होती है । यह एक अटल नियम है कि सामान्यसामग्री के बिना विशेषसामग्री कभी विशेषकार्यजनक बनती नही है । गगनादि मे द्रव्यस्पार्शन की विशेषसामग्री नैयायिकमतानुसार रहने पर भी उसकी सामान्यसामग्री नही रहने से गगनादि के स्पार्शन साक्षात्कार की आपत्ति को अवकाश नही है । इस तरह एक ही कार्यकारणभाव से गगनादि के प्रत्यक्ष का परिहार भी होता है और लाघव भी होता है ।

कूटत्वेन कारणता नामुमकिन

पूर्वपक्ष :- अथा० । उस्ताद ! आप स्पर्शवृत्तिअनुद्भूतत्वाभावकूट को द्रव्यस्पार्शन का कारण मानते हो मगर कूटत्व तो एकविशिष्टअपरस्वरूप या तादृशअनुद्भूतत्वाभावविशेषगतसङ्ख्याविशेषात्मक या अपेक्षाबुद्धिविशेषविषयतास्वरूप ह । प्रथम कूटत्व के स्वीकार मे विनिगमनाविरह दोष प्रसक्त होता है । द्वितीय या तृतीय कूटत्व को मान्य करने पर अपेक्षाबुद्धि के भेद से तादृशसङ्ख्या या विषयताविशेष भिन्न बन

व्यासज्यवृत्त्यवच्छेदकतोपगमेनानुद्भूतत्वाभावकूटवत्स्पर्शत्वेनैव तथात्वमिति चेत् ? तर्हि मूर्तप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति महत्त्वोद्भूतरूपस्पर्शवत्त्वेन हेतुत्वमस्त्विति वायुप्रभादेः प्रत्यक्षत्वकथाप्युच्छियते स्पर्शरूपादिप्रत्यक्षेणेव तदनुमितिस्मृत्यादिसम्भवात् ।

इदन्तु ध्येयं - यद्यनुद्भूतस्पर्शाऽसत्त्वे प्रभायाः स्पार्शनवारणाय द्रव्यस्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रति स्पर्शत्वेनैव हेतुताऽऽवश्यकी, व्यासज्यवृत्त्यवच्छेदकतानुपगमाच्च नोक्तरूपेण हेतुतेति विभाव्यते, तदा द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रत्येवोद्भूतरूपस्य हेतुत्वान्न

◆ हेमलता ◆

इदन्तु ध्येयं यदि अनुद्भूतरूपादिखण्डनवादवीच्यादिदर्शितरीत्याऽनुद्भूतस्पर्शे मानाभावात् अनुद्भूतस्पर्शाऽसत्त्वे प्रभायाः स्पार्शनवारणाय द्रव्यस्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रति स्पर्शत्वेनैव सामान्यतो हेतुताऽऽवश्यकी न त्वनुद्भूतत्वाभावप्रवेशस्तत्र सम्भवति, अप्रसिद्धप्रतियोगिकनिषेधाऽसम्भवादिति क्व गौरवसम्भावना व्यासज्यवृत्त्यवच्छेदकतानुपगमाच्च नोक्तरूपेण महत्त्वोद्भूतरूपोद्भूतस्पर्शपर्याप्तकारणतावच्छेदकताकत्वेन रूपेण हेतुता, तदुक्तं गदाधरेण परामर्शगादाधर्यां 'द्वित्वस्य कारणतावच्छेदकत्वमसम्भवदुक्तिकञ्च, व्यासज्यवृत्तिधर्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वात्' [प.गा.पृ. १५०] इति । न च तथापि मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्य रूपकार्यतावच्छेदकत्वे द्रव्यस्पार्शनं प्रति स्पर्शस्य न हेतुत्वं रूपाभावादेव गगनादयस्पार्शनोपपत्तेः चाक्षुषत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वे तु गगनादेरस्पार्शनत्वोपपत्तये द्रव्यत्वाच्च प्रति स्पर्शस्यापि पृथग्धेतुताऽऽवश्यकत्वेन गौरवमिति वाच्यम् मूर्तलौकिकप्रत्यक्षत्वस्य द्रव्यचाक्षुषत्वस्य वोद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकत्वेऽपि प्रभादिस्पार्शनवारणाय द्रव्यत्वाच्च प्रति स्पर्शत्वेन पृथग् हेतुताया आवश्यकत्वादिति विभाव्यते तदा द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रत्येव उद्भूतरूपस्य हेतुत्वात् न वाय्वादे = वायुप्रभादेः अस्पार्शनत्वम्, द्रव्यस्पार्शनस्योत्कटरूपकार्यतावच्छेदकधर्मानाक्रान्तत्वेन वाय्वादिस्पार्शनं प्रत्युद्भूतरूपस्यानपेक्षणात् ।

▶ वल्लभा ◀

जाने से कूटत्व= समूहत्व ही नानाविध बन जाने से अनेककार्यकारणभाव की कल्पना का महागौरव प्रसक्त होगा । इसकी अपेक्षा उचित तो यही है कि व्यासज्यवृत्ति = अनेक मे पर्याप्त अवच्छेदकता का स्वीकार कर के अनुद्भूतत्वाभावकूट और स्पर्शत्व मे व्यासज्यवृत्ति कारणतावच्छेदकता को मान्य की जाय एवं अनुद्भूतत्वाभावकूटविशिष्टस्पर्शत्वेन रूपेण ही द्रव्यस्पार्शन की कारणता स्वीकृत की जाय । इस तरह स्पर्शत्व का स्पार्शनकारणतावच्छेदककोटि में प्रवेश करना आवश्यक ही है - यह फलित होता है ।

उत्तरपक्ष :- तर्हि० । जनाब ! इस तरह व्यासज्यवृत्ति धर्म मे अवच्छेदकता को मान्य करना ही है तब मूर्तप्रत्यक्षत्वावच्छिन्न = सकल मूर्तप्रत्यक्ष के प्रति महत्त्वोद्भूतरूप-उद्भूतस्पर्शवत्त्वेन कारणता का ही स्वीकार करना उचित है, क्योंकि तब द्रव्यस्पार्शन के प्रति महत्त्व और उद्भूतस्पर्श को तथा द्रव्यचाक्षुष के प्रति महत्त्व और उद्भूतरूप को पृथक् कारण मानने की आवश्यकता न होने से अनेक कार्यकारणभाव के स्वीकार का गौरव भी नहीं होगा । एवं इस कार्यकारणभाव को मान्य करने पर वायु-प्रभा आदि के प्रत्यक्ष की बात ही विलीन हो जायेगी । वायु मे उद्भूतरूप नहीं होने से एवं प्रभा आदि मे उद्भूत स्पर्श नहीं होने से पर्याप्तिसम्बन्ध से महत्त्वोद्भूतरूपस्पर्शविशिष्ट नहीं बनने की वजह वायु, प्रभा आदि के स्पार्शन या चाक्षुषात्मक प्रत्यक्ष को अवकाश ही नहीं रहेगा । फिर भी लोगों को जो वायु, प्रभा आदि का ज्ञान होता है उसे प्रत्यक्षात्मक नहीं किन्तु अनुमिति या स्मृति आदि स्वरूप भी माना जा सकता है । इसलिए लौकिक प्रसिद्ध व्यवहार एवं ज्ञान की भी सङ्गति हो जायेगी ।

▶▶ व्यासज्यवृत्ति अवच्छेदकता अमान्य ◀◀

इदन्तु० यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि - जिन मनीषियों के मतानुसार अनुद्भूत स्पर्श ही अप्रामाणिक होने से असत् = अविद्यमान है उनके मतानुसार तो नीलादिरूपवाली प्रभा के स्पार्शन प्रत्यक्ष के परिहारार्थ द्रव्यस्पार्शन के प्रति स्पर्श ही कारण होता है न कि अनुद्भूतत्वाभावकूटविशिष्ट स्पर्श । उनके मतानुसार स्पर्शत्वेन ही द्रव्यस्पार्शनकारणता आवश्यक होने से उपर्युक्त कार्यकारणभाव कि→मूर्तप्रत्यक्ष के प्रति पर्याप्तिसम्बन्ध से महत्त्वोद्भूतरूपस्पर्शविशिष्ट ही मूर्तप्रत्यक्ष का कारण है←मान्य हो नहीं सकता । दूसरी बात यह है कि न्यायसम्प्रदाय में व्यासज्यवृत्ति अवच्छेदकता भी मान्य नहीं है । जब कि उपर्युक्त कार्यकारणभाव मे कारणतावच्छेदकता महत्त्व-उद्भूतरूप और उद्भूत स्पर्श में व्यासज्यवृत्ति = पर्याप्त है । अतएव यह कार्यकारणभाव अस्वीकार्य है । इस दृष्टिकोण से जब विचार किया जाय तब हम निःसंदिग्ध कह सकते हैं कि सकल द्रव्यचाक्षुष के प्रति ही उद्भूत रूप कारण है, न कि यावत् द्रव्यस्पार्शन के प्रति । तब तो वायु आदि का स्पार्शन प्रत्यक्ष निराबाध ही हो जायेगा, क्योंकि वायुस्पार्शन अब उद्भूतरूप के कार्यतावच्छेदक धर्म से अनाक्रान्त है । अथवा यह भी कहा जा सकता है कि द्रव्यचाक्षुष के प्रति द्रव्यात्मक विषय ही शक्तिविशेषरूप से कारण होता है और द्रव्यस्पार्शन के प्रति भी विषय शक्तिविशेषरूपेण कारण होता है । इस कार्यकारणभाव के स्वीकार से यद्यपि द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदकविधया

वाय्वादेरस्पार्शनत्वम् ।

अस्तु वा द्रव्यचाक्षुपत्वावच्छिन्न प्रति द्रव्यस्पार्शनत्वावच्छिन्न प्रति च शक्तिविशेषेणैव विपयस्य हेतुत्व महत्त्वरूपयोः महत्त्वस्पर्शयोश्च हेतुत्वापेक्षया शक्तिद्वयकल्पनाया एवोचितत्वात् ।

यत्तु घटाकाशसयोगद्वित्वादेः स्पार्शनवारणाय द्रव्यान्य-सत्त्वाचत्वावच्छिन्न प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन लौकिकविपयत्वावच्छिन्नत्वाचाभावस्य प्रतिवन्धकत्व कल्प्यते।

◆ हेमलता ◆

मीमासकमतेनाह - अस्तु वा द्रव्यचाक्षुपत्वावच्छिन्न प्रति द्रव्यस्पार्शनत्वावच्छिन्न प्रति च शक्तिविशेषेणेव विपयस्य हेतुत्व, महत्त्वरूपयो महत्त्वस्पर्शयोश्च हेतुत्वापेक्षया शक्तिद्वयकल्पनाया एवोचितत्वात्, द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकशक्तिश्च वायूष्मादिद्रव्यानुगतेति न वायूष्मादेः स्पार्शनत्वानापत्तिः, न वा प्रभात्रसरेण्वादेः स्पार्शनत्वापत्तिः प्रमात्रसरेण्वादेः द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकशक्तिविशेपशून्यत्वात् । गगनादावुभयशक्तिविरहान्न तस्य चाक्षुपत्व न वा स्पार्शनत्व प्रसज्येत । दृष्टानुसारेणैव तत्तद्द्रव्येपु तत्तच्छक्तिकल्पनान्नातिप्रसङ्गो न वाऽप्रसङ्ग इति भाव' ।

यत्त्विति तच्चिन्त्यमित्यनेनान्वेति । घटाकाशसयोग-द्वित्वादे स्वसयुक्तसमवायसम्बन्धेन त्वगिन्द्रियविशिष्टस्य स्पार्शनवारणाय द्रव्यान्यसत्त्वात्वावच्छिन्न प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन लौकिकविपयत्वावच्छिन्नत्वाचाभावस्य प्रतिवन्धकत्व कल्प्यते । अयमाशय आश्रयस्य स्पार्शनत्वे आश्रितस्य गुणादेः स्पार्शन भवति । स्वाश्रयस्याऽस्पार्शनत्वे स्वस्य गुणादेः स्पार्शन न भवतीति द्रव्यान्य-सत्ताविशिष्टगोचरस्पार्शन प्रति त्वाचाभावस्य स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन प्रतिवन्धकत्वमन्वय-व्यतिरेकाभ्या सिध्यति । गगनादेः लौकिकविपयतासम्बन्धेन स्पार्शनशून्यत्वेन लौकिकविपयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्पार्शनाभावविशिष्टत्वम् । गगनघटसयोगादेः निरुक्तस्पार्शनाभावाश्रयगगनादिसमवेतत्वेन स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन निरुक्तस्पार्शनाभावलक्षणप्रतिवन्धकविशिष्टत्वान्न तत्त्वाच लौकिकविपयतासम्बन्धेन तत्र भवति । न च सत्त्वाचत्वावच्छिन्न प्रत्येव प्रतिवन्धकताऽस्त्विति वाच्यम् एव सति निरुक्तत्वाचाभावविशिष्टत्र्यणुकसमवेतस्य चतुरणुकस्याऽप्यस्पार्शनत्वापत्तेः द्रव्यान्यत्वस्य सद्विशेषणविधया निवेशावश्यकत्वात् । गुणादित्वाचस्यापि द्रव्यान्यसत्त्वाचत्वलक्षणकार्यतावच्छेदकाक्रान्तत्वादुक्तप्रतिवन्धकाभावेनेव तदुत्पत्तिसम्भवान्न तत्प्रति कारणान्तरकल्पनमिति लाघवादयमेव पन्थाः युक्तः । न च घटाकाशसयोगादिस्पार्शनवारणाय व्यासज्यवृत्तिगुणत्वाच प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन लौकिकविपयतासम्बन्धावच्छिन्नप्र-

▶ वल्लभा ◀

एव द्रव्यस्पार्शनकारणतावच्छेदकविधया पृथक् शक्तिद्वय का स्वीकार आवश्यक है किन्तु वह उचित इसलिये है कि तव द्रव्यस्पार्शन के प्रति महत्त्व और उद्भूतस्पर्श मे एव द्रव्य चाक्षुप के प्रति महत्त्व और उद्भूतरूप मे पृथक् कारणता की कल्पना का गौरव अनावश्यक वनता हे । नानाविध कारणता की कल्पना करने की अपेक्षा शक्तिद्वय की कल्पना ही उचित हे । अव वायु के स्पार्शनप्रत्यक्ष की अनुपपत्ति नही होगी, क्योकि द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक शक्तिविशेप का आश्रय विपयात्मक वायु द्रव्य वनता है । एव प्रभा के स्पार्शन की आपत्ति भी नही आयेगी, क्योकि प्रभा द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदक शक्तिविशेप का आश्रय होने पर भी द्रव्यस्पार्शनकारणतावच्छेदकीभूत शक्तिविशेप का वह आश्रय नही है ।

◆◆ त्वाचाभाव द्रव्यान्यसत्त्वाच का प्रतिवन्धक- मतविशेष ◆◆

पूर्वपक्ष '- यत्तु० । आश्रय के स्पार्शन से आश्रित गुणादि का स्पार्शन प्रत्यक्ष होता है । घट के स्पार्शन होने की वजह घटस्पर्श आदि का स्पार्शन होता है । इसलिये द्रव्यान्यसद्विपयक स्पार्शन के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से लौकिकविपयतासम्वन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक त्वाचाभाव को प्रतिवन्धक मानना आवश्यक हे । इसके स्वीकार से घटाकाशसयोग-द्वित्व आदि के स्पार्शन की आपत्ति का वारण हो जाता है । आकाश का स्पार्शन प्रत्यक्ष होता नही हे - यह सर्वविदित है । अत लौकिकविपयतासम्वन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक त्वाचाभाव का आश्रय गगन वनता है । त्वाचाभावाश्रय गगन मे घटाकाशसयोगादि समवेत होने से स्वाश्रयसमवेतत्वसम्वन्ध से त्वाचाभाव घटाकाशसयोग आदि मे रहता है । प्रतिवन्धक होने की वजह उसके स्पार्शन की आपत्ति को अवकाश नही रहेगा । इस कार्यकारण-भाव के स्वीकार से गुणादिस्पार्शन साक्षात्कार के प्रति पृथक् कारणता की कल्पना अनावश्यक वन जाती है, क्योकि गुणादिस्पार्शन भी द्रव्यान्यसत्स्पार्शनत्व लक्षण निरुक्तत्वाचाभावाभावकार्यतावच्छेदक धर्म से आक्रान्त होने की वजह प्रतिवन्धकाभाव से ही उसकी उत्पत्ति हो सकती है । इस तरह कार्यकारणभाव मे लाघव भी है ।

व्या० । यदि घटाकाशसयोग आदि के स्पार्शन के परिहारार्थ इस तरह प्रतिवध्य-प्रतिवन्धकभाव का स्वीकार किया जाय कि→व्यासज्यवृत्ति गुण के स्पार्शन साक्षात्कार के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्व सम्वन्ध से लौकिकविपयतासम्वन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक स्पार्शनाभाव प्रतिवन्धक है ।

व्यासज्यवृत्तिगुणत्वाद्यत्वावच्छिन्नं प्रति तथात्वे गुणादित्वाद्य प्रति प्रकृष्टमहत्त्ववदुद्भूतस्पर्शवत्समवायस्य पृथक्कारणत्वकल्पनापत्तेः द्रव्यान्यसत्प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति चाक्षुषाभावस्य तथात्वे च घटप्रभासंयोगादिस्पार्शनापत्तेर्दुर्निवारत्वादिति वायुरूपादेस्पार्शनत्वे तद्वृत्तिस्पर्शादिस्पार्शनानुपपत्तिः । न च स्पर्शेतरद्रव्यान्यसत्त्वाद्यत्वं तत्प्रतिबध्यतावच्छेदकं, स्पर्शेतरत्वप्रवेशे गौरवात्,

◆ हेमलता ◆

तियोगिताकत्वाद्याभावस्य प्रतिबन्धकत्वमेव कल्प्यत इति वाच्यम् यतः व्यासज्यवृत्तिगुणत्वाद्यत्वावच्छिन्नं प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन निरुक्तत्वाद्याभावस्य तथात्वे = प्रतिबन्धकत्वे आकाशस्याऽस्पार्शनत्वेन लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वाद्याभावाश्रयाकाशसमवेतव्यासज्यवृत्तिघटाकाशसंयोगादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेनोक्तत्वाद्याभावस्य प्रतिबन्धकस्य सत्त्वान्न तत्स्पार्शनप्रसङ्गः तथापि नीलपीतादिगुणादित्वाद्यस्य व्यासज्यवृत्तिगुणत्वाद्यत्वलक्षणकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वेन गुणादित्वाद्य = गुणादिलौकिकत्वाद्यत्वावच्छिन्नं प्रति प्रकृष्टमहत्त्ववदुद्भूतस्पर्शवत्समवायस्य पृथक्कारणत्वकल्पनापत्तेः । केवलस्य समवायस्य तथात्वे आकाशादिगुणत्वाद्यप्रसङ्गः शब्दादिसमवायस्य तत्र सत्त्वात् । न च स्पर्शवदनुयोगिक-समवायस्य तत्त्वे गगनादिगुणस्पार्शननिरास इति वाच्यम् तथापि पिशाचादिस्पर्शस्पार्शनापत्तेः दुर्वारत्वात् । न च उद्भूतस्पर्शवदनुयोगिकसमवायस्य तथात्वान्न तत्प्रसङ्गः उद्भूतत्वस्य पिशाचादिस्पर्शे विरहादिति वाच्यम् तथापि उद्भूतस्पर्शवत्परमाण्वादिगुणस्पार्शनापत्तेः । न च महत्त्ववदुद्भूतस्पर्शवदनुयोगिकसमवायस्य तथात्वान्नाय दोषः परमाण्वादेर्महत्त्वहीनत्वादिति वक्तव्यम् तथापि त्रसरेणुस्पर्शस्पार्शनापत्तेः परिहर्तुमशक्या । अतः प्रकृष्टमहत्त्ववदुद्भूतस्पर्शवदनुयोगिकसमवायस्यैव गुणादित्वाद्यत्वावच्छिन्नं प्रति कारणता कल्पनीयेति नानाकार्यकारणभावगौरवमपाकर्तुमशक्यमेव । लौकिकविषयतया द्रव्यान्यसत्प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य चाक्षुषाभावस्य तथात्वे = प्रतिबन्धकत्वे यद्यपि न घटाकाशसंयोगादिस्पार्शनापत्तिः तस्य चाक्षुषाभावप्रतिबध्यतावच्छेदकीभूतेन द्रव्यान्यसत्प्रत्यक्षत्वेनाऽऽक्रान्तत्वात्, आकाशस्याऽचाक्षुषत्वेन स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन निरुक्तचाक्षुषाभावस्य घटाकाशसंयोगादौ सत्त्वात् । न वा गुणादित्वाद्य प्रति पृथक्कारणत्वान्तरकल्पनापत्तिः, तस्याऽपि निरुक्तप्रतिबन्धकाभावकार्यतावच्छेदकधर्माक्रान्तत्वेन चाक्षुषाभावाभावादेव तदुत्पत्तिसम्भवात् । तथापि घटप्रभासंयोगादिस्पार्शनापत्तेः दुर्निवारत्वात् घटप्रभयोरुभयोः चाक्षुषत्वेन घटप्रभासंयोगादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन निरुक्तचाक्षुषाभावस्य विरहात्, सामग्र्याः स्वकार्येऽन्यानपेक्षत्वात् । इति हेतोः वायुरूपादेस्पार्शनत्वे तद्वृत्तिस्पर्शादिस्पार्शनानुपपत्तिः तत्स्पर्शादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नत्वाद्याभावस्य सत्त्वात्, प्रतिबन्धकसत्त्वे कार्योदयाऽयोगात् । न च स्पर्शेतरद्रव्यान्यसत्त्वाद्यत्वं तत्प्रतिबध्यतावच्छेदकं = लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वाद्याभावनिष्ठया प्रतिबन्धकतया निरूपितायाः प्रतिबध्यताया अवच्छेदकमिति न वायुस्पर्शादिस्पार्शनानुपपत्तिः तस्य प्रतिबध्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वादिति वक्तव्यम्, त्वाद्याभावप्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ स्पर्शेतरत्वप्रवेशे गौरवात् प्रतिबध्यतावच्छेदकगौरवेण प्रतिबन्धकाभावनिरूपितकार्यतावच्छेदकधर्मगौरवापातात् ।

▶ वल्लभा ◀

घटाकाशसंयोग, द्वित्व आदि केवल एक व्यक्ति में रहते नहीं है किन्तु अनेक व्यक्ति में रहते हैं । मतलब कि घटाकाशसंयोगादि व्यासज्यवृत्ति गुण है । अतएव उनके स्पार्शन के प्रति निरुक्तत्वाद्याभाव प्रतिबन्धक बन सकता है । लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक स्पार्शनाभाव गगन में आश्रित होने से स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से वह घटाकाशसंयोगादि में रहेगा । प्रतिबन्धक उपस्थित होने की वजह उसके प्रतिबध्यतावच्छेदकधर्म से आक्रान्त घटाकाशसंयोगादिस्पार्शन की तब उत्पत्ति ही नहीं सकेगी।—किन्तु तब नीलगुणादित्वाद्यसाक्षात्कार निरुक्तप्रतिबन्धकाभाव के व्यासज्यवृत्तिगुणत्वाद्यत्वस्वरूप कार्यतावच्छेदकधर्म से अनाक्रान्त होने की वजह उसके प्रति स्वतन्त्र कारणान्तर की कल्पना का गौरव होगा । गुणादिस्पार्शन के प्रति केवल समवाय को कारण कहने पर आकाशगुणादिस्पार्शन की आपत्ति आयेगी, स्पर्शवदनुयोगिक समवाय को जनक मानने पर पिशाचादि के स्पार्शन की समस्या खड़ी होगी, उद्भूतस्पर्शवत्समवाय का हेतुविधया स्वीकार करने पर तादृशपरमाणुस्पर्शादि के स्पार्शन का प्रसङ्ग होगा, महत्त्ववदुद्भूतस्पर्शवदनुयोगिसमवाय को तत्कारणत्वेन मान्य करने पर त्रसरेणुस्पर्शादि के स्पार्शन की समस्या दुर्निवार बनेगी । इसलिये प्रकृष्टमहत्त्ववदुद्भूतस्पर्शवदनुयोगिक समवाय को ही गुणादित्वाद्यत्वावच्छिन्न का कारण मानना होगा । इस तरह नवीन कार्यकारणभाव का स्वीकार करना होगा जो गौरवग्रस्त है ।

द्रव्या० । यदि द्रव्यान्यसत्स्पार्शन प्रत्यक्ष के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्व सम्बन्ध से लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक चाक्षुषाभाव को कारण माना जाय तब यद्यपि गगनघटसंयोग आदि के स्पार्शन की आपत्ति को अवकाश नहीं होगा, क्योंकि गगन चाक्षुषाऽविषय होने से गगनघटसंयोगादि में स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से निरुक्तचाक्षुषाभावात्मक प्रतिबन्धक रहता है। एवं गुणादि स्पार्शन के प्रति भी कारणान्तर की कल्पना अनावश्यक होगी, क्योंकि चाक्षुषाभावाभाव के कार्यतावच्छेदकीभूत द्रव्यान्यसत्स्पार्शनत्व से गुणादिस्पार्शन आक्रान्त है । तथापि इस कार्यकारणभाव को मान्य करने पर घटप्रभासंयोग आदि के स्पार्शन की आपत्ति दुर्निवार बन जायेगी, क्योंकि घट एवं प्रभा उभय का चाक्षुष होने से चाक्षुषाभावात्मक प्रतिबन्धक स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से घटप्रभासंयोग आदि में रहता नहीं है ।

घटाकाशसंयोगादौ स्पार्शनसामान्यापत्तिवारणाय स्पर्शस्पार्शनं प्रति स्पर्शत्वेन परमाण्वादिस्पार्शनवारणाय प्रकृष्टमहत्त्वेन चातिरिक्तकारणत्वकल्पनाप्रसङ्गादिति ।

तच्चिन्त्यम्, त्रसरेण्वादिघटितसन्निकर्षेण द्रव्यत्वादित्वाचप्रसङ्गवारणाय द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्त-प्रकृष्टमहत्त्वोद्भूतस्पर्शवत्समवायत्वेन प्रत्यासत्तित्वावश्यकत्वाद् द्रव्यान्यसत्त्वाचत्वस्य प्रतिबध्यतावच्छेदकत्वे घटाकाशसंयोगादौ जातिस्पा-र्शनवारणाय जातिस्पार्शनं प्रति जातित्वादिना हेतुत्वकल्पने गौरवात्।

◆ हेमलता ◆

किञ्च स्पर्शेतरद्रव्यान्यसत्त्वाचत्वस्य प्रतिबध्यतावच्छेदकत्वे घटाकाशसंयोगादौ लौकिकविषयतासम्बन्धेन स्पार्शनसामान्यापत्तिवारणाय स्पर्शस्पार्शनं प्रति स्पर्शत्वेन अतिरिक्तकारणत्वकल्पनाप्रसङ्गात्, अन्यथा स्पार्शनसामान्यं प्रति कस्यचित्कारणत्वे स्पर्शेऽपि तन्न स्यात् । स्पर्शस्पार्शनानुरोधेन स्पर्शस्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रति स्पर्शत्वेन कारणत्वेन घटाकाशसंयोगादिस्पार्शनपरिहारेऽपि घटादिस्पार्शनवत् परमाण्वादिस्पार्शनमपि प्रसज्येत । परमाण्वादिस्पार्शनवारणाय प्रकृष्टमहत्त्वेन कारणत्वस्वीकारे तदपाकरणेऽपि चातिरिक्तकारणताकल्पनाप्रसङ्गादिति प्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ न स्पर्शेतरत्वनिवेशो युक्तः किन्तु वाय्वादेः स्पार्शनत्वमेव युक्तमिति तात्पर्यम् ।

तच्चिन्त्यम् । यतः त्वक्संयुक्तसमवायस्य द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतत्वाचकारणत्वे यथा घटादिघटितसन्निकर्षेण घटादिसमवेतघटत्वादिस्पार्शनं भवति तथैव त्रसरेण्वादिघटितसन्निकर्षेण त्रसरेण्वादिसमवेतद्रव्यत्वादिस्पार्शनमपि भवेत् । अतः त्रसरेण्वादिघटितसन्निकर्षेण = त्वक्संयुक्तत्रसरेण्वादिसमवायसम्बन्धेन द्रव्यत्वादित्वाचप्रसङ्गवारणाय = त्रसरेण्वादिसमवेतद्रव्यत्वादिस्पार्शनप्रसङ्गनिरासकृते द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्तप्रकृष्टमह-त्त्वोद्भूतस्पर्शवत्समवायत्वेन प्रत्यासत्तित्वावश्यकत्वात् । द्रव्यान्यसत्त्वाचत्वस्य प्रतिबध्यतावच्छेदकत्वे = स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन लौकिकत्वाचाभावनिरू-पितायाः प्रतिबध्यताया अवच्छेदकत्वाभ्युपगमे, घटाकाशसंयोगादिस्पार्शनवारणासम्भवेऽपि घटाकाशसंयोगादौ जातिस्पार्शनं तु स्यादेव, जातेः सत्ताशून्यत्वेनोक्तप्रतिबध्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वात् । अतः तत्र जातिस्पार्शनवारणाय जातिस्पार्शनं प्रति जातेः जातित्वादिना हेतुत्वकल्पने गौरवात् ।

▶ वल्लभा ◀

इसलिये लौकिक विषयता सम्बन्ध से द्रव्यान्यसत्स्पार्शन के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से लौकिकविषयतावच्छिन्नप्रतियोगिताक स्पार्शनाभाव को ही प्रतिबन्धक मानना आवश्यक है। इस परिस्थिति में वायु, उष्मा, आदि को स्पार्शन का विषय न मानने पर उनके स्पर्श आदि का भी स्पार्शन प्रत्यक्ष नहीं होगा, क्योंकि लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक त्वाचाभाव के आश्रय वायु आदि में समवेत स्पर्श आदि गुणों में स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से निरुक्त स्पार्शनाभाव रहता है।

यहाँ यह तो कहा जा नहीं सकता कि→उपदर्शित त्वाचाभाव के प्रतिबध्यतावच्छेदकविधया स्पर्शेतरद्रव्यान्यसत्स्पार्शनत्व का स्वीकार करने पर उक्त दोष को अवकाश नहीं रहेगा, क्योंकि त्वाचविषयीभूत स्पर्श में द्रव्यान्यत्व एवं सत्त्व = सत्ता जाति होने पर भी स्पर्शेतरत्व रहता नहीं है। अतएव वह स्पार्शनाभावाभाव के कार्यतावच्छेदक धर्म से अनाक्रान्त हो जायेगा←क्योंकि स्पार्शनाभाव की प्रतिबध्यतावच्छेदक कोटि में स्पर्शेतरत्व = स्पर्शभेद का निवेश करने पर प्रतिबध्यतावच्छेदक यानी प्रतिबन्धकाभावकार्यतावच्छेदक धर्म के शरीर में गौरव प्रसक्त होता है। अतएव वह कल्पना स्वीकार्य नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि घटाकाशसंयोग आदि के स्पार्शन सामान्य की आपत्ति के वारणार्थ स्पर्शविषयक स्पार्शनप्रत्यक्ष के प्रति स्पर्शत्वेन पृथक् कारणता की कल्पना करनी पड़ेगी। स्पार्शनसामान्य के प्रति किसीको कारण न मानने पर स्पर्श का भी स्पार्शन हो नहीं सकेगा। स्पर्शविषयक स्पार्शन के अनुरोध से विषयतासम्बन्ध से स्पर्शस्पार्शन के प्रति तादात्म्यसम्बन्ध से स्पर्श को कारण मानने पर घटाकाशसंयोग आदि में स्पर्शात्मक कारण के विरह से स्पार्शनआपत्ति का वारण किया जाय तो भी जैसे घटादि का स्पार्शन होता है ठीक वैसे ही परमाणु-द्व्यणुक आदि के स्पार्शन की आपत्ति आयेगी जिसके परिहारार्थ स्पार्शनप्रत्यक्ष के प्रति प्रकृष्टमहत्त्व को भी जनक मानना आवश्यक होगा। इसलिये प्रतिबध्यतावच्छेदककोटि में स्पर्शेतरत्व का प्रवेश उचित नहीं है किन्तु वायु आदि का स्पार्शन प्रत्यक्ष मान्य करना ही मुनासिब है। इस पक्ष में उपदर्शित अनेकविध कार्यकारणभाव के स्वीकार का गौरव भी प्रसक्त नहीं होगा।

उत्तरपक्ष :- तच्चि० । जनाब ! आपका यह कथन विचारणीय है, न कि बिना विचार के ग्राह्य। इसका कारण यह है कि त्वक्संयुक्तसमवाय को द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शन का कारण मानने पर त्रसरेणु आदि से घटित सन्निकर्ष = त्वगिन्द्रियसंयुक्तत्रसरेणुअनुयोगिक समवाय सम्बंध से द्रव्यत्व आदि के स्पार्शन की समस्या को हटाना मुश्किल हो जायेगा, क्योंकि स्वसंयुक्तसमवायसन्निकर्ष त्रसरेणुसमवेतद्रव्यत्वादि में रहता है। इसके निवारणार्थ यही मानना होगा कि द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शन के प्रति त्वगिन्द्रियसंयुक्तप्रकृष्टमहत्त्वोद्भूतस्पर्शवदनुयोगिक समवाय को प्रत्यासत्ति मानना आवश्यक होगा। त्रसरेणु में रहनेवाला महत्त्व अप्रकृष्ट है, प्रकृष्ट नहीं है। इसलिये त्वगिन्द्रियसंयुक्तत्रसरेण्वनुयोगिक

व्यासज्यवृत्तिगुणनिष्ठविषयतया त्वाचत्वावच्छिन्नं प्रत्येवोक्तप्रत्यासत्त्या त्वाचाभावस्य (?विरहस्य) यावदाश्रयत्वाचस्य वा हेतुत्वात् । अत एव वायुघटसंयोगद्वित्वादेरस्पार्शनत्वं सङ्गच्छते ।

अथ द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतस्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्तत्वाचवत्समवायत्वेनैव हेतुत्वं, महदुद्भूतरूपयोरुभयोः प्रवेशे गौरवात् । तथा च वाय्वादेरस्पार्शनत्वे कथं तद्वृत्तिस्पर्शादिस्पार्शनमिति चेत् ?

◆ हेमलता ◆

वस्तुतस्तु व्यासज्यवृत्तिगुणनिष्ठविषयतया = अनेकाधिकरणपर्याप्तवृत्तिताकगुणनिष्ठलौकिकविषयतासम्बन्धेन त्वाचत्वावच्छिन्नं प्रत्येव उक्तप्रत्यासत्त्या = स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन त्वाचाभावस्य = लौकिकविषयतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्पार्शनाभावस्य विरहस्य हेतुत्वात् न गगनघटसंयोगादेः स्पार्शनप्रसङ्गः तत्र निरुक्तत्वाचाभावस्य सत्त्वात् । एतेन घटप्रभासंयोगादिस्पार्शनप्रसङ्गोऽपि निरस्तः, प्रभाया अस्पार्शनत्वेन घटप्रभासंयोगादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन स्पार्शनाभावस्य सत्त्वात् । कल्पान्तरमाह यावदाश्रयत्वाचस्य वा हेतुत्वात् । संयोगाश्रयस्याकाशप्रभादेरस्पार्शनत्वेन न घटाकाशसंयोग-घटप्रभासंयोगादेः स्पार्शनत्वापत्तिः । अत एव = व्यासज्यवृत्तिगुणत्वाचत्वस्य यावदाश्रयत्वाचकार्यतावच्छेदकत्वादेव, वायुघटसंयोग-द्वित्वादे अस्पार्शनत्वं = स्पार्शनविषयत्वाभावः सङ्गच्छते । वायोरस्पार्शनत्वेन वायुघटसंयोगादौ स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धेन त्वाचाभावस्य सत्त्वात् । ततश्च वायोरस्पार्शनत्वमेवेति निष्कर्षः ।

मीमांसकः शङ्कते - अथेति । चेदित्यनेनान्वयः । द्रव्यान्य- द्रव्यसमवेतस्पार्शनत्वावच्छिन्नं प्रति त्वक्संयुक्तत्वाचवत्समवायत्वेन एव हेतुत्वं, न तु त्वक्संयुक्तमहदुद्भूतरूपवदनुयोगिकसमवायत्वेन हेतुत्वं, कारणतावच्छेदककोटौ महदुद्भूतरूपयोः उभयोः प्रवेशे गौरवात् कारणतावच्छेदकधर्मगौरवापातात् । स्पार्शनविषयघटे त्वक्संयुक्तत्वाचवत्समवायस्य सत्त्वात् घटान्य-घटसमवेतस्पर्शादिस्पार्शनमुपजायते, तदसत्त्वे च नेत्यन्वय-व्यतिरेकाभ्यां लाघवेन त्वक्संयुक्तत्वाचवदनुयोगिकसमवायत्वेनैव तत्कारणता । तथा च = निरुक्तकार्यकारणभावनिश्चयेन च, वाय्वादे अस्पार्शनत्वे = त्वाचाऽगोचरत्वोपगमे, कथं तद्वृत्तिस्पर्शादिस्पार्शनं = वाय्वादिसमवेतस्पर्शादित्वाचप्रत्यक्षं भवेत् ? वाय्वादिस्पर्शादिवृत्तिसमवायानुयोगिनः

▶ वल्लभा ◀

समवाय प्रकृष्टमहत्त्वाश्रयानुयोगिक बनता नहीं है । अतएव त्वगिन्द्रियसंयुक्तप्रकृष्टमहत्त्वउद्भूतरूपविशिष्टानुयोगिक समवाय प्रतियोगितासम्बन्ध से त्रसरेणुस्पर्श आदि में नहीं रहेगा । बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति कैसे होगी ? इस तरह स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से लौकिकत्वाचाभाव को द्रव्यान्यसत्त्वाच प्रत्यक्ष का प्रतिबन्धक मानने पर घटाकाशसंयोगादि में स्वस्पार्शनप्रत्यक्ष की उत्पत्ति भले ही न हो मगर जातिस्पार्शन की आपत्ति दुर्वार बन जायेगी, क्योंकि जातिस्पार्शन त्वाचाभावप्रतिबध्यतावच्छेदक धर्म से शून्य है । उसके निवारणार्थ जातिस्पार्शन के प्रति समवायसम्बन्ध से जाति को जातित्वेन हेतु मानने पर यद्यपि उस आपत्ति का परिहार हो जाता है किन्तु अतिरिक्त कार्यकारणभाव की गौरवग्रस्त कल्पना तो मुँह फाडे खडी रहती है । सच बात तो यह है कि व्यासज्यवृत्तिगुणनिष्ठ लौकिक विषयता सम्बन्ध से त्वाच प्रत्यक्ष सामान्य के प्रति स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताक लौकिकत्वाचाभावाभाव हेतु होता है या तो यावदाश्रय का स्पार्शन प्रत्यक्ष कारण होता है । गगनघटसंयोग, द्वित्व आदि व्यासज्यवृत्ति = अनेक अधिकरण में पर्याप्त गुण होने से उनके स्पार्शन के प्रति यावदाश्रय अर्थात् घट एवं गगन दोनों का स्पार्शन प्रत्यक्ष होना चाहिए । उसके नहीं होने से घटाकाशसंयोग आदि के स्पार्शन की आपत्ति को अवकाश नहीं रहेगा । बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति कैसे हो सकती है ? व्यासज्यवृत्तिगुण में रहनेवाली लौकिक विषयतास्वरूपसम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले स्पार्शन के प्रति यावदाश्रय का स्पार्शन कारण होने की वजह ही तो घटवायुसंयोग आदि के अस्पार्शन की उपपत्ति हो सकेगी । घटवायुसंयोग के आश्रय वायु का प्रत्यक्ष नहीं होने की वजह स्वाश्रयसमवेतत्वसम्बन्ध से घटवायुसंयोग में यावदाश्रयस्पार्शन नहीं रहने से उसके प्रत्यक्ष की आपत्ति नहीं होगी । बिना कारण के किसी कार्य की उत्पत्ति होती नहीं है । इसलिये वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष मानना असङ्गत है - यह फलित होता है ।

◆● महत्त्व-उद्भूतरूप का प्रवेश आवश्यक ◆●

अथ० । कुछ विद्वानों का यह मन्तव्य है कि—›'द्रव्यान्यद्रव्यसमवेतस्पार्शन के प्रति त्वगिन्द्रियसंयुक्तप्रकृष्टमहत्त्व-उद्भूतरूपवत्समवाय को कारण मानने पर कारणतावच्छेदक धर्मकुक्षि में प्रकृष्ट महत्त्व एवं उत्कृट रूप के प्रवेश का गौरव प्रसक्त होता है । इसकी अपेक्षा त्वगिन्द्रियसंयुक्तत्वाचवत्समवाय को ही कारण मानना लाघवसहकार से युक्त है । जिसका स्पार्शन प्रत्यक्ष होता नहीं है उसमें समवेत स्पर्शादि का स्पार्शन साक्षात्कार होता नहीं है - यह तो सर्वविदित है । इसलिये यदि वायु का स्पार्शन न माना जाय तब वायु के स्पर्श आदि का स्पार्शन प्रत्यक्ष कैसे हो सकेगा ? क्योंकि तब वायुस्पर्श में त्वगिन्द्रियसंयुक्तस्पार्शनविशिष्टानुयोगिक समवाय प्रतियोगितासम्बन्ध में रहता नहीं है । बिना कारण के कार्यजन्म अशक्य है'←

न त्वाचत्वस्य विशेषणत्वे गुण-गुणिनोर्युगपदग्रहणप्रसङ्गात्, उपलक्षणत्वे च पाकजस्पर्शोत्पत्तिकालेऽपि स्पर्शादिग्रहणप्रसङ्गादेकस्यामेव व्यक्तौ कालभेदेनानन्तत्वाचसम्भवेन तत्र तावत्त्वाचनिवेशापेक्षया महत्त्वोद्भूतस्पर्शयोरुभयोरेव निवेशौचित्यात् ।

स्वतन्त्रास्तु - द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातेः साङ्कर्यवारणाय द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातिव्याप्यत्वस्वीकारात् कुतो वाय्वादेः स्पार्शन ?

◆ हेमलता ◆

त्वक्संयुक्तस्य वायूष्मादेः त्वावशून्यत्वात्, कारणविरहे कार्यानुदयात् । ततो वायूष्मादेः स्पार्शनत्वमेवाभ्युपेयम् । प्रभादेरस्पार्शनत्वादेव न तद्गतसयोगादिस्पार्शनप्रसङ्ग इति चेत् ? न, त्वाचत्वस्य कारणतावच्छेदककोटौ विशेषणत्वे = कारणीभूतसमवायानुयोगिविशेषणविधया निवेशे सति सर्वत्र पूर्वमाश्रयत्वाचनियमविरहेण गुणगुणिनो नीलरूपघटायोः युगपदग्रहणप्रसङ्गात्, कारणीभूतसमवायानुयोगिनः पूर्वक्षणे त्वाचस्यापेक्षितत्वात् । न चास्तु तर्हि त्वाचवत्त्वस्योपलक्षणत्वमिति वक्तव्यम् त्वाचवत्त्वस्य उपलक्षणत्वे = कारणीभूतसमवायानुयोग्युपलक्षणत्वोपगमे च पाकजस्पर्शोत्पत्तिकालेऽपि = विजातीयाग्निसयोगजन्यस्पर्शोत्पादसमयेऽपि स्पर्शादिग्रहणप्रसङ्गात्, पाकजस्पर्शसमवायवति घटादौ पूर्वं कदाचित् स्पार्शनसम्भवात् । न चैव भवति । पाकस्पर्शोत्पत्तिसमये तदग्रहणनियमात् । किञ्च एकस्यामेव व्यक्तौ कालभेदेन अनन्तत्वाचसम्भवेन तत्र = कारणतावच्छेदकोटौ तावत्त्वाचनिवेशापेक्षया =अनन्तस्पार्शनप्रवेशापेक्षया कारणतावच्छेदकोटौ महत्त्वोद्भूतस्पर्शयोः उभयोरेव निवेशौचित्यात् ।

स्वतन्त्रास्तु इति आहुरित्यनेनान्वेति । द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकेकत्वनिष्ठजाते द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजात्या साक साङ्कर्यवारणाय द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातेः द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातिव्याप्यत्वस्वीकारात् कुतो वाय्वादे = वायूष्मादेः स्पार्शनम् ? नैवेत्यर्थः । अयमाशयः स्वतन्त्राणाम् → त्रसरेणोः चाक्षुप भवति न तु स्पार्शनम् । द्रव्यचाक्षुपस्पार्शनयोर्विजातीयैकत्वस्य कारणत्वम् ।

▶ वल्लभा ◀

न, त्वा० । किन्तु यह कथन असङ्गत है, क्योकि कारणीभूत समवाय के अनुयोगी मे त्वाचत्व विशेषणविधया मान्य हो तव तो गुण-गुणी दोनो का एक ही काल मे स्पार्शन प्रत्यक्ष हो नही सकेगा। देखिये, गुण द्रव्यान्यद्रव्यसमवेत होने की वजह गुण के स्पार्शन के पूर्व समवाय के अनुयागी मे स्पार्शनत्व = त्वाचत्व = त्वगिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षविपयता की उपस्थिति होनी आवश्यक है। विद्यमान धर्म ही विशेषण वन सकता है न कि अविद्यमान धर्म । कारण की उपस्थिति कार्योत्पत्ति के अव्यवहितपूर्व क्षण मे आवश्यक हे । अत गुण के स्पार्शन के समानकालीन गुणी के स्पार्शन की उत्पत्ति असम्भवित हो जायेगी । मगर गुण-गुणी का युगपत् स्पार्शन प्रसिद्ध है, जिसका अपलाप करना अनुचित है । इसलिये त्वाचत्व का समवायअनुयोगी के विशेपणविधया निवेश हो नही सकता । यदि त्वाचत्व का समवायअनुयोगी के उपलक्षणत्वेन प्रवेश किया जाय तव यद्यपि गुण-गुणी का समकालिक स्पार्शन तो हो सकेगा, क्योकि उपलक्षण यदा कदाचित् अधिकरण मे रह कर भी अपना काम कर सकता है तथापि पाकज स्पर्श की उत्पत्ति के समय ही घटादि के पाकज स्पर्श के स्पार्शन प्रत्यक्ष की आपत्ति दुर्वार होगी, क्योकि पाकज स्पर्श की उत्पत्ति के पूर्व घटादि का त्वाच साक्षात्कार मुमकिन होने से त्वाचत्व मे पाकज स्पर्श के समवाय के अनुयोगी की उपलक्षणता = परिचायकता अवाधित हे । मगर विजातीयअग्निसयोगजन्य स्पर्श की स्वोत्पत्तिकालावच्छेदेन स्पार्शनविपयता अस्वीकार्य है । इसलिये त्वाचत्व को उपलक्षण भी नही माना जा सकता है । इसके अतिरिक्त दूसरी वात यह हे कि एक ही व्यक्ति मे कालभेद से अनन्त स्पार्शन साक्षात्कार उत्पन्न होते हे । अत त्वाचत्व को उपलक्षण मानने पर तादृश अनन्त स्पार्शन के प्रवेश की गोरवग्रस्त कल्पना को प्रामाणिक कहने का दु साहस करना होगा । इसलिये त्वाचत्व का कारणतावच्छेदककोटि मे उपलक्षणविधया प्रवेश हो नही सकता - यह फलित होता ह । इस गौरव की अपेक्षा द्रव्यान्य-द्रव्यसमवेतरपार्शनकारणतावच्छेदककोटि मे महत्त्व और उद्भूतस्पर्श दोनो का ही प्रवेश करना उचित हे ।

■■ चाक्षुपस्पार्शनोभयजनकतावच्छेदक एक ही जाति - स्वतन्त्रमत ■■

स्वत० । स्वतन्त्र विद्वानो की यह राय है कि →' द्रव्यस्पार्शन प्रत्यक्ष एव द्रव्यचाक्षुप साक्षात्कार का कारण विजातीय एकत्व ही हे । त्रसरेणु का चाक्षुप होता हे, स्पार्शन प्रत्यक्ष होता नही है । यदि वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष माना जाय तव द्रव्यस्पार्शन जनकतावच्छेदक एकत्वनिष्ठ जातिविशेष का द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदक एकत्वनिष्ठ जातिविशेष के साथ साङ्कर्य प्रसक्त होगा । वह इस तरह- स्पार्शनाऽविपयीभूत त्रसरेणु के एकत्व मे द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदकजाति रहती हे किन्तु द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदक जाति रहती नही हे । वायु के एकत्व मे द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक जाति रहती है किन्तु द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदक जाति रहती नही है । जव कि

प्रकृष्टमहत्त्वोद्भूतस्पर्शयोः द्रव्यस्पार्शनं प्रति गौरवेणाऽहेतुत्वात्, एकत्वस्य विजातीयैकत्वे हि तत्त्वा(द्वैरूप्याभावा)द् ।

अथ त्रसरेणोरचाक्षुषत्वाभ्युपगमेन द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातेरेव द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजाति-व्याप्यत्वं किं न स्यादिति चेत् ।

◆ हेमलता ◆

यदि चक्षुरयोग्यद्रव्यस्यापि वायूष्मादेः स्पार्शनत्वमभ्युपगम्येत तदा द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठवैजात्येन मम द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकस्यैकत्व-निष्ठवैजात्यस्य साङ्कर्यमापद्येत । तथाहि - वायुस्पार्शनजनकैकत्वे द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकजातिरस्ति द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदकजातिर्नास्ति । परस्परव्यधिकरणयोः द्रव्यचाक्षुषस्पार्शनहेतुतावच्छेदकवैजात्ययोः घटादिनिष्ठैकत्वे सत्त्वात् साङ्कर्यम् । एतत्साङ्कर्यापाकरणाय द्रव्यगोचरस्पार्शनजनकतावच्छे-दकजातेः द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकजातिव्याप्यत्वमेवाङ्गीकर्तुमर्हति । वायूष्मादेः चाक्षुषं न भवतीति सर्वविदितम् । अत एव वायूष्मादिनिष्ठैकत्वे द्रव्य-चाक्षुषजनकतावच्छेदकवैजात्यस्याभावः निश्चीयते । द्रव्यविषयकचाक्षुषजनकतावच्छेदकवैजात्यस्य द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकवैजात्यव्याप-कत्वात् । वायूष्मादिनिष्ठैकत्वे द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकजातिविरहः सिध्यति, व्यापकाभावस्य व्याप्याभावसाधकत्वात् । अतो न वायूष्मादेः स्पार्शनसम्भवः कारणाभावे कार्यानुदयात् । द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठवैजात्यानभ्युपगमे तु प्रकृष्टमहत्त्वोद्भूतस्पर्शयोः द्रव्यस्पार्शनं प्रति कारणत्वकल्पनाया गौरवेण कारणतावच्छेदकधर्मगौरवेण तेन रूपेण अहेतुत्वात् = तादृशकारणत्वानुपगमात् । द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठवैजा-त्यानभ्युपगमे तु महत्त्वरूपयोः द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्ने कारणत्वकल्पनागौरवमनिवारितप्रसरं स्यात् । एकत्वस्य विजातीयैकत्वे हि तत्त्वादिति । अत्र स्थले एकस्य विजातीयैकत्वस्यैव तत्त्वौचित्यादिति पाठः समीचीनः प्रतिभाति । स्याद्वादकल्पलताया दशमस्तबके तथैव पाठदर्शनात् ।

शङ्कते - अथेति । चेदित्यनेनान्वयः । त्रसरेणोः अचाक्षुषत्वाभ्युपगमेन = चक्षुर्जन्यप्रतीत्यविषयत्वस्वीकारेण, द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकैकत्वनि-ष्ठजातेः एव द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातिव्याप्यत्वं न तु द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातेर्द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकैकत्ववृत्तिजात्य-व्याप्यत्वमित्येव किं न स्यात् ? साङ्कर्यभिया वायूष्मादेर्न स्पार्शनमाहोस्वित् त्रसरेण्वादेर्वा चाक्षुषमित्यत्राऽविनिगमात् । न च वायूष्मादिस्पर्शादेरेव स्पार्शनं न तु वायूष्मादेरिति वाच्यम् त्रसरेण्वादिरूपादेरेव चाक्षुषं न त्रसरेण्वादेरित्यस्यापि सुवचत्वात् । न च 'त्रसरेणुः रूपवान्' 'त्रसरेणुश्चलति' इत्यादिप्रत्यक्षानन्तरं 'त्रसरेणुं पश्यामी'त्यबाधितानुव्यवसायबलात् त्रसरेण्वादेश्चाक्षुषमावश्यकमिति वाच्यम् तदा 'शीतो वायुर्वाती'ति प्रत्यक्षानन्तरं 'वायुं स्पृशामी'त्यबाधितानुव्यवसायबलात् द्वयोरपि स्पार्शनत्वस्यावश्यकत्वात् । 'त्रसरेणुं पश्यामी'त्यनुव्यवसायस्य बाधितत्वं निश्चितं 'वायुं स्पृशामी'त्यस्य वा बाधितत्वं सन्दिग्धमित्यस्य शपथमात्रनिर्णेयत्वादिति चेत् ? न, एवंविधविरोधे विषयमात्राऽसिद्धेः विनिगमनाविरहादुभयोरेव साङ्कर्यवारणाय

► वल्लभा ◄

घटादि का स्पार्शन एवं चाक्षुष उभय होने की वजह घटादिनिष्ठ एकत्वसङ्ख्या में द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक जाति और द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदकजाति उभय रहती है । परस्पर व्यधिकरण धर्मों का एकत्र समावेश होने की वजह साङ्कर्य दोष प्रसक्त है । साङ्कर्य का निराकरण करने के लिये तादृश द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक एकत्वनिष्ठ जाति को द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदक एकत्वसङ्ख्यावृत्ति जाति की व्याप्य माननी ही युक्तिसङ्गत है । मतलब कि जहाँ जहाँ द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक जाति रहती है वहाँ वहाँ द्रव्यचाक्षुषजनकतावच्छेदक जाति रहती है जैसे घटादिगत एकत्वसङ्ख्या । जहाँ द्रव्यचाक्षुषहेतुतावच्छेदकजाति नहीं रहती है वहाँ द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक जाति रहती नहीं है जैसे आकाशगत एकत्वसङ्ख्या । इस तरह व्याप्य-व्यापकभाव निश्चित होने की वजह वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष हो नहीं सकता, क्योंकि वायु का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होने से वायुगत एकत्वसङ्ख्या में द्रव्यचाक्षुष जनकतावच्छेदकजाति रहती नहीं है । व्यापकाभाव व्याप्याभाव का साधक होने से वायुगत एकत्वसङ्ख्या में द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक जाति का भी अभाव सिद्ध होता है । कारणतावच्छेदकविशिष्ट की अविद्यमानता होने की वजह कार्य की उत्पत्ति हो सकती नहीं है । यदि द्रव्यस्पार्शनकारणतावच्छेदकजाति के आश्रयविधया विजातीय एकत्व का स्वीकार न किया जाय तब प्रकृष्ट महत्त्व एवं उद्भूतरूप में द्रव्यस्पार्शन की कारणता की कल्पना करनी होगी, जिसमें गौरव है । अतएव उनमें द्रव्यविषयक त्वाच की हेतुता की कल्पना नहीं की जा सकती । विजातीय एकत्व को द्रव्यस्पार्शन का कारण मानने पर गौरव प्रसक्त नहीं होगा, क्योंकि विजातीय एकत्व के दो स्वरूप नहीं है । मतलब कि दो कारणतावच्छेदक धर्म की कल्पना का गौरव प्रसक्त नहीं होगा ।

अथ० यहाँ इस शङ्का का कि→'आप वायु का स्पार्शन मानते नहीं है किन्तु वायु के स्पर्श का स्पार्शन मानते हैं। मगर इसके विपरीत हम त्रसरेणु का चाक्षुष मानते नहीं है किन्तु त्रसरेणु के रूपादि का चाक्षुष मानते है । साङ्कर्य का परिहार इस तरह भी हो सकता है । इस पक्ष में द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदक एकत्वनिष्ठजाति द्रव्यस्पार्शनकारणतावच्छेदकएकत्वनिष्ठ-जाति की व्याप्य ही होगी न कि पूर्वोक्त पद्धति से व्यापक । ऐसी कल्पना क्यों मान्य की न जाय ? वायु का स्पार्शन न मानना या त्रसरेणु का चाक्षुष

तथापि एकस्या एवैकत्वनिष्ठजातेर्द्रव्यचाक्षुपस्पार्शनोभयजनकतावच्छेदकत्वान्न वाय्वादेः स्पार्शनत्वमित्याहुः ।

तन्न तादृशी जातिरेकत्वनिष्ठा स्वीकर्तव्या महत्त्वनिष्ठा ? इति विनिगमनाविरहात्, त्रुटावेव विश्रामे रूपत्वेन द्रव्यचाक्षुप प्रति एकस्या एव हेतुताया अभ्युपगमे तज्जनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातौ मानाभावाच्च ।

केचित्तु स्पार्शनजनकतावच्छेदकवैजात्यव्यापकत्रसरेण्वेकत्वसाधारणवैजात्यस्य नित्यैकत्वसाधारणत्वे महत्त्वोद्भूतरूपयोः पृथ-

◆ हेमलता ◆

भ्रमत्वकल्पनायामपि वायूष्मादेः प्रत्यक्षत्वासिद्धे" । अस्तु वा तथा तथापि = त्रुटेरचाक्षुपत्वोपगमेऽपि एकस्या एव एकत्वनिष्ठजाते द्रव्यचाक्षुपस्पार्शनोभयजनकतावच्छेदकत्वात् न वाय्वादे स्पार्शनत्वम् । यस्यैव चाक्षुप तस्यैव स्पार्शन, यस्यैव च स्पार्शन तस्यैव द्रव्यस्य चाक्षुपमिति न जातिद्वय कल्पनीयमिति लाघवमपि द्रव्यस्पार्शनचाक्षुपकारणताच्छेदककोटाविति प्रबलतरयुक्त्या नैयायिकराद्धान्तपरिरक्षणाय आहु ।

स्वतन्त्रमत प्रतिक्षिपति - तन्नेति । तादृशी = द्रव्यस्पार्शनचाक्षुपोभयजनकतावच्छेदिका जाति एकत्वनिष्ठा स्वीकर्तव्या महत्त्वनिष्ठा वा ? इति विनिगमनाविरहात् उभयत्र तादृशजातिकल्पने गौरवात् ।

किञ्च रघुनाथशिरोमणिप्रभृतिमतानुसारेण त्रुटावेव अवयवधाराया विश्रामे = पर्यवसाने अभ्युपगते सति रूपत्वेन द्रव्यचाक्षुप = द्रव्यगोचरचाक्षुपत्वावच्छिन्न प्रति एकस्या एव कारणताया = द्रव्यगोचरचाक्षुपत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितरूपत्वावच्छिन्नकारणताया अभ्युपगमे तु तज्जनकतावच्छेदकैकत्वनिष्ठजातौ = द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदकैकत्वसङ्ख्यावृत्तिजातिविशेषे मानाभावाच्च । त्रुटावेवावयवधाराया विश्रामे परमाणु-द्व्यणुकयोरभावान्न चाक्षुपमिति केवलस्य रूपस्य चाक्षुपकारणत्वेऽपि न कश्चित् दोषः । रूपस्य कारणत्वापेक्षयैकत्वसङ्ख्यायाः तत्कारणत्वे न लाघवमपि वैजात्यकल्पनमधिकमेवेति नैकत्वसङ्ख्याया द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदकजातिकल्पनेऽस्ति किञ्चित्प्रमाणम् । अत एव न तत्सिद्धिः, 'मानाधीना मेयसिद्धि'रिति वचनादिति तात्पर्यम् ।

वायुस्पार्शनानभ्युपगन्तृणा मतमाह केचित्त्विति आहुरित्यनेनान्वेति । स्पार्शनजनकतावच्छेदकवैजात्यव्यापकत्रसरेण्वेकत्वसाधारणवैजात्यस्य = द्रव्यस्पार्शनकारणतावच्छेदकीभूत यद्वैजात्य तद्व्यापकस्य त्रसरेणुगतैकत्वसङ्ख्यानुगतस्य द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदकीभूतस्य जातिविशेपस्य नित्यैकत्वसाधारणत्वे = सकलनित्यद्रव्यगतैकत्वसङ्ख्यासमवेतत्वोपगमे, नित्यैकत्वेपु मध्ये परमाण्वेकत्वसाधारणत्वेन परमाणुचाक्षुपप्रत्यक्षापत्तिः

▶ वल्लभा ◀

न मानना- इस पक्ष मे विनिगमक नही होने से दोनो तादृश प्रतीति को भ्रमात्मक मानी जा सकती है । अत द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक जाति की व्याप्य द्रव्य-चाक्षुपजनकतावच्छेदक जाति है, जो एकत्ववृत्ति है, यह फलित होता है । क्या यह हो सकता है ?'← समाधान यह है कि त्रसरेणु के चाक्षुप का इन्कार किया जाय तो भी जिसका चाक्षुप होता है उसीका स्पार्शन होता है ओर जिसका स्पार्शन होता है उसीका चाक्षुप होता है । इसलिये एकत्वसङ्ख्या मे द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदक एव द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदक एक ही जाति का स्वीकार करना उचित है । जातिद्वय की कल्पना व्यर्थ है, गौरवग्रस्त है । इस कार्यकारणभाव को मान्य करने पर भी वायु का स्पार्शन प्रत्यक्ष तो हो नही सकेगा, क्योकि वायुगत एकत्वसङ्ख्या मे द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदक जाति नही रहने की वजह उससे अभिन्न द्रव्यस्पार्शनकारणतावच्छेदक जाति भी वहाँ रहती नही है । इस तरह चाक्षुप के अविपय वायु द्रव्य का स्पार्शन असिद्ध है' ।

■● स्वतन्त्रमतनिराकरण ●■

तन्न० । मगर सोचने पर स्वतन्त्र विद्वानो का उपर्युक्त मत असङ्गत प्रतीत होता है । इसका कारण यह है कि द्रव्यचाक्षुप-स्पार्शनउभयकारणतावच्छेदक जाति को एकत्वसङ्ख्या मे मान्य की जाय या महत्त्व मे ? इस विषय मे कोई विनिगमक नहीं है । विनिगमनाविरह के सबब उभय मे तादृश जाति का स्वीकार करने पर गौरव प्रसक्त होता है । दूसरी बात यह है कि जिन विद्वानो के मतानुसार अवयव धारा का त्रसरेणु मे ही विश्राम = पर्यवसान होता है न कि परमाणु मे उनके मतानुसार द्रव्य-चाक्षुप के प्रति रूपत्वेन ही कारणता मान्य होगी । त्रसरेणु मे रूप होने की वजह उसका चाक्षुप होता है । नीरूप द्रव्य का चाक्षुप होता नही है । अत इस पक्ष मे द्रव्यचाक्षुपजनकतावच्छेदक जाति को एकत्ववृत्ति नही मानी जा सकती किन्तु रूपवृत्ति ही मानी जा सकती है । इसलिये द्रव्यचाक्षुपकारणतावच्छेदक जाति को एकत्वसङ्ख्यावृत्ति मानने मे कोई प्रमाण नही है - यह सिद्ध होता है ।

केचि० । कुछ विद्वानो का यह मन्तव्य है कि → त्रसरेणु का चाक्षुप प्रत्यक्ष होता है, क्योकि द्रव्यस्पार्शन की कारणतावच्छेदक

क्कारणताद्वयकल्पनमावश्यकं निखिलतद्व्यावृत्तत्वे च कार्यमात्रवृत्तिजातितया तदवच्छिन्नं प्रति कस्यचित् कारणत्वस्यावश्यकतया द्रव्यचाक्षुषं प्रत्येकत्वकारणतामादाय कारणताद्वयकल्पनमावश्यकं वैजात्यकल्पनं पुनरधिकमित्याहुः इति वायुप्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वविचारः ।६।। षष्ठो वादः सम्पूर्णः ।।

◆ हेमलता ◆

गगनाद्येकत्वसाधारणत्वेन च गगनादिचाक्षुषप्रसङ्गः । तन्निरासाय क्रमेण महत्त्वोद्भूतरूपयोः पृथक्कारणताद्वयकल्पनमावश्यकम् । परमाण्वादौ उद्भूतरूपसत्त्वेऽपि महत्त्वविरहान्न तच्चाक्षुषं न वा महत्त्ववतो गगनादेरपि चाक्षुषप्रसङ्गः तत्रोत्कटरूपविरहात् । किन्त्वेवं सति कार्यकारणद्वयकल्पनमविशिष्टमेव एकत्वनिष्ठवैजात्यकल्पनं पुनरधिकमेव । तादृशवैजात्यस्य निखिलतद्व्यावृत्तत्वे = सकलनित्यैकत्वाऽसमवेतत्वे च कार्यमात्रवृत्तिजातितया = जन्यमात्रनिरूपितवृत्तिताकजातित्वेन तदवच्छिन्नं = द्रव्यस्पार्शनजनकतावच्छेदकैकत्ववृत्तिवैजात्यव्यापक-त्रुटिगतैकत्वानुगत-द्रव्य-चाक्षुषजनकतावच्छेदकवैजात्यावच्छिन्नं प्रति कस्यचित् कारणत्वस्य आवश्यकतया = अवश्यक्लृप्तत्वेन द्रव्यचाक्षुषं = द्रव्यचाक्षुषत्वावच्छिन्नं प्रति एकत्वकारणतां = एकत्वसङ्ख्यायाः हेतुताम् आदाय = अङ्गीकृत्य, कारणताद्वयकल्पनं = निरुक्तवैजात्यावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतायाः द्रव्यचाक्षुषनिरूपितकारणतायाश्च कल्पनं आवश्यकं एव वैजात्यकल्पनं = एकत्वसङ्ख्यावृत्तिवैजात्यस्य कल्पनं पुरधिकं एव, कार्यमात्रवृत्तिजातेः कार्यतावच्छेदकत्वनियमस्य सकलप्रामाणिकसिद्धत्वादिति व्यक्तमेव वायुस्पादे प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वविवादरहस्यप्रकरणे ।

यदि च द्रव्यचाक्षुषं प्रति प्रकृष्टमहत्त्वोद्भूतरूपयोः कारणत्वमङ्गीक्रियते तदा नैकत्ववृत्तिवैजात्यकल्पनमावश्यकमिति लाघवम् । तथा च न वायुस्पार्शनाऽसम्भवः, तस्योद्भूतरूपकार्यतावच्छेदकानाक्रान्तत्वात् ।

नवीनास्तु 'बहिरिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षमात्रे न रूपं कारणं प्रमाणाभावात् किन्तु चाक्षुषप्रत्यक्षे रूपं स्पार्शनप्रत्यक्षे च स्पर्शः कारणमन्वयव्यतिरेकात् । बहिरिन्द्रियजन्यद्रव्यप्रत्यक्षमात्रे किं कारणमिति चेत् ? न किञ्चिदपि । आत्माऽवृत्तिशब्दभिन्नविशेषगुणवत्त्वं वा प्रयोजकमस्तु । रूपस्य कारणत्वे लाघवमिति चेत् ? न, वायोस्त्वगिन्द्रियेणाऽग्रहणप्रसङ्गात् । इष्टापत्तिरिति चेत् ? उद्भूतस्पर्श एव लाघवात्कारणमस्तु, प्रभाया अप्रत्यक्षत्वे त्विष्टापत्तिरेव किं नेष्यते ? तस्मात् 'प्रभां पश्यामी'तिवत् 'वायुं स्पृशामी'ति प्रत्ययात् वायोरपि प्रत्यक्षत्वमनाविलमेव, बहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षमात्रे न रूपस्य न वा स्पर्शस्य कारणत्वं । वायुप्रभयोरेकत्वं गृह्यत एव, क्वचित् द्वित्वादिकमपि ।क्वचित् सङ्ख्यापरिमाणाद्यग्रहस्तु सजातीयसवलनादिदोषादिति वदन्ति ।

यत्तु 'प्रभायाः प्रत्यक्षत्वस्य उभयमतसिद्धत्वात् द्रव्यवृत्तिलौकिकविषयतासम्बन्धेन मानसान्यप्रत्यक्षं प्रति उद्भूतस्पर्शस्य निर्णीतव्यभिचारकत्वेन न हेतुत्वं वायोः प्रत्यक्षत्वस्योभयवादसम्मतत्वेन मध्यस्थस्य सन्देहविषयतया तत्सन्देहाधीनव्यभिचारसंशयविषयत्वेनोद्भूतरूपस्य सन्दिग्धव्यभिचारकत्वादीदृ-

▶ वल्लभा ◀

जाति की व्यापक जाति वह है जो त्रसरेणुगत एकत्वसङ्ख्या मे रहती है और द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदक होती है । त्रसरेणु मे जो एकत्वसङ्ख्या है उसमे द्रव्यस्पार्शनकारणतावच्छेदक जाति भले ही न रहे मगर द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदक जाति रहती है । मगर इस द्रव्यचाक्षुषहेतुतावच्छेदक जाति को नित्य एकत्वसङ्ख्या मे समवेत मानने पर वह परमाणुगत एकत्वसङ्ख्या मे भी समवेत होने की वजह परमाणु के चाक्षुष की आपत्ति आयेगी । इसके निवारणार्थ महत्त्व = महत्परिमाण मे द्रव्यचाक्षुषकारणता का स्वीकार करना होगा । फिर भी गगन के चाक्षुष का निराकरण हो नहीं सकेगा, क्योंकि गगन मे द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदकजातिवाली एकत्वसङ्ख्या एवं महत्त्व रहते है । इसके परिहारार्थ पुनः उद्भूतरूप मे द्रव्यचाक्षुषकारणता का स्वातन्त्र्येण स्वीकार करना होगा । इस तरह द्रव्य-चाक्षुषकारणतावच्छेदकजाति को नित्य एकत्वसङ्ख्या मे समवेत मानने पर महत्त्व और उद्भूतरूप मे कारणता की कल्पना आवश्यक बनेगी । यदि द्रव्य-चाक्षुषकारणतावच्छेदक जाति को निखिल नित्य एकत्व सङ्ख्या से व्यावृत्त मानी जाय यानी किसी भी नित्य एकत्व सङ्ख्या मे असमवेत मानी जाय अर्थात् जन्यमात्र एकत्वसङ्ख्या मे समवेत मानी जाय तब तदवच्छिन्न अर्थात् द्रव्यचाक्षुषकारणतावच्छेदकावच्छिन्न के प्रति अन्य कारणता की कल्पना करनी होगी, क्योंकि कार्यमात्रवृत्ति जाति अवश्य कार्यतावच्छेदक बनती है - यह नियम सकलप्रामाणिकसिद्ध है । एवं एकत्वसङ्ख्या मे द्रव्य-चाक्षुषकारणता की कल्पना भी आवश्यक होगी । इस तरह दो कारणता की कल्पना तो आवश्यक ही बनेगी और एकत्वसङ्ख्यावृत्तित्वेन वैजात्य = जातिविशेष की कल्पना अधिक होगी । इसकी अपेक्षा प्रकृष्ट महत्त्व और उद्भूत रूप मे ही द्रव्यविषयक चाक्षुष की कारणता की कल्पना करनी उचित है, क्योंकि तब वैजात्य कल्पना अनावश्यक है । इस तरह उद्भूत रूप एवं प्रकृष्ट महत्त्व मे द्रव्यचाक्षुषकारणता निर्णीत होने से वायु का स्पार्शन निराबाध है, क्योंकि द्रव्यस्पार्शन के प्रति उद्भूत रूप कारण नहीं है । इस तरह सिद्ध होता है कि- वायु का स्पार्शन साक्षात्कार होता है । इस तरह वायुप्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वविचारनामक छठा वाद सम्पूर्ण हुआ ।

◆ हेमलता ◆

शव्यभिचारसशयस्य कारणताग्रहप्रतिबन्धकत्वेऽपि उद्भूतरूपत्वेन कारणत्वे लाघवमिति लाघवज्ञानस्योत्तेजकतया उत्तेजकाभावविशिष्टताद्दशसशयरूपप्रतिबन्धकाभावेनोद्भूतरूपस्य कारणताग्रहसम्भवः । उद्भूतरूपस्य तु व्यभिचारनिर्णयवत्त्वेन तत्र लाघवज्ञानस्यानुत्तेजकतया कारणताग्रहो न सम्भवतीति [मु प्र पृ ४२५] मुक्तावलीप्रभाया नृसिहशास्त्रिणोक्त तन्न चारुतया सचेतसा चेतसि चकास्ति, वायोः न प्रत्यक्षत्वमाहोस्वित् प्रभाया इत्यत्रापि विनिगमनाविरहेण लाघवतर्कोत्तेजकत्वस्योभयत्र तुल्यत्वात्, पर्यनुयोगप्रत्यत्तुरयोरुभयत्र समत्वात् । न हीयमीश्वराज्ञा यद् वायोरेवाप्रत्यक्षत्व न प्रभाया इति ।

यत्तु 'उपरिदेशे विहङ्गम' इत्यत्र प्रभामण्डलस्यैवोपरिदेशतया तत्प्रत्यक्ष विना 'उपरिदेशे विहङ्गम' इति प्रत्यक्षानुपपत्तेः [मु दि पृ ४२५] इति मुक्तावलीदिनकरीयवृत्तावुक्त तदपि न सम्यक्, आलोकविरहेऽपि 'इह' इतिप्रतीतेः आलोकमण्डलातिरिक्तस्य क्षेत्रस्यैव तद्विषयत्वादिति स्याद्वादकल्पलताया व्यासतः प्रतिपादित ततोऽवसेयम् ।

यच्च तत्त्वचिन्तामणो 'द्रव्यस्य स्पार्शनत्वे उद्भूतस्पर्शमात्र न तत्र निदाघोष्मणि वायूपनीतशीतोष्णद्रव्ये च प्रत्यक्षत्वेन तद्गतसङ्ख्या-परिमाण-सयोग-विभाग-कर्मणा प्रत्यक्षत्वप्रसङ्गात् योग्यव्यक्तिवृत्तित्वेन तेपा योग्यतया द्रव्यग्राहकसामग्रीग्राह्यत्वावधारणात् । न चोष्मादिजातीये दोपाभावेऽपि घटादाविव करपरामर्शे कदाचित् केनाऽपि सङ्ख्या गृह्यते । तथोद्भूतरूपवत्त्वमात्रस्य तथात्वे चान्द्राद्युद्योतस्य नयनगतपित्तद्रव्यस्य च प्रत्यक्षत्वे तद्गतसङ्ख्याग्रहोऽपि स्यात् । न च घटादाविव निपुणतर निभालयन्तोऽपि तद्गतसङ्ख्याद्वित्वादि हस्त-वितस्त्यादिपरिमाण कर्म वा वीक्षामहे इत्येकैकव्यभिचारात् विनिगमकाभावादुभयमपि वहिरिन्द्रियद्रव्यप्रत्यक्षे प्रयोजकमिति वायुरप्रत्यक्ष' [त चि प्र ख पृ ७३] इति नवीनमतमुपदर्शित गङ्गेशेन, तन्न, उभयप्रयोजकताया गौरवादिति जयदेवमिश्रा ।

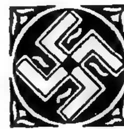
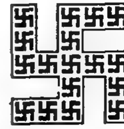
प्रकाशव्याख्याकृत् रुचिद्रतमिश्रस्तु प्रकृतास्वरसवीजमेवमाह— 'सौरतेजसः प्रत्यक्षत्वे तद्गतसङ्ख्यादिप्रत्यक्षतापत्तिरित्याद्यपि स्यात् । यदि च तत्प्रत्यक्षत्वेऽपि तदप्रत्यक्षतैव, औत्सर्गिकत्वेऽपि तन्नियमस्येहाऽसम्भवेन त्यागात् । तदा लाघवेनोद्भूतरूपवत्त्वमात्रमेव तथास्तु । चन्द्राद्युद्योतादेः प्रत्यक्षत्वेऽपि तत्सङ्ख्यादीना तद्वदेवाऽप्रत्यक्षत्वोपपत्तेः । विष्वग्विसारिसरूपसजातीयसवलनरूपदोपात्तदनुपलम्भ इत्यपि तुल्यमिति' [त चि प्र पृ ७९८] तदसत् उद्भूतस्पर्शस्यैव स्पार्शनजनकत्वात् । एतेन प्रभाचाक्षुपे व्यभिचारः प्रत्यस्तः, प्रभाचाक्षुपत्वस्योद्भूतस्पर्शकार्यतानवच्छेदकत्वात् ।

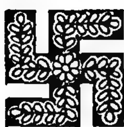
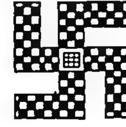
वस्तुतस्तु द्रव्यस्य स्पार्शनत्वेन न तद्गतसङ्ख्यादिप्रत्यक्षत्वप्रसङ्गः, योग्यव्यक्तिवृत्तिगुणाना सार्वत्रिकयोग्यत्वनियमस्यैवाऽसिद्धत्वात् । दृष्ट हि पृष्ठलग्नवस्त्रसमुद्रजलसिकतादिप्रत्यक्षत्वेऽपि तद्गतसङ्ख्या-परिमाण-सयोगादीनामग्रहणम् । दोपाभावे सत्येव द्रव्यसाक्षात्कारे तद्गतगुण- साक्षात्कारनियमात् । सङ्ख्यादेर्द्रव्यग्राहकसामग्रीग्राह्यतानियमस्यौत्सर्गिकत्वेनाऽदोप इति भावः । 'गुणप्रत्यक्षत्वाद् गुणिनोऽपि प्रत्यक्षत्वमिति तु पर्याये द्रव्यारोपेण शक्त्यादीना द्रव्यार्थतया प्रत्यक्षत्ववद् द्रव्ये पर्यायारोपेण पर्यायोपचारपर्यवसित भवेदित्यधिक प्रमेयमालाया वायुप्रकरणादवसेयमिति दिक् ।

स्याद्वादमुद्रयोक्त हि वायुः प्रत्यक्ष इष्यताम् ।
तत्परिमाणसङ्ख्याग्रहो नियतो न वेति किम् ॥१॥

इति मुनियशोविजयविरचिताया हेमलताभिधानाया वादमालाटीकाया षष्ठो वाद । ॥



● सप्तमः शब्दनित्यत्वानित्यत्ववादः ●

शब्दो नित्यः, 'सोऽयं गकारः', 'श्रुतपूर्वोऽयं गकारः' इतिप्रत्यभिज्ञानान्यथानुपपत्त्या तत्सिद्धेः । 'उत्पन्नो गकारो विनष्टो गकार' इत्यादिप्रतीतेः भ्रमत्वात्, अन्यथानन्तशब्दप्रागभाव-प्रध्वंसादिकल्पने गौरवात् । एतेनाऽनन्तोत्पत्त्यादिप्रतीतीनां भ्रमत्वमपेक्ष्य प्रत्यभिज्ञामात्रस्य तत्त्वकल्पने लाघवमिति अपास्तम्, प्रत्यभिज्ञानामप्यानन्त्याच्च । ज्ञानबाहुल्ये विषयबाहुल्यस्याऽप्रयोजकत्वात् ।

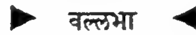


हेमलता

सम्मृत्य शारदादेवीं नत्वा गुरुं च भावतः ।
शब्दे महेतुकत्वं वाऽन्यथा वेति विचार्यते ॥१॥

मीमांसकनैयायिकयोः 'शब्दो नित्यो न वा' इति विप्रतिपत्तिः । तत्र 'शब्दः = शब्दपदप्रतिपाद्यः नित्यः = प्रागभावध्वंसाऽप्रतियोगी एव' इति विधिकोटिवादिनो मीमांसकाः । न च कुतः तत्सिद्धिः ? इति वाच्यम् 'सोऽयं गकारः यमेव पूर्वमश्रौषं', 'श्रुतपूर्वोऽयं गकारः' इतिप्रत्यभिज्ञानान्यथानुपपत्त्या = दर्शितसार्वलौकिकस्वारसिकाऽबाधितप्रत्यभिज्ञानप्रमाणान्यथानुपपत्त्या तत्सिद्धेः = शब्दस्य नित्यत्वनिश्चयात् । श्रुत-श्रूयमाणगकाराऽभेदसाधकप्रत्यभिज्ञानस्याऽबाधाच्छब्दस्यैकान्तनित्यत्वमित्याशयः । न च 'उत्पन्नो गकारो विनष्टो गकार' इतिप्रतीतेरपि सद्भावात् अभेदविषयिण्या निरुक्तप्रत्यभिज्ञाया बाध इति वाच्यम् 'उत्पन्नो गकारो विनष्टो गकार' इत्यादिप्रतीतेः भ्रमत्वात्, भ्रमस्य बाधकत्वात् । न चात्रैवाऽविनिगम इति वाच्यम्, अन्यथा = शब्दोत्पादादिप्रतीतेः प्रमात्वोपगमे अनन्तशब्दप्रागभाव-प्रध्वंसादिकल्पने गौरवात् । शब्दोत्पादादिप्रतीतेः वायूत्पादादिविषयताकत्वमेवेति न तस्याः प्रत्यभिज्ञाबाधकत्वम् । शब्दव्यञ्जकवायूत्पादविनाशौ सामीप्यादिदोषवशाच्छब्दे आरोप्येते यथा जपाकुसुमगतरक्तिमा सन्निहितस्फटिकशकलादौ, उत्पत्तेः स्वत्वगर्भत्वेऽपि खण्डशः तदारोपसम्भवात् । अतो न पूर्वापरकालीनगकाराऽभेदावगाहित्वे निरुक्तप्रत्यभिज्ञाया अप्रामाण्यम् ।

एतेन = शब्दोत्पादादिकल्पने गौरवप्रतिपादनेन, अपास्तमित्यनेनास्यान्वयः । अनन्तोत्पत्त्यादिप्रतीतीनां भ्रमत्वमपेक्ष्य प्रत्यभिज्ञामात्रस्य तत्त्वकल्पने = भ्रमत्वकल्पनाया लाघवमिति नैयायिकमतमपि अपास्तम्, शब्दोत्पादादिगौरवस्योक्तत्वात्, शब्दोत्पादादिप्रतीतीनामिव प्रत्यभिज्ञानामपि आनन्त्याच्च । प्रत्यभिज्ञानां विषयतयैक्येऽपि स्वरूपतोऽनन्तत्वान्न तदप्रामाण्यस्वीकारः सम्भवति । न चोत्पद्यमानभेदेनोत्पत्तेर्नानात्वात् प्रतियोगिभेदेन विनाशस्याऽपि नानात्वात् जन्मनाशगोचरप्रतीतीनामानन्त्यं युक्तिमत्, प्रत्यभिज्ञायास्त्वभिन्नविषयकत्वान्न भेद इति वाच्यम् नानाविषयग्राहित्वेऽपि समूहालम्बनप्रतीतेरेकत्वात् एकविषयेऽपि कालभेदेनानन्तज्ञानोत्पत्तेश्च ज्ञानबाहुल्ये = ज्ञाननानात्वे विषयबाहुल्यस्य = गोचरनानात्वस्य अप्रयोजकत्वात् ।



वल्लभा

★☆ शब्द नित्य है - मीमांसक ★☆

'शब्द नित्य है या नहीं ?' इत्याकारक विप्रतिपत्ति मीमांसक और नैयायिक के बीच उपस्थित है । यहाँ विधिकोटिवादी है मीमांसक तथा निषेधकोटिवादी है नैयायिक । मीमांसकों का यह कथन है कि शब्द एकान्ततः नित्य है। इसका कारण यह है कि 'पहले जिस गशब्द को मैंने सुना था वही यह गशब्दगकार है' ऐसी अबाधित प्रत्यभिज्ञा होती है । प्रत्यभिज्ञा पूर्वापरकालीन पदार्थ में अभेद की साधक होती है । अतः उपर्युक्त प्रत्यभिज्ञा की अन्यथानुपपत्ति से पूर्वश्रुत और श्रूयमाण शब्द में ऐक्य = अभेद की सिद्धि होती है । अतएव 'शब्द उत्पन्न हुआ, शब्द नष्ट हुआ' इत्यादि प्रतीति भ्रमात्मक सिद्ध होती है । उत्पत्ति - विनाश के अप्रतियोगी शब्द में उत्पत्तिविनाश की प्रतियोगिता का अवगाहन करने से वह प्रतीति भ्रमात्मक सिद्ध होती है । यदि उपर्युक्त प्रतीति को भ्रमात्मक न मानी जाय तो अनन्त शब्द के प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव आदि की कल्पना करनी पड़ेगी, जो गौरवग्रस्त है ।

शब्दैक्यप्रत्यभिज्ञा प्रमात्मक है

एते० । यदि यह कहा जाय कि → 'उत्पत्ति और विनाश की बहुतर प्रतीतियों को भ्रम मानने की अपेक्षा प्रत्यभिज्ञा को प्रमात्मक मानने में लाघव है । इसका कारण यह है कि उत्पाद आदि प्रतीति अनन्त है जब कि प्रत्यभिज्ञा एक ही है ← तो यह ठीक नहीं है, क्योंकि प्रत्यभिज्ञा भी विषय की दृष्टि से एक होने पर भी स्वरूपदृष्टि से अनन्त है । यदि यह कहा जाय कि →'उत्पत्ति उत्पद्यमान के भेद से तथा विनाश प्रतियोगी के भेद से अनंत है । अतः उन्हें विषय करनेवाली प्रतीतियों का आनन्त्य उचित है । किन्तु प्रत्यभिज्ञा तो पूर्वज्ञात और वर्तमान में ज्ञायमान विषय के अभेदाश्रय एक विषय को ही ग्रहण करती है । इसलिये उसका आनन्त्य अनुचित है'←तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि अनेक विषयों का ग्रहण करनेवाले समूहालम्बन ज्ञान के एक होने से तथा एक ही विषय को ग्रहण करनेवाले क्रमोत्पन्न ज्ञानों में भेद होने से विषयबाहुल्य में ज्ञानबाहुल्य

अथ तारमन्दादिभेदेन गकारादेर्नानात्वावश्यकत्वात्कथ प्रत्यभिज्ञयैक्यसिद्धिः ? तारत्वादीना वायुगतत्वे च कत्वादेरपि तद्गतत्वापत्तिः । 'कत्वादेस्तद्गतत्वे शब्दवृत्तित्वेन भान श्रावण न स्यादि'ति चेत् ? तारत्वादेरपि तद्गतत्वे तन्न स्यादिति तुल्यम् । 'गकारादौ तारत्वादेः परम्परयैव भानमिति' चेत् ? ककारादौ कत्वादेरपि तथैव भानमिति समानम् । एव वायुवृत्तित्वे तस्य श्रावणमेव न स्यात्, वायुस्पर्शादेरिव स्पार्शन वा स्यात्, जातित्वाच प्रति कत्वादीना प्रतिवन्धकत्वकल्पने च गौरवादित्युभयत्र

◆ हेमलता ◆

यौगःशङ्कते-अथेति तृतीयचेत्पदेनान्वेति । 'तारोऽय गकारः' 'मन्दः स गकारः' इत्यादिप्रतीत्या तारमन्दादिभेदेन = तारत्वमन्दत्वादिविरुद्धधर्माध्यासेन, गकारादे शब्दस्य नानात्वावश्यकत्वात् पूर्वापरकालीनगकारादिभेदस्य प्रमाणसिद्धत्वात् कथ प्रत्यभिज्ञया 'स एवाय गकारो य पूर्वमश्रौषम्'इत्यादिस्वरूपया पूर्वापरकालीनगकारादीना ऐक्यसिद्धि = अभेदनिश्चयः ? निरुक्तप्रतीतिप्रत्यभिज्ञयोः सार्वजनीनत्वेनोभयोपपत्तये प्रत्यभिज्ञायाः तज्जातीयाऽभेदविषयकत्वमेवास्तु व्यक्त्यभेदविषयिण्यास्तु तस्या भ्रमत्वमेव । न च पूर्वापरशब्दाभेदेऽपि शब्दव्यञ्जकवायुगततारत्वमन्दत्वादीनामस्तु शब्दे आरोपः सामीप्यवशादिति वाच्यम्, तारत्वादीना वायुगतत्वे = वायुवृत्तित्वोपगमे च प्रतीयमानस्य कत्वादेरपि तद्गतत्वापत्ति = वायुसमवेतत्वप्रसङ्गः इति नैयायिकाशयः ।

अथ कत्वादे तद्गतत्वे = वायुसमवेतत्वे शब्दवृत्तित्वेन = शब्दसमवेतत्वेन प्रसिद्ध भान = प्रत्यक्ष श्रावण = श्रोत्रेन्द्रियजन्य न स्यात् । अतःकत्वादेः शब्दवृत्तित्वमेव न तु वायुवृत्तित्वमिति चेत् ? न, तारत्वादेरपि किमुत कत्वादे' तद्गतत्वे = वायुसमवेतत्वे कत्वादिभानमिव तारत्वादिभानमपि तत् = शब्दवृत्तित्वेन श्रावण न स्यादिति तुल्यम् । न हि 'तारोऽय ककार' इति प्रतीतो तारत्वस्याऽशब्दवृत्तित्व कत्वस्य च शब्दवृत्तिमिति वक्तु शक्यते । अतः तारत्वादि -कत्वादीना शब्दगतत्वमेव न्याय्यमिति फलितम् ।

अथ 'तारोऽय गकार'इत्यत्र गकारादौ तारत्वादे परम्परया = स्वसमवायिपवनसयुक्तगगनसमवेतत्वसम्बन्धेन एव भान गत्वादेस्तु साक्षात्सम्बन्धेन समवायलक्षणेनैव भानमिति विवेक इति चेत् ? न, ककारादौ कत्वादे अपि तथैव = स्वसमवायिसयुक्तसमवेतत्वसम्बन्धेनैव भानमिति समानम् । अतः तारत्वादे' वायुसमवेतत्वोपगमे कत्वादेरपि तत्त्वापत्तिर्दुर्वारैव । एव = निरुक्तरीत्या 'वायुवृत्तित्वे तस्य = कत्वादेः भान श्रावणमेव न स्यात् । वायुस्पर्शादेरिव स्पार्शन वा स्यात् । न च कत्वादेः वायुगतत्वेऽपि जातिस्पार्शन प्रति कत्वादीना तादात्म्येन प्रतिवन्धकत्वान्न वायुस्पर्शादेरिव कत्वादेः त्वाचापत्तिरिति वाच्यम् लौकिकविषयतासम्बन्धेन जातित्वाच प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन कत्वादीना प्रतिवन्धकत्वकल्पने न गौरवात्''- इति मीमासकवक्तव्य पुनः उभयत्र = कत्वादि-तारत्वाद्यस्पार्शनयोः समानम् । तथाहि वायुवृत्तित्वे तारत्वादेः श्रावणत्वमेव स्यात्

▶ वल्लभा ◀

की प्रयोजकता असिद्ध है ।

☆O तारत्वादिविशिष्ट शब्द भी नित्य O☆

नैयायिक : - अथ० । प्रत्यभिज्ञा के वल से पूर्वापरकालीन गकार आदि मे अभेद की सिद्धि हो नहीं सकती, क्योकि तार, मन्द आदि भेद से गशब्द आदि मे भेद को मानना आवश्यक है । 'तारोऽय गकार' 'मन्द स गकार', इत्यादि प्रतीति से गशब्द मे तारत्व, मन्दत्व आदि विरुद्ध धर्मो का अध्यास सिद्ध होता हे जिसकी वजह गकार आदि मे भेद को मान्य करना आवश्यक ह । 'तारोऽय गकार', 'मन्द स गकार' इत्यादि प्रतीति से गशब्द मे तारत्व, मन्दत्व आदि विरुद्ध धर्मों का अध्यास सिद्ध होता हे, जिसकी वजह गकार आदि मे भेद को मान्य करना आवश्यक हे । विरुद्धधर्माध्यास भेदसाधक होता है । यदि तारत्वादि धर्म को वायुगत मान कर उसका व्यग्य शब्द मे आरोप माना जाय तव तो कत्वादि धर्म को भी पवनवृत्ति मान कर उसका भी शब्द मे आरोप माना जा सकेगा । तुल्ययुक्ति से तारत्वादि की भाँति कत्व आदि भी वायुगत = वायुधर्म वन जायेगा ।

यदि मीमासक की ओर से यह कहा जाय कि—> कत्वादि धर्म को वायुगत माना जा नही सकता, क्योकि कत्व आदि को वायुगत माना जाय तव शब्दवृत्तित्वेन रूपेण कत्व आदि का भान हो नही सकेगा <— तो यह वक्तव्य तारत्व आदि धर्म का वायुगत मानने पर भी समान होगा कि कत्व आदि वायुवृत्ति होगा तो शब्दवृत्तित्वेन रूपेण तारत्वादि धर्म का भी भान हो नही सकेगा । यहाँ यह नही कहा जा सकता कि —> 'गकार आदि शब्द मे तारत्व आदि धर्म का भान स्वसमवायिसयुक्तसमवेतत्वलक्षण परम्परा सवन्ध से ही भान होता हे । तारत्व आदि के समवायी वायु द्रव्य से सयुक्त गगन मे समवेत शब्द मे उक्तसम्वन्ध से तारत्व आदि धर्म का भान हो सकता हे । इसलिये उक्त परम्परासम्वन्ध मे तारत्व आदि धर्म का गकार आदि मे आरोपित भान माना जा सकेगा <— यह कथन इसलिये अयुक्त है कि तुल्ययुक्ति से कत्व आदि धर्म को भी वायुगत मान कर स्वसमवायिसयुक्तसमवेतत्व सम्वन्ध से ककार आदि शब्द मे कत्व आदि धर्म का आरोपित भान माना जा सकता है । स्व = कत्व के समवायी = वायु

समानमिति चेत् ? न, तारमन्दशुकसारिकाचैत्रादिप्रभवभेदेनैव तस्य नानात्वात् । अत एव गकारादेरेकत्व- शुकप्रभवत्वादिवैलक्षण्यभान न स्यादित्यपास्तम् ।

◆ हेमलता ◆

वायुस्पर्शादेरिव स्पार्शन वा स्यात् । कत्वादेरिव तारत्वादेः जातित्वाच्च प्रति प्रतिबन्धकत्वकल्पने तत्परिहारस्याप्युभयत्र समत्वात् । गौरवमप्युभयत्र तुल्यमेव, तारत्वादेरपि जातित्वेन जातित्वाचप्रतिबन्धकताया' तारत्वादिसाधारणायाः कल्पयितु शक्यत्वात् । अतो वायुवृत्तित्वे कत्वादेरिव तारत्वादेरपि स्पार्शन न स्यादिति न तारत्वादेः वायुगतत्वकल्पना सङ्गता इति चेत् ?

निरुक्तनैयायिकमत मीमासको निराकरोति नेति । तार-मन्द-शुकसारिका-चैत्रादिप्रभवभेदेनेव तस्य = शब्दस्य नानात्वात् । अय मीमासकाशयः शब्दो न केवल एक एव किन्तु ककार-खकारादिभेदभिन्नो नानाविध एव । न च ककारात्मकोऽपि शब्दः एक एव किन्तु तारत्व-मन्दत्वादिजातिभेदान्नानव नित्यस्य तारादेः ककारस्यापि क्वचित् शुकप्रभववायुव्यङ्ग्यत्व कचित् सारिकाजन्यमारुताभिव्यङ्ग्यत्व कचिच्च चैत्रादिकर्तृकपवनप्राकट्यमिति दृष्टत्वात् शुकप्रभववायुव्यङ्ग्यत्वादिधर्मभेदादपि भेद एव । इत्यञ्च कत्व-खत्व-तारत्व-मन्दत्व-शुकादिप्रभवमरुदभिव्यङ्ग्यत्वादिधर्मभेदेन शब्दस्य परमार्थतो नानात्वेऽपि शब्दत्वावच्छिन्नस्य नित्यत्वमेवोक्तप्रत्यभिज्ञया सिध्यति । न हि विवक्षितशुकहेतुकानिलव्यक्ततारककारे कचित् कदाचित् कथञ्चित् भेद उपलभ्यतेऽस्माभि' । तस्य मन्दककार-तारखकारादिभिन्नत्व तु नैव मीमासकैरपाक्रियते ।

केचित्तु स्वरूपत' ककारादेस्तारत्वादिधर्मयोगाभावान्न नानात्व किन्तु तद्व्यञ्जकीभूतो यस्तारमन्दादिस्वरूप' शुक-सारिका-चैत्रादिप्रभवः प्रभञ्जनः तद्भेदेनैव नानात्वात्तदैक्यस्य पारमार्थिकस्योपाधिकनानात्वेन विरोधाभावात्प्रत्यभिज्ञया तत्सिद्धि' स्यादेवेति व्याख्यानयन्ति, तन्न, एव व्यञ्जकवायुगततारत्वादेरारोपत शब्दस्य नानात्वोपगमे वायुस्पर्शस्पार्शनादेरिव तस्य स्पार्शनापत्ते' तादवस्थ्यात्, अग्रिमग्रन्थाऽलग्नतापत्तेश्च ।

अत एव = शब्दस्य कत्व-तारत्व-शुकप्रभववायुव्यङ्ग्यत्वादिभेदेन भिन्नत्वाभ्युपगमादेव, अस्यापास्तमित्यनेनान्वय' । गकारादे शब्दस्य एकत्वे = अभिन्नत्वे शुकप्रभवत्वादिवैलक्षण्यभान न स्यात् । न हि स्वरूपतोऽभिन्ने विरुद्धधर्मभान सम्भवति । आरोपितस्य तस्य भाने तु कत्वादेरपि आरोपितस्यैव भानापत्तेः शब्दस्य निरुपाख्यत्वापत्तिरिति शङ्काशय' ।

अनुक्तोपालम्भोऽय, मीमासकेन तारमन्दादिशब्दानामभेदानभ्युपगमात् । शुकप्रभव-ककार-खकार-तार-मन्दादिभेदभिन्नशब्दस्वीकारात् शुकप्रभ-वत्वादिवैलक्षण्यभानमनपायमेवेति मीमासकाभिप्राय' ।

▶ वल्लभा ◀

से सयुक्त = आकाश मे शब्द समवेत हे ही । इस तरह शब्दवृत्तित्वेन कत्व आदि एव तारत्व आदि धर्म का आरोपित भान सङ्गत हो सकेगा । मगर यह तो मीमासक को भी मान्य नही हे ।

यहाँ मीमासक का यह वक्तव्य कि →'कत्व आदि को वायुगत मानने पर उसका श्रावण प्रत्यक्ष ही हो नही सकेगा । जेसे वायुत्व आदि का श्रावण प्रत्यक्ष होता नही है ठीक वैसे ही । या तो कत्व आदि का स्पार्शन प्रत्यक्ष होने की आपत्ति आयेगी । जसे वायुस्पर्श आदि का स्पार्शन प्रत्यक्ष होता है ठीक वैसे ही कत्व आदि के स्पार्शन प्रत्यक्ष की आपत्ति आयेगी । लौकिक विषयता सम्बन्ध से जातिस्पार्शन साक्षात्कार के प्रति कत्व आदि जाति को प्रतिबन्धक मानने पर कत्व आदि के अस्पार्शन की उपपत्ति होने पर भी तादृश प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव की कल्पना का गौरव प्रसक्त होगा' ← भी निराधार हैं, क्योकि तुल्ययुक्ति से तारत्वादि को वायुगत मानने पर तारत्व आदि का भी श्रावण प्रत्यक्ष हो नहीं सकेगा या तो तारत्व आदि का स्पार्शन प्रत्यक्ष होने की आपत्ति आयेगी । एव लौकिक विषयता सम्बन्ध से जातित्वाच प्रत्यक्ष के प्रति कत्वादि जाति मे तादात्म्येन प्रतिबन्धकता का स्वीकार किया जायेगा उसको तारत्वादि जाति मे भी मान्य की जा सकती है । जिसकी वजह वायुगत तारत्वादि जाति का स्पार्शन प्रत्यक्ष परिहृत हो जायेगा । गौरव तो उभयपक्ष मे तुल्य ही रहेगा । इसलिये तारत्वादि को वायुगत माना जा नही सकता ।

मीमासक :- न० । जनाव ! आपका यह वक्तव्य सङ्गत नही हे, क्योकि कत्व, खत्व आदि के भेद से शब्दभेद जैसे हमे मान्य ह ठीक वैसे ही तारत्व, मन्दत्व, शुकजन्यवायुव्यङ्ग्यत्व, सारिकाजन्यवायुव्यङ्ग्यत्व आदि विरुद्धधर्म के भेद से भी शब्दभेद मान्य हे । मतलब यह हे कि शब्द एक नहीं हैं किन्तु क, ख आदि भेद से भिन्न हैं ठीक वैसे ही तार (=तीव्र), मन्द आदि भेद से भिन्न हे । चैत्रीयवायु से व्यग्य तार गकार सर्वदा एक ही होता हे, नित्य होता ह । अर्थात् वैधर्म्यवाले शब्द परस्पर भिन्न है मगर नित्य हे, अनित्य नही । इस तरह शब्द को अनेकविध एव नित्य मानने पर तारत्वादिप्रतीति एव प्रत्यभिज्ञा की भी सङ्गति हो जायेगी । अतएव यहाँ इस शङ्का को कि → 'गकार आदि एक होने पर शुकप्रभवत्व आदि वेलक्षण्य का भान नही हो सकेगा,

यत्तु मीमासकाना 'चैत्रादेः स्वीयमैत्रशुकादिककारादेः प्रत्यक्षे चैत्रादिकर्णावच्छिन्नविजातीयवायुसयोगा हेतवो वाच्या' इत्यतिगौरवम्, नैयायिकानान्तु 'अवच्छेदकतया चैत्रादिककारादौ विजातीयवायुसयोगो हेतुस्तत्पुरुषीयनिखिलशब्दप्रत्यक्षे च

◆ हेमलता ◆

घटादौ श्यामत्व-रक्तत्वादिवदेकत्राऽपि शब्दे तारत्व-मन्दत्वादिसम्भवान्न 'तारोऽय' 'मन्दोऽय' इत्यादिप्रतीत्यसम्भवो न वा प्रत्यभिज्ञाया व्यक्त्यभेदविषयकत्वे भ्रमत्वमिति मीमासकैकदेशीय ।

अस्तु वा तारत्वादिजातिः शब्दमात्रवृत्तिरेव, विजातीयपवनवशात्तु क्वचित् कदाचिदभिव्यक्तिरितीतरे ।

पदार्शमालाकृतो मतमपाकर्तुमाह - यत्तु इति तच्चिन्त्यमित्यनेनान्वेति । मीमासकाना मते शब्दस्य नित्यत्वे चैत्रादे लौकिकविषयतासम्बन्धेन स्वीय-मेत्र-शुकादिककारादे प्रत्यक्षे = श्रावणत्वावच्छिन्न प्रति चेत्रादिकर्णावच्छिन्नविजातीयवायुसयोगा हेतवो वाच्या । न च ककारादिश्रावणत्वमेव विजातीयवायुसयोगकार्यतावच्छेदकमिति गारवमितिवाच्यम्, चैत्रकर्णे चेत्रीयादिककारादिव्यञ्जकविजातीयवायुसयोगसत्त्वे दूरस्थाना यज्ञदत्तादीना तादृशककारादिश्रावणापत्तिवारणाय कार्यतावच्छेदकधर्मकुक्षौ चैत्रीयत्वादिनिवेशस्यावश्यकत्वेन गौरवस्यानिराकार्यत्वात् । एव कारणतावच्छेदकधर्मकोटौ चैत्रादिकर्णाऽप्रवेशे तु परुपान्तरकर्णावच्छिन्नस्य ककारादिव्यञ्जकस्य विजातीयवायुसयोगस्य सत्त्वेऽपि चैत्रादेः ककारादिप्रत्यक्षापत्तिः । अतः तत्राऽपि अनन्तचैत्रादिकर्णनिवेशावश्यकत्वेन महागौरवम् । चैत्र-मैत्रादिकर्णावच्छिन्नवायुसयोगाभिव्यक्तककारादीना नित्यत्वाद् विभिन्नव्यक्त्यभिव्यञ्जित-ककारादिप्रत्यक्षवैलक्षण्यमनुपपन्नमिति तदन्यथानुपपत्त्या चैत्रीयादिककारादिश्रावणत्वावच्छिन्नकारणतावच्छेदककोटौ वैजात्यनिवेशस्याप्यावश्यकत्वमिति गोरवम् । एवञ्चैत्रकर्णगत-चैत्रीयककारमेत्रीयककार-शुकीयादिककाप्रत्यक्षेऽपि नानाविजातीयवायुसयोगाना कारणत्वे तत्र चेत्र-मैत्रादिनानापुरुषनिवेशावश्यकत्वे अतिगौरव = अनन्तकार्यकारणभावगौरवापत्तिर्मीमासकाना मत इति पदार्थमालाकृदभिप्राय' ।

नैयायिकाना मते तु ककारादीनामनित्यत्वेन नानात्वेन च तथा तदुत्पादकाना वायुसयोगानामपि विनाशित्वेनाऽव्यापकत्वेन विजातीयत्वेन च कार्यता-कारणतावच्छेदककोटावनन्तपुरुषाऽनिवेशेन लाघव यतः तन्मते अवच्छेदकतया = अवच्छेदकतासम्बन्धेन चेत्रादिककारादो = विजातीयककारात्वाद्यवच्छिन्न प्रति, - अवच्छेदकतासम्बन्धेन विजातीयवायुसयोगो हेतु । न च शब्दाऽनित्यत्वे चैत्रादेः स्वीय-चेत्रीयशुकीयादिककारादिश्रावणत्वावच्छिन्ने किं कारणम् ? इति शङ्कनीय, शब्दाऽनित्यत्वपक्षे तत्पुरुषीयनिखिलशब्दप्रत्यक्षे = शब्दनिष्ठलौकिकविषयतास-

▶ वल्लभा ◀

क्योकि एक मे विरुद्ध धर्म नामुमकिन है'← भी अवकाश रहता नही हे, क्योकि तार, मन्द, शुकयपवनव्यङ्ग्य ककार आदि मे भेद हम मीमासको को मान्य ही हैं। अनेक शब्द का स्वीकार करने से भिन्न भिन्न शब्द मे तारत्व, मन्दत्व, शुकीयपवनव्यङ्ग्यत्व आदि विलक्षण धर्मों का भान होने मे कोई विरोध आदि दोष नही ह । इसलिये तार, मन्द आदि अनेक शब्द नित्य ही सिद्ध होते हे ।

◆◆ नैयायिकमत मे लाघव की आशङ्का ◆◆

यत्तु । यहाँ शब्दअनित्यतावादि नेयायिक का शब्दनित्यतावादी मीमासक के प्रति यह आक्षेप हे कि → शब्दनित्यत्वपक्ष मे चेत्र आदि को स्वीय = चेत्रीय ककारादि, मेत्रीय ककारादि, शुकीय आदि ककार आदि के प्रत्यक्ष मे चैत्र आदि के कर्ण से अवच्छिन्न विजातीय वायुसयोग को हेतु मानना होगा, अन्यथा कार्यदल मे चेत्र आदि का निवेश न करेगे तो चेत्र आदि के कर्ण मे चैत्रीय, मेत्रीय, शुकीय आदि ककार आदि के व्यञ्जक विजातीय वायुसयोग के होने पर चैत्रादि से अन्य दूरस्थ देवदत्त आदि को भी उपर्युक्त ककार आदि के श्रावण साक्षात्कार की आपत्ति आयेगी । एव कारणदल मे चेत्रादिकर्ण का निवेश न करने पर पुरुषान्तर के कर्ण मे ककारादि के व्यञ्जक विजातीय वायुसयोग के होने पर चेत्रादि को ककारादि के श्रावण प्रत्यक्ष की आपत्ति आयेगी । अत शब्दनित्यत्वपक्ष मे शब्द ओर विजातीय वायुसयोग आदि मे व्यङ्ग्य-व्यञ्जकभाव की कल्पना करने मे अत्यन्त गौरव हे । जब कि शब्दाऽनित्यतावादि नैयायिको के मत मे इस प्रकार के गोरव को अवकाश नही ह, क्योकि नेयायिकमत मे अवच्छेदकता सम्बन्ध से विजातीय ककार आदि मे विजातीय वायुसयोग अवच्छेदकतासम्बन्ध से कारण होता हे । एव तत्पुरुषीय निखिल शब्द के श्रावण प्रत्यक्ष मे तत्पुरुषीय कर्णावच्छिन्न समवाय हेतु बनता हैं । इसलिये लाघव है । आशय यह हे कि शब्दनित्यत्ववादी मीमासको के मतानुसार क, ख, ग आदि वर्ण सर्वदा और सर्वत्र सब के लिये समान ही हे, अभिन्न ही है ओर उसकी अभिव्यक्ति चैत्र आदि किसीसे भी होने पर उसमे कोई विलक्षणता होती नही हे, क्योकि नित्य ओर अभिन्न होने से उसमे वेजात्य नामुमकिन है। किन्तु विभिन्न व्यक्तियो से अभिव्यञ्जित एक ही वर्ण का श्रोता को विलक्षण श्रावण प्रत्यक्ष होता हे । इसकी उपपत्ति के लिये चेत्र के अपने ककार के साक्षात्कार मे चेत्रीयकर्णावच्छेद्य विजातीयवायुसयोग, मेत्रीय ककार के प्रत्यक्ष मे अन्य विजातीय वायुसयोग ओर शुक आदि के ककार के

तत्पुरुषावच्छिन्नसमवाय'इति लाघवमिति । तच्चिन्त्यम्, विजातीयवायुसयोगस्य स्वावच्छेदकश्रोत्रसयुक्तमनःप्रतियोगिकविजातीय सयोगसम्बन्धेन निखिलशब्दश्रावण प्रति हेतुत्वे मीमासकानामेवातिलाघवात् ।

◆ हेमलता ◆

म्बन्धेन तत्पुरुषसमवेतश्रावण प्रति च स्वनिरूपितप्रतियोगित्वसम्बन्धेन तत्पुरुषकर्णावच्छिन्नसमवाय = तत्पुरुषीयकर्णशष्कुल्यवच्छिन्नाकाशावच्छिन्नः समवाय' हेतुरिति । मीमासकमते चैत्रादेः स्वीय-मैत्रीय-शुकीयादिककारश्रावणे यस्य चैत्रादिकर्णावच्छिन्नविजातीयवायुसयोगस्य कारणत्व तद्भिन्नस्यैव चैत्रादिकर्णावच्छेद्यविजातीयवायुसयोगस्य स्वीय-मैत्रीय-शुकीयादिखकारश्रावणे चैत्रादिसमवेते कारणत्वमित्येव स्वीकारावश्यकत्वे महागौरव स्पष्टमेवेति पदार्थमालाया प्रत्यपादि तच्चिन्त्यम् ।

यतो नित्यत्वपक्षेऽपि अवच्छेदकतासम्बन्धेन विजातीयककारादिप्रत्यक्षेऽवच्छेदकतासम्बन्धेन विजातीयसयोगस्य कारणत्वमवच्छेदकतया तत्तत्कर्णावच्छिन्नप्रत्यक्षे च तादात्म्येन तत्तत्कर्णस्य कारणत्वमिति स्वीकारे गौरवविरहात् । प्रत्युत विजातीयवायुसयोगस्य स्वावच्छेदकश्रोत्रसयुक्तमनप्रतियोगिकविजातीयसयोगसम्बन्धेन निखिलशब्दश्रावण प्रति = समवायसम्बन्धावच्छिन्नकार्यताश्रय-सकलशब्दश्रावणमात्रवृत्तिवैजात्यावच्छिन्न प्रति हेतुत्वे स्वीक्रियमाणे तत्तत्कर्णाना पृथगहेतुत्वात् मीमासकानामेवातिलाघवात् । समवायेन यत्रात्मनि श्रावणमुपजायते तत्रैव विजातीयवायुसयोगो निरुक्तसम्बन्धेन

► वल्लभा ◄

प्रत्यक्ष मे भिन्न विजातीय वायुसयोग को कारण मानना होगा । इस प्रकार विभिन्न व्यक्तिओ से अभिव्यञ्जित एक ही ककार आदि के प्रत्यक्ष मे विभिन्न विजातीय वायुसयोगो को कारण मानना होगा एव एक श्रोता को जो ककार आदि का प्रत्यक्षात्मक कार्य होता है, उसमे विभिन्न उच्चारणकर्ताओ का निवेश करना होगा । जैसे चैत्रगत मैत्रीयककारप्रत्यक्ष, चैत्रगत शुकीयकवर्णसाक्षात्कार आदि मे विभिन्न विजातीय वायुसयोगो को कारण मानना होगा । इस प्रकार कार्यदल मे ककार आदि मे विभिन्न उच्चारणकर्ताओ का निवेश करने के सबब प्रति श्रोता को होनेवाले कवर्ण के प्रत्यक्ष को लेकर अनन्त गुरुतर कार्यकारणभाव की कल्पना होने से अपार गौरव ह । किन्तु शब्दाऽनित्यपक्ष मे विभिन्न उच्चारणकर्ताओ के निवेश की आवश्यकता नही हैं । अतएव इस कार्यकारणभाव मे उत्पाद्य और उत्पादक के वैजात्यभेद से ही भेद होता है, उच्चारणकर्ता के भेद से भेद होता नही है । श्रोता को कवर्णआदि का विलक्षण साक्षात्कार होता है यह विषयभूत ककारादि के वैजात्य से ही सम्पन्न हो जाता है । अतएव तदर्थ विजातीय कारण की कल्पना की आवश्यकता होती नही है, किन्तु सामान्यत शब्दनिष्ठविषयतासम्बन्ध से तत्पुरुषीय श्रावण साक्षात्कार के प्रति तत्पुरुषीय कर्णावच्छेद्य समवाय को प्रतियोगित्व सम्बन्ध से कारण मान लेने से काम चल जाता हे - सब सङ्गत हो जाता है, क्योकि जो भी शब्द तत्पुरुषीयकर्णावच्छेदेन उत्पन्न होगा उसमे तत्पुरुषीयकर्णावच्छिन्नसमवाय स्वप्रतियोगितासम्बन्ध से रहेगा और उस शब्द मे उत्पादकाधीन जो वैजात्य होगा उस वैजात्यरूप से उस शब्द का तत्पुरुष को साक्षात्कार हो जायेगा । अत शब्दअनित्यत्वपक्ष मे उच्चारणकर्ता के भेद से और विजातीय वायुसयोग आदि के भेद से न तो शब्द और वायुसयोग के कार्यकारणभाव मे गौरव है एव न तो तत्पुरुषीयशब्दप्रत्यक्ष और तत्पुरुषीयकर्णावच्छिन्न समवाय के कार्यकारणभाव मे गौरव है । अत शब्दनित्यत्ववादी मीमासक की अपेक्षा शब्दअनित्यत्ववादी नैयायिक के मत मे स्पष्ट ही लाघव है ।

▲▲ मीमासकमत मे गौरव का परिहार ▲▲

तच्चि० । मगर शब्दनित्यत्ववादी मीमासक का उपर्युक्त नैयायिकआक्षेप के खिलाफ यह वक्तव्य है कि उक्त रीति से शब्दअनित्यत्वपक्ष का लाघव से समर्थन करना मुनासिब नही है, क्योकि नित्यत्वपक्ष मे भी ककार आदि के विजातीय प्रत्यक्ष मे अवच्छेदकतासम्बन्ध से विजातीय वायुसयोग को और तत् तत् कर्णावच्छिन्न ककारादिसाक्षात्कार मे तत् तत् कर्ण को कारण मान लेने से गौरव नही होगा । प्रथम कार्यकारणभाव मे कार्यता और कारणता दोनो अवच्छेदकतासम्बन्ध से अभिमत है । दूसरे जन्यजनकभाव मे कार्यता का अवच्छेदक सम्बन्ध हे अवच्छेदकता और कारणता का अवच्छेदकसम्बन्ध है तादात्म्य । दूसरी बात यह है कि दूसरे कार्यकारणभाव को मान्य करने की आवश्यकता नही है किन्तु एक यही हेतु-फलभाव मानना मुनासिब है कि समवायसम्बन्ध से ककारादि सकल के साक्षात्कार मे स्वावच्छेदकश्रोत्रसयुक्तमन प्रतियोगिकविजातीयसयोगसम्बन्ध से विजातीय वायुसयोग कारण है । आशय यह प्रतीत होता ह कि यज्जातीय पवन के यज्जातीयसयोग सम्बन्ध से चैत्र के कण्ठ से ककार अभिव्यक्त होगा, तज्जातीयपवन के तज्जातीयसयोग की श्रोता के मन सयुक्त कर्ण मे उत्पत्ति होने पर श्रोता को चैत्रकण्ठाभिव्यक्त ककार का प्रत्यक्ष होगा । इसी तरह खकार, गकार आदि सकल शब्द के साक्षात्कार मे ज्ञातव्य हे । यहाँ विजातीय पवनसयोग को जिस सम्बन्ध से कारण कहा गया हे उस सम्बन्ध की कुक्षि मे स्वपद से श्रोता के कर्णावच्छेदेन उत्पन्न होनेवाला विजातीय वायुसयोग अभिमत हे । उसका अवच्छेदक है श्रोत्र, उससे सयुक्त ह मन, उस मन का विजातीयसयोग हे आत्मा और मन का विजातीयसयोग जो श्रोतृभूत आत्मा मे रहता है । अत उस

एतेन जन्यत्वपक्षे विजातीयपवनसयोगस्य कत्व जन्यतावच्छेदकमिति लाघव, व्यङ्ग्यत्वपक्षे तु कप्रत्यक्षत्व कश्रावणत्वादिक वेति गौरवमिति निरस्तम्, उक्तरीत्या सामान्यत एव हेतुत्वे क्लृप्ते कप्रत्यक्षवाद्यवच्छिन्न प्रति तदकल्पनात्, स्वाश्रयविपयतासम्वन्धेन कत्वस्यैव तज्जन्यतावच्छेदकत्वसम्भवाचेति मीमासकानुयायिन ।

◆ हेमलता ◆

वर्तते एव, स्वस्य = विजातीयपवनसयोगस्यावच्छेदकेन श्रोत्रेण सयुक्त यन्मनः तत्प्रतियोगिकात्मानुयोगिकविजातीयसयोगाश्रयत्वात्तदात्मनः । इत्यश्च विपयनिष्ठप्रत्यासत्त्या पूर्वोक्तकार्यकारणभावाङ्गीकारे तत्तदनन्तपुरुपनिवेशे गौरवात्त परिहृत्याऽऽत्मनिष्ठप्रत्यासत्त्या एव निरुक्तहेतु-फलभावस्वीकारादतिलाघव मीमासकमते स्पष्टमेव ।

किञ्च शब्दस्य जन्यत्वे वीणाकाशादीनामप्यनन्तहेतुता कल्पनीया न तु शब्दव्यङ्ग्यत्वनये ।

एतेन = शब्दजन्यत्वपक्षेऽनन्तहेतुतोपदर्शनेन, निरस्तमित्यनेनास्यान्वय' । शब्दस्य जन्यत्वपक्षे विजातीयपवनसयोगस्य कत्व जन्यतावच्छेदक न तु कप्रत्यक्षत्वादिक इति नैयायिकमते लाघव = कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरकृतलाघवम् । व्यङ्ग्यत्वपक्षे तु विजातीयवायुसयोगनिरूपितकार्यताया अवच्छेदक कप्रत्यक्षत्व कश्रावणत्वादिक वा स्वीकर्तव्यमिति मीमासकमते गौरव = कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरकृतगौरवमिति नैयायिकवचन निरस्तम्, उक्तरीत्या सामान्यत एव = शब्दमात्रश्रावण प्रत्येव, विजातीयपवनसयोगस्य हेतुत्वे क्लृप्ते कप्रत्यक्षत्वाद्यवच्छिन्न प्रति तदकल्पनात् = विजातीयवायुसयोगकारणतानुपगमात् । न च सामान्यत' फल-फलवद्भावस्वीकारेऽपि विशेपतः कार्यकारणभावकल्पने गौरवमनपायमेवेति वाच्यम् स्वाश्रयविपयतासम्वन्धेन = स्वाश्रयविपयकलौकिकश्रावणनिष्ठविपयितासंसर्गेण कत्वस्यैव तज्जन्यतावच्छेदकत्वसम्भवाच्च = विजातीयपवनसयोगनिरूपि-तकार्यतावच्छेदकत्वोपपत्तेश्च । स्वस्य= कत्वस्याश्रयो यः ककारः तल्लौकिकसाक्षात्कारे निष्ठायाः विपयिताया विजातीयवायुसयोगकार्यमात्रवृत्तित्वेन तादृशविपयितासम्वन्धेन कत्वस्य विजातीयपवनसयोगकार्यताऽन्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वेन तत्कार्यतावच्छेदकत्वसङ्गतेर्न कार्यतावच्छेदकधर्मशरीरगौरव मीमासकमते प्रसज्यते । न च समवायापेक्षयोक्तसम्वन्धेन गौरवमिति वक्तव्यम् सम्बन्धगौरवस्यादोपत्वात् ।

वस्तुतो निरुक्तसम्वन्धेन शब्दत्वमेव मीमासकमते जन्यतावच्छेदकमिति कत्वाद्यवच्छिन्न प्रति नानाहेतुताकल्पने नैयायिकस्यैव गौरवात् । एतेन तव स्वावच्छेदकश्रोत्रसयुक्तमनःप्रतियोगिकविजातीयसयोगसम्वन्धेन हेतुता मम तु अवच्छेदकतयेति लाघवमित्यपि प्रत्युक्तम्, तथापि चैत्रत्वाद्यन्तर्भावेनानन्तकार्यकारणभावगौरवस्य नैयायिकमते दुर्वारत्वाच्च । एवञ्च समानविपयककाकाराद्यनुमितौ विजातीयपवनसयोगघटितश्रावणसामग्र्याः प्रतिवन्धकत्वकल्पनागौरवमप्यनुद्भाव्यमेव, चैत्रकर्णसयोगावच्छिन्नसमवायघटितसामग्र्या एव तथात्वे प्रत्युत गौरवात् ।

अथ तथापि गकारादौ गुणत्वादेः ककारभेदादेश्च ग्रहाय पृथक् पृथक् विजातीयपवनसयोगस्याऽनन्तहेतुताकल्पने गौरवमिति चेत् ? तर्हि श्रावणत्वावच्छिन्न प्रत्येवोपदर्शितसम्वन्धेन हेतुताऽस्तु ।

एके तु दोपाभावाना हेतुतापेक्षया विजातीयवायुसयोगस्य पृथक् हेतुत्वमप्युचितमित्याहुः ।

अन्ये तु स्वनिरूपितलौकिकविपयतया गुणत्वग्रह प्रति प्रतियोगितासम्वन्धेन श्रावणविपयीभूतशब्दानुयोगिकसमवायस्य कारणत्वेन गकारवृत्तिगुणत्वग्रहोपपत्तिः । स्वनिरूपितलौकिकविपयतया ककारभेद-कत्वात्यन्ताभावादिप्रत्यक्ष प्रति श्रावणविपयीभूतखकारादिविशेपणताया हेतुत्वेन खकारादिवृत्तिककारभेद-कत्वात्यन्ताभावादिश्रावणसङ्गति । एतेन कोलाहले शब्दत्वेदन्त्वादिना ककारादिश्रावणमपि समर्थितम्, क्रमशः प्रोक्तकारणद्वयेन तदुत्पत्तिसम्भवात् इत्यप्याहु ।

► वल्लभा ◄

सम्वन्ध से विजातीयवायु का विजातीयसयोग भी श्रोतृभूत जीव मे रह जायेगा । इसलिये विजातीयवायुसयोग ककार आदि सकल वर्ण के साक्षात्कार मे कारण होता है । इस कार्यकारणभाव का स्वीकार करने पर तत् तत् कर्ण को तत् तत् कर्णावच्छिन्न ककारादिप्रत्यक्ष मे कारण न मानने से शब्दनित्यत्वपक्ष मे गौरवभाव नहीं है, अपितु शब्दअनित्यत्वपक्ष की अपेक्षा अत्यन्त लाघव भी है ।

▽▼ नित्यत्वपक्ष मे भी कत्व जन्यतावच्छेदक ▲△

एतेन० । नैयायिक का यहाँ यह कथन कि → 'शब्द को जन्य मानने पर विजातीयपवनसयोग का कार्यतावच्छेदक कत्व ही होगा, क्योकि विजातीय वायुसयोग से ककार उत्पन्न होता है । मगर शब्द को व्यङ्ग्य मानने पर विजातीय वायुसयोग का कार्य कप्रत्यक्ष या कश्रावण साक्षात्कार आदि होने से उसका कार्यताच्छेदक कप्रत्यक्षत्व या कश्रावणत्व आदि होगा । कत्व की अपेक्षा कप्रत्यक्षत्व को कार्यतावच्छेदक मानने मे गौरव स्पष्ट ही है । इसकी अपेक्षा कत्व को ही विजातीय वायुसयोग का कार्यतावच्छेदक मानना युक्त है'← भी पूर्वोक्त प्रतिपादन से ही निरस्त हो जाता है, क्योकि सामान्यत निखिल शब्दप्रत्यक्ष के प्रति ही विजातीय वायुसयोग मे कारणता आवश्यक है तव अनेकविध कार्यकारणभाव के स्वीकार का गौरव कैसे सावकाश होगा ? इसलिये कप्रत्यक्षत्व या कश्रावणत्व

अत्र वदन्ति उत्पत्तिविनाशरूपवैधर्म्यज्ञानकालोत्पत्तिकाया उक्तप्रत्यभिज्ञायास्तज्जातीयाभेदविषयकत्वान्नैक्यसाधकत्वम् । न

◆ हेमलता ◆

इतरे मीमांसकास्तु 'स एवायं गकारः' इत्यादिप्रत्यभिज्ञया गकारादेः तावत्कालावस्थानस्य विषयीकृतत्वेनाऽन्तराभूतशब्दादिनाऽनाशेन नाशकाभावाद्वर्णनित्यत्वसिद्धिः । न च तारत्वमन्दत्वादिग्रहो बाधक इति वाच्यम् 'य एव तारः स एवान्यापेक्षया मन्दः' इतिप्रतीतेः तारत्व-मन्दत्वादीनामविरोधादित्यपि वदन्ति ।

अपरे तु मीमांसकाः 'उत्पन्नः को विनष्टः कः' इत्यादिप्रतीतेः 'सोऽयं ककारः' इत्यादिप्रत्यभिज्ञायाश्च प्रामाण्योपपादनायोत्पादविनाशशालिप्रतीतेः कादिविषयकत्वं प्रत्यभिज्ञायाश्च ककाराद्यभिव्यक्तस्फोटो विषयः । स्फुट्यते ज्ञाप्यतेऽर्थोऽनेनेति व्युत्पत्त्याऽर्थस्मारको नित्यः शब्दविशेषः स्फोटः । स च पदस्फोटवाक्यस्फोटभेदात् द्विविधो भवति । पदज्ञाप्यस्फोटः पदस्फोटः । वाक्यज्ञाप्यस्फोटश्च वाक्यस्फोटः । वृत्त्या अर्थस्मारकत्वं स्फोटस्यैव पदवाक्ययोः स्फोटज्ञापकत्वात्परम्परयाऽर्थस्मारकत्वमिति वदन्ति ।

मीमांसकदेशीयास्तु 'सोऽयं' इत्यादिप्रत्यभिज्ञाबलात् वर्णानां नित्यत्वं, 'उत्पन्नः ककारो विनष्टः ककारः' इत्यादिप्रतीतेः ककारादिव्यञ्जकध्वनिविषयकत्वं ध्वनेरेव श्रोत्रग्राह्यत्वात्, उत्पादविनाशशालित्वाच्चेति प्रतिपादयन्ति ।

सर्वथानित्यता शब्दस्थले इत्थ प्रचक्षते ।
सर्वे मीमांसकास्तत्रेत्याहुः नैयायिकाः खलु ॥१॥

नैयायिकाः अत्र वदन्ति - 'उत्पन्नः को विनष्टः कः' इति उत्पत्तिविनाशरूपवैधर्म्यज्ञानकालोत्पत्तिकायाः 'स एवायं ककारो यं पूर्वमश्रोषमि'तिस्वरूपायाः उक्तप्रत्यभिज्ञायाः तज्जातीयाभेदविषयकत्वात् नैक्यसाधकत्वं = न पूर्वापरकालीनककाराद्यभेदनिश्चायकत्वम् । न च 'श्यामो नष्टः', रक्त उत्पन्नः' इति वैधर्म्यज्ञानकालेऽपि 'स एवायं घटः' इतिव्यक्त्यभेदविषयकत्वं प्रत्यभिज्ञाया यथा तथैवात्रापि किं न स्यादिति वाच्यम् तत्र घटादौ विशिष्टोत्पादादिप्रतीतेः शुद्धव्यक्त्यभेदाऽविरोधित्वेऽपीह शुद्धस्यैव ककारादेरुत्पादादिधीरितिविशेषात् ।

एतेन तादृशवैधर्म्यज्ञानाभावकालोत्पन्नपूर्वापरकालीनव्यक्त्यभेदविषयकप्रत्यभिज्ञया तदैक्यसिद्धावुत्पादादिप्रतीतेर्वायुसंयोगाद्युत्पादादिविषयकत्वस्य सुवचत्वात्, वह्न्यादौ धूमादिव्याप्तिभ्रमवद् नित्येऽपि शब्दे स्वत्वावच्छिन्नस्यापि सखण्डोत्पादस्य भ्रमसम्भवात्, साक्षाद्विरोधिनस्तत्पारिशेष्योत्पादस्य व्यावर्तकत्वेनाऽगृहीतत्वात् तद्बुद्धेर्व्यक्त्यभेदबुद्ध्यविरोधित्वाच्चेत्यपि प्रत्युक्तम्, लूनपुनर्जातकेशनखादिष्विव प्रत्यभिज्ञाया भ्रान्तत्वात्, तारमन्दशुकसारिकाप्रभवादिशब्देन नानाविधेष्वपि वर्णेषु प्रत्यभिज्ञानदर्शनेन तस्या भ्रमत्वावश्यकत्वात् शब्दस्य व्यङ्ग्यत्वे श्रावणजनकतावच्छेदिकाया जातेः पवनसंयोगे

▶ वल्लभा ◀

आदि धर्म मे अवच्छिन्न के प्रति विजातीय वायुसंयोग मे कारणता की कल्पना क्यो की जाय ? दूसरी बात यह है कि मीमांसक मत मे भी स्वाश्रयविषयतासम्बन्ध से अर्थात् स्वाश्रयविषयकलौकिकप्रत्यक्षनिष्ठविषयिता सम्बन्ध से कत्व ही विजातीय वायुसंयोग का कार्यतावच्छेदक बन सकता है । जैसे विजातीय वायुसंयोग से ककारश्रावण प्रत्यक्षात्मक कार्य उत्पन्न होता है यह कत्वाश्रयविषयक लौकिकप्रत्यक्षात्मक होने से कत्व उसमे स्वाश्रयविषयकलौकिकप्रत्यक्षनिष्ठविषयितासम्बन्ध से रह कर विजातीय वायुसंयोग का कार्यतावच्छेदक बन सकता है । तब तो गौरव को लेश भी अवकाश नही रहेगा । इसलिये शब्द को नित्य एवं नानाविध मानना ही युक्तिसङ्गत है । यह हम मीमांसक मनीषियो की मान्यता है ।

शब्द अनित्य है - नैयायिक

नैयायिक :- अत्र वद० । जनाब यह रामकहानी असत्य है । इसका कारण यह है कि 'गकारो विनष्टो गकार उत्पन्न' इत्याकारक उत्पत्ति-विनाशरूप शब्दनिष्ठ वैधर्म्य के समकाल मे उत्पन्न होनेवाली 'स एव अयं गकार' इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा पूर्वापरकालीन गकार मे अभेद को विषय नहीं करेगी किन्तु पूर्वगकारसजातीयत्वेन उत्तर गकार मे अभेद को यानी पूर्वोत्तरकालिक गकार के साजात्य को ही अर्थात् समान जाति को ही अपना विषय बनाती है । इसलिये पूर्वोत्तरकालीन गकार मे ऐक्य = अभेद की सिद्धि उपर्युक्त प्रत्यभिज्ञा से हो नहीं सकेगी । यहाँ यह शङ्का कि →" दर्शित प्रत्यभिज्ञा पूर्वापरकालीन गकार मे अभेद को विषय करती नहीं है किन्तु साजात्य को ही अपना विषय बनाती है तब तो 'तज्जातीयोऽयं गकार' 'तत्सदृशोऽयं गकार' इत्याद्याकारक प्रत्यभिज्ञा होनी चाहिये । मगर अनुभव तो हमारा यही है कि 'सोऽयं गकार' 'स एवायं गकार' इत्याकारक ही प्रत्यभिज्ञा होती है । इससे सिद्ध होता है कि पूर्वापरकालीन गकार अभिन्न है, सजातीय नहीं, क्योंकि साजात्य भेदनियत है" ← इसलिये निराधार है कि

चैव 'तज्जातीयोऽयमि'ति स्यात् न तु 'सोऽयमि'तीति वाच्यम्, तद्वृत्तिजात्यवच्छिन्नभेदाभावस्य भेदाभावत्वेनैव भानात् तद्व्यक्तित्वाच्छिन्नभेदाभावविषयकप्रत्यभिज्ञायास्तु भ्रान्तत्वमेव, अन्यथा तारमन्दादिनानावर्णेष्वपि तादृशप्रत्यभिज्ञादर्शनात् तेषामप्यैक्यप्रसङ्गात् ।

अपि चैव घटादेरपि व्यङ्ग्यत्वापत्तिः ।

◆ हेमलता ◆

इवात्ममनःसयोगे श्रोत्रमनोयोगादौ वा विनिगमनाविरहेण कल्पनापत्तेश्च । ततश्चोक्तप्रत्यभिज्ञायाः तत्साजात्यमेव विषयः । न च एव = निरुक्तप्रत्यभिज्ञायाः पूर्वापरकालीनककारादिसाजात्यविषयकत्वे 'तज्जातीयोऽयमि'ति प्रत्यभिज्ञा स्यात् न तु 'सोऽयमि'ति पूर्वापरव्यक्त्यैक्यविषयिणीति वाच्यम्, 'सोऽय ककार' इत्यत्र तद्वृत्तिजात्यवच्छिन्नभेदाभावस्य भेदाभावत्वेनेव भानात् । अय भावः 'सोऽय गकार' इत्यत्र इदन्त्वविशिष्टे तत्त्वविशिष्टस्य भेदाभावः बोध्यते । स च गवृत्तिगत्वजात्यवच्छिन्न-प्रतियोगिताकस्य भेदस्याभाव एव । स च न गत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभावत्वेन भासते किन्तु भेदाभावत्वेनैव भासते । अतः पूर्वापरगकारयोः साजात्यमेव, गत्वेन भेदाऽप्रतियोगित्वे सति तद्व्यक्तित्वेन भेदप्रतियोगित्वात् । अत एव पूर्वोत्तरकालीनगकारयोः तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नभेदाभावविषयकप्रत्यभिज्ञायास्तु भ्रान्तत्वमेव तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवति उत्तरगकारे तद्व्यक्तिभेदाभावावगाहित्वात् । अन्यथा = 'सोऽय' इत्याकारकप्रत्यभिज्ञानोपलब्धेः तस्या अपि तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नभेदाभावविषयकत्वसिद्ध्या तेषा = विजातीयाना तारमन्दादिशब्दाना अपि ऐक्यप्रसङ्गात् । न च तारत्वादिक ध्वनिधर्म एव शब्दे आरोप्यते न तु तच्छब्दस्य स्वाभाविक स्वरूपमिति वाच्यम्, तस्य तारत्वादिधर्मवत्तयैव नित्यमनुभूयमानतया तत्र तारत्वाद्यारोपाऽयोगात् । तदुक्त 'यो ह्यन्यरूपसवेद्यः सवेद्येतान्यथाऽपि वा । स मिथ्या न तु तेनैव यो नित्यमुपलभ्यते ॥ [ ] इति । न च ध्वनिधर्मत्वे तारत्वादीना ग्रहणमप्युपपद्यते, स्पर्शाद्यनन्तर्भावेन त्वगादीनामशब्दधर्मत्वेन च श्रोत्रस्याऽव्यापारात् ।

न चास्तु तर्हि नाभसा एव ध्वनय' इति वक्तव्यम् तथापि व्यक्तियोग्यतान्तर्भूत्वाज्जातियोग्यतायाः 'तारोऽय' इत्यादौ ध्वन्यस्फुरणे तद्गततारत्वाद्यस्फुरणप्रसङ्गात् । न चेदेव कत्वादिकमपि वायुगतमेवारोप्येतेति शब्दैक्य प्रसज्येत ।

अस्तु एवमेव, तत्त्वतः मीमासकमते शब्दस्यैकत्वादित्याशङ्कायामाह – अपि च एव = शब्दस्य नित्यत्वे, तुल्ययुक्त्या घटादेरपि व्यङ्ग्यत्वापत्तिः । एवमुत्पादकसामग्र्या व्यञ्जकत्वस्वीकारे सत्कार्यवादापत्त्या साङ्ख्यमतप्रवेशः दुर्वार एव मीमासकानाम् । ततश्च गत कार्यद्रव्यचर्चयाऽपि, घटाद्युत्पादविनाशाऽकल्पनात् । अतिसूक्ष्मेक्षिकया ग्राहकविश्रामे च गत घटादिना बाह्यतयैव ततो योगाचारमतप्रवेशप्रसङ्गः ।

▶ वल्लभा ◀

पूर्वकालीन गकार से उत्तरकालीन गकार का भिन्न होना तो वैधर्म्यकालोत्पन्न प्रत्यभिज्ञा से सिद्ध हो चूका है फिर भी 'स एवाय गकार' इत्याद्याकारक जो प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होती हे वह उन दोनो मे पूर्वकालीनगकारवृत्तिजाति से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक भेद के अभाव को ही अपना विषय भेदाभावत्वेन बनाती है । पूर्वकालीन गकार मे गत्व जाति रहती है । गत्वेन रूपेण पूर्वगकार और उत्तरकालीन गकार मे भेद रहता नही है । अर्थात् गत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभाव पूर्वोत्तर गकार मे रहता हे । इसी भेदाभाव का भेदाभावत्वेन रूपेण भान 'सोऽय गकार' इस प्रत्यभिज्ञा मे होता है । पूर्वकालीन गकार व्यक्ति से उत्तरकालीन गकारव्यक्ति तो भिन्न ही हे । अत पूर्ववर्तिगकारव्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद उत्तरवर्ती गकारव्यक्ति मे रहता ही हे । अत यदि 'सोऽय गकार' यह प्रत्यभिज्ञा तद्व्यक्तित्वाच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद के अभाव को अपना विषय बनाये तब तो वह भ्रान्त ही हो जायेगी, क्योंकि तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद उत्तरवर्ती गकार मे रहता हे ओर उसके अभाव का अवगाहन उक्त प्रत्यभिज्ञा मे होता हे । क्या तद्वान् मे तदभाव को विषय करनेवाली बुद्धि प्रमात्मक हो सकती है ? कदापि नही । यदि तद्व्यक्तित्वाच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभाव को विषय बनाने पर भी 'सोऽय गकार ' इस प्रत्यभिज्ञा को सत्य मानी जाय तब तो तार, मन्द आदि विभिन्न वर्णों मे भी 'स एवाय' इत्याकारक प्रत्यभिज्ञा का दर्शन होने से तार, मन्द आदि वर्ण भी परस्पर अभिन्न बन जायेगे, जो मीमासको को भी मान्य नही हे । इसलिये तार, मन्द आदि शब्दो मे जैसे परस्पर भेद हे ठीक वेसे ही पूर्ववर्ती, उत्तरवर्ती शब्दो मे मिथ भेद है - यह सिद्ध होता है ।

■■ शब्द व्यङ्ग्य नही है ■■

नैयायिक :- अपि चै० । इसके अतिरिक्त यह भी यहाँ ज्ञातव्य हे कि यदि शब्द को नित्य मान कर विजातीय वायुसयोग

पुसः कण्ठताल्वाद्यभिघातादौ प्रवृत्तिदर्शनात् तस्य जन्यत्वमेवेति ।

इति शब्दनित्यत्वाऽनित्यत्वविचारः ॥७॥ श्रीवादमाला सम्पूर्णा ॥

◆ हेमलता ◆

ननु घटसाधनताज्ञानेन = घटत्वावच्छिन्नकारणतानिश्चयेन दण्डादौ प्रवृत्तिदर्शनात् दण्डादिकार्यतावच्छेदकत्वं घटत्वादावेव न तु घटज्ञानादाविति चेत् ? न निरुक्तरीत्या घटत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वमङ्गीकृत्य तस्य = घटस्य जन्यत्वे स्वीक्रियमाणे तु शब्दसाधनताज्ञानेन = शब्दत्वावच्छिन्नजनकतानिश्चयेन प्रतिपादयितुः पुंसः कण्ठताल्वाद्यभिघातादौ प्रवृत्तिदर्शनात् कण्ठताल्वाद्यभिघातजन्यतावच्छेदकताऽपि शब्दत्वे एव न तु शब्दज्ञानत्वादाविति तस्य = शब्दस्य अपि जन्यत्वमेव सिध्यतीति एक सीव्यतोऽपरप्रच्युतिः । एवञ्च 'शब्द उत्पन्न' इत्यादिप्रतीतौ शब्दपद शब्दाभिव्यक्तिपरमिति निरस्तम् 'वीणाया शब्द' इत्यादिप्रतीतिस्तथाप्युपपादयितुमशक्यत्वात् । स चाय क्षणिकः । क्षणिकत्वञ्च तृतीयक्षणवृत्तिध्वसप्रतियोगित्वमित्यतो नापसिद्धान्तः । आद्यशब्दस्य कार्यशब्देन नाशः चरमशब्दस्य कारणशब्दनाशेन नाशो मध्यमाना पुनरुभाभ्यामिति नैयायिका ।

तन्न, प्रतियोगितया नाशत्वावच्छिन्न प्रति स्वप्रतियोगिजन्यत्वसम्बन्धेन नाशत्वेनैवान्यत्र क्लृप्तेन कार्यकारणभावेन सकलशब्दनाशनिर्वाहात् । तथा च शब्दस्योत्सर्गतः क्षणचतुष्टयावस्थायिविजातीयपवनसयोगनाश्यत्वेन क्षणचतुष्टयावस्थायित्वोपपत्तिमती । न चैव क्षणिकत्वसिद्धान्तहानिः, अपेक्षाबुद्धिसग्रहाय तृतीयक्षणवृत्तिध्वसप्रतियोगिवृत्तिविभाजकोपाधिमत्त्वस्य तत्त्वादिति शिरोमणिनयानुयायिन ।

तच्चिन्त्यम् एव सति ज्ञानादेरपि विजातीयात्ममनःसयोगनाश्यत्वापत्त्या क्षणचतुष्टयावस्थायित्वापत्तेः तेषा बहुक्षणस्थायितामुपेक्ष्य प्रत्यभिज्ञाकदर्थन व्यसनमात्रमेव ।

► वल्लभा ◄

से उसकी अभिव्यक्ति मानी जाय तब तो घट आदि सभी पदार्थों को भी नित्य मान कर कुलाल, दण्ड आदि से उनकी भी अभिव्यक्ति = ज्ञप्ति होती है, न कि उत्पत्ति - यह भी निर्विवादरूप से माना जा सकता है, क्योंकि आक्षेप और परिहार दोनो मे समान रहेंगे । मगर ऐसा मानने पर मीमासक महाशय का साङ्ख्य मत मे प्रवेश हो जायेगा, क्योंकि शब्द की भाँति घट, पट आदि सभी पदार्थ नित्य सत् = कारण मे विद्यमान होते हुए कारणविशेष से केवल ज्ञात होते हैं - यही साङ्ख्य का सत्कार्यवाद है जो मीमासकों को भी मान्य नहीं है । यहाँ बचाव के लिये मीमासक की ओर से यह कहा जाय कि → साङ्ख्य का सत्कार्यवाद अयुक्त है, क्योंकि लोगो की दण्डादि मे घटसाधनताप्रकारक ज्ञान से प्रवृत्ति होती है, न कि घटज्ञानसाधनताप्रकारक ज्ञान से । दण्डादि मे घटसाधनताज्ञान यही बताता है कि घटादि दण्डादि से जन्य है, न कि घटज्ञानादि' ← तो यह कथन तो मीमासकमत मे भी समान रीति से लागू होगा कि लोगो की कण्ठतालुअभिघात आदि मे शब्दसाधनताप्रकारक ज्ञान से प्रवृत्ति होती है, न कि शब्दज्ञानसाधनताप्रकारक ज्ञान से । कण्ठतालुअभिघात आदि मे शब्दसाधनता का ज्ञान यही सिद्ध करता है कि कण्ठतालुअभिघात आदि से ककार आदि शब्द जन्य है न कि ककारआदिशब्दज्ञान । अत शब्दव्यङ्ग्यत्ववाद भी घटव्यङ्ग्यत्ववाद की भाँति अप्रामाणिक सिद्ध हो जायेगा । अत घटादिव्यङ्ग्यत्ववादापत्ति = सत्कार्यवादप्रसङ्ग को दूर हटाने का प्रयत्न करने पर शब्दव्यङ्ग्यत्ववाद भी टूट जायेगा । यह दोष भी मीमासकमत मे अपरिहार्य है । अत शब्द को विजातीय पवनसयोग से व्यङ्ग्य मानने की अपेक्षा जन्य मानना ही युक्तिसङ्गत है - यह नैयायिक मनीषियो का वक्तव्य है । इस तरह शब्दनित्यत्वाऽनित्यत्वविचारनामक सातवाँ वाद समाप्त हुआ । साथ ही प्रस्तुत वादमाला प्रकरण भी समाप्त हुआ ।

इस तरह न्यायविशारद न्यायाचार्य महोपाध्याय श्रीयशोविजयगणिवरविरचित वादमाला प्रकरण का मुनि यशोविजय के द्वारा किया गया हिन्दी भावानुवाद सानन्द सपूर्ण हुआ ।

अषाढ वद ६ - वि स २०४८
ॐकार सूरि जैन आराधना भवन,
गोपीपुरा, सुरत ।

◆ हेमलता ◆

वस्तुतः शब्दस्य नित्यानित्यत्वमेव, केवलनित्यत्वे प्रकृतिप्रत्ययादिविभागेनानुशासनादिना साधनानुपपत्तेः, केवलाऽनित्यत्वेऽपि क्षणिके तत्र प्रकृतिप्रत्ययादिनोपस्काराधानासम्भवात् । अतो द्रव्यत्वेन तस्य नित्यत्व शब्दत्वेन चानित्यत्वमिति तु वय स्याद्वादिन ।

शब्दपरिणामापेक्षयोत्कर्षतः स्थितिरावलिकाया असङ्ख्येयभाग । तदुक्त व्याख्याप्रज्ञप्तो 'सद्दपरिणए ण भते ! पोग्गले कालओ केवचिर होइ ? गोयमा ! जहन्नेण एग समय उक्कोसेण आवलियाए असखेज्जइ भाग' [व्या प्र श ५/७, सू ७] इति । अत्र च बहु वक्तव्यम् । तच्च मत्कृतमोक्षरत्नातोऽवसेयमिति शम् ।

★ हेमलताटीकाकृत्प्रशस्तिः ★

प्रेमसूरीशपट्टाद्रौ, राजमान दिनेशवत् ।
भुवनभानुसूरीश, गच्छाधिप नमाम्यहम् ॥१॥

श्रीजयघोषसूरीश, तदीयपट्टभूषणम् ।
स्वगुरुदत्तसिद्धान्तदिवाकरपद स्तुवे ॥२॥

नौमि श्रीहेमसूरिं त, येन दीक्षा ददौ हि मे ।
यदीयोपकृतिस्मृत्यै, हेमलता व्यधायि हि ॥३॥

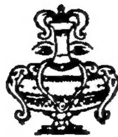
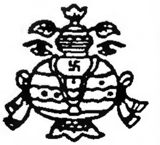
प्रमादपरिकल्पित यदि च किञ्चिदालोचित,
तदस्ति खलु दूषण मम हि नैव चान्यस्य तत् ।
यदत्र नवकल्पनाकलिततर्कवाग्वैभव,
तदेव जयसुन्दरस्फुरदमोघशिक्षाफलम् ॥४॥

स्वगुरु विश्वकल्याणविजयाख्य नमाम्यहम् ।
भुवनभानुसूरीशशिष्य प्रभावक मुदा ॥५॥

गजगत्यभ्रराशिप्रमिते (२०४८) विक्रमवत्सरे ।
पूर्णा कृतिः तृतीयाऽस्तु यशोविजयसम्पदे ॥६॥

महामहोपाध्याययशोविजयगणिप्रणीता मुनियशोविजयरचितहेमलतासमलङ्कृता

वादमाला समाप्ता ।

परिशिष्ट - १

हेमलताया साक्षितया उद्धृताना प्रदर्शिताना च ग्रन्थाना सूचि

क्रम	नाम	पृष्ठ
१	अनुद्भूतरूपादिखण्डनवादवीचि	१८०
२	आलोक [तत्त्वचिन्तामणिटीका]	१०६,१२१
३	ऐतेरेय उपनिषत्	१७०
४	किरणावली	१५४
५	किरणावलीरहस्य	१५४
६	जयलता	२६, १२२, १५८
७	जीवविचार	१२६
८	तत्त्वचिन्तामणि	१११, १२२
९	दीधिति	१५६
१०	नारदपरिव्राजक उपनिषत्	१७०
११	न्यायकणिका	१३८
१२	न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाश	१२८
१३	न्यायखण्डखाद्य	१
१४	न्यायभूषण	१२८
१५	पक्षताजागदीशीगन्ना	१७९
१६	पदार्थमाला	१९४
१७	परामर्शगादाधरी	१८०
१८	प्रकाश	१२२
१९	प्रतिमाशतक	१
२०	प्रतियोगिज्ञानहेतुतावाद	१८९
२१	प्रमेयमाला	१२२, १८९
२२	बृहदारण्यक उपनिषत्	१७०
२३	भस्मजाबाल उपनिषत्	१७०
२४	मञ्जूषा	१०९, ११६
२५	मध्यमस्याद्वादरहस्य	१३६
२६	महानारायण उपनिषत्	१७०
२७	मुक्तावली मञ्जूषा	१०९, ११६
२८	मोक्षरत्ना	१९९
२९	रत्नाकरावतारिका	१७०
३०	वादमहार्णव	५४
३१	वायूष्मादे प्रत्यक्षत्वाप्रत्यक्षत्वविवादरहस्य	१८८
३२	वीतरागस्तोत्र	५४
३३	व्याख्याप्रज्ञप्ति	१९९
३४	सामान्यलक्षणाकाशिकानन्दी	१२२
३५	सामान्यलक्षणा - गादाधरी	१५५, १८१
३६	स्याद्वादकल्पलता	१६३, १६७, १८५, १८९
३७	स्याद्वादरत्नाकार	१६९
३८	स्याद्वादरहस्य	१७०

परिशिष्ट - २

हेमलताया दर्शिताना विशेषनाम्ना सूचिः

परिशिष्ट - ३

हेमलताया खण्डिताना ग्रन्थाना सूचिः